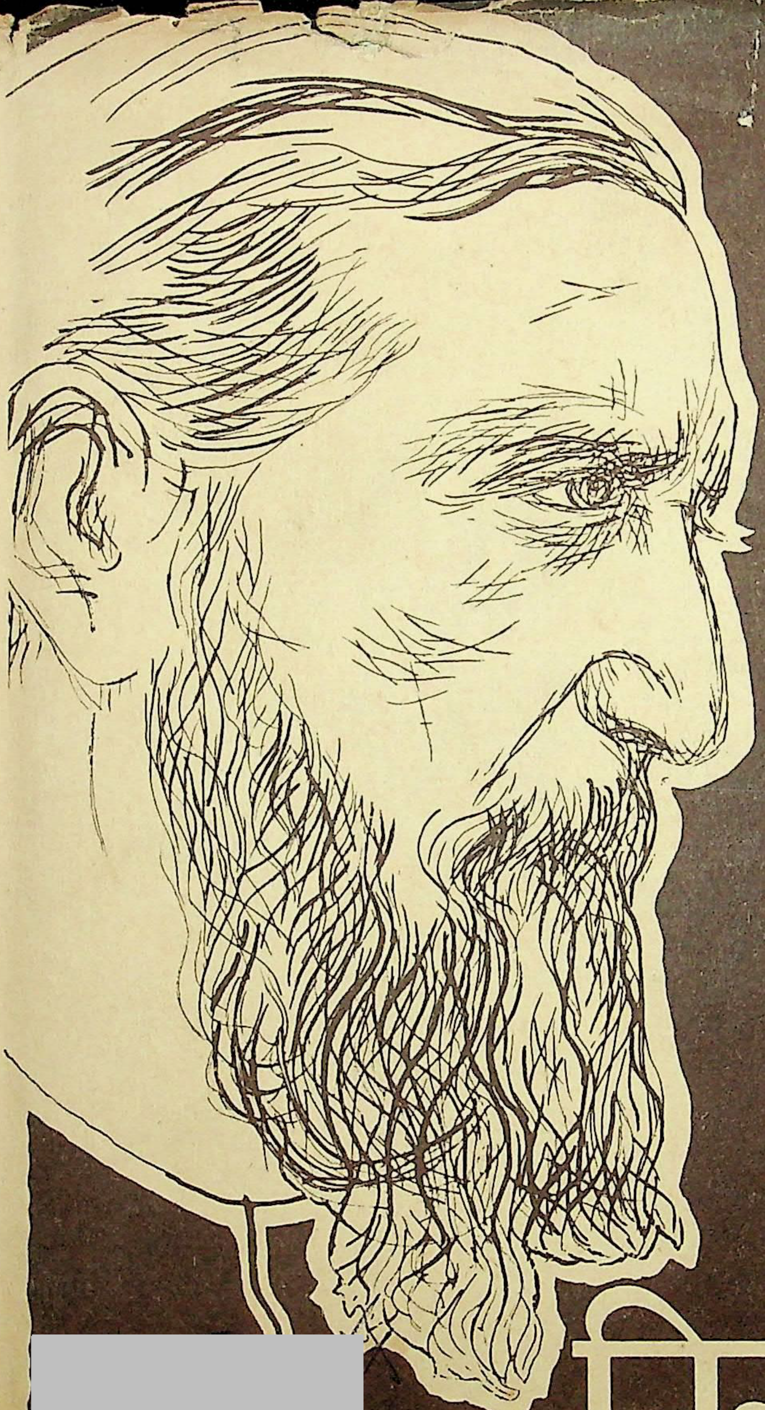

निराला रचनावली

4

(**निरालाजी** के कथा-साहित्य की) जो यथार्थवादी धारा **अप्सरा-अलका** के छायालोक में धुँधली थी, वह यहाँ ('देवी' और 'चतुरी चमार' में) पूरी शक्ति से यथार्थ की धरती पर प्रवाहित है। इसका कारण अवध में किसान-आन्दोलन की प्रगति, उससे **निराला** का गहरा सम्पर्क है। 'सरोज' की मृत्यु के बाद **निराला** के काव्य में वेदना सघन हुई है; गद्य में व्यंग्य भी निखरा है। सन् '36 से हिन्दी-साहित्य में जो प्रगतिशील आन्दोलन चला, उसका प्रभाव भी **निराला** पर पड़ा किन्तु उनकी व्यंग्य-कला निराली है और वह प्रगतिशील साहित्यिक आन्दोलन के जन्म से पहले की है। 'देवी' और 'चतुरी चमार' की कला ही **कुल्लीभाट** और **बिल्लेसुर बकरिहा** में निखरती है। ये रचनाएँ गद्य-लेखन में, कथा-रचना में, यथार्थवादी साहित्य के विकास में नया चरण हैं। 'देवी' और 'चतुरी चमार' में कहानी का पुराना ढाँचा टूट गया है अथवा **निराला** के हाथ से छूट गया है। कथानक लेकर चलनेवाली, समस्या के समाधान, नायक-नायिका के विवाह से समाप्त होनेवाली कहानियाँ ये नहीं हैं। इनमें परिवेश, पात्र ज्यों-के-त्यों उठाकर कथा में रख दिये गये हैं; मंच पर लाते समय उनका मेक-अप नहीं किया गया। पात्रों में एक – अक्सर प्रमुख – पात्र **निराला** स्वयं हैं। कहानी एक तरफ रेखाचित्र है, दूसरी तरफ संस्मरण। इनके साथ ललित निबन्ध-रचना-कौशल है, रेखाचित्र और संस्मरण के साथ अथवा उनके बिना भी रोचक बातें सुनाने की कला। यह ललित निबन्ध-कला रिपोर्ताज की विधा को छूती है। ... 'राजा साहब को ठेंगा दिखाया' में इसी निबन्ध-कला का विकास है। ... पाठक के मन पर... निर्मम आघात से **निराला** कहानी समाप्त करते हैं। कहानी के आरम्भ का गूढ़ व्यंग्य खुलता है : ऐसा लिखा जाय कि एक मतलब हो, उसी वक्त समझ में आ जाय। **निराला** मानो पूछते हैं : बात सीधी है न? मतलब समझ में आ गया? कथा में करुणा का भाव दृढ़तापूर्वक नियन्त्रित रखा गया है; वैसा ही व्यंग्य है, गूढ़, अन्तर्निहित, मर्मबेधी। ... **अप्सरा**, **अलका** से आगे, **लिली** की कहानियों से भिन्न हिन्दी कथा-साहित्य का नया विकास है 'देवी', 'चतुरी चमार', '**कुल्लीभाट**' और **बिल्लेसुर बकरिहा** में। यहीं कथा-साहित्य में **निराला** की कला का चरम विकास भी है।

रामविलास शर्मा

संक्षेप में, **रचनावली** का यह खण्ड **निराला**-कथा-साहित्य के यथार्थवादी स्वरूप की समग्र प्रस्तुति है। इसमें **कुल्लीभाट**, **बिल्लेसुर बकरिहा**, **चोटी की पकड़** एवं **काले कारनामे** नामक उपन्यासों, **लिली**, **चतुरी चमार** एवं **सुकुल की बीवी** नामक कहानी-संग्रहों के अतिरिक्त **चमेली** तथा **इन्दुलेखा** नाम के दो अपूर्ण उपन्यास और कुछ असंकलित कहानियाँ संकलित हैं।

R
०८१
नि६२नि.४

निराला निराला निराला निराला निराला निराला निराला निराला

72795

72795

72795

निराला रचनावली

उपन्यास तथा कहानियाँ

कुल्ली भाट, बिल्लेसुर बकरिहा, चोटी की पकड़, काले कारनामे, चमेली, इन्दुलेखा और संकलित-असंकलित कहानियाँ

तुम तुंग हिमालय श्रृंग और मैं चंचल गति सुर-सरिता

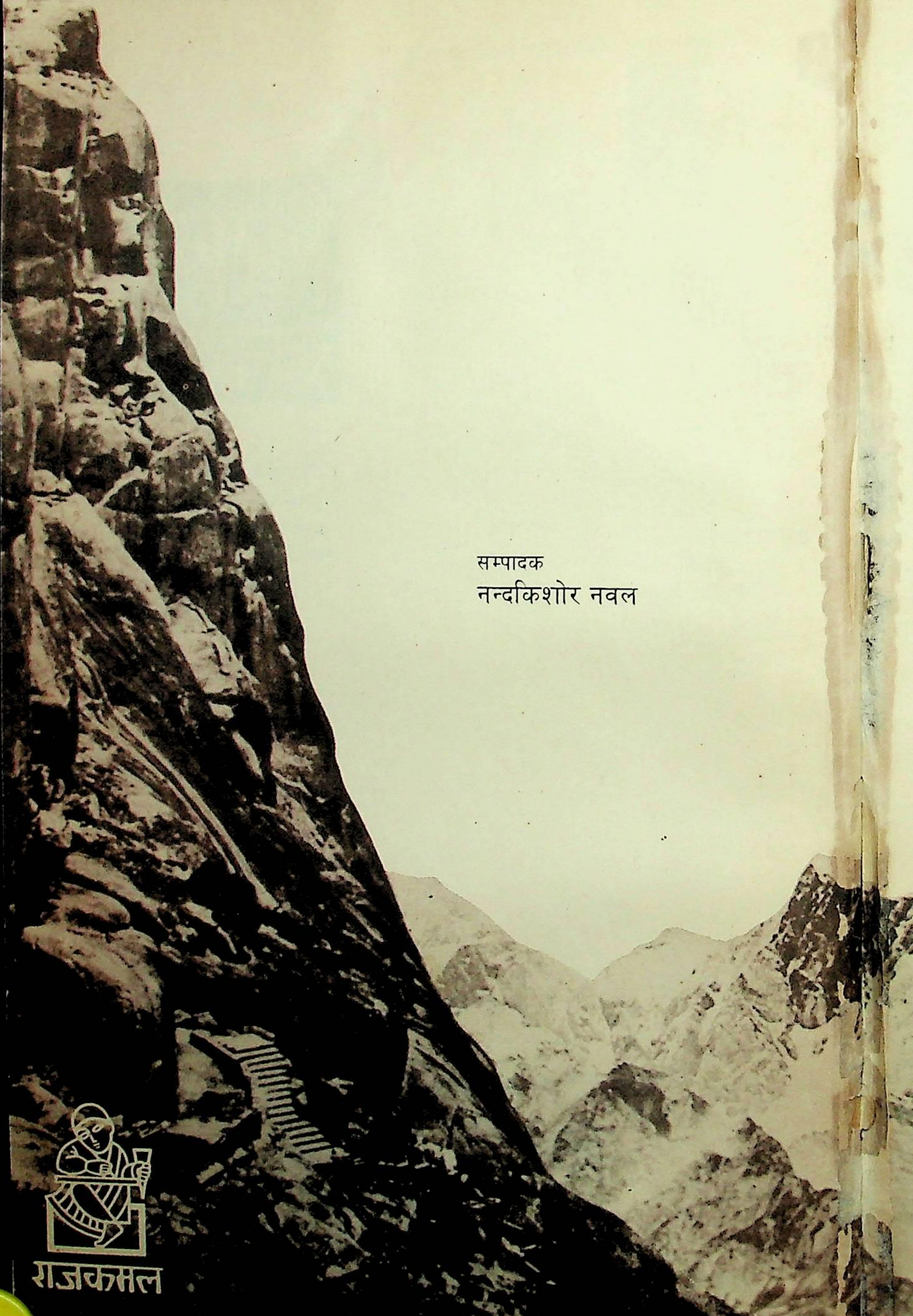

सम्पादक
नन्दकिशोर नवल

निराला रचनावली

4

मूल्य
प्रति खण्ड रु० 75.00
सम्पूर्ण सैट रु० 600.00

© रामकृष्ण त्रिपाठी

द्वितीय संस्करण
मार्च, 1983

प्रकाशक
राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.
8 नेताजी सुभाष मार्ग,
नयी दिल्ली - 110 002

मुद्रक
रुचिका प्रिन्टर्स
नवीन शाहदरा
दिल्ली - 110 032

आवरण तथा
प्रारम्भिक पृष्ठ :
प्रभात आफसेट प्रेस,
दरियागंज, नयी दिल्ली

कला-पक्ष
आवरण के लिए
निराला का रेखांकन :
हरिपाल त्यागी

कला - संयोजना :
चाँद चौधरी

NIRALA
RACHANAVALI
Collected Works of
Suryakant Tripathi 'Nirala'

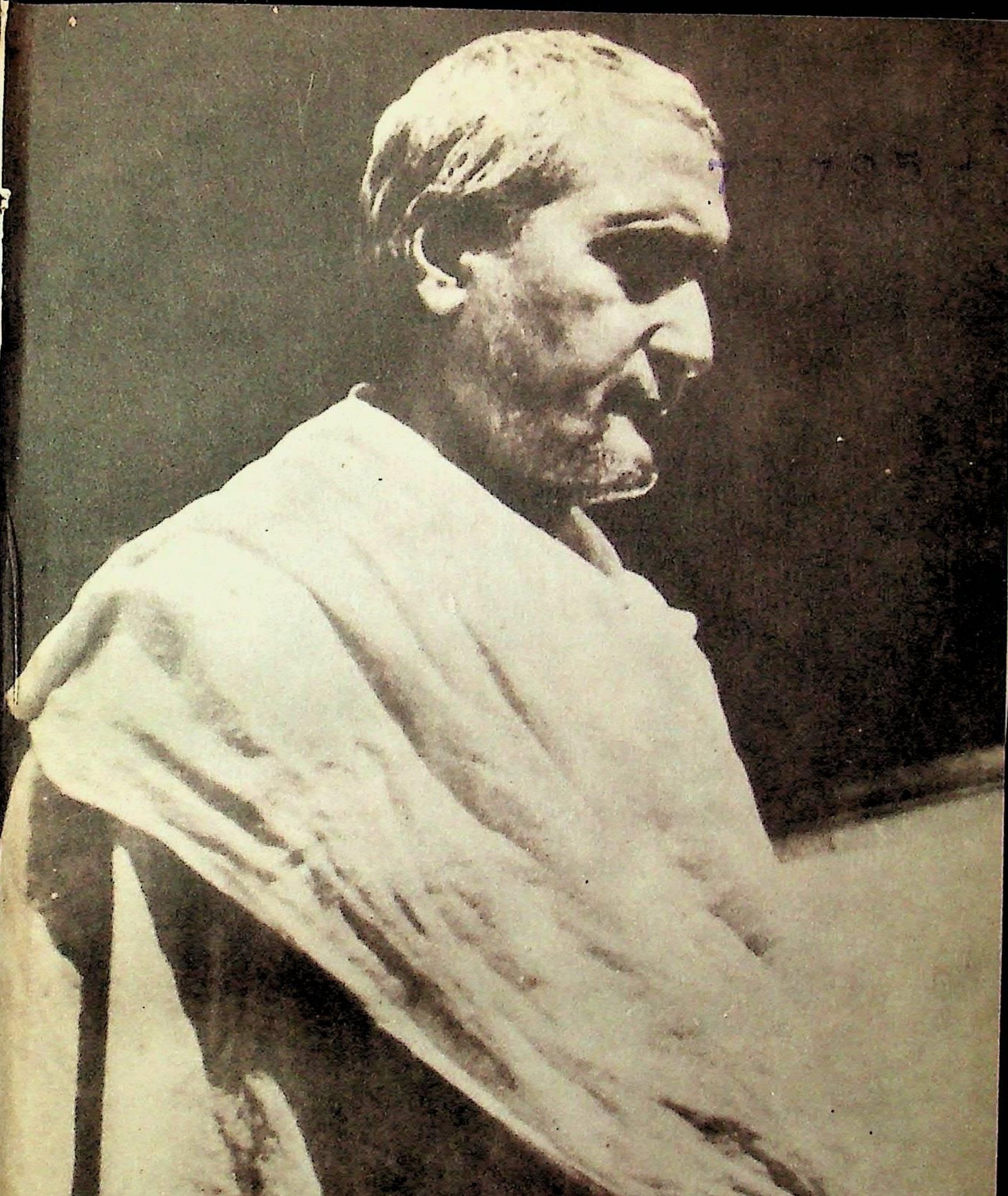

1933

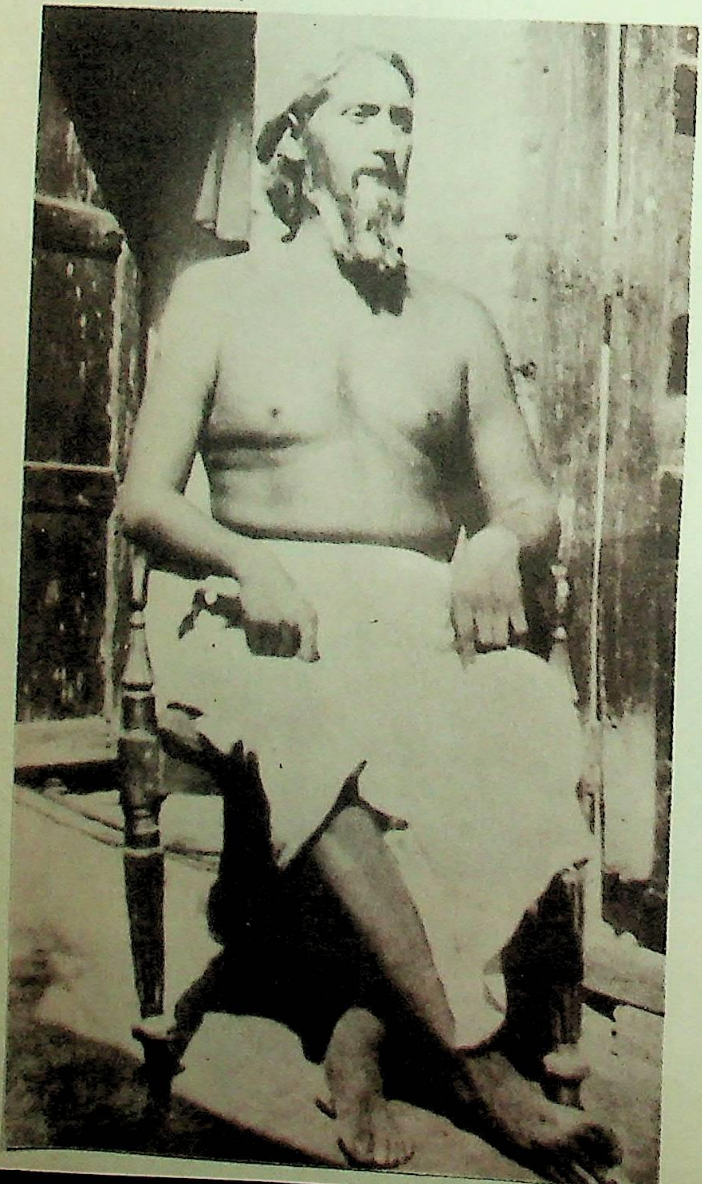

४ मई 1953

1933

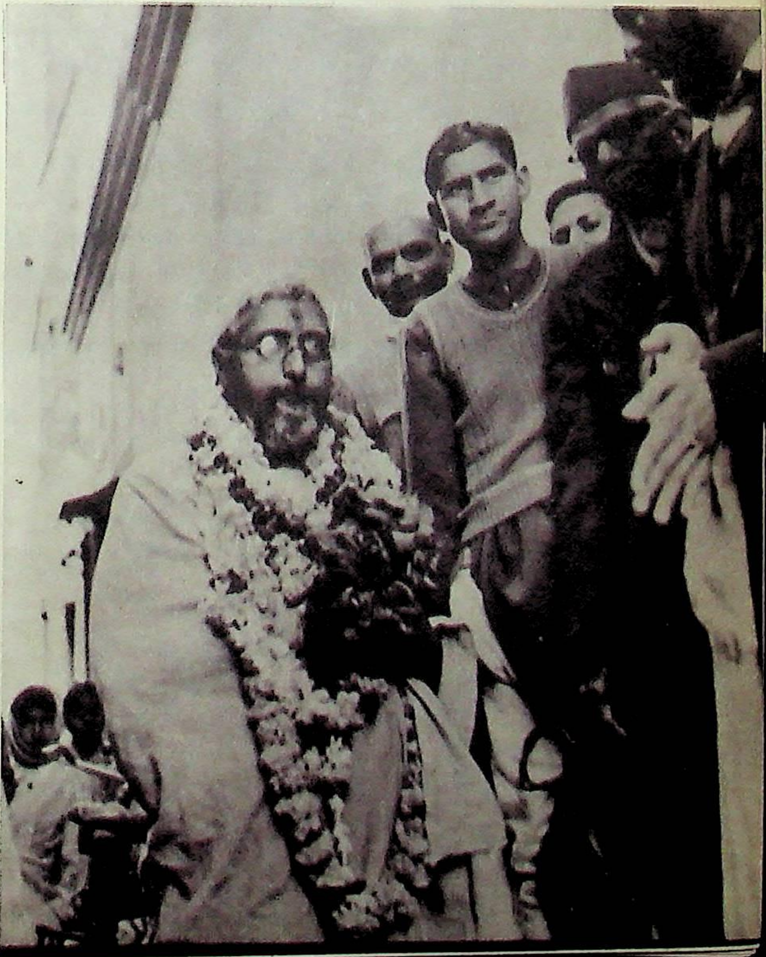

बाजी कहूँ बैरन, विसभरी सवत बाँसुरी,
अधर-मधुर ध्वनि टेक सुरन सों
कूक कूक तड़पाय, सखी, वाकी गाँस फाँस,
जिय हूक।
छन आँगन, छन चढ़त अटा पर,
कर मल मल पछतात सेज पर,
बैरन सवत सतावे, चाँद रह रहके तान नई फूँक।

निराला की हस्तलिपि में 'चोटी की पकड़' में उद्‌धृत एक गीत

आभार

निराला रचनावली प्रकाशित हो रही है, यह राजकमल के लिए गौरव की बात है। जिस प्रकार महाकवि की जीवन-यात्रा संघर्षपूर्ण रही, उसी प्रकार इस **रचनावली** के प्रकाशन में तरह-तरह की कठिनाइयाँ और बाधाएँ सामने आयीं। किन्तु बड़े धैर्य के साथ हमने सभी कठिनाइयों को हल किया और इसके प्रकाशन में सभी निराला-प्रेमियों का प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष सहयोग हमें मिला।

रचनावली में भारती भण्डार, इलाहाबाद, की आठ पुस्तकें [गीतिका, अनामिका, तुलसीदास, आराधना, सुकुल की बीवी, प्रबन्ध-प्रतिमा, निरुपमा और अपरा], निराला प्रकाशन, दारागंज, इलाहाबाद, की चार पुस्तकें [प्रभावती, बिल्लेसुर बकरिहा, चोटी की पकड़ और चतुरी चमार] तथा लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, की आठ पुस्तकें [अर्चना, बेला, नये पत्ते, कुकुरमुत्ता, अणिमा, देवी, काले कारनामे और रवीन्द्र-कविता-कानन] संकलित की गयी हैं और इन संस्थाओं ने अपनी पुस्तकें **रचनावली** में संकलित करने की सहर्ष अनुमति दी है। यह स्वस्थ परम्परा हिन्दी-प्रकाशन के लिए स्वागत-योग्य है।

रचनावली में जिन चित्रों का उपयोग किया गया है वे हमें सर्वश्री अमृतलाल नागर, ओंकार शरद, अजितकुमार, नेमिचन्द्र जैन, रामकृष्ण त्रिपाठी तथा इण्डियन आर्ट स्टूडियो देहरादून के श्री नवीन नौटियाल से प्राप्त हुए हैं। इसके अतिरिक्त श्री बरुआ द्वारा सम्पादित 'महाकवि निराला अभिनन्दन ग्रन्थ' से भी कई चित्र लिये गये हैं।

रचनावली के पत्रोंवाले खण्ड में आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री की पुस्तक 'निराला के पत्र' से महाकवि द्वारा शास्त्रीजी को लिखे गये पत्र संकलित हुए हैं। श्री सोहनलाल भार्गव, लखनऊ, ने स्वर्गीय श्री दुलारे-लाल भार्गव के नाम लिखे गये पत्र और श्री रामकृष्ण त्रिपाठी, इलाहाबाद, ने अपने नाम लिखे गये पत्र, जो 'निराला की साहित्य-साधना' के तीसरे खण्ड में संकलित हैं, **रचनावली** में संकलित करने की सहर्ष अनुमति दी।

उपरोक्त सभी संस्थाओं और महानुभावों तथा परोक्ष रूप से सहायक होनेवाले अन्य व्यक्तियों के हम आभारी हैं। उनके सहयोग से ही यह स्वप्न साकार हुआ है।

शीला सन्धू

19 जनवरी, '83

72795

चौथा खण्ड

रचनावली के प्रस्तुत खण्ड में निराला के दूसरे चरण के उपन्यास और कहानियाँ संकलित की गयी हैं। जो उपन्यास संकलित किये गये हैं, वे हैं : **कुल्ली भाट, बिल्लेसुर बकरिहा, चोटी की पकड़** और **काले कारनामे।**

कुल्ली भाट के आरम्भिक तीन परिच्छेद 'माधुरी' (मासिक, लखनऊ) के मार्च, 1938 के अंक में प्रकाशित हुए थे। इसी पत्रिका के अक्तूबर, 1938 के अंक में उसके बाद के भी दो परिच्छेद निकले। उसी वर्ष 'चकल्लस' (साप्ताहिक, लखनऊ) के मई के एक अंक में भी 'मेरी ससुराल-यात्रा' शीर्षक से उसका दूसरा परिच्छेद निकला था। पुस्तक-रूप में **कुल्ली भाट** का प्रकाशन संवत् 1996 वि. (1939 ई.) में गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ से हुआ। भूमिका के नीचे निराला ने 10 मई, 1939 ई. की तिथि दी है। इसके अलावा उन्होंने आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री को 30 मई, 1939 को एक पत्र में सूचित किया था कि 'मेरा **कुल्ली भाट** छप गया। चार-छः दिन में निकल जायगा।' (**निराला के पत्र**) इन दोनों बातों से यह अनुमान होता है कि यह उपन्यास 1939 के जून के आरम्भ में छपकर बाहर आया।

बिल्लेसुर बकरिहा के दो आरम्भिक अंश 'रूपाभ' (मासिक, कालाकाँकर) के क्रमशः मार्च और अप्रैल, 1939 के अंकों में प्रकाशित हुए थे। यह पुस्तकाकार 1942 ई. में युग-मन्दिर, उन्नाव से निकला। भूमिका के नीचे निराला ने 25 दिसम्बर, 1941 की जो तिथि दी है, उससे ऐसा लगता है कि यह उपन्यास 1942 ई. के आरम्भ में ही निकल गया होगा। 23 जून, 1942 को निराला ने कर्वी से श्री केदारनाथ अग्रवाल को यह सूचना दी कि '**बिल्लेसुर बकरिहा** निकल गया है। मेरे पास 5 प्रतियाँ यहाँ भेजी गयी थीं। आपको एक देना चाहता हूँ।' [**निराला की साहित्य-साधना** (3)] इससे उक्त प्रतीति सही मालूम पड़ती है।

चोटी की पकड़ नामक उपन्यास 1946 ई. में किताब महल, इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ। निराला के पत्रों से पता चलता है कि इसे उन्होंने 1943 ई. के अन्त तक पूरा कर लिया था। 1944 ई. के आरम्भ में ही यह छपने के लिए प्रेस गया, लेकिन यह निकला जाकर 1946 ई. के मार्च में। 27 मार्च, 1946 को निराला शास्त्रीजी को लिखते हैं : '**पकड़** भी निकल गयी। 3/4 दिन में भेजेंगे।' (**निराला के पत्र**)

काले कारनामे का प्रकाशन-काल विजयादशमी, संवत् 2007 वि. (20 अक्तूबर, 1950) है। इसका प्रथम संस्करण कल्याण साहित्य मन्दिर, प्रयाग से निकला था। यह उपन्यास निराला ने **चोटी की पकड़** के बाद लिखा। 23 अगस्त, 1945 को वे पं. रामकृष्ण त्रिपाठी को सूचना देते हैं कि '**काले कारनामे** एक उपन्यास लिख रहे हैं।' [**साहित्य-साधना (3)**] फिर वे 18-19 नवम्बर, 1945 को डा. रामविलास शर्मा को बतलाते हैं कि '**काले कारनामे** उपन्यास आधा पूरा हुआ।' (उपर्युक्त) अनुमानतः यह उपन्यास उन्होंने 1945 ई. के नवम्बर-दिसम्बर तक ही लिखा, क्योंकि 28 दिसम्बर, 1945 को तो वे शास्त्रीजी को यह लिखते हैं कि '**चोटी की पकड़** और **काले कारनामे** दो उपन्यास छप रहे हैं। जनवरी के आखीर तक निकल जायेंगे, अलग-अलग प्रकाशनों से।' (**निराला के पत्र**) स्पष्टतः **काले कारनामे** के प्रकाशन में **चोटी की पकड़** से भी ज्यादा विलम्ब हुआ, करीब पाँच वर्षों का। इस उपन्यास के सम्बन्ध में यह ज्ञातव्य है कि यह निराला का अधूरा उपन्यास है। इसके प्रथम संस्करण की भूमिका में प्रकाशक ने लिखा है: 'निरालाजी की अस्वस्थता के कारण यह उपन्यास काफी दिनों से अधूरा पड़ा था। इस भय से कि कहीं निरालाजी की यह नवीन कृति अन्धकार में ही विलुप्त न हो जाय, हम इसे इसी रूप में पाठकों के समक्ष रख देना अपना एक पुनीत कर्तव्य समझते हैं।' प्रथम संस्करण में परिच्छेदों के शीर्षक इस तरह रखे गये थे—'पहिली नजर,' 'दूसरी नज़र' आदि।

चमेली और **इन्दुलेखा** निराला के बिल्कुल अधूरे उपन्यास हैं। इनके जो अंश लिखे गये थे, वे क्रमशः 'रूपाभ' और 'ज्योत्स्ना' में प्रकाशित हुए थे। जैसा कि ज्ञप्ति में सूचित किया जा चुका है **रचनावली** के इस खण्ड में उन्हें भी संकलित कर लिया गया है, उपर्युक्त उपन्यासों के बाद।

निराला ने शास्त्रीजी को 28 अगस्त, 1943 को एक पत्र में लिखा था: 'उपन्यास (**चोटी की पकड़**) पूरा कर रहा हूँ। सीधी भाषा में है। अभी तक अच्छा चला, आगे की नहीं मालूम। उतर जायगा। बिकेगा अच्छा। घटना-प्रधान है।' (**निराला के पत्र**) इसका मतलब यह है कि उपन्यास-लेखन में निराला व्यावसायिक दबाव महसूस करते थे और जान-बूझकर प्रचलित रुचि से समझौता करते हुए अपने उपन्यासों को घटना-प्रधान बनाते थे। व्यावसायिक दबाव से मुक्त उनके उपन्यास हैं: **कुल्ली भाट** और **बिल्लेसुर बकरिहा**। इन लघु उपन्यास में अपने पूर्ववर्ती उपन्यासों में दिखलायी पड़नेवाले कल्पना और यथार्थ के अन्तर्विरोध को हल कर वे यथार्थ की भूमि पर आ गये हैं और उस पर अपनी विलक्षण सृजनशीलता का परिचय दिया है। निराला के मित्र श्री परमानन्द शर्मा ने **महाकवि श्री निराला अभिनन्दन ग्रन्थ** में निराला के संस्मरण लिखते हुए एक महत्त्वपूर्ण प्रसंग का जिक्र किया है। उन्होंने लिखा है: 'कथा-साहित्य और उपन्यास-कला पर बातचीत आरम्भ हो गयी। निरालाजी ने **अप्सरा** के सम्बन्ध में कहा, अभी मैंने केवल बीस परसेंट 'निराला' रखा है, तब यह दशा है कि साहित्य के बड़े-बड़े सेठ औंधे होने लगे। इसमें अस्सी परसेंट सरासर 'बाजार' है। यदि सेंट-परसेंट निराला रख दें, तो शत-कोटि कैंडिल पावर से नहीं ज्ञात कितना अधिक प्रकाश

फैल जाय और देखनेवालों की आँखें चौंधिया जायँ। और न हो, तो हिन्दीवाले लाठी लेकर निराला को मार ही डालें।' (कलकत्ता में श्री निरालाजी, पृ. 141) निराला के ही शब्द लेकर कहें तो उन्होंने **कुल्ली भाट** और **बिल्लेसुर बकरिहा** में 'सेंट-परसेंट निराला' रखा है, जिसका स्पष्ट अर्थ यह है कि इन उपन्यासों में उन्होंने प्रचलित रुचि से किसी तरह का समझौता नहीं किया और ये शुद्ध यथार्थवादी उपन्यास हैं, इनमें कोई कल्पनाप्रसूत चमत्कार नहीं है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि यही दोनों उपन्यास हिन्दी उपन्यास को निराला की देन हैं। **कुल्ली भाट** एक संस्मरणात्मक उपन्यास है, जिसमें कुल्ली भी हैं और निराला भी। दोनों के प्रसंग एक-दूसरे से जुड़े हैं। लेखक कहीं बहकता नहीं, और वह बड़े कौशल से अपने कथा-नायक के चरित्र को उद्घाटित करता हुआ आगे बढ़ता है। चरित्र भी कैसा? कुल्ली एक बिलकुल मामूली चरित्र है, जो आरम्भ में एक एक्का चलवाता है और यौन विकृति का शिकार है। धीरे-धीरे वह स्वाधीनता-आन्दोलन में सम्मिलित होता है और कांग्रेस का कार्यकर्ता बन जाता है। इस क्रम में उसके चरित्र में आश्चर्यजनक परिवर्तन होता है, वह कुन्दन की तरह निखर उठता है। निराला ने बड़ी खूबी से इस उपन्यास में यह दिखलाया है कि चरित्र का निर्माण जनान्दोलनों में होता है। जनान्दोलन मनुष्य के चरित्र को उसकी कमजोरियों और विकृतियों से मुक्त कर उसे अत्यन्त उदात्त स्तर पर पहुँचा देते हैं। **बिल्लेसुर बकरिहा** संस्मरणात्मक नहीं, रेखाचित्रात्मक उपन्यास है। इसमें निराला ने अपने को अलग रखा है और बिल्लेसुर के माध्यम से एक ऐसे व्यक्ति का चित्रण किया है, जो जीवित रहने के लिए अथक संघर्ष करता है और अन्ततः विजयी होता है। बिल्लेसुर एक मामूली किसान है। निराला ने ये दोनों चरित्र अवध के कस्बाई और ग्रामीण इलाकों से लिये हैं और उनके परिवेश के साथ उनके चरित्र-चित्रण में वैसी कलात्मकता का प्रदर्शन किया है, जैसी कलात्मकता संसार के महान् यथार्थवादी कथाकारों की कृतियों में ही देखने को मिलती है। **अलका** और **निरुपमा** में ग्रामीण जीवन के चित्रण में निराला की भाषा का जो नया रूप प्रकट हुआ था, वह यहाँ पूरे निखार पर है।

जैसा कि निराला ने **चोटी की पकड़** की भूमिका में लिखा है, वे स्वदेशी आन्दोलन को विषय बनाकर चार खण्डों में उपन्यास लिखना चाहते थे। उनकी वह इच्छा पूरी नहीं हुई और उक्त उपन्यास के बाकी तीन खण्ड लिखे नहीं गये। इस खण्ड का कथा-सूत्र बहुत उलझा हुआ है और स्वदेशी-आन्दोलन की कथा को इसमें बहुत कम स्थान मिला है। अधिक-से-अधिक यही कहा जा सकता है कि यह उपन्यास हमें स्वदेशी आन्दोलन के उस दौर की सूचना देता है, जिसमें उसके समर्थक कुछ सामन्त और राजा भी होने लगे थे। **काले कारनामे** में गाँव के तिकड़म, जमींदारों के आपसी झगड़े, पुलिस-थाना आदि का चित्रण है। इससे यह तो पता चलता है कि निराला का ग्रामीण-जीवन का अनुभव बहुत पुख्ता था, लेकिन यह उपन्यास कोई उल्लेखनीय रचना नहीं बन पाता। यदि निराला **चमेली** नामक अपना उपन्यास पूरा कर पाते, तो वह अवश्य **कुल्ली भाट** और **बिल्लेसुर बकरिहा** की परम्परा की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी होता।

कहानी-संग्रह निराला के तीन हैं : **लिली**, **सखी** और **सुकुल की बीवी**। **चतुरी चमार** और **देवी** नये अथवा स्वतन्त्र संग्रह नहीं हैं। **चतुरी चमार**, **सखी** का ही नया नाम है और **देवी** में विभिन्न संग्रहों की चुनी हुई कहानियाँ संकलित हैं। उसमें एक कहानी (जान की !) ऐसी भी है, जो पहले किसी संग्रह में संकलित नहीं हुई थी।

लिली 1934 ई. में गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ से प्रकाशित हुई थी। मार्च, 1934 की 'सुधा' में 'नये फूल' शीर्षक स्तम्भ के अन्तर्गत यह सूचना दी गयी है कि उक्त पुस्तक का प्रकाशन फरवरी, 1934 में हुआ। **सखी** अक्तूबर, 1935 में सरस्वती पुस्तक भण्डार, लखनऊ से निकली। **सुकुल की बीवी** 1941 ई. में भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद से प्रकाशित हुई। 16 सितम्बर, 1941 को निराला एक पत्र में श्री कुँवर सुरेश सिंह को लिखते हैं कि 'मेरी **सुकुल की बीवी** छप गयी है।' [**साहित्य-साधना (3)**] इससे यह पता चलता है कि यह कहानी-संग्रह 1941 के सितम्बर-अक्तूबर में बाहर आया।

सखी ही **चतुरी चमार** के नाम से 1945 ई. में किताब महल, इलाहाबाद से निकली। इसमें केवल इतना परिवर्तन किया गया था कि **सखी** की भूमिका के स्थान पर एक नयी भूमिका जोड़ दी गयी थी और 'चतुरी चमार' शीर्षक कहानी को शुरू में रख दिया गया था। एक परिवर्तन यह भी किया गया था कि **सखी** का समर्पण हटा दिया गया। **देवी** का प्रकाशन-काल 1948 ई. का उत्तरार्ध है। पुस्तक के प्रथम संस्करण में प्रकाशन-काल का उल्लेख नहीं है। भूमिका के नीचे निराला ने 12 अगस्त, 1948 की तिथि दी है। उसी से ऐसा अनुमान होता है। इस पुस्तक में निराला की ये कहानियाँ संकलित हैं—1. 'देवी', 2. 'भक्त और भगवान्,' 3. 'चतुरी चमार,' 4. 'हिरनी', 5. 'सुकुल की बीवी', 6. 'अर्थ', 7. 'श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी', 8. 'क्या देखा', 9. 'प्रेमिका-परिचय' और 10. 'जान की !'। जैसा कि कहा जा चुका है, 'जान की !' के अलावा बाकी सारी कहानियाँ निराला के पूर्वप्रकाशित संग्रहों से ली हुई हैं।

सुकुल की बीवी की भूमिका में निराला ने लिखा है कि उनकी पहली कहानी है—'क्या देखा'। यह 'मतवाला' के 1923 ई. के 20 अक्तूबर, 27 अक्तूबर, 1 दिसम्बर, 8 दिसम्बर और 15 दिसम्बर के अंकों में पाँच किस्तों में निकली थी। लेखक की जगह एक छद्मनाम दिया गया था—'जनाबआली'। हमें इस कहानी से पहले प्रकाशित निराला की एक कहानी मिली है—'प्रेमपूर्ण तरंग'। यह कहानी 'मारवाड़ी सुधार' (मासिक, कलकत्ता) के वैशाख, संवत् 1980 वि. (मई, 1923) के अंक में निकली थी। ऐसी स्थिति में यह कहना कठिन है कि निराला की पहली कहानी कौन-सी है। 'प्रेमपूर्ण तरंग', सम्भव है, उन्हें पसन्द न आयी हो, इसलिए उसे उन्होंने अपनी पहली कहानी होने का गौरव न प्रदान किया हो। इसका प्रमाण यह है कि उन्होंने इस कहानी को फिर से लिखा और उसे 'प्रेमिका-परिचय' शीर्षक दिया। यह कहानी 'सुधा' के जुलाई, 1933 के अंक में

प्रकाशित और **लिली** नामक उनके पहले कहानी-संग्रह में संकलित हुई। **रचनावली** में इन दोनों कहानियों को संकलित कर लिया गया है, जिससे निराला की कहानी की रचना-प्रक्रिया को भी ठीक से समझा जा सके। 'देवर का इन्द्रजाल', 'दो दाने' और 'विद्या' शीर्षक निराला की कहानियाँ अभी तक उनके किसी संग्रह में संकलित नहीं हुई थीं। **रचनावली** में इन्हें भी संकलित कर लिया गया है।

निराला ने कुल चौबीस कहानियाँ लिखीं, जिन्हें यहाँ रचना-क्रम/प्रकाशन-क्रम से प्रस्तुत किया गया है। परिशिष्ट में कहानी-संग्रहों की भूमिकाएँ और समर्पण भी दे दिये गये हैं।

जिस तरह निराला के पहले चरण के उपन्यासों में कल्पना और यथार्थ के बीच अन्तर्विरोध देखने को मिलता है, उसी तरह उनकी कहानियों में भी। दोनों में फर्क यह है कि उपन्यासों की तुलना में कहानियों में यह अन्तर्विरोध ज्यादा तीखा है। इसका सबसे बढ़िया उदाहरण उनकी 'श्यामा' शीर्षक कहानी है। इसमें पहली बार किसान प्रकट होता है, अपने सम्पूर्ण उत्पीड़न के साथ। निराला सामन्त-विरोधी प्रखर जनवादी चेतना के लेखक थे। उनमें कल्पना और यथार्थ का अन्तर्विरोध बढ़ता जाता है और बहुत जल्दी यथार्थ का परिपक्व बोध उन्हें मोह से मोहभंग की अवस्था में पहुँचा देता है। उनके मोहभंग की अत्यन्त सशक्त कहानी है—'देवी'। 'देवी' के आगे-पीछे निराला 'हिरनी', 'अर्थ', 'चतुरी चमार' और 'राजा साहब को ठेंगा दिखाया' जैसी कहानियाँ लिखते हैं, जो हिन्दी कहानी-साहित्य में बेमिसाल हैं। स्मरणीय है कि ये सारी कहानियाँ **कुल्ली भाट** और **बिल्लेसुर बकरिहा** की रचना से पहले लिखी गयीं, 1933-34 ई. में। विषय-वस्तु के अनुरूप ही इन कहानियों में निराला ने कहानी का नया रूप आविष्कृत किया है। वे कई बार संस्मरणात्मक ढंग से अपनी बात कहते हैं और अन्त में अपनी कूँची के एक स्पर्श से संस्मरण को कहानी में बदल देते हैं। इन कहानियों में उनका गद्य अनावश्यक साज-सम्भार से मुक्त होकर नयी दीप्ति के साथ सामने आता है। उसमें जितना कसाव है, उतना ही पैनापन भी। निराला के गद्य की अन्यतम विशेषता है हास्य। उसमें हास्य के कल-कल के नीचे प्रायः करुणा और आक्रोश की धारा बहती रहती है।

नन्दकिशोर नवल

रानीघाट लेन, महेन्द्रू,
पटना-800006
21 जून, 1982

अनुक्रम

उपन्यास

कुल्ली भाट 17
बिल्लेसुर बकरिहा 83
चोटी की पकड़ 123
काले कारनामे 219
चमेली 263
इन्दुलेखा 275

कहानियाँ

प्रेमपूर्ण तरंग 283
क्या देखा 288
पद्मा और लिली 299
ज्योतिर्मयी 306
कमला 313
श्यामा 321
प्रेमिका-परिचय 334
हिरनी 343
परिवर्तन 346
अर्थ 351
न्याय 361
स्वामी सारदानन्द महाराज और मैं 366

देवी 371
चतुरी चमार 379
राजा साहब को ठेंगा दिखाया 387
सफलता 389
भक्त और भगवान् 396
सखी 402
कला की रूप-रेखा 407
सुकुल की बीवी 412
श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी 424
देवर का इन्द्रजाल 433
जान की ! 435
दो दाने 437
विद्या 444

परिशिष्ट

1. **लिली** का समर्पण 451
2. **लिली** की भूमिका 451
3. **सखी** का समर्पण 452
4. **सखी** की भूमिका 452
5. **चतुरी चमार** की भूमिका 453
6. **सुकुल की बीवी** की भूमिका 454
7. **देवी** का समर्पण 455
8. **देवी** की भूमिका 455

कुल्ली भाट

इस पुस्तिका के समर्पण के योग्य कोई व्यक्ति हिन्दी साहित्य में नहीं मिला, यद्यपि कुल्ली के गुण बहुतों में हैं, पर गुण के प्रकाश से सब घबराये। इसलिए समर्पण स्थगित रखता हूँ।

—'निराला'

पं. पथवारीदीनजी भट्ट (कुल्ली भाट) मेरे मित्र थे। उनका परिचय इस पुस्तिका में है। उनके परिचय के साथ मेरा अपना चरित भी आया है, और कदाचित् अधिक विस्तार पा गया है। रूढ़िवादियों के लिए यह दोष है, पर साहित्यिकों के लिए, विशेषता मिलने पर, गुण होगा। मैं केवल गुण-ग्राहकों का भक्त हूँ।

कुल्ली सबसे पहले मनुष्य थे, ऐसे मनुष्य, जिनका मनुष्य की दृष्टि में बराबर आदर रहेगा। सरस्वती-सम्पादक पं. देवीदत्तजी शुक्ल ने, पूछने पर, कहा, कुल्ली मेरे बड़े भाई के मित्र थे। अस्तु, जहाँ शुक्लजी की मित्रता का उल्लेख है, वहाँ पाठक समझने की कृपा करें कि कुल्ली शुक्लजी के मित्र नहीं, बड़े भाई-जैसे थे।

पुस्तिका में हास्य-रस की प्रधानता है, इसलिए कोई नाराज होकर अपनी कमजोरी न साबित करें, उनसे प्रार्थना है।

लखनऊ
10-5-39

—'**निराला**'

एक

बहुत दिनों की इच्छा—एक जीवन-चरित लिखूँ, अभी तक पूरी नहीं हुई; चरितनायक नहीं मिल रहा था, ठीक जिसके चरित में नायकत्व प्रधान हो। बहुत आगे-पीछे, दायें-बायें देखा। कितने जीवन-चरित पढ़े, सबमें जीवन से चरित ज्यादा; भारत के कई महापुरुषों के पढ़े—स्वहस्त-लिखित; भारत पराधीन है; चरित बोलते हैं। बहुत दिनों की समझ—सत्य कमजोरी है, शहजोरी उसकी प्रतिक्रिया; अगर चरित्र में अँधेरा छिपा, प्रकाश आँखों में चकाचौंध पैदा करता है, जो किसी तरह भी देखना नहीं—जड़ पकड़ गयी।

याद आया, कहीं पढ़ा था—बम्बई के सिनेमा-स्टारों की सर्र से दीवार चढ़ने की करामात देखकर—रँगे कृत्य में आये—सत्य से अज्ञ—बाहर के किसी प्रेमी कार्यकर्ता ने कमर तोड़ ली है। बड़ी खुशी हुई। साफ देखा—कलम हाथ लेते ही कितने कवियों की आँख की परी विश्व-साहित्य के सातवें आसमान पर पर मारती है, कितने कर्मवीर दलिया खाते हुए, कमर कमान किये, जान पर खेल रहे हैं, कितने आधुनिक बेधड़क समाजवाद के नाम से पूरे उत्तानपाद।

इसी समय तुलसीदास की याद आयी, जिन्होंने लिखा है—

> "जो अपने अवगुन सब कहऊँ, बाढ़ै कथा, पार ना लहऊँ;
> ताते मैं अति अलप बखाने, थोरे महँ जानिहैं सयाने।"

सोचा, तुलसीदास ने सिर्फ सयानों की आँख फैलायी है, यानी महापुरुषों की नहीं। वह स्वयं भी महापुरुष नहीं थे, आधुनिक विद्वानों का मत है। कहते हैं, जवानों के श्रीगणेश से, यानी अच्छी तरह होश आने से, उम्र के सौ साल बाद—अच्छी तरह होश जाने तक उनमें पुरुषत्व ही प्रधान रहा।

मुझसे कवि भगवतीचरण कहते थे—कविवर रामनरेश त्रिपाठी जानते हैं, बहुत आधुनिक रिसर्च है—तुलसीदासजी गर्मी से मरे थे; यह पता नहीं चला—गर्मी रत्नावली से मिली—कहाँ से; बाहुक की रचना के वक्त बाँह का दर्द गर्मी के कारण हुआ। कुछ हो, मैं ऐतिहासिक नहीं, समझा कि तुलसीदासजी पुरुष थे, महापुरुष नहीं; महापुरुष अकबर था—दीन-ए-इलाही चलाया, हर कौम की बेटी ब्याही, चेले बनाये।

अपने राम के लकड़दादा के लकड़दादा के लकड़दादा राजा वीरबल त्रिपाठी अकबर के चेले थे; अपनी बेटी खाले के वाजपेयियों के घर ब्याही; तब से

वाजपेयी-वंश में भी महापुरुषत्व का असर है, यों ट्रिपल लकड़दादा का प्रभाव कुल कनवजिया कुलीनों पर पड़ा। खैर, 'महापुरुष' 'पुरुष' का बढ़ा हुआ रँगा हिस्सा लेकर है, उसी तरह उसके 'चरित' में एक 'सत्' और जुड़ गया है। साहित्यिक की निगाह में यह साबुन का उपयोगितावाद है, अर्थात् सिर्फ साफ होता है, वह भी कपड़ा; रास्ता, घर या दिमाग नहीं। अगर 'वाद' लें, जैसे समाजवाद पैर बढ़ाये है, तो वह भी अकेला साहित्य नहीं ठहरता। साहित्य पुरुष का एक रोयाँ सिद्ध होता है।

मैं तलाश में था कि ऐसा जीवन मिले, जिससे पाठक चरितार्थ हों, इसी समय कुल्ली भाट मरे।

दो

जीवन-चरित जैसे आदमियों के बने और बिगड़े, कुल्ली भाट ऐसे आदमी न थे। उनके जीवन का महत्त्व समझे, ऐसा अब तक एक ही पुरुष संसार में आया है, पर दुर्भाग्य से अब वह संसार में रहा नहीं—गोर्की। पर गोर्की में भी एक कमजोरी थी; वह जीवन की मुद्रा को जितना देखता था, खास जीवन को नहीं। वादी-विवादी था। हिन्दी में कोई है हिन्दी-भाषी ? किसी महापुरुष की जबान से कहा जा सकता है—'नहीं'।

मैं हिन्दी के पाठकों को भरसक चरितार्थ करूँगा, पर कुल्ली भाट के भूगोल में केवल जिला रायबरेली था स्थल, बाकी जल। एक बार लाचारी उम्र अयोध्या तक गये, जैसे किसी टापू में यान, रेल। यों जिन्दगी-भर अपने वतन डलमऊ में रहे। लेकिन, जिन्दगी के बाद—जितने जानता हूँ, नाम-मात्र से लेकर पूरे परिचय तक— उनसे नहीं छूटे। गड़ही के किनारे कबीर को महासागर कैसे दिखा, मैं समझा।

बड़ा आदमी कुल्ली को कोई नहीं मिला, जिसे मित्र समझकर गर्दन उठाते, एक 'सरस्वती'-सम्पादक पं. देवीदत्त शुक्ल को छोड़कर; लेकिन शुक्लजी का बड़प्पन जब उन्हें मालूम हुआ, तब मरने के छ महीने रह गये थे, मुझी से सुना था।

सुनकर गर्दन उठायी थी, साँस भरी थी, और कहा था, "वह मेरे लँगोटिया यार हैं। हम मदरसे में साथ पढ़े हैं।"

मुझे हँसता देख फिर छोटे पड़े, पूछा, "देवीदत्त बड़े आदमी हैं?"

मैंने कहा "आपको मदरसे की याद आ रही है। जिस पत्रिका के आचार्य पं. महावीरप्रसादजी द्विवेदी सम्पादक थे, उसके अब शुक्लजी हैं।"

न-जाने क्यों, कुल्ली को फिर भी विश्वास न हुआ। मैं सोच रहा था, या तो

कुल्ली मदरसे में शुक्लजी से तगड़े पड़ते थे; या—याद आया, शुक्लजी को बैसवाड़े के कवि कण्ठाग्र हैं कुल्ली की दोस्ती के कारण। कुल्ली गुरु-स्थान पर हैं। मुझे भी उन्होंने कुली (एक दाँव) पर चढ़ाया था, नरहरि, हरिनाथ, ठाकुर, भुवन आदि—मालूम नहीं—कितने कवि गिनाये थे अपने वंश के। मुमकिन है, इसलिए भी कि धाक जमाने में मुझे कामयाबी न होगी, यह मैं बीस साल से जानता हूँ। अलावा मेरी दृष्टि का अप्रतिष्ठा-दोष कर दें। पर कुल्ली को मालूम न था कि मैं कविता तो लिखता हूँ, पर कवि दूसरे को मानता हूँ। कुल्ली की शुक्लजी के प्रति हुई मनोदशा देखकर मैंने कहा, "जब आप मुझे इतना···तब शुक्लजी तो···मैं तो उनके चरणों तक ही पहुँचता हूँ।"

सुनकर कुल्ली बहुत खुश हुए, जैसे स्वयं शुक्लजी हों, बड़प्पन आ गया, स्नेह की दृष्टि से देखते हुए बोले, "हाँ, करते की विद्या है, जब आप गौने के साल आये थे, क्या थे?" कहकर कुछ झेंपे। झेंपने के साथ उनके मनोभाव कुल हाल बेतार के तार से मुझे समझा गये। पच्चीस साल पहले की घटना, जो उस समय समझ में न आयी थी, पल-मात्र में आ गयी। सारे चित्र घूम गये, और उनका रहस्य समझा। वही कुल्ली से पहली मुलाकात है, वहीं से श्रीगणेश करता हूँ।

तीन

मैंने सोलहवाँ साल पार किया, पूरा जीवन जी. पी. श्रीवास्तव के कथनानुसार। जी. पी. श्रीवास्तव ही नहीं, जितने गाँव-घर-टोला-पड़ोस के थे, यही कहते थे।

याद है, एक दिन पं. रामगुलाम ने पिताजी से कहा था, "लड़के का कण्ठ फूट आया, बगलें निकल आयीं, मसें भीगने लगीं, अब बबुआ नहीं है, गौना कर दो; हो भी तो हाथी गया है, लड़ता है, सुनते हैं।"

"हाँ।" कहकर पिताजी चिन्ता-मग्न हो गये थे।

इसी तरह, जब गौना लेने गये, श्रीमतीजी तेरहवाँ पार कर चुकी थीं—कुछ दिन हुए थे, उनकी किसी नानी ने कहा था उनकी अम्मा से—मैं वहीं था—हम दोनों की गाँठ जोड़कर कौन एक पूजा की जा रही थी—मदनदेव की अवश्य नहीं थी। उन्होंने कहा था, "दामाद जवान, बिटिया जवान; परदेश ले जाते हैं, तो ले जाने दो।"

गौना हुआ। बड़ी बिपत। गाँव में प्लेग। लोग बागों में पड़े। हमारा एक बाग गाँव के करीब है। प्लेग का अड्डा होता है—लोग वहाँ झोपड़े डालते हैं। हम लोग बंगाल से आये, उसी दिन लोग निकलने लगे। आखिर एक महुए के नीचे दो झोपड़े डलवाकर पिताजी मुझे और कुछ भैयाचार-नातेदारों को लेकर गौना लेने चले।

जेठ के दिन। इससे पहले यू. पी. की लू नहीं खायी थी। खैर, गौना हुआ, और एक झोपड़े में एक रात हम लोग कैद किये गये। जो बातें नहीं सोची थीं, श्रीमतीजी के स्पर्श-मात्र से वे मस्तिष्क में आने लगीं। प्रौढ़ता के अन्त तक उनसे अधिक प्रौढ़ बातें नहीं आतीं, मैं नवयुवकों को विश्वास दिलाता हूँ। खैर, हम पूरे जवान हैं, हम दोनों समझे।

पाँचवें दिन ससुरजी विदा कराने आये। ससुरजी इसलिए भी आये कि गाँव का पानी नहीं पियेंगे, शाम तक बिदा करा ले जायेंगे। पिताजी को बहुत बुरा लगा। वह बंगाल से उतना रुपया खर्च करके आये थे। पाँच दिन के लिए नहीं। ससुरजी सुबह की गाड़ी से आये थे। मैं रात को जगा, सो रहा था। बातचीत नहीं सुनी; बाद को गाँव के एक भैया से सुनी। मेरी जब आँख खुली, तब ससुरजी अपनी लड़की को बिदा कराके ले गये थे। सुना, प्लेग के भय से वह लड़की को बिदा कराने आये थे।

पिताजी ने इस पर बहुत फटकारा, कहा, "यह भय हमारे लड़के के लिए आपको नहीं हुआ? अगर ऐसे आपके मनोभाव हैं, तो हम दूसरा विवाह कर लेंगे।"

पिताजी के तर्क-पूर्ण कथन का, मुमकिन ससुरजी पर प्रभाव पड़ता, लेकिन ससुरजी थे बहरे। वह अपनी कहते थे, और देख रहे थे कि बिदाई की तैयारी हो रही है या नहीं। उधर ससुरजी की पुत्री अपने पिता और ससुर के कथोपकथन को एकनिष्ठ होकर सुन रही थीं। पिताजी पुत्र की दूसरी शादी कर लेंगे, प्रभाव अनुमेय है। झल्लाहट में पिताजी ने बिदा कर दिया, और स्टेशन पहुँचा देने को बहल बुला दी।

दूसरे दिन नाई आया सासुजी की लम्बी चिट्ठी लेकर। 'क्षमा' शब्द का अतिशय प्रयोग। ससुरजी कम सुनते हैं, आज्ञा-पालन में त्रुटि हुई। बुलाया। 'गवहीं' पहले नहीं ली, अब ले लें। बड़ी दीनता! यह भी लिखा था, "मेरी दो दाँत की लड़की, उसके सामने दूसरे विवाह की बात!"

पिताजी पिघले, मुझसे बोले, "ससुरार जाव लेकिन यहाँ से तिगुना खाना।"

मैंने कहा, "घी और बादाम तिगुने करा लूंगा। बेदाना तो वहाँ मिलते नहीं, अन्यथा शरबत में तीन रुपये लग जाते रोज।"

पिताजी ने कहा, "रूह, रूह की मालिश करना रोज, होश दुरुस्त हो जायँगे।"

शाम चार बजेवाली गाड़ी से चलने की तैयारी हो गयी। दुपहर ढलते नौकर बिस्तर-बॉक्स लेकर भेज दिया गया। मैं पिताजी के उपदेश धारण कर ढाई बजे के करीब रवाना हुआ। ठाट बंगाली; धोती, शर्ट, जूता, छाता। आँख में भी बंगाल का पानी, बाकी देश जंगल या रेगिस्तान दिखते थे।

बंगालियों की तरह मैं भी मानता था, आर्य बंगाल पहुँचकर सही मानी में सभ्य हुए, विशेषतः अँगरेजों के आने के बाद से। महुए की छाँह और तर किये झोपड़े के अन्दर यू. पी. की गर्मी का हिसाब न लगता था। बाहर खाई पार करते ही लू का ऐसा झोंका आया कि एक साथ कुण्डलिनी जैसे जग गयी, जैसे वर पुत्र

पर पड़ी सरस्वती की कृपा-दृष्टि की तारीफ में रवि बाबू ने लिखा है—

"एके बारे सकल पर्दे घुचिए दाओ तारे।"

(एक साथ ही उसके कुल पर्दे हटा देती हो।)

वह प्रकाश दिखा कि मोह दूर हो गया। लेकिन व्यक्ति-भेद है; रवि बाबू को आराम-कुर्सी पर दिखा, हजरत मूसा को पहाड़ पर, मुझे गलियारे में। लू विरोध करती हुई कह रही थी, 'अब ज्ञान हो गया है, घर लौट जाओ।'

फिर भी पैर पीछे नहीं पड़े; बंगाल की वीरता और प्रेमाशक्ति बैक कर रही थी। पैर उठाकर सामने रखते ही, लीक के खड्ढ में डेढ़ हाथ खाले गया, और मैं 'गुड़ीगुड़न्ता' के डण्डे की तरह गुडा; लेकिन स्पोर्टस् मैन था, झड़बेर की झाड़ी तक पहुँचते-पहुँचते अड़ गया। देह गर्दबर्द हो गयी। मुँह में क्रीम लग गया था, घाव पर जैसे आयडोफार्म पड़ा।

लेकिन धन्यवाद है सूरदास को, मुझे लज्जित होने से बचा लिया : कलकत्ते से 'बिल्वमंगल' नाटक देखकर आया था--दूसरी जीवनियाँ भी पढ़ी थीं, लाश पकड़-कर नदी पार करने और साँप की पूँछ पकड़कर मंजिल चढ़ने के मुकाबले यह अति तुच्छ था, फिर वहाँ वेश्या, यहाँ धर्मपत्नी। आगे बढ़ा। एक झोंका और आया, मालूम हुआ, इस देश में धूप से हवा में गर्मी ज्यादा है। फिर भी हवा के प्रतिकूल चलना ही होगा। कालिदास को पढ़ रहा था, याद आया—"अजयदेकरथेन स मोदिनीम"; कड़ाई से पैर आगे बढ़ाया, ठकाका जूते ने काँकर से धोके से ठोकर ली, और मुँह फैला दिया। सोचा, बॉक्स में एक जोड़ा और है नया। तसल्ली हुई, फिर आगे बढ़ा। एक झोंका और आया। अबके छाता उलटकर दूसरी तरफ तना। हवा के रुख पर करके, सुधारकर तोड़ लिया।

आगे लोन-नदी आयी, जो आठ महीने सूखी रहती है, और जिसके किनारे संसार के आधे बेर-बबूल हैं; शायद इसी कारण इस प्रान्त का नाम कभी बनौधा था—"बारह कुँवर बनौधे केर।" स्वतन्त्रता-प्रेम भी अधिक था; क्योंकि छोटी-सी जगह में बारह कुँवर थे। धोती कोंछेदार बंगाली पहनी थी। एक जगह उड़ी, और, बेर की बाँहों से आलिंगन किया, न अब छोड़े, न तब—'गुलों से खार बेहतर हैं, जो दामन थाम लेते हैं' याद तो आया, पर बड़ा गुस्सा लगा। सैकड़ों काँटे चुभे हुए। धोती छप्पनछुरी हो रही थी। छुड़ाते नहीं बनता था। देर हो रही थी। आखिर मुट्ठी से कोंछे को पकड़कर खीचा। धोती में सहस्र-धार गंगा बन गयी, उधर बेर सहस्र विजय-ध्वज।

धोती कीमती थी;---शान्तिपुरी, खास ससुराल के लिए ली गयी थी, जैसे प्रसिद्ध लेखक खास पत्र के लिए लेख लिखते हैं। सान्त्वना हुई कि कई और हैं। नदी-गर्भ से ऊपर आया। कुछ दूर पर बेहटा-श्मशान मिला। दो ही मील पर देखा दुर्दशा हो गयी है, जैसे धूल का समन्दर नहाकर निकला हूँ। स्टेशन मील-भर रह गया था, गाड़ी का अर्राटा सुन पड़ा। अपने-आप पैर दौड़ने लगे। मन ने बहुत कहा, बड़ी अभद्रता है। लेकिन जैसे पैर के भी जबान लग गयी हो, बोले—"अभी भद्रता कुछ बाकी भी रह गयी है? घर लौटकर जाओगे, जिन्दगी-भर गाँववाले हंसेंगे—बाबू बनकर ससुराल चले थे। हजार-हजार सपाटे का उठान तो देखो।"

कहते पैर बेतहाशा उठ रहे थे। छाता बगल में। हाथ में जूते। सामने मील-भर का ऊसर। चार बजे की चटकती धूप। स्टेशन देख पड़ने लगा। गाड़ी प्लेटफार्म पर आ गयी। दौड़ तेज हुई। लम्बा मैदान। गाड़ी पानी ले रही है। अभी छ फर्लांग और है। भूभुल में पैर जले जा रहे हैं, लेकिन रफ्तार धीमी नहीं, बढ़ायी भी नहीं जा सकती, कलेजा मुँह को आता हुआ। एंजिन पानी ले चुका, लौट रहा है, अभी चार फर्लांग है, और तेज हो नहीं सकते। बदन लत्ता। जान पड़ता है, गिर जाऊँगा।

इसी समय नौकर चन्द्रिकाप्रसाद ठोढ़ी उठाकर रास्ते की तरफ देखता हुआ देख पड़ा। चन्द्रिका के दूध के दाँत उखड़ने के बाद सामने के अन्नवाले नहीं जमे, इसलिए लोग 'सिपुला' कहते हैं। हैरान होकर असम्बद्ध होंठों से—ठोढ़ी उठाये, एकदष्टि—प्रतीक्षा करते देखकर मुझे नयी जान मिली, देखकर चन्द्रिका भी सजीव हुआ। टिकट कटा लिये थे, गमीनत हुई। मैं पहुँचा। चन्द्रिका हँसा, फिर सामान चढ़ाने लगा। स्टेशन में एक प्लेटफार्म है, उस तरफ उससे गाड़ी लगी हुई, मुझे न आता देख चन्द्रिका उतरकर इधर चला आया था। इधर से ही चढ़े। भीतर जाने के साथ इतनी गर्मी मालूम दी कि जान पर आ बनी। चन्द्रिका न होता, तो न जाने क्या होता। वह अँगोछे से हवा करने लगा। कुछ देर में होश दुरुस्त हुए। गाड़ी चली। ठण्डे होकर कपड़े बदले।

पाँचवाँ स्टेशन डलमऊ है। उतरा, तब सूरज छिप चुका था। लेकिन इतना उजाला कि अच्छी तरह मुँह दिखे। चन्द्रिका ने सामान उठाया। चले। गेट पर टिकट-कलेक्टर के पास एक आदमी खड़ा था बना-चुना, बिलकुल लखनऊ-ठाट, जिसे बंगाली देखते ही गुण्डा कहेगा। तेल से जुल्फें तर, जैसे 'अमीनाबाद' से सिर पर मालिश कराकर आया है। लखनऊ की दुपलिया टोपी, गोट तेल से गीली, सिर के दाहिने किनारे रक्खी। ऐंठी मूँछें। दाढ़ी चिकनी। चिकन का कुर्ता। ऊपर वास्कट। हाथ में बेंत। काली मखमली किनारी की कलकतिया धोती, देहाती पहलवानी फैशन से पहनी हुई। पैरों में मेरठी जूते। उम्र पच्चीस के साल-दो साल इधर-उधर। देखने पर अन्दाजा लगाना मुश्किल है—हिन्दू है या मुसलमान। साँवला रंग। मजे का डीलडौल। साधारण निगाह में तगड़ा और लम्बा भी।

टिकट देकर निकलते ही मुझसे पूछा, "कहाँ जाइयेगा ?"

मैंने कहा, "शेरअन्दाजपुर।"

"आइये, हमारा एक्का है," कहकर उसने एक्केवान को पुकारा, और गौर से घूरते हुए पूछा, "किनके यहाँ ?"

मैंने अपने ससुरजी का नाम लिया। उसे एक बार देखकर दोबारा नहीं देखा, कारण वह मेरा आदर्श नहीं था, मुझसे दो इंच छोटा था और बदन में भी हलका।

मैं एक्केवाले के साथ एक्के पर बैठा। चन्द्रिका भी था। वह जवान कुछ देर तक पैसंजर देखता रहा, फिर उसी एक्के पर आकर बैठा। चुपचाप बैठा देखता रहा। तब मैं नहीं समझ सका, अब जानता हूँ—वैसी शुभ दृष्टि सुन्दरी-से-सुन्दरी पर पड़ती है, जिसकी बाढ़ का पानी रत्ती-भर नहीं घटा।

चन्द्रिका बेवकूफ की तरह उसे, विश्वास की दृष्टि से मुझे रह-रहकर देख

लेता था। उस मनुष्य ने मुझसे कोई प्रश्न नहीं किया, केवल अपने भाव में था। मुझे बोलने की कोई आवश्यकता न थी। एक्का चला, कस्बे में आकर मेरे ससुरजी के दरवाजे खड़ा हुआ। वह आदमी चौराहे पर उतर गया था। उतरते एक्केवाले से कुछ कहा था, मैंने सुना नहीं।

जब मैं किराया देने लगा, एक्केवाले ने कहा, "नम्बरदार ने मना किया है।"

"हम किसी नम्बरदार को नहीं जानते, किराया लेना होगा, पहले कह दिया होता।"

एक्केवाले ने हाथ तो बढ़ाया, लेकिन कहा, "भैया, उन्हें मालूम होगा, तो मेरी नौकरी न रहेगी।"

मैं समझ गया, पैसे जेब में रक्खेगा। अब ससुराल के लोग आ गये। मैं प्रणाम-नमस्कारादि के लिए तैयार हुआ।

चार

पैर छूकर मैं एक गलीचा-बिछे पलँग पर बैठा, देखा, सासुजी की पलकों पर चिन्ता की छाया है। मन-ही-मन कारण की तलाश करने लगा। इसी समय हृदय के भाव को शब्दों में प्रकट कर उन्होंने पूछा, "क्यों भैया, तुम कुल्ली के एक्के पर आये हो?"

मैंने सोचा, कुल्ली अछूत है। कहा, "आजकल यह सब चला गया है।"

मैंने अपनी समझ से पूरी तरह उनकी शंका मिटा दी, पर सासुजी की निगाह में त्रिशंकु स्वर्ग से गिरे; मेरे लहराते हुए बंगाली बालों को बड़े संशय से देखने लगीं--लहरियों से पुलकित होने की जगह सिहर-सिहर उठने लगीं, जैसे उनकी कन्या के भाग्य और सुहाग के लिए धोखे की टट्टी हो। एकाएक मेरी कोंछीदार धोती पर उनकी निगाह गयी, तो जैसे शंका को सुगठित प्रमाण मिला। एक ही भाव में कुछ देर स्थिर रहकर उन्होंने लम्बी साँस छोड़ी—निष्कर्ष तक पहुँचने की सूचना। फिर धीरे-धीरे भीतर गयीं।

मैं बैठा हुआ, फाटक के भीतर, घर के बाहरवाले आँगन में लगा चिलवल का पेड़ देखता रहा। एकाएक खयाल गया, इसकी डाल पर सावन में झूला पड़ता होगा, उस पर बैठी हुई भरे आकाश के सजल बादलों को देख-देखकर जो सावन, मल्लार, कजली और बारहमासियाँ गाती हुई पेंगों में झूलती है, उसे मैं पहचानता हूँ, उसके कुल गीतों का इधर मैं ही लक्ष्य रहा हूँगा।

इसी समय भीतर से एक नवीना कण्ठ ही खिलखिलाहट सुन पड़ी; यद्यपि मैंने यह पहले-ही-पहल सुनी थी, फिर भी पहचानते देर नहीं हुई—वह किसकी है। उसकी ध्वनि में बड़े गहरे-गहरे अर्थ थे—'तुम मेरे हो, तुम पर मेरा पूरा विश्वास

है, तुम्हें पाकर मैं और कुछ भी नहीं चाहती, दूसरे तुम्हें नहीं समझते, तो न समझें, मैं किसी को समझाना नहीं चाहती।'

चन्द्रिका खुले असबाब पर बैठा आकाश की शोभा देख रहा था। तारे निकल आये थे। भावावेश में उसने मुझसे पूछा, "अच्छा, बाबा, आसमान में तारे ज्यादा हैं या दुनिया में आदमी ?"

मैंने कहा, "तुझे क्या जान पड़ता है ?"

चन्द्रिका कुछ सोच-विचारकर हँसा। कहा, "दुनिया आसमान से छोटी थोड़े ही है ? कहाँ से कहाँ तक है ! आदमी ज्यादा होंगे।"

इसी समय सासुजी शरबत लेकर आयीं। उनका नौकर बाहर गया था। आया। सासुजी ने उससे पानी ले आने के लिए कहा। मैंने देखा, सासुजी का चेहरा प्रकाश को भी प्रसन्न कर रहा है। उनकी आत्मजा जैसे उनकी आत्मा में प्रविष्ट हो क्षण-मात्र में उनकी शंका निवृत्त कर चुकी है, परिष्कृत स्नेह के स्वर से कहा, "बच्चा, शरबत पी लो।"

मैंने शरबत पिया। सासुजी ने इस बार भी एक साँस छोड़ी, जो मुझे स्निग्ध करनेवाली थी। चन्द्रिका ने भी शरबत पिया।

सासुजी प्रसन्न चित्त से पलंग के नीचे एक कम्बल बिछाकर बैठीं, और मेरे पिताजी की बर्बरता की खुली भाषा में आलोचना करने लगीं। मेरी कई बार इच्छा हुई कि उत्तर में सासुजी को बर्बर कहूँ, लेकिन शृंगार की जगह, ससुराल में वीर-रस की अवतारणा अच्छी न होगी, सोचकर रह गया। सासुजी अन्त तक यह कहती बाज न आयीं कि उनकी पुत्री की तरह सुन्दरी, पढ़ी-लिखी, सुशील और बुद्धिमती लड़की संसार में दुर्लभ है; अगर पिताजी ने मेरा विवाह कर दिया, तो दैव-दुर्योग के अवश्यम्भावी थपेड़े खाते-खाते मेरे पाँचों भूत संसार के इसी पार रह जायेंगे।

मैंने इसका भी जवाब नहीं दिया। फलतः सासुजी मुझे अत्यन्त समझदार समझीं। कहा, "मैंने तुम्हारा ही मुँह देखकर विवाह किया है, तुम्हारे पिता की तोंद देखकर नहीं।"

मुझे इसका मतलब लगाते देर नहीं लगी कि पिताजी अगर मेरा दूसरा विवाह करने लगें, तो मैं दूसरी ससुराल में अपना मुँह न दिखाऊँ। मेरे ऐसे ही स्वभाव से शायद प्रसन्न होकर सासुजी ने पूछा, "अच्छा, भैया, मेरी लड़की तुम्हें कैसी सुन्दरी लगती है ?"

मौखिक इम्तहान में मैं बराबर पहला स्थान पाता रहा हूँ। कहा, "मैंने आपकी लड़की को छुआ तो है, बातचीत भी की है, लेकिन अभी तक अच्छी तरह देखा नहीं; क्योंकि जब मेरे देखने का समय होता था, तब दिया गुल कर दिया जाता था। दूसरे दिन दियासलाई ले तो गया, जलाकर देखा भी, लेकिन सलाई के जलते ही आपकी लड़की ने मुँह फेर लिया, और झोपड़े के अगल-बगलवाले लोग खाँसने लगे। फिर जलाकर देखने की हिम्मत न हुई।"

सासुजी मुस्किरायीं, और उठकर भीतर चली गयीं।

भोजन के पश्चात् मैंने देखा, जैसे कवि श्री सुमित्रानन्दनजी पन्त को राय-

बहादुर पं. शुकदेवविहारीजी मिश्र ने, वैसे मेरी सासुजी ने मुझे भी सौ में एक सौ एक नम्बर दिये हैं, यानी मेरे शयन-कक्ष में बड़ी मोटी बत्ती लगाकर दिया रख दिया है, ताकि उनकी पुत्री के अनन्य लावण्य को पूरी सार्थकता के साथ देख सकूँ।

मैं हर्षित हो आँखें बन्द किये आगमन की प्रतीक्षा करने लगा। सबका भोजन-पान समाप्त हो जाने पर मन्द गति से संसार के समस्त छन्दों को परास्त करती हुई उनकी पुत्री भीतर आयीं, और मुझे पान देती हुई बोलीं, "तुम कुल्ली के एक्के पर आये हो ?"

यह 'कुल्ली का एक्का' कौन-सी बला है ? मैं हैरान होकर सोचने लगा। श्रीमतीजी आनतवदना खड़ी मुस्किराती रहीं।

पाँच

प्रातःकाल जब आँख खुली, काफी देर हो गयी थी। सासुजी प्रातःकृत्य के लिए पूछने आयीं। निवृत्त होकर जल-पान कर, एक किताब लेकर बैठा कि सासुजी ने कहा, "सुबह सूरज की किरन फूटने के साथ कुल्ली आये थे। हमने कहा, अभी सो रहे हैं। उन्होंने फिर आने के लिए कहा है। लेकिन, भैया, कुल्ली से मिलना-जुलना अच्छा नहीं।"

मैंने कहा, "जब वह खुद मिलने के लिए आवेंगे, तब मिलना ही होगा।"

"लेकिन वह आदमी अच्छे नहीं।" सासुजी ने गम्भीर भाव से कहा।

"तो भी आदमी हैं, इसलिए…"

"हमारा यह मतलब नहीं कि वह सींगवाले हैं। आदमियों में ही आदमी की पहचान होती है।"

"जब आपको यह पहचान थी, तब आपने उनसे कह दिया होता कि मुलाकात न हो सकेगी।"

"पर गाँव के आदमी से एकाएक ऐसा नहीं कहा जाता, फिर तुम नातेदार हो, तुमसे गाँव-भर के आदमी मिल सकते हैं. स्नेह-व्यवहार मानकर, हमारा रोकना अच्छा नहीं।"

"तो क्या आपका कहना है, जब कोई स्नेह-व्यवहार मानकर आवे, तो मैं ही उसे रोक दिया करूँ ?"

सासुजी अप्रतिभ होकर बोलीं, "नहीं, हमारा यह मतलब नहीं; उसके साथ रहने पर तुम्हारी बदनामी हो सकती है।"

"पर," मैंने कहा, "मेरे साथ रहने पर उसकी नेकनामी भी हो सकती है।"

सासुजी मुझे देखती हुई शायद मुझमें स्पष्ट नेकनामी के चिह्न देखने लगीं।

इसी समय कुल्ली आये, और अवरुद्ध कण्ठ से आवाज दी, "जगे ?"

सासुजी की त्योरियों में बल पड़ गये। श्रीमतीजी एक दफा इस तरफ से उस तरफ निकल गयीं। मैं शुरू से विरोध के सीधे रास्ते चलता रहा हूँ। कुल्ली इतना खतरनाक आदमी क्यों है, जानने की उत्सुकता लिये हुए बाहर निकला। मधुर मुस्किराहट से आत्मीयता जतलाते हुए कुल्ली ने सिर झुकाकर नमस्कार किया। उसे अत्यन्त सभ्य मनुष्य के रूप में देखकर मैंने भी प्रतिनमस्कार किया।

दिन के समय बाहर की बैठक में मेरे रहने का प्रबन्ध था। पलँग बिछाया जा चुका था। मैं बैठक की तरफ चला। पलँग के पास एक खाली चारपाई पड़ी थी। कुल्ली अपनी तरफ से उस पर बैठ गये। बराबरी की होड़ नहीं की, यह मुझे बहुत अच्छा लगा। पलँग पर बैठकर मैंने अपनी सासुजी को उनके घनिष्ठ सम्बन्ध से याद कर लिया।

इसी समय पान आये। कुल्ली ने तश्तरी लेकर आदर की दृष्टि से देखते हुए मेरी तरफ बढ़ायी। मैंने गौरवपूर्ण गम्भीरता से दो बीड़े लिये। आशीर्वाद के स्वर से कुल्ली को भी खाने के लिए कहा। मुस्किराते हुए कुल्ली ने दो बीड़े ले लिये, और तश्तरी चारपाई पर रख दी।

फिर बड़ी सभ्य भाषा में बातचीत छेड़ी। बात उसी शहर के इतिहास पर थी। मैं देखता था, कुल्ली मुझे, खासतौर से मेरी आँखों को इस तरह देखते हैं, जैसे उनके बहुत बड़े कोई प्रियजन हैं। यह दृष्टि इससे पहले मैंने नहीं देखी थी। मुझे कौतूहल तो था, पर भीतर से अच्छा लगता था। कुल्ली ने कहा, "यह दलमऊ 'दल बाबा' का था। उसका किला अब भी है।"

मुझे उत्सुकता हुई। मैंने पूछा, "क्या किला अब भी है?"

"हाँ," गम्भीर स्वर से कुल्ली ने उत्तर दिया, "लेकिन अब टूटकर ढह गया है। यहाँ के पुराने अपढ़ लोग तो कहते हैं, किला दल बाबा के शाप से उलट गया है। जौनपुर के शाह से लड़ाई हुई थी। बरेली के बल और दलमऊ के दल मिलकर शाह से लड़े थे। यहाँ से कुछ दूर पर वह जगह है, जहाँ अब भी मेला लगता है। यहाँ की जगह और किले पर फिर मुसलमानों का अधिकार हुआ। शाह की कब्र यहाँ है, एक बारहदरी भी है, मकनपुर में। बहुत पहले यह जगह कन्नौज के अधीन थी। जयचन्द का झोपड़ा यहाँ है, चौरासी के उस तरफ।"

यह इतनी ऐतिहासिक जगह है, सुनकर मैं पुलकित हो गया। ऐसी जगह ससुराल देने के कारण परम पिता को धन्यवाद दिया। मन में इतनी महत्ता आ गयी, जैसे मेरी श्रीमतीजी दल की ही दुहिता रही हों। मैं विच्छुरित आनन्द की दृष्टि से कुल्ली को देखने लगा।

कुल्ली ने कहा, "यहाँ घाट भी कई देखने लायक हैं। राजा टिकइतराय का घाट तो बड़ा ही सुन्दर है।"

मेरी ससुराल के सम्बन्ध में एक साथ इतने नाम आयेंगे, मेरा स्वप्न में भी जाना न था। मैं एक विशिष्ट व्यक्ति की तरह गम्भीर होकर बैठा।

मुस्किराकर कुल्ली ने कहा, "यहाँ और भी घाट हैं, मठ और मन्दिर। बहुत पुरानी जगह है। उजड़ी बस्ती। देखने लायक है।"

"मैं देखूंगा।" मन-ही-मन ससुरालवालों को इतर विशेष कहते हुए मैंने कहा।

कुल्ली ने कहा, "जब चलिए, आपको ले चलूं। इस वक्त तो धूप हो गयी है। शाम को चलें, तो चलकर किला देख आइए।"

मैंने सम्मति दी। कुल्ली ने कहा, "मैं चार बजे आऊँगा। यहाँ आदमी भी बहुत बड़े-बड़े हो गये हैं, जैसे मेरे वंश के…"

कुल्ली ने कुछ कवियों के नाम गिनाये। मैंने उन्हें भी बड़ी इज्जत से मन में जगह दी। कुछ देर बाद कुल्ली उसी तरह आँखें देखते हुए नम्रतापूर्वक नमस्कार कर बिदा हुए।

मैं बैठा सोचता रहा—दुनिया कैसी दुरंगी है। इस आदमी के लिए उसकी कितनी मन्द धारणा है!

बैठका निराला देखकर सासुजी भीतर आयीं। पहले कई बार शंकित दृष्टि से से झाँक-झाँककर चली गयी थीं। आते ही हृष्ट चित्त से पूछा, "कुल्ली चले गये?"

गम्भीर होकर मैंने कहा, "हाँ, आज की बातचीत से मुझे तो वह बड़े अच्छे आदमी मालूम दिये।"

एक क्षण के लिए सासुजी फिर शंकित हो गयीं। फिर मुझसे कहा, "तुमने रामायण तो पढ़ी होगी?"

"यद्यपि मैं लड़की नहीं कि पतिदेव की आँखों में पढ़ी-लिखी उतर जाने की गरज से रामायण-भर पढ़ी है, फिर भी रामायण की बातें मुझे मालूम हैं, और आपके सामने परीक्षा ही देनी है, तो कहता हूँ, कुल्ली रावण या कुम्भकर्ण नहीं है, यह मैं समझ गया हूँ।"

सासुजी मुस्किरायीं, बोलीं, "परीक्षा में पास होने की शेखी लिये हुए भी तुम मेरी राय में रामायण में फेल हुए। मैंने रामायण का जिक्र इसलिए नहीं किया था कि तुम कुल्ली को रावण या कुम्भकर्ण बनाओ, मेरी बात के सिलसिले में कुम्भकर्ण तो बिलकुल ही नहीं आता, रावण के योगी बनकर भीख माँगने के प्रसंग पर कुछ आता है, पर दरअसल ये दोनों मिसालें गलत आयीं, मतलब कालनेमि से था।"

मैंने उसी वक्त कहा, "हाँ, 'कालनेमि जिमि रावण-राहू' लिखा है?"

सासुजी मधुर मुस्किरायीं। कहा, "तुमने रामायण पढ़ी है, यह सही है। लेकिन यहाँ…"

"हनुमान्‌वाला प्रसंग है कि मैं पकड़कर पैर पटक देता?" मैंने बात छीन ली जैसे, गर्व से सासुजी को देखा।

सासुजी हँस दीं। बोलीं, "इसमें शक नहीं कि तुमने बड़ा ही सुन्दर अर्थ लगाया है, पर मुझे कह लेने दो। कालनेमि की मिसाल इसलिए है कि महावीरजी कितने साधु सज्जन थे, वह भी उसकी बातों में आ गये थे, पहले नहीं समझ सके कि उसमें छल है।"

"हूँ," मैंने कहा, "यह तो नहीं समझ सके, पर आपने अपनी पुत्री को समझा दिया होता कि वह मकरी-अप्सरा बनकर मुझे भेद बतला देतीं।"

"पर वह मकरी नहीं, न मकरी की तरह उसने तुम्हें पकड़ा है, और जबकि उस तरह नहीं पकड़ा, तब मरकर, अप्सरा बनकर भेद बतलाने की उसे आवश्यकता

नहीं हुई। परन्तु तुम अगर उसे मारकर यह भेद जानना चाहोगे, तो हत्या ही तुम्हारे हाथ लगेगी।"

सासुजी के ज्ञान पर मुझे आश्चर्य हुआ, खासतौर से इसलिए कि उनकी बात का कोई तात्पर्य मेरी समझ में नहीं आया।

कुल्लीवाली चारपाई पर बैठी हुई सासुजी ने स्नेह के कण्ठ से मुझसे पूछा, "तुम्हारी और कुल्ली की क्या बातचीत हुई ?"

उच्छ्वसित होकर मैं कुल्ली की आकर्षक बातचीत कहने लगा। मुस्किराकर सासुजी बोलीं, "कालनेमिवाला प्रसंग पूरा उतर रहा है। वह तुम्हें यहाँ से ले जाना चाहता है।"

मुझे बहुत बुरा लगा। मैंने पूछा, "तो क्या यहाँ किला नहीं है ?"

"किला है," सासुजी ने कहा, "लेकिन उसका मतलब तुम्हें किला दिखाना नहीं मालूम देता।"

"यह आपको कैसे मालूम हुआ ?" मैंने रुखाई से पूछा।

"इस तरह की कुल्ली के हथकण्डे हमें मालूम हैं।"

बात फिर भी मेरी समझ में न आयी। सासुजी गम्भीर होकर बोलीं, "जब जाना, तब चन्द्रिका को साथ ले जाना। अकेले उसके साथ हरगिज जाना नहीं हो सकता ?"

"क्यों ?" मैंने कहा, "क्या कुल्ली मुझसे ज्यादा शहजोर है, जो चन्द्रिका बल पहुँचायेगा ?"

सासुजी हँसीं। कहा, "यह तो जानती हूँ, लेकिन फिर भी तुम लड़के हो, मा-बाप की बात का कारण नहीं पूछा जाता।"

कहकर उठीं और कहा, "चलो, नहा लो, भोजन तैयार है।"

छह

मैं बचपन से आजादी-पसन्द था। दबाव नहीं सह सकता था। खासतौर से वह दबाव, जिसकी वजह न मिलती हो। एक घटना, अप्रासंगिक न होगी, कहूँ। मैं आठ साल का था। पिताजी जनेऊ करने गाँव आये थे। गाँव के ताल्लुकेदार पं. भगवानदीनजी दुबे थे। उन्होंने एक पतुरिया बैठायी थी। उससे एक लड़की और तीन लड़के हुए थे। जब की बात है, तब पं. भगवानदीनजी गुजर चुके थे। ताल्लुका उनकी धर्म-पत्नी से पैदा हुए पुत्र के नाम था। एकाएक मर गये थे, इसलिए पतुरिया को और उससे पैदा हुए लड़कों को अचल सम्पत्ति कुछ नहीं दे जा सके थे।

बाद को वसूली में पतुरिया के लड़के अड़चन डालते थे। इसलिए उनके अधिकारी भाई ने खाने के लिए उन्हें कुछ बागात और मातहत खेत दिये थे। मजे

में गुजर होता था। पतुरिया थी। उसके लड़कों के नाम हैं—शमशेरबहादुर, जंगबहादुर, फतहबहादुर और लड़की का नाम परागा।

सबसे छोटे फतहबहादुर मुझसे आठ साल बड़े थे। चौधरी पं. भगवानदीनजी ने सबसे बड़े शमशेरबहादुर को बड़े प्रयत्न से शिक्षा दिलायी थी। मैंने उनका सितार बाद के जीवन में सुना है। वह वाक्य प्रशंसा के साथ मुझे अब तक याद है। शमशेर का उन्होंने जनेऊ भी किया था, और कहते हैं, जनेऊ-भोर के ब्रह्मभोज में अपनी ताल्लुकेदारी के और प्रभाव में आये और-और ब्राह्मणों को आमन्त्रित करके खिलाया भी था। इसके बाद शमशेर का एक विवाह भी किया था। लड़की खालिस ब्राह्मण-घर की नहीं, बाला ब्राह्मण-विधवा मिली, उससे किया। तब से यह परिवार अपने को ब्राह्मण समझता है। जरूरत पडने पर ये लोग शमशेरबहादुर दुबे, जंगबहादुर दुबे लिखकर सही करते हैं। अपनी मा पतुरिया को उसी तरह भोजन देते थे, जैसे एक हिन्दू यवनी को देता।

इतने पर भी ताल्लुकेदार साहब की आँखें मुंदने के साथ-साथ गाँव के लोगों ने इनकी तरफ से मुंह फेर लिया। इनके यहाँ का पान-पानी गाँव तथा ग्वेंड़ के चारो ओर बात-की-बात में बन्द हो गया।

जब मैं गया, तब ये इसी अचल अवस्था में थे। प्रतिशोध की ताड़ना से इन्होंने गाँव तथा ग्वेंड़ के हर घर का इतिहास कण्ठाग्र कर रक्खा था। और, अधिकारी-अनधिकारी जो भी इनसे भली तरह बातें करता था, उसे घेरकर घण्टों सुनाते रहते थे, "रामचरण की बेवा लड़की के लक्खू पासी का हमल रह गया था; शिवप्रसाद मिसिर की बीस साल की ब्याही न होने की वजह से लछमन लोध के साथ भग गयी; रामदुलारे तिवारी अपने छोटे भाई की बेवा स्त्री को बैठाले हैं; सुन्दरसिंह का लड़का पल्टन में था, ससुर ने पुतोहू के हमल कर दिया, बात फैल गयी, थानेदार आये, फिर रुपया देकर दबाया, और पुतोहू को बेटे के पास लेकर चले कहकर कलकत्ता, जाने कहाँ पहुँचे, वहाँ लड़का होने पर उसे मारकर पुतोहू को बेटे के पास ले गये; कहा—संग्रहणी हो गयी थी, कलकत्ता इलाज कराने गये थे।"

गाँव आने पर इसी खानदान का मुझ पर सबसे ज्यादा प्रभाव पड़ा। यही मुझे आदर्श आदमी नजर आये—चेहरे-मोहरे के, बातचीत के, उठक-बैठक के। तब मेरा जनेऊ नहीं हुआ था, इसलिए खान-पान की रोकथाम न थी। पतुरिया मुझसे स्नेह करती थी, खिलाती थी और लतीफे सुनाती थी। नये ढंग के कुछ दादरे और गजलें सिखायी थीं।

एक दिन उनके छोटे लड़के ने, जिनका मुझ पर ज्यादा प्रभाव था, कहा, "तुम्हारे बड़े चाचा हमारे यहाँ नौकर थे, हमारे घोड़े ने उनका हाथ काटकर बेकाम कर दिया था, तब हमने माफी दी थी, वह जमीन आज भी तुम्हारी चाची जुताया करती हैं।"

यह बात सच है। लेकिन ताल्लुकेदार भगवानदीन ने जब माफी दी थी, तब उनके यह पुत्र-रत्न भूमिष्ठ नहीं हुए थे। मैं तब यह इतिहास नहीं जानता था। मुझ मालूम पड़ा, यह सब इन्होंने किया है।

इसके बाद कहा, "अभी तुम हमारे यहाँ का खाते हो, जब जनेऊ हो जायेगा, न खाओगे।"

मैंने खुदबखुद सोचा, 'यह अन्याय है। अगर आज खाते हैं, तो कल क्यों न खायेंगे ?'

परागा बहन ने कहा, "बदलू सुकुल के यहाँ महुए की लप्सी खाओगे, हमारे यहाँ हलुआ नहीं।"

मुझे झेंप मालूम दी। मैं हलुआ छोड़कर लप्सी नहीं खाता, मन में कहा। कुछ दिन बाद जनेऊ हुआ। अब तक इस घर के आदमी-आदमी ने बगावत के लिए मुझे तैयार कर लिया था। मैं प्रतिज्ञा कर चुका था कि जनेऊ चाहे तीन बार हो, लेकिन मैं यहाँ भोजन न छोड़ूँगा। इनकी बातें मुझे संगत मालूम देती थीं। अगर गाँववाले कभी इनके यहाँ खाते थे, तो अब क्यों नहीं खाते ?

जनेऊ हो जाने के दूसरे रोज पिताजी ने एकान्त में बुलाकर मुझसे कहा, "अब आज से, खबरदार, पतुरिया के घर का कुछ खाना-पीना मत।"

मैंने कहा, "पतुरिया का छुआ तो उनके लड़के भी नहीं खाते-पीते।" पिताजी ने कुछ समझाकर कहा होता, तो मेरी समझ में बात आयी होती। उन्होंने डाँटकर कहा, "उसके हाथ का भी मत खाना।"

मैंने पूछा, "जब ताल्लुकेदार थे, तब आप लोग उनका छुआ खाते थे ?"

पिताजी ने होंठ चबाकर कहा, "हम जैसा कहते हैं, कर।"

यहीं मैं कमजोर था। दिल से बात न मानी। जनेऊ के बाद दो-तीन दिन कहीं न गया, जनेऊ चढ़ाता-उतारता रहा। दिन-भर में कितने जनेऊ बदलने पड़ते थे। जनेऊ के बाद दो दिन पतुरिया के घर न गया; लोगों की धारणा बँध गयी, मैं रोक दिया गया, और बात मैंने मान ली।

तीसरे या चौथे दिन पं. फतहबहादुर दुबे कुएँ पर नहाने का डौल कर रहे थे, एकाएक मैं पहुँचा। मुझे देखकर वह मुस्किराये। मेरे दिल में जैसे तेज तीर चुभा। बड़ा अपमान मालूम दिया। मैंने उनके पास पहुँचकर कहा, "भैया, पानी पिला दीजिए।"

भैया प्रसन्न हो गये। डोल से लोटे में पानी लेकर मुझे पिलाने लगे। पिलाते वक्त उन्हें गर्व का अनुभव हो रहा था। मुझे भी खुशी थी, जैसे कोई किला तोड़ा हो। उन्होंने गाँव के लोगों को देखकर अपने ब्राह्मणत्व का गर्व किया था, मैंने अपनी प्रतिज्ञा-रक्षा का।

जिन पर भैया फतहबहादुर ने फतह पायी थी, उनमें भी सिर उठाने का हौसला कम न था। वे पिताजी के पास गये, और सिर उठाकर कहा, "आपका लड़का सबके सामने पतुरिया के छोटे लड़के का भरा पानी उन्हीं के लोटे से पी रहा था। अभी नादान है, इसलिए इस दफा माफ किये देते हैं; फिर अगर ऐसी हरकत करते देखा गया, तो हमें लाचार होकर आपसे व्यवहार तोड़ना होगा।"

पिताजी पहले आज्ञा दे चुके थे, फिर ब्राह्मणों ने बात सभ्य ढंग से कही थी, पिताजी का क्रोध सप्तम सोपान पर पहुँचा। एक तो सिपाही आदमी, फिर हृष्ट-पुष्ट, इस पर व्यक्तिगत और जातिगत अपमान! कहा है—'सब ते अधिक

जाति-अपमाना।' जाते ही मुझे पकड़कर फौजी प्रहार जारी कर दिया। मारते वक्त पिताजी इतने तन्मय हो जाते थे कि उन्हें भूल जाता था कि दो विवाह के बाद पाये हुए इकलौते पुत्र को मार रहे हैं। मैं भी, स्वभाव न बदल पाने के कारण मार खाने का आदी हो गया था। चार-पाँच साल की उम्र से अब तक एक ही प्रकार का प्रहार पाते-पाते सहनशील भी हो गया था, और प्रहार की हद भी मालूम हो गयी थी।

जब पिताजी के बिजली के हाथ छुट रहे थे, मैं चिल्लाता हुआ उनकी पहले की मारें याद कर रहा था—एक दफा जाड़े के दिनों में रात आठ बजे मैंने बगल की बाड़ी में पाखाने की हाजत रफा की, और यूरोपियनों के कागज का काम बैंगन के पत्तों से लिया, फिर भोजन के लिए रसोई जाना ही चाहता था कि भाभी ने रोक दिया, उन्होंने झरोखे से मुझे देख लिया था। पिताजी से यथातथ्य कह दिया। पिताजी पहले गरजे, फिर एक हाथ से मेरी बाँह पकड़कर टाँग लिया, और ताल की ओर ले चले उसी तरह टाँगे हुए। वहाँ उसी तरह पकड़े हुए डुबा-डुबाकर नहलाने लगे, 'सौंचता जा, सौंचता जा' कहते हुए। जब अपनी इच्छा-भर नहला चुके, तब प्रहार के ताप से जाड़ा छुटाने लगे।

याद आया—एक बार एकान्त में मैंने पिताजी को सलाह दी थी, "तुम्हारे मातहत इतने सिपाही हैं, तुम इस राजा को लूट क्यों नहीं लेते?" पिताजी ने सोचा, यह किसी दुश्मन की सिखायी बात है, जो उनकी नौकरी लेना चाहता है। मुझे मार-मारकर अपने दुश्मन का भूत उतारते हुए पूछने लगे कि किसने सिखलाया है। मैं किसका नाम बतलाता? वह उद्भावना मेरी ही थी। मैं जितना ही कहता था, यह बात मेरी ही सोची हुई थी, पिताजी उतना ही सन्देह करते और मार-मारकर पूछते जाते थे। मैं कुछ देर बाद बेहोश हो गया था। (तब से आज तक मैं नौकर और नौकरी को पहचानता हूँ। इस बयालीस साल की उम्र में, पहले, बड़ी मजबूरी में नौकरी की थी, सिर्फ दो-ढाई साल चली। अस्तु।)

चाँटे की ताल-ताल पर पिताजी कबूल करा रहे थे, फिर तो मैं पतुरिया के यहाँ का पानी न पियूँगा, मैं स्वीकार कर रहा था। किसी तरह छुट्टी मिली।

दो-तीन दिन का समय दर्द अच्छा होने में लगा। एक दिन मैं बाहर निकला कि दुर्भाग्य से फिर वैसा ही प्रकरण आ पड़ा। गाँव के मुखिया क्रोध से भरे हुए, गाँव के लोगों की रक्षा के विचार से गये, और गम्भीर होकर नाम लेते हुए कहा, "क्या तुम दूसरों का धर्म लेना चाहते हो? आज तुम्हारा लड़का पतुरिया के लड़के से ले-लेकर भूने चने चबा रहा था। आज से गाँव के ब्राह्मणों में तुम्हारा व्यवहार बन्द है।"

ओज की मात्रा पिताजी में उनसे अधिक थी। फिर मुखिया ने ये बातें डाँट के साथ कही थीं। व्यक्तिगत बात को व्यक्तिगत रूप देते हुए उन्होंने कहा, "तू हमारा पानी बन्द करेगा? तू पासी का है, गाँव में जा और पूछ, तेरी लड़की पटने में एक-दो-तीन-चार, एक-दो-तीन-चार कर रही है—हम अपनी आँखों देख आये हैं। माना कि चौधरी भगवानदीन का काम बेजा था, लेकिन उनके सामने कहते! नहीं, जब तक वह जिये, इन्हीं लड़कों की (अंग-विशेष का उल्लेख कर कहा) धो-धोकर

पीते रहे, अब सब छंगे के बने फिरते हो ? शहर में होते, तो देखते हम, कितने आदमियों का बम्बे का पानी और डॉक्टर की दवा छुड़ाते हो । यहाँ क्या, नाम के करने को कौन-सा काम और गाने को छीता-हरन !"

मुखिया का थूक सूख गया । विशेष अस्वस्थ हों जैसे, धीरे-धीरे लौटे ।

पिताजी ने गम्भीर स्नेह-स्वर से पुकारा, "अरे ए मुखिया, तमाकू खाये जाओ !"

मैं अब विकास पर हूँ । इन मेरी आँखों में धूल झोंकी जा रही है । मैं जरूर कुल्ली का साफ आसमान देखूँगा । चन्द्रिका मेरे साथ कर दिया जायेगा, तो उस वेवकूफ को एक काम देकर अलग कर देना कौन बड़ी बात है ? कहूँगा, अत्तार के यहाँ से रूह ले आ मालिश के लिए । रूह लेकर बड़े रास्ते पर खड़े रहना, हम वहीं मिलेंगे । देखा जाय, ये लोग कुल्ली के नाम से क्यों कान खड़े करते हैं ! इसी प्रकार अपना आगे का कार्यक्रम तैयार कर रहा था कि बैठक का दरवाजा खुला ।

"भीतर आऊँ ?" विनीत सभ्य कण्ठ की आवाज आयी। मैं समझ गया, कुल्ली हैं ।

"आइए ।" मैंने उसी सभ्यता से कहा । कुल्ली एक घण्टा पहले आये थे । बहुत बने-ठने । बालों से तेल जैसे टपकने पर हो । चिकन का धुला कुरता । ऊपर बास्कट । हाथ में बेंत । गर्मी के दिनों में भी पैरों में मोजे । विनीत, अप्रतिभ दृष्टि और श्री-हीन मुख । बात-बात में कालिदास के 'शिप्रावातः प्रियतम इव प्रार्थना-चाटुकारः' । तब चाटूक्ति अच्छी लगती थी, क्योंकि उसका दर्शन न समझता था, कालिदास का यौन विज्ञान भी नहीं; समझता तो उस दृष्टि, चेहरे और बातचीत से ही खात्मा कर दिया होता ।

कुल्ली ने बड़े अदब से इलायची दी। मैंने ले ली । कहा, "आप घण्टे-भर पहले आये ।"

कुल्ली ने उत्तर दिया, "पाण्डेजी का मन्दिर भी रास्ते में देख लेंगे ।"

सासुजी पहले से सतर्क थीं । फाटक बन्द कर उसी दालान में अपना पलँग डलवाया था, और दुपहर-भर कुल्ली का रास्ता देखती रहीं । चन्द्रिका को अपनी ही दालान में सुलाया था । दुपहर-भर उससे हम लोगों की बातें पूछती रहीं, 'कैसे रहते हैं, क्या खाते हैं, कौन कैसे हैं, घर में किसका स्वभाव अच्छा है ।' आदि-आदि ।

चन्द्रिका बहुत अर्थों में बेवकूफ था । उससे घर की कोई भी बात मालूम की जा सकती थी । थोड़ी देर में देखता हूँ, अपने डण्डे पर अच्छी तरह तेल चुपडे हुए चन्द्रिका बैठक के भीतर आया, साथ चलने के लिए कपड़े पहनकर, बिलकुल तैयार होकर ।

चन्द्रिका को देखकर कुल्ली कुछ सहमे-से । फिर उससे कहा, "एक लोटा पानी हमारे लिए ले आओ ।" चन्द्रिका पानी लेने गया, तो मुझसे बोले, "क्या यह भी साथ जायेगा ? इसका कौन-सा काम है ?"

कुल्ली के कहने से मेरा कौतूहल बढ़ा । मैंने कहा, "साथ जाना उसका फर्ज है । लेकिन मैं उसे सौदा लेने के लिए दूसरी जगह भेज दूंगा ।"

कुल्ली ने अपने ढंग से समझा। कुल्ली ने सोचा, मैं उनका इरादा समझ गया हूँ, और उनकी अनुकूलता कर रहा हूँ; मैं वैसा ही आदमी हूँ, जैसा उन्होंने सोचा था।

चन्द्रिका पानी ले आया। दो-एक छींटे मुँह पर मारकर कुल्ली ने कहा, "बड़ी गर्मी है। इतना ही आया, ब्रह्माण्ड फट रहा है।" चन्द्रिका कुल्ली को देख-देखकर आजमा रहा था कि एक झपट होने पर आसमान दिखा सकेगा या नहीं। मुँह पर छींटे मारकर, दो-एक घूंट पानी पीकर कुल्ली ने कहा, "अब देर न कीजिए।"

मैं घर के भीतर चला। फाटक के पास जाते ही मालूम हुआ, सारा घर साँस साधे हुए है। फाटक खोलने पर सासुजी मिलीं, स्तब्ध भाव से मुझे देखती हुईं। उनकी बेटी उनकी आड़ में। मैं सीधे अपने कमरे में गया। बाल कंघी किये, कपड़े बदले, जूते पहने; फिर छाता लेकर बाहर निकला। सासुजी रास्ता रोककर खड़ी हो गयीं। अपने यहाँ का एक डण्डा देती हुई बोलीं, "इसे भी ले लो। जंगल का रास्ता ठहरा।"

मैंने कहा, "जरूरत पर मैं छाते से काम ले लूंगा।"

सासुजी की बेटी हँसीं। मैं बाहर निकला।

मैं फिर बैठक में न घुसूँ, इस विचार से कुल्ली दरवाजे के पास आ गये थे, मेरे निकलते ही निकल पड़े। कुल्ली के पीछे चन्द्रिका भी निकला। कुल्ली ने उसे घृणा से घूरा, पर कुछ कहा नहीं। रास्ते पर जाकर खड़े हो गये। मैं भी बढ़ा। मेरे पीछे चन्द्रिका। चन्द्रिका का रहना कुल्ली को अखर रहा था। मुझे सासुजी की बात याद आ रही थी कि कुल्ली मुझे यहाँ से ले जाना चाहता है। उसका उद्देश्य किला दिखाना नहीं। पर उसका उद्देश्य क्या है, जानने की बड़ी उत्सुकता हुई। इसी समय हम लोग बड़े रास्ते पर आये। कुल्ली ने एक दफा मेरी तरफ देखकर इशारा किया कि अब इसे बिदा कर दो। वह इशारा, मुँह और आँख का बनना, मुझे बड़ा अच्छा मालूम दिया। दो-एक दफा ऐसे इशारे और हों, देखूँ, इस अभिप्राय से चन्द्रिका को लिये रहा। कुल्ली का उत्साह टूट गया; चाल धीमी पड़ गयी। पर आशा से हृदय बाँधकर पाण्डेजी के शिवाले की तरफ चले।

कुछ दूर पर शिवाला मिला। चारो ओर घूमकर हम लोगों ने मन्दिर देखा, देवता के दर्शन किये, फिर मन्दिर की चित्र-कला देखते रहे। फिर बैठकर कुछ देर विश्राम करने और पुजारीजी की बातचीत सुनने लगे। ज्यों-ज्यों देर हो रही थी, कुल्ली का पेट ऐंठ रहा था। पुजारीजी की बातचीत चल रही थी कि उस साल भगवान् का जन्म-दिन मुहर्रम के दिन पड़ा; जब ताजिए उठ रहे थे, पुजारी भगवान् की आरती कर रहे थे; आरती में खूब बाजे बज रहे थे, इंस्पेक्टर साहब के पूछने पर पुजारीजी ने कहा कि जिनके यहाँ आदमी मरा, और कहीं लाश का पता नहीं, उनके यहाँ तो ये सब, और पुजारीजी के यहाँ आज भगवान् पैदा हुए (कहते हैं, उसी दिन पुजारीजी की स्त्री के लड़का हुआ था), तो यहाँ कितना उछाह होना चाहिए।

कुल्ली ने बीच में टोककर कहा, "महाराज, अभी और जगहें देखनी हैं।" कहकर उठकर खड़े हो गये।

मैं पुजारीजी की बात खत्म होने पर उठा। तब तक कुल्ली सैकड़ों मर्तबे निगाह से मुझे उठाते रहे। मैं देखता और सुनता रहा। शिवाले के बाहर निकलकर कुल्ली ने फिर इशारा किया। इस बार कुल्ली का इशारा चन्द्रिका ने देख लिया। लेकिन बात उसकी समझ में न आयी। उसने सोचा था, आगे चलकर कुल्ली को मारने की नौबत आयेगी; पर इस इशारे में उसे काफी स्नेह दिखायी दिया।

इसी समय अत्तार के यहाँ से मैंने रूह खरीद लेने की आज्ञा दी। चन्द्रिका असमंजस में पड़ गया—उसे सासुजी की आज्ञा साथ न छोड़ने के लिए थी, सासुजी की बात याद आयी—साथ न छोड़ना, दोस्त-दुश्मन कौन कैसा साथ रहता है; लेकिन कुल्ली को दुश्मन में शुमार न कर सकने के कारण उतरे गले से कहा, "मैं भी किला देख लेता।"

कुल्ली ने कहा, "क्या आज से किले का आना बन्द हुआ जाता है? कल देख लेना; कहीं मालिक की हुक्म-अदूली की जाती है? जाओ, रूह खरीद लो। वह आगे दूक़ान है।"

चन्द्रिका मेरी तरफ देखने लगा। मुझे भी उत्साह था। कहा, "खरीदकर यहीं या बड़े रास्ते पर रहना। हम घण्टे-भर में आ जाते हैं।"

चन्द्रिका मुड़ा। कुल्ली ने उत्साह से सीना तानकर गर्दन उठा दी। मुझे भी यह मुद्रा अच्छी लगी। बंगाल में ऐसी अंग-भंगी देखने को न मिली थी।

हम ढाल से नीचे उतरे। किला देख पड़ने लगा। मिट्टी के दो काफी ऊँचे टीले हैं, एक-दूसरे से जुड़े हुए। इन्हीं पर इमारत थी। इस समय केवल एक बारहदरी दूर से देख पड़ती है। किले के चारो तरफ ईंटों की चहारदीवारी थी, जगह-जगह मालूम देता है। ईंट कहीं-कहीं बहुत बड़ी हैं। बाकी इमारत की ईंट लखनऊ की जैसी कागजी थीं, लेकिन बहुत पकी हुई मजबूत। घुसते एक फाटक मिला, मजे का, इन्हीं ईंटों का बना। फाटक का रास्ता कागजी ईंटें गाड़कर बनाया हुआ, नीचे से ऊपर को चढ़ता हुआ, गऊघाट की तरह का। दूर से दृश्य अच्छा मालूम देता है, ऊपर से और अच्छा। हम लोग फाटक से होकर चढ़ते हुए किले के भीतर गये। जाने पर प्राचीनता का नशा जकड़ लेता है, जिसकी स्तब्धता दूर इतिहास-काल में ले जाकर एक प्रकार का प्रगाढ़ आनन्द देती है। कुल्ली ने दूसरे टीले की तरफ हाथ उठाकर कहा, "वह रनवास है। बैठ गया है, दो-एक जगह से मालूम देता है। नीचे की दालानें देख पड़ती हैं। एक तहखाना भी है! लोग कहते हैं, यहाँ बड़ी दौलत है।"

फिर आगे बढ़े। एक जगह, एक मस्जिद थी, टूटी हुई। कुल्ली ने कहा, "यह मस्जिद है। शाह का कब्जा होने के बाद बनी थी। इसीलिए दूसरी इमारतों के मुकाबले नयी मालूम देती है। सामने यह सिपाहियों के रहने की जगह थी, अब कुछ कब्रें हैं। देखिए, उस फाटक से उस बारहदरी तक कई फाटक थे। ड्योढ़ियाँ थीं। सिपाही पहरे पर थे। जगह देखते जाइए, धीरे-धीरे कैसी ऊँची होती गयी है। बारहदरी के पास किला काफी ऊँचा है।"

वैसे ही बढ़ते हुए कुल्ली ने दायीं तरफ एक कुआँ दिखलाया। उस समय वह

सूख गया था। कुएँ के आगे ढाल में नीचे, किले का नाबदान है। मुसलमानों का अधिकार होने पर किले की पत्थर की मूर्तियाँ वहाँ फेंक दी गयी थीं, अब भी काफी संख्या में पड़ी हैं। इसी जगह से बाहर निकलने को, कहते हैं, एक सुरंग थी। हम लोग बारहदरी की तरफ चले। कुल्ली ने कहा, "पहले यहाँ बहुत अच्छी इमारत थी। कुछ टूट गयी थी। अँगरेजों ने मरम्मत करायी, और अपनी कचहरी लगाते थे।"

मैंने देखा, जैसे एक छोटे पहाड़ की चोटी पर पहुँचा हूँ। बारहदरी के ठीक नीचे गंगा बह रही थीं। कुछ सीढ़ियाँ बनी थीं, जिनसे मालूम होता था, ऊपर से नीचे गंगा तक उतरने का ज़ीना बना था। किला ऐसे मौके पर कि एक तरफ से गंगा का प्रवाह जैसे रोके हुए है। बरसात में किले की बगल से सटकर गंगा बहती हैं। एक तो वहाँ गंगा का पाट भी चौड़ा है, दूसरे बहुत बड़ा कछार भी है, ऊँची जगह, निगाह दूर-दूर तक जाती है, जिससे जी को वैसा ही प्रसाद मिलता है। देखकर मुझे बड़ा आनन्द आया। मेरी खुशी से कुल्ली भी खुश हुए। बारहदरी पर जानेवाली सीढ़ी के सिरे पर बठ गये। मैं भी थका था, बैठ गया।

कुल्ली ने कहा, "दोस्त, क्या हवा चल रही है!"

कुल्ली का दोस्त कहना मुझे बड़ा अच्छा लगा। मित्रता की तरफ और गुरुडम के खिलाफ मैं पहले से था। मैंने कुल्ली का समर्थन किया। कुल्ली मुस्किराये मेरी मैत्री की आवाज पर, फिर इस स्वर को और उदात्त कर बोले, "दोस्त, तुम्हारा चेहरा बतलाता है कि तुम गाते हो, कुछ सुनाओ वक्त की चीज़।"

मैं गद्‌गद हो गया यह सोचकर कि वक्त की चीज़ सुननेवाला संगीत-मर्मज्ञ है। तारीफ से मैं अभी कल तक उमड़ आता था; उमड़ जाने पर आदमी हल्का हो जाता है, न जाना था। गाने लगा। कुल्ली सिर हिलाने लगे। मैं देखता था, ताल के साथ कुल्ली के सिर हिलाने का सम्बन्ध न था। आश्चर्य हुआ कि ऐसा समझदार यह क्या कर रहा है। इसके बाद कुल्ली ने सम की जगह समझकर "हूँ:" किया; वहाँ सम न थी। एक कड़ी गाकर मैंने गाना बन्द कर दिया।

कुल्ली ने कहा, "यार, तुम तो बहुत ऊँचे दर्जे के गवैये हो, हमारा इतना जाना न था।"

मैं फिर फूल गया। कुछ उस्तादों के नाम गिनाये, जिनमें कुछ से कुछ सीखा था, अधिकांश के नाम सुने थे। कहा, "इन सबसे मैंने यह विद्या ली है।"

मेरे गुरुत्व पर गम्भीर होकर कुल्ली बोले, "हाँ, ये सब लोग राना साहब के यहाँ आते हैं। पर तुम्हारी और बात है। तुम्हारा गला क्या है! तुम्हारा गला है, जादू है?"

मैं संयत होने लगा, कुल्ली जो कुछ कह रहे हैं, ठीक है, समझकर।

शाम हो रही थी। घर की याद आयी। मैंने कहा, "अब चलना चाहिए।"

कुल्ली भावस्थ हो गये, फिर एक गर्म साँस छोड़ी। कहा, "अच्छा, चलो। हम लोग चलें।"

कुल्ली जिस रास्ते से ले चले, यह नया था। मेरे पूछने पर कहा, "जरा ही दूर मेरा मकान है। अपनी चरण-रज से पवित्र तो कर दो।"

तब मैं ब्राह्मण था, इसलिए चरण-रज से पवित्र करने की ताक़त है, समझता था। कुल्ली के मकान के साथ कुल्ली का देह भी संलग्न है भाव-रूप से, इसलिए उसके पवित्र करने की बात भी मेरे मन में आयी, क्योंकि मैं देख चुका था, कुल्ली की भली बात का व्यंग्य रूप से लोग बुरा अर्थ लगाते हैं, फलतः कुल्ली के पवित्र होने की जरूरत है। कुल्ली अब तक के आचरण से किसी तरह भी अनाचरणीय मनुष्य नहीं। उसका यह भाव लोगों में व्यक्त हो जाना चाहिए। चुपचाप कुल्ली के साथ चला जा रहा था। पुराने बाजार से कुछ आगे चौरासी पर कुल्ली का मकान था। कुल्ली ने घर का ताला खोला। गृह की यह दशा देखकर मैंने सोचा —कुल्ली त्यागी मनुष्य है। जम्बुकों के वन में अकेला सिद्ध वेदान्त-केसरी की तरह रहता है। कुल्ली ने लालटेन जलायी। फिर कहा, "यही झोपड़ी है। घर में मैं अकेला रह गया हूँ। कुछ जमींदारी है। लड़के-बच्चे, जोरू-जाते कोई नहीं, दो एक्के चलवाता हूँ। शौक से रहता हूँ, यह आदमियों को अच्छा नहीं लगता। मान लो, कोई बुरी लत हो, तो दूसरों को इससे क्या ? अपना पैसा बरबाद करता हूँ !"

बात मुझे संगत मालूम दी। मैंने कहा, "दूसरों की ओर उँगली उठाये बिना जैसे दुनिया चल ही नहीं पाती।"

कुल्ली खुश होकर बोले, "हाँ, लेकिन दुनिया में हमारे-तुम्हारे-जैसे आदमी भी हैं, जो लोगों के उँगली उठाने से घबराते नहीं।"

कुल्ली ने बड़े स्नेह के साथ मुझे पान दिया, और मेरे पान लेते वक्त जरा मेरी उँगली दबा दी। मैं बहुत खुश हुआ यह सोचकर कि ससुराल के सम्बन्ध से कुल्ली मेरे साले होते हैं, मुझसे दिल्लगी की है। मुझे खुश देखकर कुल्ली विचित्र तरह से तने। कुछ देर तक इस उत्तेजना का आनन्द लेकर बोले, "कल तुम्हारा न्योता है मिठाई का। लेकिन किसी से कहना मत, क्योंकि यहाँ लोग सीधी बात का टेढ़ा अर्थ लगाते हैं। कल नौ बजे तक आ जाओ।" फिर बहुत दीन होकर बोले, "गरीबों पर भी कृपा की जाती है।"

आजकल जिस तरह लोग मेरा व्यंग्य नहीं समझते, उसी तरह पहले लोगों का व्यंग्य मेरी समझ में न आता था। मैंने कुल्ली का आमन्त्रण स्वीकार कर लिया, और चलने को तैयार हुआ।

मेरे मुंह की ओर देखते हुए कुल्ली ने कहा, "पान भी क्या खूबसूरत बनाता है तुम्हें ! तुम्हारे होंठ भी गजब के हैं। पान की बारीक लकीर रचकर, क्या कहूँ, शमशीर बन जाती है।"

कुल्ली हृदय की भाषा में कह रहे थे, मैं कुल अर्थ ससुराल के सम्बन्ध से लगाता हुआ बहुत ही प्रसन्न हो रहा था।

मैं बढ़ा। कुल्ली बड़े रास्ते तक आये, और नमस्कार करके कहा, "कल सबेरे नौ बजे इन्तजार करूँगा।"

मैंने भी प्रतिनमस्कार किया। ढाल के पास चन्द्रिका खड़ा था। देखकर कहा, "बहुत देर कर दी बाबा, तुमने। मुझे शंका हो रही थी कि कहीं धोखा न हुआ हो।"

मैंने कहा, "चन्द्रिका, धोखा तो खर नहीं हुआ, लेकिन धोखा देना है। तुम्हारी नानी पूछें, तो कहना, हम साथ थे।"

चन्द्रिका ने स्वीकार कर लिया। मैं कुल्ली की बातों के विचार में था, चन्द्रिका के स्वभाव के अनुकूल समझाना याद न था।

सासुजी सर्वान्तःकरण से हमारा रास्ता देख रही थीं। मैं कपड़े छोड़ने भीतर गया, सासुजी चन्द्रिका से पूछने लगीं, "कहाँ-कहाँ गये चन्द्रिका ?"

चन्द्रिका ने उतरे गले से कहा, "कहीं नहीं, बाबा के लिए रूह लेने गया था।" इतना कह जाने पर चन्द्रिका को होश हुआ।

सासुजी को इतनी पकड़ काफी थी। पूछा, "भैया ने भेजा था ?"

"हाँ।" चन्द्रिका ने रुखाई से कहा, गलती कर जाने के कारण।

सासुजी ने पूछा, "फिर ?"

चन्द्रिका रुका, और फिर सँभलकर कहा, "फिर किले गये।"

सासुजी ने पूछा, "वहाँ सतमंजिला मकान देखा था ?"

चन्द्रिका ने कहा, "हाँ।"

सासुजी ने पूछा, "वहाँ एक बहुत बड़ा ताल है, वहाँ गये थे ?"

चन्द्रिका ने कहा, "हाँ।"

सासुजी ने पूछा, "किले पर लखपेड़ा बाग है, देखा था ?"

चन्द्रिका ने कहा, "हाँ, बहुत देर तक सब लोग देखते रहे।"

सासुजी समझ गयीं, भीतर से एक डण्डा लाकर दिखाती हुई बोलीं, "देख, दहिजार लोध। भले आदमी की तरह ठीक-ठीक बता, नहीं तो वह डण्डा दिया कि मुँह टेढ़ा हो गया। तू कहाँ था ?"

चन्द्रिका ने कहा, "देखो नानी, मुझे मारो मत, न मैं किले का नौकर हूँ, न किसी दूसरे का। जिनका नौकर हूँ, उनसे पूछ लो।"

बात पानी की तरह साफ हो गयी। सासुजी को पूछने की जरूरत नहीं हुई। मैं निकला, तो मुँह पर ऐसी दृष्टि उन्होंने डाली, जैसे मुँह सड़ गया हो। चन्द्रिका को पास खड़ा देखकर मैं समझ गया।

कुछ देर बाद सासुजी भीतर गयीं। मैं निश्चय कर लेने के विचार से बाहर निकला। पीछे-पीछे चन्द्रिका भी आया। फाटक के बाहर आकर मुझे पकड़कर रोने लगा। कहा, "बाबा, मैं न रहूँगा।"

मैंने कहा, "अरे, चन्द्रिका, इतनी जल्दी ऊब गये ? अभी कुछ दिन रूह की मालिश तो करो।"

चन्द्रिका ने रोनी आवाज में सासुजी की प्रश्नावली और अपने उत्तर सुनाये। मेरे होश उड़ गये। बड़ी लज्जा लगी। लेकिन उपाय न था।

हार खाने पर चिढ़ हुई। मन ने कहा, 'क्या बिगाड़ लेंगे ? वे सभ्य आदमी ही नहीं हैं। होते, तो नौकर से भेद न लेते फिरते। इसी वक्त पूरी लापरवाही से रूह की मालिश कराओ। इन्हें समझा दो कि तुम देहात के रहनेवाले ऐरे-गैरे नहीं हो। तुम्हारी दूसरी ही बातें हैं।'

मन में आते ही मैं फाटक के भीतरवाले आँगन में गया, और चारपाई पर

चन्द्रिका को दरी बिछाने के लिए कहा। सासुजी मेरी बिगड़ी मुद्राएँ कुछ देर तक देखती रहीं, फिर चुपचाप भीतर चली गयीं। चन्द्रिका ने दरी बिछायी, रूह की शीशी ले आया। मैं चित्त लेट गया, और छाती दिखाकर कहा, "यहाँ लगाओ।"

चन्द्रिका ने रूह और तेल में भेद नहीं किया। 20) की रूह एक साथ गदोरी में लेकर छाती में थपथपाया। फिर कहा, "लेकिन बाबा, इतना ही है, इससे क्या होगा?"

एक दफा मेरा जी छन्न से हुआ कि इसने बीस की मत्थे दी; पर साँस साधे पड़ा रहा कि कुछ कहूँगा, तो अशिष्टता होगी। रूह की खुशबू चारो तरफ उड़ चली। ससुरजी सूँघते-सूँघते बाहर निकल आये, और सूँघते और आँखें तिलमिलाते हुए बोले, "अरघानें उठ रही हैं, बच्चा!"

मैंने आवाज दी। उन्होंने खुश होकर कहा, "इतना अतर-फुलेल न लगाया करो, हूरें पकड़ती हैं।" कहकर प्रसन्न होकर चले गये।

सुगन्ध भीतर तक आफत कर रही थी। सासुजी बाहर निकलीं। चन्द्रिका तल्लीन होकर तेल की-जैसी मालिश कर रहा था। सासुजी कुछ देर तक देखती रहीं। फिर पूछा, "इत्र है?"

मैंने गम्भीर होकर कहा, "रूह!"

सासुजी चौंकीं। पूछा, "कितने की है?"

मैंने गम्भीर शालीनता से कहा, "बीस रुपये की।"

सासुजी देर तक विस्मय की दृष्टि से देखती रहीं। फिर पूछा, "ऐसी मालिश कितने-कितने दिन बाद करते हो?"

मैंने वैसे ही उदात्त स्वर से उत्तर दिया, "एक-एक दिन का अँतरा देकर।"

सासुजी फिर थोड़ी देर तक देखती रहीं, और एक लड़की की तरह पूछा, "इससे क्या होता है?"

मैंने कहा, "सीना तगड़ा होता है।"

मेरा सीना बचपन से चौड़ा था। सासुजी ने विश्वास कर लिया। कुछ देर तक स्तब्ध भाव से खड़ी रहकर अत्यन्त स्वाभाविक स्वर से पूछा, "तुम्हारे पिताजी तनख्वाह कितनी पाते हैं?"

इसका उत्तर बड़ा अपमानजनक था, पिताजी की तनख्वाह बहुत थोड़ी थी, किसी भली जगह किसी तरह कहने लायक नहीं। पर जहाँ विश्व का ऐश्वर्य झूठ है, वहाँ झूठ का हिसाब लगाना भी किसी सत्य की शक्ति की बात नहीं। सही बात को दबाकर गले में खूब जोर देकर कहा, "पिताजी की आमदनी की कितनी सूरतें हैं, क्या कहूँ? उनकी आमदनी कब कितनी हो जायेगी, कहाँ से, कैसे, किससे, यह वही नहीं बता सकते।"

उत्तर सुनकर सासुजी एकाएक रोने लगीं, कुछ देर रोकर स्वयं ही भाव स्पष्ट किया, "जो बाप अपने बेटे के लिए रोज मालिश में बीस रुपये की रूह खर्च करता है, वह अपनी बहू के लिए बीस सौ का चढ़ावा भी नहीं लाता? अरे राम रे! मुझे क्या हो गया, जो मैंने शादी कर दी।"

मुझे एक आश्वासन मिला कि पहली बात दब गयी। रूह सूख चुकी थी,

चन्द्रिका रगड़-रगड़कर आग निकाल रहा था। मैंने मालिश बन्द करा दी।

घर में सन्नाटा था, जिसे 'मसा नहीं भन्नाय' कहा है। देर तक भोजन के लिए बुलावा न आया। बैठा 'चर्पट-पंजरिका' के घोखे श्लोक याद करता रहा। बिलकुल विरोधाभास—एक दिन में यह हाल, तो पूरी गवहीं कैसे पार होगी? साले साहब, जो इस समय कई बच्चों के बाप हैं, तब मुश्किल से चार साल के थे। एकाएक चिल्लाकर रो उठे। चन्द्रिका झपकियाँ ले रहा था, सोचा—खाने का बुलावा है, सजग होकर सुनने लगा, फिर वीतश्रद्ध होकर हाथों से घुटने बाँधे।

मैंने पूछा, "चन्द्रिका, कैसा लग रहा है?"

चन्द्रिका ने कहा, "बाबा, घर में भोजन कर अब तक एक नींद सो चुकता था।"

मैंने कहा, "यहाँ भोजन भी तो अनेक प्रकार के मिलते हैं।"

चन्द्रिका ने ऊँघते हुए कहा, "तेल और नमक-मिली जव-चनी की रोटी का स्वाद यहाँ नहीं मिलता।"

इसी समय सासुजी का नौकर आया, और बड़े गम्भीर स्वर से आवाज दी, "भोजन तैयार है।"

भोजन के समय बिलकुल सन्नाटा। एक-एक साँस गिनी जा सकती थी। कोई किसी से बोलता न था। मैं निरपेक्ष भाव से भोजन कर हाथ-मुँह धोकर, अपने शयन-कक्ष में जाकर लेटा।

घर-भर का भोजन हो जाने पर कल की तरह आज भी श्रीमतीजी आयीं। लेकिन गति में छन्द नहीं बजे। पान दिया, पर दृष्टि में वह अपनापन न था। मैं एक तरफ हट गया। उनकी आधी जगह खाली कर दी। बेमन पैर दबाकर वह लेटीं। उनका मनोभाव आज क्यों ऐंठ गया, कुछ-कुछ मेरी समझ में आया। पर चुपचाप पड़ा रहा। सोचा, कमजोर दिल अपने-आप बोलना शुरू करता है। अन्दाजा ठीक पड़ा। कुछ देर तक चुपचाप पड़ी रहकर उन्होंने कहा, "इत्र की इतनी तेज खुशबू है कि शायद आज आँख नहीं लगेगी।"

मैंने कहा, "अनभ्यास के कारण। एक कहानी है, तुमने न सुनी होगी। एक मछुआइन थी। एक दिन नदी-किनारे से घर आते रात हो गयी। रास्ते में राजा की फुलवाड़ी मिली, उसमें एक झोंपड़ी थी वहीं सो रही। फूलों की महक से बाग गमक रहा था। मछुआइन रह-रहकर करवट बदल रही थी। आँख नहीं लग रही थी। फूलों की खुशबू में उसे तीखापन मालूम दे रहा था। उसे याद आयी, उसकी टोकरी है। वह मछलीवाली टोकरी सिरहाने रखकर सोयी, तब नींद आयी।"

श्रीमतीजी गर्म होकर बोलीं, "तो मैं मछुआइन हूँ?"

"यह मैं कब कहता हूँ," मैंने विनयपूर्वक कहा, "कि तुम पण्डिताइन नहीं मछुआइन हो; मैंने तो एक बात कही, जो लोगों में कही जाती है।"

श्रीमतीजी ने बड़ी समझदार की तरह पूछा, "तो मैं भी मछलियाँ खाती हूँ?"

मैंने बहुत ठण्डे दिल से कहा, "इसमें खाने की कौन-सी बात है? बात तो सूँघने की है। अपने बाल सूँघो, तेल की ऐसी चीकट और बदबू है कि कभी-कभी मुझे मालूम देता है कि तुम्हारे मुँह पर कै कर दूँ।"

श्रीमतीजी बिगड़कर बोलीं, "तो क्या मैं रण्डी हूँ, जो हर वक्त बनाव-सिंगार

के पीछे पड़ी रहूँ ?"

"लो," मैंने बड़े आश्चर्य से कहा, "ऐसा कौन कहता है, लेकिन तुम बकरी भी तो नहीं हो कि हर वक्त गँधाती रहो, न मुझे राजयक्ष्मा का रोग है, जो सूँघने को मजबूर होऊँ।"

श्रीमतीजी जैसे बिजली के जोर से उठकर बैठ गयीं। बोलीं, "तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है, तो लो, मैं जाती हूँ।"

सिर्फ मेरे जवाब के लिए जैसे रुकी रहीं।

मैंने बड़े स्नेह के स्वर से कहा, "मेरी अकेली इच्छा से तो तुम यहाँ सोतीं नहीं, तुम अपनी इच्छा की भी सोच लो।"

श्रीमतीजी ने जवाब न दिया, जैसे मैंने बहुत बड़ा अपमान किया हो, इस तरह उठीं, और दरवाजा खुले छोड़कर चली गयीं।

मैंने मन में कहा, 'आज दूसरा दिन है।'

सात

सबेरे जब जगा, तब घर में बड़ी चहल-पहल थी। साले साहब रो रहे थे। सासुजी ने मारा था। ससुरजी खुड्ढी में गिर गये थे, नौकर नहला रहा था। घर में तीन जोड़े बैल घुस आये थे। श्रीमतीजी लाठी लेकर हाँकने गयी थीं, एक के ऐसी जमायी कि उसकी एक सींग टूट गयी। ज्योतिषीजी बुलाये गये कि बतलायें, कि इसका क्या प्रायश्चित्त है। महरी पानी भरने गयी थी, रस्सी टूट जाने के कारण पीतल का घड़ा कुएँ में चला गया था। घर का पानी ख़त्म हो आया था। दूसरी रस्सी न होने के कारण पानी भरना बन्द था। पड़ोस में सबेरे रस्सी मिली नहीं। लोगों ने कहा, "हमारा पानी भर जाय, तब ले जाओ।" चन्द्रिका सबेरे से लापता था। जब मेरी आँख खुली, तब सुना, सासुजी कह रही हैं, "जब बिपत आती है, तब एकसाथ आती है।"

मुझे इसकी अँगरेजी उक्ति मालूम थी। समझा, उठने के साथ सासुजी श्रीमतीजीवाली घटना पर मुझी को सुनाकर कह रही हैं। जमकर धीरे-धीरे उठा। घर में जितने थे, सब व्यस्त थे। क्रमशः एक-एक दुर्घटना मालूम होती गयी। चन्द्रिका का पता न था। ससुरजी को साफ कर जब उनका नौकर आया, उसने कहा, "चन्द्रिका ने कहा है, मैं गाँव जा रहा हूँ, पैसे पास नहीं हैं, रेल की पटरी-पटरी चला जाऊँगा, रास्ता नहीं जाना, बाबा चिन्ता न करें, कहकर नहीं जा रहा, क्योंकि बाबा नहीं छोड़ेंगे।" फिर उसने अपनी तरफ से कहा कि मुझसे कह गया है कि मैं किसान आदमी हूँ, मेरी नौकरी न रहेगी, तो मुझे इसकी चिन्ता नहीं, किसानी और मजदूरी कर खाऊँगा।

मैं समझ गया, रात से ही वायुमण्डल बिगड़ा है, सबेरे किसी ने उससे कुछ कहा होगा। ज्यादा शंका मुझे श्रीमतीजी पर हुई। मैंने पूछा, "जब बैल की सींग तोड़ी गयी थी, तब चन्द्रिका था या नहीं ?"

नौकर ने इशारे से सिर हिलाकर कहा, "हाँ।"

शृंग-भंग-शान्ति की बातचीत हो रही थी कि आठ का वक्त हो गया। मुझे मित्रवर कुल्ली की याद आयी। तैयार होकर बाहर निकला। कुएं के पास भरा घड़ा लिये एक युवती मिली। सगुन देखकर मन प्रसन्न हो गया। कुछ आगे बढ़ने पर दुहकर छोड़ी हुई एक गाय बछड़े को पिलाती हुई मिली। मेरी चाल और तेज हुई। कुछ लोग बड़े रास्ते पर मिले; मुझे देखकर तारीफ करने लगे—डील-डौल, चाल-चलन की। मैं संयत मुद्रा से पैर बढ़ाये कुल्ली के घर की तरफवाले रास्ते को बढ़ा। देखा, कुल्ली रास्ते पर खड़े थे। देखने के साथ पूरी स्वतन्त्रता से कदम उठाते हुए मथुरा में नादिरशाह की सेना की तरह, मेरी तरफ बढ़े, जैसे मित्र के भी देश पर पूरी विजय पा ली है। मुझे भरा घड़ा मिला ही था, भरे हृदय से मैं कुल्ली को देख रहा था।

कुल्ली हृदय से लिपट गये, "आओ, आओ।" मुझे मालूम हुआ, गंगा और यमुना का संगम है।

कुल्ली बड़े आदर से मुझे अपने घर ले गये। एक बड़ा आईना चारो ओर तीन-लड़ माला से सजा था। मेरे जाने के साथ-ही-साथ पकड़कर सामने जाकर खड़े हुए। मैंने देखा, विना माला पहने हम दोनों माला पहने हुए हैं। कुल्ली की कला पर जी मुग्ध हो गया। कुल्ली आईने में ही मुझे देखकर हँसे। देखकर मैं भी मुस्किराया। कुल्ली बहुत प्रसन्न होकर बोले, "अच्छा।"

फिर जल्दी-जल्दी भीतर एक कमरे में गये, और मिठाई की तश्तरी उठा लाये। पलँग के सामने एक ऊँची चौकी रखी थी, उस पर रख दी। फिर जल-भरा लोटा और गिलास वहीं रख दिया, और मुझसे बड़े विनय के स्वरों से खाने के लिए कहा।

मैं खाने लगा। कुल्ली विनीत चितवन से मेरा खाना देखते रहे। भोजन समाप्त होने पर उन्होंने हाथ धुलाया-पोंछाया। फिर पान दिया।

पान खाकर मैं पलँग पर बैठा। बड़ा सुन्दर पलँग। सुन्दर गलीचा बिछा। कुल्ली ने इत्र की एक शीशी दिखायी। कहा, "मैंने मँगा लिया है। रूह नहीं, क्योंकि मालिश तो करनी नहीं।"

मैं अज्ञातयौवन युवक की तरह कुल्ली को देखने लगा। कुछ देर तक कुल्ली स्तब्ध रहे। मैंने देखा, कुल्ली का चेहरा बहुत विकृत हो गया है। मतलब कुछ मेरी समझ में न आया। कुल्ली अधीरता से एक दफा उचके, लेकिन उचककर वहीं रह गये। मैं सोच रहा था, इसे कोई रोग है। कुल्ली ने एक दफा भरसक प्रेम की दृष्टि से मुझे देखते हुए कहा, "तो मैं दरवाजा बन्द करता हूँ।"

लेकिन आवाज के साथ जैसे लरबराकर रह गये। कुल्ली से मुझे भय हुआ, इसलिए नहीं कि कुल्ली मेरा कुछ कर सकता है, बल्कि इसलिए कि कुल्ली के लिए जल्द डॉक्टर दरकार है। घबराकर मैंने कहा, "क्या डॉक्टर बुला लाऊँ ?"

"ओह ! तुम बड़े निठुर हो।" कुल्ली ने कहा।

मैं बैठा सोच रहा था कि कुल्ली की इस ऐंठन से मेरी निठुरता का क्या सम्बन्ध है। सोचकर भी कुछ समझ न पाया।

कुल्ली एकाएक उचके, अबके भरसक जोर लगाकर, यह कहते हुए, "मैं जबर-दस्ती···"

मुझे हँसी आ गयी, खिलखिलाकर हंसने लगा। कुल्ली जहाँ थे, वहीं फिर रह गये। और, वैसे ही कुएँ में डूबे हुए-जैसे कहा, "मैं तुम्हें प्यार करता हूँ।"

मैंने कहा, "प्यार मैं भी तुम्हें करता हूँ।"

कुल्ली सजग होकर तन गये। कहा, "तो फिर आओ।"

मेरी समझ में न आया कि कुल्ली मुझे बुलाता क्यों है। मैंने कहा, "आया तो हूँ।"

कुल्ली ने मुझसे पूछा, "तो क्या और कहीं भी नहीं···?"

बात एक भी मेरी समझ में ज्यों-ज्यों नहीं आ रही थी, त्यों-त्यों गुस्सा बढ़ रहा था। बोला, "साफ-साफ कहो, क्या कहते हो ?"

कुल्ली पस्त, जैसे लत्ता हो गये।

"अच्छा, नमस्कार।" कहकर मैं बाहर निकला। वह रूप मुझे बिलकुल पसन्द नही, इतना ही समझा।

कुल्ली की पहली मुलाकात का अन्त हुआ। मैं घर आया। मेरी तरफ से चारो ओर सन्नाटा, जैसे होकर भी न होऊँ। सबको सविनय अवज्ञा करते देखकर मुझे पिताजी की याद आयी। मालूम हुआ, पिताजी बहुत अभिज्ञ मनुष्य हैं। उन्होंने ससुरजी की चाल का एक वाक्य में जवाब दिया, और यहाँ का सारा वायुमण्डल घहरा उठा; मैं ऐसा हूँ कि वाक्य पर वाक्य चढ़ते हैं, मैं जवाब नहीं दे पाता।

बिलकुल व्यवहार की वाणी में सासुजी ने पूछा, "भैया, कहाँ गये थे ?"

मैंने उस समय झूठ बोलना पाप समझा। कहा, "कुल्ली के यहाँ।" अधिक बढ़ाकर कहना भी उचित नहीं मालूम दिया।

सासुजी मुँह की ओर देखकर रह गयीं। शाम से ही वह निःशंक थीं। श्रीमती-जी के उठ जाने के बाद से तो शंका का लेश न रह गया था। सबेरे से निःशंकता के निर्भय आचरण भी शुरू हो गये थे। मेरे जाने तक गति में चारुता आने लगी थी।

मैंने सोचा, हौसला तोड़ दिया जाय। चन्द्रिका के चले जाने से मैं लँगड़ा हो गया हूँ। कहा, "बैल की सींग ही नहीं तोड़ी गयी, मेरा पैर भी तोड़ा गया है। बैल की सींग के लिए तो आपने प्रायश्चित्त किया-कराया, मेरे पैर के लिए क्या इलाज सोचा है ?"

सासुजी पैर पकड़कर बैठ गयीं, "कहाँ, देखूँ ?"

मैंने कहा, "अपनी बेटी को बुलाइए।"

सासुजी ने कहा, "बिटिया, रात को पैर दबाने के वक्त तुमने भैया की नस तिड़का दी है ? यहाँ आओ। हमसे यह क्यों नहीं कहा ?"

"कहाँ ?" शंकित दृष्टि से देखती हुई श्रीमतीजी आयीं।

फुटबाल खेलते-खेलते मेरे दाहने अँगूठे में गुम्मड़ पड़ गया था, बायें हाथ से दाहना अँगूठा मोटा मालूम देता है। सासुजी को कुछ नजर न आया, मोटा अँगूठा

देख पड़ा, तो पकड़कर कहा, "यह है ?" फिर स्वगत कहा, 'यही होगा ।' फिर अपनी बेटी से बोलीं, "देखो बिटिया, उससे मोटा जान पड़ता है न ?"

उनकी लड़की चिन्तित भाव से बोलीं, "हाँ ।" फिर मा की अनुवर्तिता की । वह भी पकड़कर देखने लगीं ।

सासुजी ने कहा, "क्यों भैया, हल्दी-चूना गर्म कर दें ?"

मैंने सोचा, जिसने पैर पकड़ा है, उसे माफ करना चाहिए। इस समय चन्द्रिका की बात रहने दी जाय । वैराग्य से कहा, "रहने दीजिए ।"

बड़े स्नेह से सासुजी ने कहा, "नहीं, रहने क्या दिया जाय ? जाओ तो बिटिया, हल्दी-चूना गर्म करो ।"

मैं, जो सुलह हो जाय जंग होकर, सोच रहा था । इसलिए रहस्य को बाद में ही रहने दिया । श्रीमतीजी हल्दी-चूना गर्म करने लगीं ।

आठ

दूसरे दिन रूह की मालिश के लिए कहने पर सासुजी ने कहा, "हमारे यहाँ रूह की मालिश नहीं चल सकती । हम इतने बड़े आदमी नहीं । कड़ुआ तेल लगाओ । खाया तो घी जाय, जो रुपये में सेर-भर मिलता है, और लगायी रूह, जो अस्सी रुपये तोले आती है ?"

मैंने सोचा, अब गवहीं खत्म है । लेकिन श्रीमतीजी का आकर्षण जबरदस्त था । यद्यपि 'चर्पट-पंजरिका' स्तोत्र कई बार उन्हें सुना-सुनाकर पाठ किया, फिर भी वैराग्य की मात्रा श्रीमतीजी ने मुझमें कभी नहीं देखी । वह भी मेरे चारो ओर धोखा-ही-धोखा देखने लगीं । ललित-कला-विधि में मैं कालिदास नहीं था, उन्होंने मेरा शिष्यत्व स्वीकार नहीं किया ।

रुपये खत्म हो चुके थे । रूह अपनी गाँठ से नहीं मँगा सकता था । सासुजी इस ताक में थीं, मैं कितने दफे मँगाकर मालिश कराता हूँ, देखें; मेरे पिताजी ने खर्च के रुपये दिये ही होंगे । हृदय में निश्चय था, सब झोल है । रूह की मालिश कराते उन्होंने किसी बड़े रईस को भी नहीं देखा-सुना ।

मेरा दम घुट रहा था । रह-रहकर मन में उठता था, पिताजी की तरह दूसरी शादी की बात कहूँ। लेकिन कुल्ली की तरह दिल से बैठ जाता था । यद्यपि वैराग्योद्दीपक 'का ते कान्ता कास्ते पुत्र' गाया करता था, फिर भी श्रीमतीजी दिल से अच्छी तरह जानती थीं, विना कान्ता के एक रात इनकी पार नहीं हो सकती, और आधुनिक प्रेमियों की तरह जिस शब्द-न्यास से यह मुझसे पेश आते हैं, यह दूसरा विवाह हरगिज न करेंगे । यानी मैं उन्हें छोड़ नहीं सकता । बात सही थी । दिन-भर विराग रहता था, रात को श्रीमतीजी को देखने के साथ अनुराग में परिणत हो

जाता। श्रीमतीजी मौन साधे हुए अपने मनोभावों की मारें सहती थीं।

एक दिन मुझसे न रहा गया, हालाँकि इसलिए नहीं कि मैं श्रीमतीजी के मनोभाव समझता था, बल्कि इसलिए कि श्रीमतीजी मेरे अधिकार में पूरी तरह नहीं आ रही थीं, अर्थात् शिष्यत्व स्वीकार नहीं कर रही थीं। वह समझती थीं, मैं और जो कुछ भी जानता होऊँ, हिन्दी का पूरा गँवार हूँ, हिन्दी का वैसा गँवार नहीं, जैसा पढ़े-लिखे सैकड़ा पीछे निन्यान्नबे होते हैं—बिल्कुल ठोस मूर्ख। मुझे श्रीमतीजी की विद्या की थाह नहीं थी।

एक दिन बात लड़ गयी। मैंने कहा, "तुम हिन्दी-हिन्दी करती हो, हिन्दी में क्या है?"

उन्होंने कहा, "जब तुम्हें आती ही नहीं, तब कुछ नहीं है।"

मैंने कहा, "हिन्दी मुझे नहीं आती?"

उन्होंने कहा, "यह तो तुम्हारी जबान बतलाती है। बैसवाड़ी बोल लेते हो, तुलसीकृत रामायण पढ़ी है, बस। तुम खड़ी बोली का क्या जानते हो?"

तब मैंने खड़ी बोली का नाम भी नहीं सुना था। पं. महावीरप्रसादजी द्विवेदी, पं. अयोध्यासिंहजी उपाध्याय, बाबू मैथिलीशरणजी गुप्त आदि तब मेरे लिए स्वप्न में भी नहीं थे, जैसे आज हैं। श्रीमतीजी पूरे उच्छ्वास से खड़ी बोली के ऐसे धुरन्धर साहित्यिकों के बीसियों नाम गिनाती गयीं; जैसे लेख में उद्धरण पर उद्धरण देखकर पाठक लेखक की विद्वत्ता और विचारों की उच्चता पर दंग हो जाता है, वैसे ही मैं भी खड़ी बोली के साहित्यिकों के नाम-मात्र से श्रीमतीजी की खड़ी बोली के ज्ञान पर जहाँ का वहीं रह गया। अब समझता हूँ, 'सहस्रनाम' का प्रभाव इतना क्यों है।

मैंने निश्चय किया कि अब यहाँ मेरी दाल न गलेगी। पाँच-छ रोज हो गये। रूह की मालिश नहीं करायी। सासुजी जैसे दिन गिन रही थीं, इधर श्रीमतीजी की खड़ी बोली का ज्ञान दिन-पर-दिन गालिब हो रहा था। सोचा, घर चला जाऊँगा। लेकिन मारे प्रेम के स्टेशन की तरफ देखने की इच्छा नहीं होती थी। इसी समय किसी एक उपलक्ष में गाने का आयोजन हुआ। सासुजी ने एक दिन अपनी पुत्री के संगीत की तारीफ की थी। कहा था, "शहर में कोई लड़की और औरत मुकाबला नहीं कर सकती।" मैंने सोचा, आज सुन लूंगा, चलते-चलते श्रवण-रन्ध्र सार्थक हो जायेंगे। मजलिस लगी। ढोलक बजने लगी, लेकिन औरतों की जैसी 'उदुम-घुसुक, उदुम-घुसुक' नहीं। मैंने सोचा, कुछ आनन्द आयेगा—'टिकारा वदन्ति?' पुरुष भी जमने लगे। मनचले, कुछ नहीं, तो दूसरे की औरत का हाथ-पैर ही देख लेनेवाले। भीतर से पान आने लगे। पान-तम्बाकू खाकर एक-एक पीक थूकते हुए घर भ्रष्ट करनेवाले औरतों की आलोचना करने लगे। गाना शुरू हुआ। श्रीगणेश ग़ज़लों से। जो औरत ग़ज़ल गाना नहीं जानती, उसकी आफत। ग़ज़ल गानेवालियों से प्रभावित अक्सर ग़ज़ल न जाननेवाली पुरानी वृद्धाएँ थीं, भजन गानेवाली; उन पर नवीनाओं का वैसा ही रोब था, जैसा आजकल साहित्य और समाज में देखा जाता है।

मुझे ताज्जुब यह था कि अँगरेजों के वक्त ही अँगरेजी इतना अपना ली गयी

कि चाल-ढाल, बात-चीत, अदब-कायदा, खान-पान, उठक-बैठक, हेत-व्यवहार, यहाँ तक कि राजनीतिक विचारों तक में अपना ली गयी, और इतनी जल्दी; पर मुसलमानों के वक्त फारसी और हाफ़िज़ की ग़ज़लों के लिए हमारी देवियों ने इतनी देर क्यों की, जिस तरह आज की बी. ए. पास देवी धड़ल्ले से घूमती है, अँगरेजी बोलती है, यूरोप में कोर्टशिप करती है, पियानो बजाती है, और पिछड़ी हुई देश की स्त्रियों को शिक्षा देती है, उसी तरह हमारी प्राचीनाओं ने ग़ज़लों को क्यों नहीं अपनाया ? चाहिए तो यह था कि अपनी सांस्कृतिक विभूति अपनी बेटियों को देतीं। मालूम हुआ कि वे विचारों में मार्जित और उदार नहीं थीं, इसलिए उनका सांस्कृतिक हाजमा बिगड़ा था। यह बात राजा राममोहन राय को सबसे पहले मालूम हुई। खैर, अँगरेजी अज्ञेयों का उद्धार करे; मैं तन्मय होकर ग़ज़लें सुनने लगा।

गाने के साथ-साथ बाहर आलोचना भी चलने लगी--कौन गा रही है, यानी गाना उठाया हुआ किसका है, यों साथ-साथ कितने ही मँजे और नौसिखिए गले चलते थे। लोग ग़ज़लों और ग़ज़ल गानेवालियों को चाहते थे। उनके नमक के कारण, पर उनके चरित्र से उन्हें घृणा थी। अब तक श्रीमतीजी कवि-सम्मेलन के बड़े कवि की तरह बैठी थीं। मुझे नहीं मालूम था कि लोग एक के बाद दूसरे उन्हीं के लिए टूट रहे हैं। खैर, उन्होंने गाया। गनीमत यह कि पहले भजन गाया, वह भी साहित्यिक गीतों का शिरोभूषण—'श्रीरामचन्द्र कृपालु भजु मन हरण भवभय दारुणम्।' लोग साँस रोककर सुनने लगे। 'कन्दर्प अगणित-अमित-छवि-नवनील-नीरज-सुन्दरम्' की जगह जान पड़ने लगा, गले में मृदंग बज रहा है। मेरा दम उखड़ गया। यह इतनी हैं, बंगाल से पाये संस्कार के प्रकाश में मैं न देख पाया।

इसके बाद एक ग़ज़ल हुई--'अगर है चाह मिलने की, तो हरदम लौ लगाता जा।' यह त्याग की बारूद भड़की, तो लोगों में प्रेम पैदा हो गया, बिना जनेऊ तोड़े, न-जाने क्यों ? एक-दूसरे से कनखियों से बातें करने लगे। मैंने सोचा, यह मेरे प्रेम पर है पर फिर शंका हुई, क्योंकि मैं मिल चुका था। लोग मुस्किराते हुए अपने-अपने प्रेम की थाह ले रहे थे।

इसके बाद दादरा शुरू हुआ—

'सासुजी का छोकड़ा, मेरी ठाढ़ी पे रख दिया हाथ।
बहुत गम खा गयी, नहीं चाँटे लगाती दो-चार।'

एक श्रोता बहुत बिगड़े। बोले, "अपने मर्द को चाँटे लगातीं ? वैसा ही मर्द होगा।"

उन्हें यह ख्याल नहीं था कि उनका मर्द सामने बैठा है। दूसरे ने मेरी तरफ देखकर मुस्किराकर कहा, "यह मर्द के लिए नहीं, देवर के लिए है। सासुजी का छोकड़ा देवर भी हो सकता है।"

तीसरे ने कहा, "देवर तो है ही।" मेरी जान में जान आयी।

कुछ देर और होकर गाना बन्द हुआ। लोग जम्हाई ले-लेकर उठे। स्त्रियाँ भी एक-एक कर निकलने लगीं। थोड़ी देर में घर अपने ही लोगों का रह गया। श्रीमतीजी का गाना अच्छा, हिन्दी अच्छी। मेरी इन दोनों विषयों की तालीं तब

तक नहीं खुली। संसार में हारने की-सी लाज नहीं, स्त्री सृष्टि की सबसे बड़ी हार है, पुरुष की जीत की सबसे बड़ी प्रमाण-प्रतिमा, इससे मैं हारा। एकान्त में पिताजी को एक चिट्ठी लिखी, "मैं कलकत्ता जा रहा हूँ, लिखने-पढ़ने का नुकसान हो रहा है। आप जब चाहें पानी बदलकर आयें; मैं प्रसन्न हूँ, यहाँ कुशल है।" चिट्ठी डाकखाने छोड़ी और बिस्तरा बाँधकर तैयार होने लगा।

सासुजी ने पूछा, "भैया, बिस्तरा क्यों बाँध रहे हो?"

मैंने कहा, "कलकत्ता जा रहा हूँ।"

सासुजी का रंग उड़ गया। गाने के बाद अपनी लड़की की गलेबाजी पर मुझसे राय लेनेवाली थीं, एकाएक हौसला जाता रहा। कहा, "बाँधना-खोलना हमारा काम है, नौकर है, कलकत्ता अभी कैसे जा सकते हो? तुम्हारे पिताजी भी क्या कहेंगे? यहाँ के लोग समझेंगे—दामाद गवहीं आया था, हफ्ते से ज्यादा न रख सकीं, हमारी बेइज्जती होगी।"

मैंने कहा, "बेइज्जती एक ही ओर की रहने दी जाय।"

सासुजी ने कहा, "तुम्हारी कैसी बेइज्जती?"

"अपनी बेइज्जती की बात कोई अपनी जबान से नहीं कहता।" मैंने कहा।

सासुजी सोचकर जैसे समझ गयीं, यानी कुल्लीवाली बात के लिए उन्होंने सोचा कि वे लोग समझ गये, यह मुझे मालूम हो गया है। बोलीं, "मैंने तो बहुत पहले तुम्हें मना किया था कि कुल्ली का साथ अच्छा नहीं।"

मैंने कहा, "कुल्ली का साथ अच्छा नहीं या आपकी बेटी का, यह सब रहने दीजिए।"

मैंने तो सीधे ढंग से कहा था, लेकिन सासुजी एकाएक उच्च स्वर से रोने लगीं। उनके साथ उनकी बेटी भी, छोटी होने के कारण मन्द स्वर से। भगवान् जाने इस बीच पिताजी के लिए क्या सोचा हो! घबराकर बोलीं, "मेरी बेटी तो भैया, तुम्हें भगवान् मानती है। रात का वक्त है, झूठ नहीं कहूँगी, सामने आग जल रही है, मेरे मुँह में आग लगे, तुम कहो, तो मेरी लड़की तुम्हारी बात पर अंगार खा सकती है। और, आज ही गाँव-भर की औरतें आयी थीं, उसी की वाहवाही रही, हर बात पर, यों चाहे, जो कहो।"

"इसी के लिए तो जा रहा हूँ।" मैंने कहा।

सासुजी चौंकी हुई देखने लगीं। मैं फिर बिस्तरा बाँधने लगा।

ससुराल में बिस्तरा बाँधना नाराजगी का कारण है। सासुजी के मन में आया—रूह नहीं मँगायी गयी, इसलिए जा रहे हैं। बोलीं, "दाम नहीं थे, इसलिए रूह नहीं मँगायी, कल वह भी आ जाती है।"

मैंने कहा, "वह तो बाहरी रूह है, यहाँ भीतरी फना है।"

सासुजी प्रश्न-भरी चिन्तित दृष्टि से देखती रहीं।

मैंने कहा, "पढ़ाई पड़ी है। फिर तैयारी न कर पाऊँगा।"

आश्वस्त होकर सासुजी ने नौकर को बुलाया। उसे बिस्तरा बाँधने के लिए कहा। मुझसे सस्नेह बोलीं, "कलकत्ता जा रहे हो, ऐ, मैंने सोचा था, कलकत्ते का बहाना है, घूमकर फिर गाँव जाओगे, और गाँव में जबकि प्लेग है, और…

कलकत्ता पढ़ाई के लिए जा रहे हो, हाँ, आगे की फिकिर तो करनी ही है।"

बिस्तरा बँध गया। ताँगा आया। रायबरेलीवाली गाड़ी के समय पर सासु और ससुरजी के पैर छूकर मैं बिदा हुआ।

नौ

पाँच साल बीत गये। कुल्ली मुझसे नहीं मिले, कई बार ससुराल गया-आया। मैं भी नहीं मिला। एक आग दिल में लगी थी—मैंने हिन्दी नहीं पढ़ी। बंगाल में हिन्दी का जानकार नहीं था, जहाँ मैं था—देहात में। राजा के सिपाही जो हिन्दी जानते थे, वह मुझे मालूम थी—व्रजभाषा। खड़ी बोली के लिए अड़चन पड़ी। तब हिन्दी की दो पत्रिकाएँ थीं—'सरस्वती' और 'मर्यादा'। दोनों मँगाने लगा। 'सरस्वती' चेहरे की भी सरस्वती थी, 'मर्यादा' अमर्यादा। पढ़कर भाव अनायास समझने लगा। पर लिखने में अड़चन पड़ती थी। व्रजभाषा या अवधी, जो घर की जबान थी, खड़ी बोली के व्याकरण से भिन्न है। 'उइ कहेन' और 'उन्होंने कहा' एक नहीं। यह 'ने' खटकता था। जो केवल भारतीय संस्कृति के शिक्षित हैं, उनके लिए 'ने' शूल है। 'ने' के प्रयोग भी मालूम न थे। लेकिन मिहनत सबकुछ कर सकती है। मैं रात दो-दो, तीन-तीन बजे तक 'सरस्वती' लेकर एक-एक वाक्य संस्कृत, अँगरेजी और बंगला-व्याकरण के अनुसार सिद्ध करने लगा। जहाँ 'कहा', 'कहे', 'कही' क्रिया के प्रयोग आते हैं, वहाँ गौर से कारण की तलाश करने लगा। यह संस्कृत, अँगरेजी और बंगला-व्याकरण में नहीं। मुझे कारण भी मिला। वह आनन्द कारण की प्राप्ति के बाद जो हुआ, ब्रह्मानन्द से कम नहीं कहा जा सकता।

ऐसी अनेक और अड़चनें पार कीं। आचार्य द्विवेदीजी को गुरु माना; लेकिन शिक्षा अर्जुन की तरह नहीं—एकलव्य की तरह पायी। व्याकरण की शिक्षा पूरी करने से पहले 'ज़ुही की कली' लिखी थी, जो व्याकरण की दृष्टि से बाद को पूरी उतरी। जिस तरह संसार के बड़े-बड़े कवियों के लिए कहा जाता है कि सात-आठ साल की उम्र से कविता लिखने लगे थे, उसी तरह अल्पबुद्धि मैं भी लिखने लगा था। लेकिन तब, बंगला में लिखता था। 'दरिद्राणां मनोरथः' जैसे वे भी उठकर, कागज की पंक्तियों में खिलकर, अज्ञात के हृदय में मिल गयीं। उनका कोई चिह्न शेष नहीं। सोलह-सत्रह साल की उम्र से भाग्य में जो विपर्यय शुरू हुआ, वह आज तक रहा। लेकिन मुझे इतना ही हर्ष है कि जीवन के उसी समय से मैं जीवन के पीछे दौड़ा था, जीव के पीछे नहीं। इसीलिए शायद बच जाऊँगा। जीव के पीछे पड़नेवाला बड़े-बड़े मकान, राष्ट्रचमत्कार और जादू से प्रवाहित होकर जीवन से हाथ धोता है, जीवन के पीछे चलनेवाला जीवन के रहस्य से अनभिज्ञ नहीं होता, अस्तु।

मकतब की शिक्षा अर्थकरी समझकर मैंने छोड़ दी थी; तब 'अर्थ' का व्यापक अर्थ मुझे मालूम नहीं था। इसीलिए जडार्थ से मेरा हमेशा छत्तीस का सम्बन्ध रहा। लेकिन विशाल 'अर्थ' जिसके लिए, जिसे न जानकर भी, मैंने अर्थकरत्व छोड़ा था, मेरे विशाल-हृदय मित्रों से मुझे प्राप्त होता रहा। पर जब की बात लिख रहा हूँ, तब मैं उसी एस्टेट में एक मामूली नौकर हुआ। चिट्ठी-पत्री, हिसाब-किताब अच्छा नहीं लगता था। पर लाचारी थी, इसी समय राजा साहब को अपना थिएटर खोलने का शौक हुआ। बड़े आदमी की इच्छा अपूर्ण नहीं रहती। कचहरी के बाबू नायक-नट बनने के लिए बुलाये गये। सबके साथ मैं भी गया। मुझे एक बहुत मामूली संस्कृत का गाना दिया गया, इसलिए कि बंगालियों में अधिकांश संस्कृत का शुद्ध उच्चारण नहीं कर सकते।

मैंने श्लोक याद कर रिहर्सल के दिन गया। राजा साहब पर उसका बहुत प्रभाव पड़ा। उन्होंने मेरे लिए गाना सीखने का प्रबन्ध कर दिया। धीरे-धीरे कला की कृपा से मेरी लोकप्रियता बढ़ चली, साथ दूसरों की ईर्ष्या भी।

इसी समय इनफ्लुएन्जा का प्रकोप हुआ। पिताजी एक साल पहले गुजर चुके थे। इसीलिए नौकरी की थी। नहीं तो हर लड़के की तरह दुनिया को सुखमय देखते रहने के स्वप्न लिये रहता; कम-से-कम लिये रहूँगा, यही सोचता था।

तार आया—'तुम्हारी स्त्री सख्त बीमार है, अन्तिम मुलाकात के लिए आओ।' मेरी उम्र तब बाईस साल थी। स्त्री का प्यार उसी समय मालूम दिया, जब वह स्त्रीत्व छोड़ने को थी। अखबारों से मृत्यु की भयंकरता मालूम हो चुकी थी। गंगा के किनारे आकर प्रत्यक्ष की। गंगा में लाशों का ही जैसे प्रवाह हो। ससुराल जाने पर मालूम हुआ, स्त्री गुजर चुकी है; दादाजाद बड़े भाई देखने के लिए आकर बीमार होकर घर गये हैं। मैं दूसरे ही दिन घर के लिए रवाना हुआ। जाते हुए रास्ते में देखा, मेरे दादाजाद बड़े भाई साहब की लाश जा रही है। रास्ते में चक्कर आ गया। सिर पकड़कर बैठ गया।

घर जाने पर भाभी बीमार पड़ी दिखीं। पूछा, "तुम्हारे दादा को कितनी दूर ले गये होंगे?" मैं चुप हो गया। उनके चार लड़के और एक दूध-पीती लड़की थी। उस समय बड़ा लड़का मेरे साथ रहता था, बंगाल में पढ़ता था। घर में चाचाजी अभिभावक थे। भाई साहब की लाश निकलने के साथ चाचाजी भी बीमार पड़े। मुझे देखकर कहा, "तू यहाँ क्यों आया?"

पारिवारिक स्नेह का वह दृश्य कितना करुण और हृदयद्रावक था, क्या कहूँ? स्त्री और दादा के वियोग के बाद हृदय पत्थर हो गया। रस का लेश न था। मैंने कहा, "आप अच्छे हो जायें, तो सबको लेकर बंगाल चलूँ।"

उतनी उम्र के बाद यह मेरा सेवा का पहला वक्त था। तब से अब तक किसी-न-किसी रूप से फुर्सत नहीं मिली। दादा के गुजरने के तीसरे दिन भाभी गुजरीं। उनकी दूध-पीती लड़की बीमार थी। रात को उसे साथ लेकर सोया। बिल्ली रात-भर आफत किये रही। सुबह उसके प्राण निकल गये। नदी के किनारे उसे ले जाकर गाड़ा। फिर चाचाजी ने प्रयाण किया। गाड़ी गंगा तक जैसे लाश ही ढोती रही। भाभी के तीन लड़के बीमार पड़े। किसी तरह सेवा-शुश्रूषा से अच्छे हुए।

इस समय का अनुभव जीवन का विचित्र अनुभव है। देखते-देखते घर साफ हो गया। जितने उपार्जन और काम करनेवाले आदमी थे, साफ हो गये। चार बड़के दादा के, दो मेरे। दादा के सबसे बड़े लड़के की उम्र 15 साल, मेरी सबसे छोटी लड़की साल-भर की। चारो ओर अँधेरा नजर आता था।

घर से फुर्सत पाने पर मैं ससुराल गया। इतने दुःख और वेदना के भीतर भी मन की विजय रही। रोज गंगा देखने जाया करता था। एक ऊँचे टीले पर बैठकर लाशों का दृश्य देखता था। मन की अवस्था बयान से बाहर। डलमऊ का अवधूत-टीला काफी ऊँचा, मशहूर जगह है। वहाँ गंगाजी ने एक मोड़ ली है। लाशें इकट्ठी थीं। उसी पर बैठकर घण्टों वह दृश्य देखा करता था। कभी अवधूत की याद आती थी, कभी संसार की नश्वरता की।

एक दिन पूछ-पूछकर कुल्ली वहाँ पहुँचे। पहले दुखी थे, मेरे लिए समवेदना लिये हुए थे, देखकर मुस्किरा दिये—बड़ी निर्मल मुस्कान। मैंने देखा—यह सच्चा मित्र है।

कुल्ली ने कहा, "मैं जानता हूँ, आप मनोहर को बहुत चाहते थे। ईश्वर चाह की ही जगह मार देता है, होश कराने के लिए। आप मुझसे ज्यादा समझदार हैं, और मैं आपको क्या समझाऊँ? पर यह निश्चित रूप से समझिएगा, भोग होता है, अच्छा वह है, जिसका अन्त अच्छा हो।"

मैं अवधूत की कुटी की गड़ी ईंटें देख रहा था। कुल्ली ने कहा, "यहाँ आप क्यों आये हैं? क्योंकि मृत्यु का दृश्य आपने देखा है। मृत्यु के बाद मन शान्ति चाहता है। जो मर गये हैं, वे भी शान्ति प्राप्त कर चुके हैं। यह अवधूत-टीला है। बहुत पहले यहाँ एक अवधूत रहते थे। बस्ती से यह जगह कितनी दूर है! मरघट से भी दूर है, यानी अवधूत मृत्यु के बाद जैसे पहुँचे हों। यहाँ जैसे शान्ति-ही-शान्ति हो।"

कुल्ली की बात बड़ी भली मालूम दी। बड़ा सुन्दर तत्त्व जैसे निहित था। मुझे बड़ा आश्वासन मिला। ऐसी बात इधर मैंने किसी से नहीं सुनी थी।

कुल्ली ने कहा, "चलिए, रामगिरि महाराज के मठ में दर्शन कीजिए। आप वहाँ हो तो आये होंगे?"

मैंने कहा, "नहीं।"

कुल्ली उठे। उनके साथ मैं भी चला गया।

दस

इसके बाद मैं अपनी नौकरी पर चला गया। कुछ दिन नौकरी करने के बाद एक दुर्घटना हुई। एक साधु आये। एक पेड़ के नीचे बैठे रहते थे, धूनी रमाये, चिमटा

गाड़े। मेरी निगाह नये ढंग की थी। साधु के सम्बन्ध में भी निगाह नयी हो गयी थी, स्वामी विवेकानन्दजी और स्वामी रामतीर्थजी की बातें सुनकर, किताबें पढ़कर। साधु का सम्बन्ध पारलौकिक साधना से होता है, साधना प्राचीन ढंग की तरह-तरह की है। मैं बिलकुल आधुनिक था। आदमी सत्य की प्राप्ति के बाद समझने की अपेक्षा नहीं रखता, क्योंकि सत्य स्वयं तब समझ के तौर पर मिल जाता है। उस पर आधुनिकता और प्राचीनता के नाम का केवल प्रभाव पड़ता है। मैंने जिन साधुओं को पढ़ा था, उन्होंने नशे के खिलाफ बहुत-कुछ लिखा था। पर जो साधु नशा करते हैं, वे रास्तों पर मारे-मारे फिरते हैं। स्वामी विवेकानन्दजी या स्वामी रामतीर्थजी की तरह अँगरेजीदाँ नहीं, न अँगरेज़ीदाँ उनके शिष्य हैं, जो गाँजे की चिलम से भड़क जायँगे। ऊँचे सत्य में विद्या की भी गुंजाइश नहीं रहती, शब्द खत्म हो जाता है, लिहाजा रास्तों पर घूमनेवाले थकान की प्रतिक्रिया मिटाने के लिए नशा करते हैं। जिस तरह रोग में जहर का प्रयोग चलता है, उसी तरह जीवन के नाश में, प्रतिक्रिया में वे नशा करते हैं। उनके पास चरित्र का मूल्य है, पर उस चरित्र का अर्थ ऐसा नहीं कि आदमी सात रोज पाखाना न जाय, या पाँच रोज पेशाब न करे, तो सिद्ध है।

अँगरेज़ीदाँ गृहस्थ अँगरेजीदाँ साधु ही खोजता है, क्योंकि यूरोप की, अमेरिका की बातें होनी चाहिए, इस पर उनकी क्या राय है। सत्य के पास यूरोप, अमेरिका नहीं। रास्तेवाले साधु यहाँ अँगरेज़ीदाँ साधुओं को ही धोखा देता हुआ समझते हैं। मैंने कइयों को कहते सुना है, अपना-अपना गढ़ बनाये हुए हैं। खैर, यह साधु अनेक अर्थों में साधु थे। इनकी इच्छा थी, जगन्नाथजी जायेंगे, किराया मिल जाये। राजा साहब के हाउसहोल्ड सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब इन पर प्रसन्न थे। उन्होंने राजा साहब से इनकी साधुता की तारीफ करते हुए इनके किराये की प्रार्थना की। राजा साहब ने सुन लिया।

कचहरी हो जाने पर शाम से दस बजे तक मैं राजा साहब के पास रहता था। उन्हें गाने-बजाने का शौक था। अच्छा मृदंग बजाते थे। जाने पर उन्होंने कहा, "एक साधु आये हैं; देख आओ।"

राजा लोग एक विषय को अनेक मुखों से सुनते हैं, तब राय कायम करते हैं, इसलिए कि उनके कान-ही-कान हैं, आँखें सब जगह नहीं पहुँचतीं। मैंने राजभक्ति की पराकाष्ठा दिखलाते हुए उसी वक्त कहा, "हुजूर, राजकोष का रुपया इस तरह नहीं खर्च होना चाहिए।"

तब मेरे मस्तिष्क में अनेक तरहें थीं, जैसी उपयोगितावादी में होती हैं। राजा साहब मुस्किराये। मैं कुछ नहीं समझा। लेकिन उनकी आज्ञा की उपयोगिता समझता था, क्योंकि नौकर था। प्रणाम करके साधु के पास चला। मन में यह निश्चय लिये हुए कि कोष की एक कौड़ी नहीं जानी चाहिए। मन में यह भाव होने के कारण साधु के प्रति रूप कैसा था, कहने की आवश्यकता नहीं।

मुझे देखते ही साधु ने कहा, "आइए।"

मैंने मन में कहा, 'यही तो ठग विद्या है।' खुलकर कहा, "तुम काम क्यों नहीं करते ?"

साधु ने मुझे 'आप' कहा था, मैंने 'तुम' कहा, तब मुझे यह नहीं मालूम था— ईश्वर की प्राप्ति के लिए निकला हुआ मनुष्य ईश्वर-प्राप्ति के बाद दग्ध-कर्म हो जाता है। उसके मन में केवल ईश्वर रहता है।

साधु ने कहा, "मैं 'आप' कहता हूँ, आप 'तुम' कहते हैं। मैं क्या काम करूँ?"

मेरी 'आप' कहने की प्रवृत्ति नहीं हुई। मैंने कहा, "तुम्हें संसार में कोई काम ही नहीं मिलता?"

साधु ने कहा, "आप फिर 'तुम' कहते हैं। यह सब काम कौन करता है?"

मुझे मालूम हुआ, यह पूरा ठग है। क्योंकि लिखी किताबों में साधुओं के हथकण्डे और तरह-तरह की शिकायतें पढ़ी थीं। कहा, "तुम्हें रुपया नहीं मिलेगा।"

साधु ने कहा, "होश में आ।" और चिमटा जोर से जमीन में गाड़ दिया।

मुझे मालूम हुआ, वह चिमटा मेरे सिर में समा गया। गर्दन झुक गयी। लेकिन मुझमें मामूली आग नहीं थी। मेरा अभिप्राय असत्य था। फिर भी साधु के प्रति श्रद्धा न निकली।

साधु ने जैसे सिर पर सवार होकर पूछा, "तू राजा है?"

जो अपराध मैं कर रहा था, वही साधु करने लगे, क्योंकि मैंने साधु को 'तू' नहीं कहा था, 'तुम' कहा था। पर अभी मैं अपने को सँभाल रहा था, जैस लड़ने-वाला नीचे चला गया हो, हार न खायी हो। सँभलकर कहा, "नहीं, मैं राजा नहीं हूँ।"

साधु व्यंग्य कर रहा था, उसका राजा का अर्थ राम था; मेरा केवल सीधा, वही राजा, जहाँ से मैं आया था।

साधु ने कहा, "तू नौकर है, तो नौकर की तरह बातें क्यों नहीं करता?"

साधु फिर भूला। नौकर भी राम है। खास तौर से मैं महावीर को अधिक प्यार करता था, राम को कम।

साधु चाहता था, मैं अपनी पकड़ छोड़ दूँ, तो वह होश दे दे, लेकिन मेरी पकड़ में नौकर नहीं था, साक्षात् महावीर थे। पकड़ छुड़ाने के लिए साधु ने कहा, "तेरी नौकरी नहीं रहेगी।"

अगर मैं यहाँ करुण हुआ होता, तो साधु ने बाजी मारी होती। मैंने कहा, "महाराज, तब तो मैं बच जाऊँ।" यह महावीर की ही वाणी थी, राम के प्रति। तब मैं यह कुछ नहीं जानता था।

साधु के होश उड़ गये। यह नौकरी के लिए आग्रह नहीं था, फिर मेरे सिर उतने बच्चों का बोझ था।

साधु रोने लगे। कहा, "अरे, तेरे लिए मैंने घर-बार छोड़ दिया, और तू मुझे सताता फिरता है?"

अब मैं भी समझा। मुझे ज्योति भी दिखी। पहले 'जुही की कली' लिखते वक्त दिखी थी, तब नहीं समझा था। अबके एक साधु ने पहचान करा दी।

मैं चलने लगा, तो साधु ने कहा, "तो चलो, चलें।"

लेकिन मैंने संसार की तरफ खींचा, क्योंकि ज्ञान के साथ कर्म-काण्ड जो

बाकी था, उसकी ओर आकर्षण हुआ। इस समय साधु को वैसा ही कष्ट हुआ, जैसा मुझे हुआ था। बड़ी ही करुण ध्वनि की, जैसे बदन टूट रहा हो।

राजा साहब के पास गया, तब सब भूल गया, जड़ राजा का भूत सवार हो गया। राजा साहब ने पूछा, "कैसे साधु हैं ?" मैंने कहा, "ऐसे आदमी को रुपये नहीं देने चाहिए।" राजा साहब चुप हो गये।

सुबह सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब फिर आये, और बीस रुपये की मंजूरी करा ली। रुपये लेकर सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब गये। पर हाथ जो बढ़े, वे दम्भ के हाथ थे। साधु ने कहा, "मैं रुपये नहीं लूंगा। कल राजा आये थे। मैंने उन्हें नाराज कर दिया है। मैं जाता हूँ।" कहकर अपना चिमटा वहीं फेंक दिया, और चले गये।

सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब ने रास्ता रोककर कहा, "महाराज, वह राजा नहीं था, वह तो एक मामूली नौकर है।"

साधु ने कहा, "तू नहीं समझता, वह राजा था।"

सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब मुँह फैलाकर देखने लगे। साधु चले गये।

कुछ देर बाद मैं भी उस रास्ते से गुजरा। सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब ने कहा, "तुमने कल साधु से क्या कहा था--मैं राजा हूँ ?"

"नहीं दादा," मैंने कहा, "मैंने ऐसा तो नहीं कहा।"

सुपरिण्टेण्डेण्ट मुझसे भी बड़े राजभक्त थे। कहा, "तुमने कहा है। साधु ने रुपये नहीं लिये, अपना चिमटा फेंककर चला गया। मैं महाराज से अभी रिपोर्ट करता हूँ।"

कौन समझता है, वह निश्छल नत जन विश्व के सामने नत है—वह दादा कहनेवाला और है। यह सलाम करनेवाला नहीं।

दादा ने राजा साहब से रिपोर्ट की, बड़े उदात्त शब्दों में। सुनी बात पर जैसी अतिशयोक्ति होती है।

मेरे जाने पर सस्नेह राजा साहब ने कहा, "तुमने साधु से कहा था--मैं राजा हूँ ?"

उत्तर उस तरह मुझसे न देते बना, जिस तरह देना चाहिए था, क्योंकि मैं भी राजा को साक्षात् पुरुषोत्तम नहीं देख रहा था। कहा, "हाँ, मैंने कहा, राजा का नौकर राजा नहीं तो क्या है ?"

यह अद्वैतवाद राजा समझते थे। भारत की नौकरशाही का यही अर्थ है।

उस समय के लिए निष्कृति मिली। कठिन संसार की उलझन साथ ही थी। एक दिन मैं राजा साहब के यहाँ से अपने डेरे जा रहा था, रात के ग्यारह बजे होंगे। सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब कचहरी नहीं गये थे। लेकिन हाथीखाने के पास, जो जगह उनके मकान से मील-भर है, मुझे मिले। यह शराब पीते हैं, यह मशहूर बात थी, शराब पीनेवाला और भी बहुत-कुछ करता है। संसार का अपना एक चरित्र है—दिखाऊ। उसके प्रतिकूल कुछ होने पर घबराहट होती है। सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब को रात ग्यारह बजे देखने के साथ मैं चौंका, वह भी चौंके। वह मेरी शिकायत कर चुके थे, इसलिए भी। मैं चौंका, वह यहाँ इतनी रात को क्या कर रहे हैं। चौंका-चौंकी के साथ मुझे शराब की बू मालूम दी। पर मैं चुपचाप चला गया।

दूसरे दिन कथा-प्रसंग पर मैंने राजा साहब से कह दिया, पर शिकायत के तौर पर नहीं, मजाक के तौर पर। सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब पीते हैं, यह सब लोग जानते थे, राजा साहब और बहुत जानते थे। हँसने लगे।

पर बड़े आदमी कहलानेवाले लोग अपने मातहत रहनेवालों या नौकरों से तरह-तरह से पेश आते हैं। एक दिन एकाएक मुझे हुक्म हुआ, "गोपालजी के मन्दिर में जाकर कसम खाकर कहो, तुमने सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब को शराब की हालत में देखा है।"

सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब को हुक्म हुआ, "तुम कहो, मैंने नहीं पी।"

सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब संसारी आदमी थे। एक गवाह ठीक कर लिया था—फीलवान, यह कहने के लिए कि सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब के लड़के को भूत लगा था, वह फूँक डालने गया था। उसे हुक्म हुआ, वह कुरान लेकर कहे।

कसम के दिन फीलवान नहीं गया। हम दोनों गये। मैंने जैसी सुगन्ध पायी थी, उसके लिए कसम खायी। सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब बिलकुल डकार गये।

कसमी-कसमा हो जाने के बाद मैंने इस्तीफा दाखिल किया। राजा साहब को एक निजी पत्र लिखा, "मेरे धर्म-स्थल पर हस्तक्षेप करने का आपको कोई अधिकार न था। फिर मैंने सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब की नौकरी लेने के लिए नहीं कहा था।"

सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब ने उन्हें यही समझाया था कि उस साधु के सम्बन्ध में चूँकि उन्होंने सही-सही बातें कही हैं, इसलिए उनकी नौकरी लेने के अभिप्राय से मैंने यह जाल रचा है। अब जब से हुजूर ने वह सब काम छोड़ दिया है, तब से हुजूर की बराबर अनुवर्तिता वह कर रहे हैं, इसीलिए हुजूर ने गुरुमन्त्र लेने की बात भी कही थी। गुरुमन्त्र का प्रभाव होता ही है।

मेरा इस्तीफा मंजूर न किया गया। राजा साहब की चिट्ठी आयी, "यो ध्रुवाणि परित्यज्य अध्रुवाणि निषेवते।"

मैंने कहा, "अध्रुव की ही सेवा सही, मेरी तनख्वाह दे दी जाय, मेरा काम समझ लिया जाय।"

नौकरी छोड़ दी। कई लोग, यहाँ तक कि असिस्टेण्ट मैनेजर साहब, जिन पर रोज रिश्वत का इलजाम लगता था, मिलने पर कह गये, "यहाँ तुम्हीं एक आदमी हो। बहुतों ने झुकी कमर सीधी कर-करके देखा।" मैंने अपनी चीजें नीलाम करके, एक भतीजे को साथ लेकर गाँव का रास्ता लिया।

गाँव पहुँचकर ससुराल गया। देश में पहला असहयोग-आन्दोलन जोरों पर था। खलिहानों में बैठे हुए किसान जमींदारों से बचने के लिए रह-रहकर 'महात्मा गांधीजी की जय' चिल्ला उठते थे। कुछ अति आधुनिक सरकारी नौकर, जमींदार और पुलिस के आदमी मजाक करते थे—तरह-तरह के अपशब्द। कुछ अकर्मण्य मालदार राजनीतिक विद्वान् अखबारों का उलथा कर-कर टीका-टिप्पणी के साथ समाज में चर्चा करते हुए पाचन-शक्ति बढ़ा रहे थे। ऐसे ही एक ने मुझसे कहा, "महात्माजी ने सिद्ध कर दिया है, चर्खा चलाने से कम-से-कम रोटियाँ चल सकती हैं।"

मैं बेकार था। 'सरस्वती' से कविता-लेख वापस आते थे। एक-आध चीज छपी थी। 'प्रभा' में, मालूम हुआ, बड़े-बड़े आदमियों के लेख-कविताएँ छपती हैं। एक दफा ऑफिस जाकर बातचीत की, उत्तर मिला, इसमें 'भारतीय आत्मा', 'राष्ट्रीय पथिक', मैथिलीशरण गुप्त-जैसे कवियों की कविताएँ छपती हैं। ऐसे ही कुछ लेखकों के नाम सुने। मुँह लटकाकर लौट आया। जीविका का कोई उपाय न था। चार भतीजों की परवरिश सिर पर। जिन सज्जन ने चर्खे की उपयोगिता समझायी थी, उन्हें एक तकुआ खरीद लाने के लिए पैसे दिये थे, वह कानपुर गये थे। यहाँ मेरे गाँव के पड़ोस में कोरी बुनाई का काम करते हैं, मैं सीखने के लिए रोज जाने लगा। कोरियों ने कहा, "तुम महाराज होकर क्या यह काम करोगे ? अरे, कहीं भागवत बाँचो।"

वह सज्जन कानपुर से लौटे, बोले, "जल्दी में था, खरीदने की याद नहीं थी।"

मन में अत्यधिक उथल-पुथल थी। इसी समय कन्यादायग्रस्त भी आ-आकर घेरते थे। वर्णनों में किसी की कन्या इन्दिरा से कम न थी। बड़ा गुस्सा आया। ससुराल चला गया। कन्यादायग्रस्तों की संख्या वहाँ और अधिक दिखी। एक दिन गंगा के किनारे बैठा था। टहलते हुए कुल्ली आये। समय का प्रभाव कुल्ली पर बहुत पड़ा था। चेहरे से सभ्य राजनीतिक हो गये थे। मुझे देखकर उसी ढंग से नमस्कार किया। पहले की अदालतवाली सभ्यता अब राजनीतिक सभ्यता में बदली है, मैंने देखा। मैं बैठा था। कुल्ली ने सोचा, मैं कोई महान् राजनीतिक कर्मी हूँ। इधर कुल्ली अखबार पढ़ने लगे थे। त्याग भी किया था, अदालत के स्टाम्प बेचते थे, बेचना छोड़ दिया था। महात्माजी की बातें करने लगे। मैं सुनता रहा। जब कुछ पूछते थे, तब जितना जानता था, कहता था।

एकाएक भाव में उमड़कर कुल्ली ने कहा, "मुझे कुछ उपदेश दीजिए।"

मैं जला हुआ था ही। कहा, "गंगा में डूब जाइए।"

"यह आप क्या कह रहे हैं ?" पूरे राजनीतिक आश्चर्य में आकर पूछा।

"आप डूब सकते हैं या नहीं ?"

"डूब कैसे जाऊँ ? कोई मतलब की बात भी हो ?"

"मतलब की बात मुझे नहीं आती।"

"तो आप बे-मतलब यहाँ बैठे हुए हैं ?"

"हाँ, इतना ही मतलब था। आपसे मिलने के मतलब से तो नहीं आया था ?"

कुल्ली मेरी ओर देखते रहे। उन्हें नहीं मालूम था, इनके चारो ओर आग लगी है। चुपचाप उठकर चले गये।

अनेक आवर्तन-निवर्तन के बाद मैं पूर्ण रूप से साहित्यिक हुआ। कुछ ही दिनों में कविता-क्षेत्र में जैसे चूहे लग जायें, इस तरह कवि-किसानों और जनता-जमींदारों में मेरा नाम फैला। साल ही भर में इलाहाबाद के श्रीहर्ष और कलकत्ते के कालिदास हिन्दी के काव्य का उद्धार करने के लिए आ गये, एक ही समय में। पुराने स्कूलवालों ने अपनी मोर्चाबन्दी की, और लड़ाई छेड़ दी। पर हार-पर-हार खाते गये; कारण, बुद्धि की बारूद नहीं थी। एयरगन की फुट्टफैर होकर रह गयी। इस तरह अब तक अनेक लड़ाइयाँ हुईं। पर नये लड़नेवालों से लड़ने पर पुराने बराबर हारे हैं।

अस्तु, हिन्दी के काव्य-साहित्य का उद्धार और साहित्यिकों के आश्चर्य का पुरस्कार लेकर मैं गाँव आया। गाँव से ससुराल गया। कुल्ली मिले। अखबार पढ़ते थे। अखबारों में मेरा नाम, आलोचना आदि में पढ़ चुके थे, जाने पर बड़ी आवभगत उन्होंने की। एकटक देखते रहे। अब उनका वह प्रियजन विकास पर है। इस बार अपने घर के जितने कवियों की चर्चा की, सबको उतारकर, क्योंकि अखबारों में उनकी वैसी आलोचना नहीं छपती थी, फिर वे राजा के आश्रित थे।

कुल्ली ने मुझे देखते हुए आवेग से पूछा, "आपने दूसरी शादी नहीं की?"

मैंने कहा, "करने की आवश्यकता नहीं मालूम दी।"

पूछा, "रहते किस तरह हैं?"

उत्तर दिया, "एक विधवा जिस तरह रहती है।"

कुल्ली, "विधवाएँ तो तरह-तरह के व्यभिचार करती हैं।"

मैं—"तो मैं भी करता हूँगा।"

कुल्ली बहुत खुश हुए। कहा, "लेकिन पाप होता है।"

मैं—"पुण्य के साथ-साथ पाप हो, तो डर नहीं। कहा है—एक अंगारा पहाड़-भर भूसा जला सकता है।"

कुल्ली जमे। पूछा, "समाज के लिए आपके क्या विचार हैं?"

"जो कुछ मैं कह गया," मैंने कहा, "इसी का नाम समाज है। जो कुछ बहता है, उसमें हमेशा एक-सा जलत्व नहीं रहता।"

"आप हिन्दू-मुसलमान के सम्बन्ध में क्या कहते हैं?"

मैं—"हिन्दू मुसलमान बन सकता है, मुसलमान हिन्दू नहीं।"

कुल्ली बहुत खुश हुए। उनके दिल की बात थी। उनका इतिहास मुझे मालूम न था, लेकिन वह अपने जीवन के अनुभव और सत्य को मुझसे मिला रहे थे। पूरा उतरता देखकर कहा, "एक मुसलमानिन है। मैं उससे प्रेम करता हूँ। वह भी मेरे लिए जान देती है। ले चलने को कहती है, पर यहाँ के चमारों से डरता हूँ।"

मैंने कहा, "चमारों से सभी डरते हैं, लेकिन जूते गाँठने के लिए देते रहने पर दबे रहते हैं चमार।"

"तो आपकी राय है, ले आऊँ?"

मैं कलकत्ते का हिन्दू-मुस्लिम दंगा देख चुका था। उन दिनों अखबारों में यही चर्चा थी। बाजे के प्रश्नोत्तर चल रहे थे। इसी पर मुंशी नवजादिकलाल साहब महादेव बाबू को चार महीने की सख्त सजा दिला चुके थे। छूटने पर मैं स्वागत करा चुका था। समय का रंग सब पर रहता है, लड़कपन हो, जवानी। मैंने पूरी उत्तेजना से कहा, "अवश्य ले आओ।"

कुल्ली में जैसे स्वर्गीय स्पिरिट आ गयी। उदात्त स्वर से बोले, "ये हिन्दू नामर्द हो गये हैं। दूसरे को भी नामर्द करना चाहते हैं।"

"आप इनके सामने आदर्श रखिए।" मैंने कहा।

कुल्ली झटके से उठे, उसी वक्त आदर्श रखने के विचार से, और सीधे उसी प्रिया के घर गये, उसे ले आने के लिए।

बारह

इन दिनों मैं लखनऊ रहने लगा था। सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन समाप्त हो चुका था। अछूतोद्धार की समस्या थी। इसी समय दलमऊ गया। कुल्ली की पूर्ण परिणति थी। राजनीति और सुधार दोनों के पूर्ण रूप थे। आन्दोलन का केन्द्र रायबरेली था, तब कुल्ली काफी भाग ले चुके थे। पहले नमक-कानून दलमऊ में तोड़ा जानेवाला था, तब कुल्ली ने ही खबर दी थी कि पुलिस गोली चलाने की तैयारी में है। तब कार्यकर्ता दलमऊ से हटकर रायबरेली चले गये थे, ताकि पुलिस को तकलीफ न हो। अदालत जानेवाले वकीलों, पुलिस के नौकरों, सरकारी अफसरों, पण्डों, पुरोहितों, जमींदारों और ताल्लुकेदारों से घृणा करने लगे थे। प्रसंगवश ब्राह्मणों से भी घृणा करने लगे थे।

कुल्ली एक अच्छे-खासे नेता की तरह मिले। मिलते ही पूछा, "आपके उधर कैसा कार्य है?"

मैंने ताज्जुब से पूछा, "कौन-सा कार्य?"

"यही, जो चल रहा है।" कुल्ली ने भी आश्चर्य से मुझे देखते हुए कहा।

"राजनीतिक?" मैंने सीधे-सीधे पूछा।

"हाँ, यही आन्दोलनवाला।" कुल्ली कुछ कटे हुए बोले।

"अब तो समाप्त है।"

"इससे कुछ होगा?"

"किससे क्या होता है, क्या मिलता है, क्या जाता है, यह मैं नहीं जानता, इसलिए मानता भी नहीं; कुछ मेरी भी सुनी-सुनायी, पढ़ी-पढ़ायी बातें हैं, उन्हीं में कुछ नमक-मिर्च अपनी समझ से मिलाकर।"

कुल्ली खुश हो गये। एक भेड़ बनता है, तो दूसरा भेड़िया बनने का हौसला

दबा नहीं सकता। इसीलिए अब तक दीनता और दीन की ही संसार के लोगों ने ऊँचे स्वर से तारीफ की है। मैं साधारण आदमी हूँ, इसने कुल्ली को असाधारणता का बोध तत्काल करा दिया। मुझसे कहा, "मैं उसे ले आया।"

"किसे ?"

"उसी मुसलमानिन को।"

"तब तो मेरी पहली बात तुमने मान ली। मैंने कहा था, तुम गंगा में कूद पड़ो, तुम मुझे लाँग समेटे हुए ही उस वक्त देख पड़े थे।"

कुल्ली ने आश्चर्य से कहा, "गंगा में कैसे कूदा ?"

"किताब में स्त्री को नदी कहा है। नदियों में गंगा श्रेष्ठ है। तुम श्रेष्ठ स्त्री ले आये हो।"

कुल्ली प्रसन्न हो गये। बोले, "लेकिन एक बात है, यहाँवाले मानते नहीं।"

"जब जानेंगे, तब मानेंगे।" मैंने कुल्ली की छड़ी देखते हुए कहा, "किसी को यह संशय नहीं कि यह छड़ी नहीं।"

कुल्ली ने भी अपनी छड़ी देखी, और मुस्किराकर कहा, "लोग सताते हैं। पथवारी देवी के दर्शनों के लिए भेजा था, लोगों ने मन्दिर के दरवाजे पर भी नहीं जाने दिया।"

"तुम्हें समझना था, देवीजी ने कृपा की, ज्ञान दिया, क्योंकि वह मन्दिरवाली नहीं थीं, पथवाली थीं।"

"अच्छा !" कुल्ली बहुत खुश हुए। कहा, "इसलिए पथवारी कहते हैं !" नम्र होकर बोले, "मेरा नाम भी पथवारीदीन है।"

"तब ?" मैंने कहा, "और पथवारी देवी उसे क्या देतीं ?"

"आप बहुत-बहुत बड़े ज्ञानी हैं," कुल्ली ने हाथ जोड़कर मुँह के सामने हाथी की सूँड़ उठायी। मैंने मन में कहा, 'देखो, अब कौन ज्ञानी है।'

"देखो कुल्ली," मैंने कहा, "गणेशजी जितने ज्ञानी हैं, मैंने सुना है, उतने ही मूर्ख हैं। बंगाल में हस्तिमूर्ख कहते हैं, यानी हाथी की तरह का मूर्ख, इससे बड़ा मूर्ख दूसरा नहीं। एक दफा मेरे एक दोस्त जंगल में शिकार खेलने गये थे। एक शेर मारा। मारकर पत्तों से ढककर उसे नीचे डालकर फिर मचान पर जा बैठे कि एक-आध हिरन आ जाय, तो मारकर खाने का भी इन्तजाम कर लें। इत्तिफाक, आया हाथियों का झुण्ड। जंगली हाथी सबसे खतरनाक है। क्योंकि वह हिलाकर पेड़ से भी आदमी को कैथे की तरह गिरा लेता है, या डाल तोड़कर नीचे लाता है। मेरे मित्र पक्के शिकारी थे। उन्हें यह सब मालूम था। मचान कुछ ऊँचा था। हाथियों के नायक के सूँड़ बढ़ाते ही उन्होंने अपनी बन्दूक नीचे डाल दी, ठीक उसी जगह, जहाँ शेर मारा ढका था। हाथी बन्दूक लेकर तोड़ने लगा। तब तक मेरे मित्र और ऊँची डाल पर चले गये। बन्दूक तोड़कर पत्तों से ढकी चीज को देखने की उत्सुकता से हाथी ने सूँड़ बढ़ायी। पत्ते खोलते ही शेर दिखा। हाथी बेतहाशा भागा, उसके साथी भी भगे। मित्र बच गये, यद्यपि यह एक संयोग की बात थी, पर इसमें शिक्षा की कमी नहीं। जहाँ हाथी सताते हों, वहाँ शेर की खाल काम देती है। बुद्धि इसी-लिए सबसे ऊपर है।"

कुल्ली समझ गये कि कहनेवाला और जो कुछ हो, बेवकूफ नहीं। बोले, "अछूत-पाठशाला खोली है। तीस-चालीस लड़के आते हैं, धोबी, भंगी, चमार, डोम और पासियों के। पढ़ाता हूँ। लेकिन यहाँ के बड़े आदमी कहे जानेवाले लोग मदद नहीं करते। यहाँ के चेयरमैन साहब के पास गया, वह जबान से नहीं बोले, हालाँकि शहर के आदमी हैं। टाउनएरिया में सिर्फ कुछ घर हैं। बाकी गंगापुत्रों की बस्ती है। ये लोग उदासीन हैं। कुछ सरकारी अफसर हैं, वे भड़काया करते हैं। कैसे काम चले ? मदद कहीं से नहीं मिलती। जो काम करता था, आन्दोलन में छोड़ दिया। अब देखता हूँ, उसी गधे पर फिर चढ़ना होगा।"

मैंने सोचा, 'यह कार्य की बात है, रस की नहीं। जिन्हें कार्य करना है, वे अपना रास्ता खोज लेंगे। जरा कुल्ली से एक चोट कसकर मजाक क्यों न किया जाय। जहाँ तक रस मिले, पान करना चाहिए, आर्यों की सन्तान हूँ, सोमरस के अभाव में ताड़ी का प्रयोग प्रशस्त है, काका कालेलकर साहब ने समझा दिया है। प्रकृति को पर्दे में रखना दुनिया के आदमियों का काम है। जिन्हें कहीं खुला नजर आयेगा, आप रुकेंगे।'

खुलकर पूरे एमोशन के साथ कहा, "महात्माजी को लिखिए।"

कुल्ली में इतना उच्छ्वास आया, जैसे उनकी अर्जी मंजूर हो। पूछा, "महात्मा-जी का पता क्या है ?" मैंने पता बतला दिया।

नोटबुक निकालकर कुल्ली नोट करते रहे। फिर सिर उठाकर मुझसे पूछा, "महात्माजी के अलावा और भी किसी को लिखना चाहिए ?" जैसे न्योता भेज रहे हों।

"हाँ," मैंने कहा, "पं. जवाहरलाल नेहरू को।"

फिर सिर झुकाकर लिखते हुए पूछा, "आनन्द-भवन, इलाहाबाद ?"

"या स्वराज्य-भवन, इलाहाबाद।" मैंने कहा।

कुल्ली ने लिख लिया। फिर निश्चिन्त होकर मुझसे कहा, "एक रोज हमारे यहाँ चलिए, आपको सबकुछ दिखाऊँ; अपनी भौजी को भी देखिए।"

"साँवली हैं—गोरी ?" मैंने जल्द उत्तर पाने की गरज से पूछा।

कुल्ली मुस्किराये। कहा, "अपनी आँखों देखिए।"

"कुछ योग्यता ?" मैंने बिलकुल आधुनिक फैशन के आदमी की तरह पूछा।

कुल्ली गम्भीर होकर बोले, "बहुत अच्छी रामायण पढ़ती हैं। अभी गयी थीं···" राजा साहब या रानी साहब, शिवगढ़, या किसे, कहा, पढ़कर सुनायी; उन्हें बहुत खुशी हुई।

पूछना चाहता था, सिर्फ खुशी रही या बख्शिश भी मिली; लेकिन स्त्री और सभ्यता का विचार कर रह गया।

कुल्ली ने पूछा, "तो पाठशाला देखने कब आइएगा ?"

अछूतों का मामला, यहाँ चालाकी नहीं चलेगी, सोचकर मैंने कहा, "जब आप कहें, आऊँ। मैं समझता हूँ, परसों ठीक होगा, क्योंकि आप लड़कों को खबर भेज दे सकेंगे; उस रोज अधिक-से-अधिक लड़के हाजिर हो सकेंगे।"

नमस्कार कर कुल्ली बिदा हुए।

मैं श्रीमती मुखोपाध्याय के यहाँ गया। ये स्त्रियों की चिकित्सा, प्रसव आदि के लिए खासतौर से नियुक्त सरकारी डॉक्टर थीं। इनके पति मुखोपाध्याय महाशय उस समय बंगाल से आकर वहीं रहते थे। श्रीमती मुखोपाध्याय उनकी दूसरी या तीसरी पत्नी थीं। ईश्वर की कृपा से उनके एक पुत्र और सात-आठ कन्याएँ थीं। जब कन्याओं को लेकर गंगा नहाने जाती थीं, तब देखनेवाले को 'व्वायज्ञ टु लिलिपुट' याद आ जाता था। मुखोपाध्याय महाशय सन्दिग्ध-स्वभाव के आदमी थे। कोई भी सरकारी अफसर लेडी डॉक्टर से मिलने जाता था, तब वह सन्देह करने लगते थे, पति-पत्नी में अक्सर तकरार चलती थी, पर वृद्ध मुखोपाध्याय मुश्किल से एक रात पूरी उतार सकते थे। मनचले आदमी समझ गये थे, इसलिए सवेरे ही कोई-न-कोई पहुँचते थे।

मेरी-उनकी इस तरह जान-पहचान हुई कि मेरे एक सम्मान्य मित्र के यहाँ वह जाया करते थे। मित्र कान्यकुब्ज हैं, साथ सुप्रसिद्ध। वह मुखोपाध्याय महाशय को उतना ही बड़ा मानते थे, जितना बड़ा कलकत्ता-बम्बईवाले हिन्दोस्तानियों को मानते हैं। मुखोपाध्याय महाशय दुखी होते थे। एक दिन मैंने यह दृश्य देखा, तो आमन्त्रित करके इन्हें खिलाया। तब से इनके यहाँ कभी-कभी जाया करता था। मवेशी डॉक्टर भी बंगाली थे। वहाँ प्रायः रोज जाते थे। मुसलमान सब-तहसीलदार साहब भी जाते थे। मैंने कुल्ली के सम्बन्ध में पूछा, तो सबको नाखुश पाया। कहा, "यह इतना अच्छा काम कर रहे हैं, आप इनसे सहानुभूति क्यों नहीं रखते?"

लोगों ने कहा, "अछूत-लड़कों को पढ़ाता है, इसलिए कि उसका एक दल हो; लोगों से सहानुभूति इसलिए नहीं पाता; हेकड़ी है; फिर मूर्ख है, वह क्या पढ़ायेगा? ...तीन किताब भले पढ़ा दे। ये जितने कांग्रेसवाले हैं, अधिकांश में मूर्ख और गँवार। फिर कुल्ली सबसे आगे है। खुल्लमखुल्ला मुसलमानिन बैठाये है। उसे शुद्ध किया है, कहता है, अयोध्याजी जाने कहाँ ले जाकर गुरु-मन्त्र भी दिला आया है। पर आदमी आदमी हैं, जनाब, जानवर थोड़े ही हैं? कान फुंकाने से विद्वान्, शिक्षक और सुधारक होता है? देखो तो, बीवी तुलसी की माला डाले है। दुनिया को ढोंग।"

तीसरे दिन कुल्ली आये। बड़े आदर से ले गये। देखा, गड़हे के किनारे, ऊँची जगह पर, मकान के सामने एक चौकोर जगह है। कुछ पेड़ हैं। गड़हे के चारो ओर के पेड़ लहरा रहे हैं। कुल्ली के कुटीनुमा बंगले के सामने टाट बिछा है। उस पर अछूत-लड़के श्रद्धा की मूर्ति बने बैठे हैं। आँखों से निर्मल रश्मि निकल रही है। कुल्ली आनन्द की मूर्ति, साक्षात् आचार्य। काफी लड़के। मुझे देखकर सम्मान-प्रदर्शन करते हुए नतशिर अपने-अपने पाठ में रत हैं। बिलकुल प्राचीन तपोवन का दृश्य। इनके कुछ अभिभावक भी आये हैं। दोनों में फूल लिये हुए, मुझे भेंट करने के लिए। इनकी ओर कभी किसी ने नहीं देखा। ये पुश्त-दर-पुश्त से सम्मान देकर नत-मस्तक ही संसार से चले गये हैं। संसार की सभ्यता के इतिहास में इनका स्थान नहीं। ये नहीं कह सकते, हमारे पूर्वज कश्यप, भारद्वाज, कपिल, कणाद थे; रामायण, महाभारत इनकी कृतियाँ हैं; अर्थशास्त्र, कामसूत्र इन्होंने लिखे हैं;

अशोक, विक्रमादित्य, हर्षवर्द्धन, पृथ्वीराज इनके वंश के हैं। फिर भी ये थे, और हैं।

अधिक न सोच सका। मालूम दिया, जो कुछ पढ़ा है, कुछ नहीं; जो कुछ किया है, व्यर्थ है; जो कुछ सोचा है, स्वप्न। कुल्ली धन्य है। वह मनुष्य है, इतने जम्बुकों में वह सिंह है। वह अधिक पढ़ा-लिखा नहीं; लेकिन अधिक पढ़ा-लिखा कोई उससे बड़ा नहीं। उसने जो कुछ किया है, सत्य समझकर। मुख-मुख पर इसकी छाप लगी हुई है। ये इतने दीन दूसरे के द्वार पर क्यों नहीं देख पड़ते? मैं बार-बार आँसू रोक रहा था।

इसी समय विना स्तव के, विना मन्त्र के, विना वाद्य, विना गीत के, विना बनाव, विना सिंगारवाले वे चमार, पासी, धोबी और कोरी दोने में फूल लिये हुए मेरे सामने आ-आकर रखने लगे। मारे डर के हाथ पर नहीं दे रहे थे कि कहीं छू जाने पर मुझे नहाना होगा। इतने नत। इतना अधम बनाया है मेरे समाज ने उन्हें।

कुल्ली ने उन्हें समझाया है, मैं उनका आदमी हूँ, उनकी भलाई चाहता हूँ, उन्हें उसी निगाह से देखता हूँ, जिससे दूसरे को। उन्हें इतना ही आनन्दविह्वल किये हुए है। विना वाणी की वह वाणी, विना शिक्षा की वह संस्कृति, प्राण का पर्दा-पर्दा पार कर गयी। लज्जा से मैं वहीं गड़ गया। वह दृष्टि इतनी साफ है कि सबकुछ देखती-समझती है। वहाँ चालाकी नहीं चलती। ओफ्! कितना मोह है! मैं ईश्वर, सौन्दर्य, वैभव और विलास का कवि हूँ! —फिर क्रान्तिकारी!!

संयत होकर मैंने कहा, "आप लोग अपना-अपना दोना मेरे हाथ में दीजिए, और मुझे उसी तरह भेंटिए, जैसे मेरे भाई भेंटते हैं।" बुलाने के साथ मुस्किराकर वे बढ़े। वे हर बात में मेरे समकक्ष हैं, जानते हैं। घृणा से दूर हैं। वह भेद मिटते ही आदमी-आदमी मन और आत्मा से मिले, शरीर की बाधा न रही।

इस रोज मैं और कुछ नहीं कर सका, देखकर चला आया, कुछ लड़कों से कुछ पूछकर।

तेरह

दूसरे रोज कुल्ली आये। नमस्कार-प्रणाम आदि के बाद बैठे। कहने लगे, "अछूत-पाठशाला खोलने के बाद से लोगों की रही सहानुभूति भी जाती रही। क्या कहूँ, आदमी आदमी के लिए जरा भी सहनशील नहीं। वह अपने लिए सबकुछ चाहता है, पर दूसरे को जरा भी स्वतन्त्रता नहीं देना चाहता। इसीलिए हिन्दोस्तान की यह दशा है, मैं समझ गया हूँ।"

मैंने कहा, "कुछ सरकारी अफसरों से मेरी मुलाकात हुई थी। वे आपसे

नाराज हैं, इसलिए कि आप यह सब करते हैं। शायद आपसे उन्हें इज्जत नहीं मिलती। वे नौकर होकर सरकार हैं, यह सोचते हैं; आप उन्हें याद दिला देते हैं, वे नौकर हैं; उन्हें रोटियाँ आपसे मिलती हैं।"

कुल्ली हँसे। कहा, "और भी बातें हैं। भीतरी रहस्य का मैं जानकार हूँ, क्योंकि यहीं का रहनेवाला हूँ। भण्डा फोड़ देता हूँ। इसलिए सब चौंके रहते हैं। वह मेम है, सरकार की तरफ से नौकर है, लेकिन बच्चा होआने जाती है, तो रुपया लेती है, और एक की जगह दस-दस; मैंने एक धोबिन को कहा, बुलाये और रुपया न दे, ज्यादा बातचीत करे, तो देखा जायेगा। धोबिन ने ऐसा ही किया। मेमसाहब नाराज हो गयी। यही हाल मवेशी-डॉक्टर का है। मुसलमान इसलिए नाराज हैं कि मुसलमानिन ले आया हूँ। अरे भई, तुम्हीं गाते हो—दिल ही तो है, न संगोखिश्त दर्द से भर न आये क्यों? फिर नाराज क्यों होते हो? क्या यह भी कहीं लिखा है कि दिल सिर्फ मुसलमान के होता है? और हिन्दू, हिन्दू है बुजदिल, खासतौर से ब्राह्मण, ठाकुर, बनिया बेचारा क्या करे—इस कोठे का धान उस कोठे करे, उसे फुर्सत नहीं, उसके लिए ये सब समझ से बाहर की बातें हैं क्योंकि रुपये-पैसे की नहीं। आखिर क्या करूँ? आदमी हूँ, आदमियों में ही रहना चाहता हूँ।"

मैंने कहा, "आपकी गंगा जिस तरह पवित्र करती हुई बह रही हैं, लोगों की समझ में वह तरह नहीं आती, इसलिए कि वे जड़वादी हैं। वे जड़ गंगा का महत्त्व मानते हैं। अछूत ही इसमें ठीक-ठीक पवित्र होंगे। पर कुछ दान लिया कीजिए। नहीं तो गुजर कैसे होगी?"

कुल्ली हँसे। बोले, "बहुत गरीब हैं; फिर मैं पहले जमींदार था, लोग अब भी नम्बरदार कहकर पुकारते हैं; आप जानते ही हैं, उनसे कुछ ले नहीं सकता। सिर्फ बत्ती का तेल लेता हूँ। रात को ही लड़कों की पढ़ाई अच्छी होती है, क्योंकि बड़े लड़के रात को ही अपने काम-काज से फुर्सत पाकर आते हैं।"

मैंने कहा, "भाभी साहबा को सुना, आपने पूर्ण रूप से शुद्ध किया है।"

"हाँ," कुल्ली ने मुस्किराकर कहा, "अयोध्याजी ले गया था। वहाँ गुरुमन्त्र दिलाया। लेकिन हिन्दू बड़े नालायक हैं। इस हद तक मुझे उम्मीद न थी। कहते हैं, बिल्ली को तुलसी की माला पहनाकर लाया है।" कहकर कुल्ली खुद हँसे।

फिर कहा, "यहाँ महेश-गिरि के मठ से कुछ रुपये माहवार मिलने की उम्मीद है। कुंवर साहब, सेमरी, चेयरमैन हैं यहाँ के ट्रस्ट के; मैंने उनसे निवेदन किया था, उन्होंने देने का वचन दिया है। लेकिन यहाँ के जो लोग हैं, वे विरोधी हैं।"

मैंने कहा, "यहाँ कौन-कौन हैं, आप कहिए, मैं मिलकर उनसे कहूँ।"

उदास होकर कुल्ली ने कहा, "वे लोग न करेंगे।"

मैंने नाम पूछा। कुल्ली ने नाम बतलाये।

मैंने कहा, "अच्छा, नम्बरदार, ये लोग आपसे नाराज क्यों हैं?"

कुल्ली ने कहा, "सच बात कह दूँ; जब मैं मन्त्र लेवाकर आया, तब एक ने बड़े भले आदमी की तरह मुझसे आकर पूछा, 'कहो, नम्बरदार, कहाँ से मन्त्र

लिवाया ?' मैंने बतलाया। यहाँ से एक आदमी अयोध्याजी गया, और वहाँ जाकर पूछा कि राय पथवारीदीन की स्त्री को मन्त्र दिया गया है, तो क्या यह मालूम कर लिया गया है कि वह किस जाति की है? गुरुजी के चेले ने पूछकर कहा कि राय पथवारीदीन की स्त्री है, बस। उस आदमी ने कहा, 'आपको धोखा दिया गया है, वह मुसलमानिन है।' गुरुजी के मठ में खलबली मच गयी। उनके चेले बिगड़ जायेंगे, तो आमदनी का क्या नतीजा होगा, और फिर अयोध्याजी है, जहाँ रामजी की जन्मभूमि पर बाबर की बनायी मसजिद है,—हिन्दू-मुसलमानवाला भाव सदा जाग्रत रहता है, सोचकर, समझकर चेले ने कहा, 'आप जाइए, हम उसे छल करने की शिक्षा देंगे।' वह आदमी चला आया। मेरे पास चिट्ठी आयी, 'तुमने हमसे छल किया, इसलिए कण्ठी-माला-मन्त्र वापस कर दो; नहीं तो हम उलटी कण्ठी बाँधकर, उलटे मन्त्र से उलटी माला जपकर अपना दिया मन्त्र वापस ले लेंगे।' "

कौतूहलवर्धक बात थी। मैंने पूछा, "तब तो तुम्हें कोई अधिकार नहीं।"

कुल्ली बोले, "जब तक दम नहीं निकलता। जब तक है, तब तक सबके जो अधिकार हैं, मुझे भी हैं; हालाँकि यन्त्र-मन्त्र पर मुझे यों भी विश्वास नहीं। लेकिन जिन्हें है, उन पर है। लिहाजा यह सब करना पड़ा।"

"फिर तुमने भी कोई जवाब दिया ?" मैंने पूछा।

"हाँ; कसकर। गुरुजी की बोलती बन्द हो गयी। मैंने लिखा, जब आप शुद्ध की हुई मुसलमानिन को नहीं ग्रहण कर सकते, तब आप गुरु नहीं, ढोंगी हैं, आपने व्यापार खोल रक्खा है, आपमें हृदय का बल नहीं, आप एक नहीं, सौ उलटी माला जपिए। हिन्दुओं ने बराबर समाज को धोखा दिया है। लेकिन यह कबीर की बहन है। इसे कोई धोखा नहीं दे सकता। इसमें श्रद्धा है। श्रद्धा न होती, तो मेरे पास न आती। कबीर को भी रामानन्द ने ऐसी ही बात कही थी। लेकिन कबीर समझदार था। इसीलिए आप-जैसे सैकड़ों गुरु उनके चेले हुए। हिन्दुओं को चराया, मुसलमानों को भी, और था महामूर्ख।" कुल्ली ओज में आ गये थे। कहकर हाँफने लगे।

मैंने सोचा, कुछ सुस्ता लें। कुछ देर बाद मैंने पूछा, "आपने महात्माजी को लिखा ?"

कुल्ली ने कहा, "जान पड़ता है, वह भी ऐसे ही होंगे।"

मैंने कहा, "नहीं, साल-भर अछूतोद्धार करने का उन्होंने कार्य ग्रहण किया है। देश के इस कोने से उस कोने तक दौरा करेंगे।"

कुल्ली ने कहा, "बस, दौरा-ही-दौरा है। काम क्या होता है? पहले अछूतों की बात नहीं सोची? जब सरकार ने पेंच लगाया, तब खोलने के लिए दौड़े-दौड़े फिर रहे हैं।"

मैंने कहा, "अच्छा, यह बताओ दोस्त, तुमने भी पेंच में पड़कर अछूतोद्धार सोचा है या नहीं ?"

कुल्ली नाराज हो गये। कहा, "मेरे साथ भी कोई जमात है? और अगर यही है, तो बैठा लें महात्माजी मुसलमानिन।"

"तुम कैसे हो ?" मैंने डाँटा, "वह बुड्ढे हो गये हैं, अब मुसलमानिन बैठायेंगे !"

कुल्ली शान्त हो गये। कहा, "एक बात कही।" फिर शायद खत लिखने की सोचने लगे। सोचकर कहा, "कोई चारा नहीं देख पड़ता। हाथ भी बँधे हैं। लेकिन काम करना ही है। क्या किया जाय ?"

मैंने कहा, "नम्बरदार, 'महाजनो येन गतः स पन्थाः' इसीलिए कहा है। जिधर चलना चाहते हों आप, उधर चले हुए बहुत आदमी नजर आयेंगे आपको—आपसे बड़े-बड़े, उसी तरफ चले जाइए। आज तक ऐसा ही हुआ है। कोई कुछ काम करता है, तो दुनिया से ही वस्तु-विषय ग्रहण करता है, और उस विषय के काम करनेवालों को देखता है, पढ़ता है, सीखता है, समझता है, तब अपनी तरह से एक चीज देता है। आप अछूतोद्धार कर रहे हैं, कीजिए, करनेवालों से मिलिए, उनकी आज्ञा लीजिए; जिन्हें अधिकांश जन मानते हैं, मेरे-आपके न मानने से उनकी मान-हानि नहीं होती, यही समझिए, मैं-आप उनके मुकाबले कितने क्षुद्र हैं। अगर यह धोखा है, तो इस धोखे को आप तो नहीं मिटा सकते ? आप अपना रास्ता भी नहीं निकाल सकते, क्योंकि अभी आपने ही कहा—चारा नहीं, हाथ भी बँधे हैं। महात्माजी को संसार की बड़ी-बड़ी विभूतियाँ मानती हैं। वह मामूली आदमी नहीं।"

कुल्ली कुछ देर स्तब्ध रहे। फिर साँस भरकर बोले, "यहाँ कांग्रेस भी नहीं है। इतनी बड़ी बस्ती, देश के नाम से हँसती है, यहाँ कांग्रेस का भी काम होना चाहिए।"

कुल्ली की आग जल उठी। सच्चा मनुष्य निकल आया, जिससे बड़ा मनुष्य नहीं होता। प्रसिद्धि मनुष्य नहीं। यही मनुष्य बड़े-बड़े प्रसिद्ध मनुष्य को भी नहीं मानता, सर्वशक्तिमान् ईश्वर की भी मुख़ालिफ़त के लिए सिर उठाता है, उठाया है। इसी ने अपने हिसाब से सबकी अच्छाई और बुराई को तोला है, और संसार में उसका प्रचार किया है। संसार में कब उतरा ?

मैं कुल्ली को देख रहा था। एक साँस छोड़कर कुल्ली ने कहा, "मधुआ चमार की औरत को कल तेज बुखार था, देखने जाना है, अस्पताल अगर न ले जा सका, तो डॉक्टर साहब के पैरों पड़ूँगा—देख लें, फीस के रुपये उसके पास कहाँ, मधुआ काम पर गया होगा, उसका लड़का ढोर चराने।" कहकर, नमस्कार कर कुल्ली उठे। मैं देखता रहा, तेज-कदम वह चले गये।

मैं उठकर महेश-गिरि-मठ के मेम्बरों से मिलने गया। मेम्बर वे ही होते हैं, जो प्रतिष्ठित हैं; जो प्रतिष्ठित हैं, उन्हें अप्रतिष्ठा की बातें सब समय घेरे रहती हैं। पहले लालाजी मिले। बड़े सज्जन हैं। दर्जी की दूकान पर खड़े थे। कोई कोट सिलने को दिया था। कपड़े के शौकीन हैं। घर के साधारण जमींदार। मेरे घनिष्ठ मित्र। दर्जी कई बार उनके मुँह पर कह चुका है कि रायबरेली छोड़कर दलमऊ में वह इसलिए है कि लाला साहब ने उसे पहचाना है, और उसने लाला साहब को; अगर मन का काम न मिला, तो कारीगर का जी नहीं भरता; लाला साहब एक-एक अंग नपाते हैं, और देखते हैं, ठीक बैठा या नहीं।

मुझे देखकर प्राचीन पद्धति के अनुसार लाला साहब ने प्रणाम किया, दर्जी ने भी हाथ जोड़े। आशीर्वाद मैं देता नहीं, नमस्कार करता हूँ या खीस निपोरता हूँ। एक दिन मेरे पुत्र ने लड़कपन में पूछा था, "बप्पा, कोई पैर लगता है, तो आप आसीस क्यों नहीं देते ?" मैंने कहा, "मामा के यहाँ रहते-रहते तुम्हारी जैसी आदत हो गयी, मेरी वैसी नहीं हो पायी।"

मित्र ने डाँट के साथ पूछा, "क्या है ?"

मैंने कहा, "सुना, तुम महेश-गिरि-मठ के मेम्बर हो। तुम्हें लोग मानते भी बहुत हैं। मेरे मित्र हो, इसलिए समझदार हो, मैं भी मानता हूँ। एकान्त की एक बात है।"

मित्र गर्दन बढ़ाकर एकान्त की ओर चले। दर्जी समालोचक की दृष्टि से देखने लगा।

एकान्त में मैंने पूरे कविकण्ठ से गद्य में कहा, "यार, कुछ अछूतों के लिए भी करो।"

"अहद"—मित्र ने ध्वनि की, "मैं समझ गया, कुल्ली ने पकड़ा होगा आपको। अरे, आप भले आदमी, इन बातों में न पड़िए। आपने तो जैसा सुना, वैसा ही समझा।"

"नहीं," मैंने कहा, "मैं व्यंग्य बहुत लिख चुका हूँ, जैसे का वैसा ही नहीं समझता।"

"व्यंग्य क्या ?" मित्र ने पूछा।

मैंने कहा, "जैसे तुम्हारा सर है। सर होकर न हो, या इस पर चार सींगें हों।"

"यानी ?" मित्र कुछ बिगड़े।

"अब यानी और क्या ?" मैंने सीधे देखते हुए कहा।

"आप सही-सही बात कहिए।" मित्र कुछ दोरुखे होकर बोले।

'अब आये' सोचकर व्यंग्य में मैंने कहा, "रास्ते पर, कल आठ-दस आदमी तुम्हारा नाम लेकर कह रहे थे, लाला की एक टाँग तोड़ दी जाय; जब देखो, दर्जी की दूकान पर खड़े रहते हैं।"

"ऐं !" लाला घबराये। पूछा, "कोई वजह भी मालूम हुई ?"

"कुछ नहीं," मैंने कहा, "काले-काले आदमी थे। यही पासी-चमार होंगे।"

लाला सोचकर निश्चय पर पहुँचने लगे। कहा, "हाँ, मैं समझ गया।"

"कुल्ली मिले थे ?" लाला ने पूछा।

"वह तो बहुत दिन से नहीं मिले। वे लोग क्यों बिगड़े हैं, मुझे अन्दाज लड़ानी पड़ी।"

सोचते हुए लाला दर्जी की ओर बढ़े। मैं पण्डितजी की ओर चला। दिन के ग्यारह का समय होगा। पण्डितजी के यहाँ पहुँचा, तो देखा, पण्डितजी कनकैया उड़ा रहे हैं। मंझा लखनऊ से मँगवाया है, इसलिए कि उनकी कनकैया कोई काट न पाये।

मैंने कहा, "एक जरूरी काम से आया था।"

बोले, "देख ही रहे हैं, अभी फुर्सत नहीं है।"

मैं समझ गया, यह और कड़ा मुकाम है। कहा, "रायबरेली से डिप्टी साहब आये हैं। गंगा नहाने आये थे। मैं यहाँ हूँ, जानते थे। क्योंकि उनसे मिलकर आया था, और उन्हें बुला भी आया।"

पण्डितजी को जैसे जूड़ी आ गयी। पूछा, "कहाँ हैं?"

मैंने कहा, "मेरे यहाँ ही हैं; आपको बुलाया है। साथ ही आते थे। मैंने कहा, 'नहा चुके हो, गरमा जाओगे, फिर पैदल चलना है, और चढ़ाई भी है, मैं जाता हूँ, वह भी मेरे मित्र हैं, बुला लाता हूँ'।"

पण्डितजी ने नौकर को बुलाकर कहा, "अरे डोर लपेट। हमें डिप्टी साहब ने बुलाया है।"

नौकर ने पतंग ले ली। आप तुर्त-फुर्त नीचे उतरे, कपड़े पहनने लगे। तैयार होकर छड़ी लेकर चले। बड़ी जल्दी-जल्दी पैर उठ रहे थे। मैं उनकी चाल देखता, साथ चलता जा रहा था। आधे रास्ते पर आकर पूछा, "अपने हल्के के महादेव-प्रसादजी हैं?"

मैंने कहा, "हाँ।"

न-जाने क्या सोचते रहे। घर आकर मैंने बैठका खोला। बैठका खोलते ही उन्होंने पूछा, "डिप्टी साहब?"

मैंने कहा, "अपनी ऐसी-की-तैसी में चले गये।"

"आपने मुझे धोखा दिया।" पण्डितजी ने कहा।

"आपने मुझे कौन ज्ञान दिया था?" मैंने कहा।

"बस, अब क्या कहूँ आपको!" पण्डितजी गरमाये हुए लौटे।

मैं तभी समझ गया था, इस मूर्ख की बुद्धि का कोठा बिलकुल खाली है। कहा, "जैसा मेरा आना-जाना व्यर्थ रहा, वैसा ही आपका; दुःख न कीजिएगा। जाइए, कनकैया उड़ाइए।"

चौदह

मैं लखनऊ आकर कुछ दिनों बाद लौटा। कुल्ली ने अपने काम के सम्बन्ध में क्या किया, क्या कर रहे हैं, जानने की इच्छा थी, आग्रह था। जाने पर ससुराल में ही कुल्ली की तारीफ सुनी। श्रीमतीजी की जगह सलहज साहबा थीं; अब तक दो-तीन बच्चे की मा हो चुकी थीं, इसलिए इच्छा होने पर बात-चीत छेड़ देता था, घूँघट के भीतर से शृंगार-साहित्य के उत्तर बड़े भले मालूम पड़ते थे।

एक दिन कहा भी कि महात्माजी पर्दे के खिलाफ प्रचार कर रहे हैं, तुम उनकी भक्त भी हो, फिर मेरे सामने क्यों घूँघट काढ़ती हो? उन्होंने कहा, "यों मेरी इच्छा नहीं, लेकिन यहाँ के आदमी ऐसे हैं कि कुछ-का-कुछ सोच लेते हैं।" मैंने

कहा, "तो अपनी आँखें ढँककर दूसरों की आँखों पर पर्दा डालना चाहती हो ! ··· रहस्यवाद अच्छा है ।" ऐसी मेरी छोटी सलहज साहबा और सासुजी मेरे जाते ही उच्छ्वसित होकर भिन्न-भिन्न वाक्यों से एक ही बात कर गयीं, "कुल्ली बड़ा अच्छा आदमी है, खूब काम कर रहा है; यहाँ एक-दूसरे को देखकर जलते थे, अब सब एक-दूसरे की भलाई की ओर बढ़ने लगे हैं; कितने स्वयंसेवक इस बस्ती में हो गये हैं। कांग्रेस कायम हो गयी है। सब अकेले कुल्ली का किया हुआ है ।"

सासुजी के सुपुत्र ने गले में और जोर देकर कहा, "अम्मा, कुल्ली अठारह घण्टा काम करते हैं। छः-छः कोस पैदल जाते हैं कांग्रेस के नियम्बर (मेम्बर) बनाने के लिए। बस्ती में और बाहर सब जगह इतनी इज्जत है कि लोग देखकर खड़े हो जाते हैं ।"

सासुजी ने कहा, "भैया, आदमी नहीं, देवता है कुल्ली !"

सलहज साहबा ने कहा, "मैं तो उन्हें अवतार मानती हूँ। बिन्दा खटिक की दुलहिन मर रही थी; गाँव में इतने आदमी थे, कोई नहीं खड़ा हुआ, नम्बरदार ने अपने हाथों उसकी सेवा की ।"

मैंने कहा, "जरा उनसे मिलना था ।" मन में ऊधम मचा हुआ था कि महात्माजी को कुल्ली ने लिखा होगा, देखूँ, क्या जवाब आया।

साले साहब ने कहा, "मैं चला जाऊँगा ।" कहकर बड़ी तेजी से अपना डण्डा उठाकर, एक दफा अपनी बीवी को, फिर मुझे, फिर विश्वास की दृष्टि से अपनी अम्मा को देखकर चले।

मैंने बाहर के बैठके का रास्ता लिया। इस समय कुछ प्रसिद्ध हो जाने के कारण, बस्ती के स्कूल-कॉलेज के पढ़नेवाले लड़के भी आते थे, उन्हें भी समय देना पड़ता था। प्रायः सबका पहला प्रश्न 'छायावाद क्या है' रहा। मैं उत्तर देता-देता अभ्यस्त हो गया था। समझाने में देर न होती थी, यद्यपि लड़कों की समझ में कुछ न आता था। बाद को आश्वासन देता था कि बाद को समझिएगा।

इन्हीं दिनों श्रीमान् बाबू इकबाल वर्मा साहब 'सेहर' से वहाँ मुलाकात हुई। अपनी सज्जनता और शुद्ध साहित्यिकता के कारण वह स्वयं पहले मुझसे मिलने आये थे—यह मालूम कर कि मैं वहाँ हूँ। मुझे यह जानकर बड़ी खुशी हुई कि 'सेहर' साहब की और मेरी एक ही बस्ती में ससुराल है। उनके साथ गोस्वामी तुलसीदासजी के सुप्रसिद्ध समालोचक-विद्वान् बाबू राजबहादुर लमगोड़ा एम्. ए., एल्.-एल्. बी. साहब के भाई साहब भी थे। लमगोड़ा साहब से मिलने की मेरी बहुत दिनों की इच्छा थी। क्योंकि उनकी आलोचना मुझे बहुत पसन्द आयी थी, पर दुर्भाग्यवश मिल नहीं सका था, उनके भाई साहब से मैंने जिक्र किया, उन्हीं के मकान में; उन्होंने मुझे फतेहपुर बुलाया; फिर 'सेहर' साहब ने कविता सुनाने की आज्ञा की; मैंने सुनायी। ऐसी अनेक घटनाएँ हुईं; पर अप्रसिद्ध जनों की होने के कारण रहने दी गयीं। सब जगह एक बात मैंने देखी, मेरी कविता पढ़कर लोग नहीं समझे, सुनकर समझे, और इतना समझे कि मुझे 'श्रुति' पर ही कविता को छोड़ना पड़ा।

बैठके में बैठा नये भाव रूपमयी की तलाश में था कि साले साहब आये, और

बड़ी इज्जत से कुल्ली को दिखाकर—'वह हैं'—भीतर चले गये। उठकर मैंने कुल्ली का स्वागत किया। वह बैठे। देखा, चेहरा एक दिव्य आभा से पूर्ण है, लेकिन देह पहले से दुबली, जैसे कुल्ली समझ गये हैं, जीवन की सन्ध्या हो गयी है, अब घर लौटना है। कविता का दिव्य रूप और भाव सामने जड़ शरीर में देखकर पुलकित हो उठा।

कुल्ली स्थिर भाव से बैठे रहे। इतनी शान्ति कुल्ली में मैंने नहीं देखी थी, जैसे संसार को संसार का रास्ता बताकर अपने रास्ते की अड़चनें दूर कर रहे हों। मैं कुछ देर और चुपचाप बैठा रहा।

कुल्ली ने एक साँस छोड़ी, जैसे कह रहे हों, 'संसार में साँस लेने का भी सुबीता नहीं, यहाँ बड़ी निष्ठुरता है; यहाँ निश्छल प्राणों पर ही लोग प्रहार करते हैं; केवल स्वार्थ है यहाँ, वह चाहे जन-सेवा हो, चाहे देश-सेवा; इस सेवा से लोग अपनी सेवा करना चाहते हैं; किसान इसलिए कांग्रेस में आते हैं कि जमींदार की मारों से, सरकार के अन्याय से बचें, और जमीन उनकी हो जाय, गरीब इसलिए तारीफ करते हैं कि उन्हें कुछ मिलता है। पर इतना ही क्या सबकुछ है? क्या इससे जीवन को शान्ति मिलती है? शायद साँस के रहते नहीं।'

इतना स्तब्ध भाव था कि बात करने की हिम्मत नहीं होती थी। इसी समय साले साहब भीतर से जल-पान ले आये, और कुल्ली के सामने आदरपूर्वक रखते हुए बोले, "रात-भर दुखिया चमार की सेवा करते हैं, उसकी स्त्री का देहान्त हो गया है, दुखिया बीमार है। आज लालगंज जायँगे, वहाँ कांग्रेस का काम है। कल दुपहर को जल-पान किया था तब से ऐसे ही हैं।"

चुपचाप तश्तरी उठाकर कुल्ली नाश्ता करने लगे। चेहरा सुर्ख। मनुष्यत्व रह-रहकर विकास पा रहा है। देखकर मैंने सिर झुका दिया।

कुल्ली नाश्ता करके हाथ-मुँह धोकर बैठे, पान खाया। एक तृप्ति की साँस ली। उन्हें कुछ देर तक एकटक देखकर मेरे साले साहब ने प्रस्थान किया।

बड़ी हिम्मत करके मैंने पूछा, "नम्बरदार, फिर महात्माजी को लिखा था?"

कुल्ली मुस्किराये। कहा, "अब क्या कहूँ?"

मेरे लिए इतना बहुत था। एक दफा बैठके के इस तरफ से उस तरफ तक टहल आया। नाटक के पार्ट काफी कर चुका था। प्रभावित होकर कहा, "बड़ा गुस्सा लगता है। कितना बड़ा नेता क्यों न हो, आदमी की पहचान नहीं कर पाता। करें भी कहाँ से? दस-पाँच जगह कार्यकर्ताओं ने धोखा दिया कि समझ बैठे सब धोखेबाज हैं।" कहकर कुल्ली को देखा, प्रभाव पड़ रहा था। कहा, "मैं तो इसी-लिए राजनीति में भाग नहीं लेता। मैं जानता हूँ, मुझे प्राविंशल कांग्रेस-कमेटी का भी प्रेसीडेण्ट न बनायेंगे, और कहने से भी बाज न आयेंगे कि सिपाही का धर्म सरदार बनना नहीं है। लेकिन सरदार सरदार ही रहेंगे—सैकड़ों पेंच कसते हुए, ऊपर न चढ़ने देंगे।" कुल्ली जगे। "ध्वनि में प्रतिध्वनि होती ही है।" कहकर मैं बैठ गया। पूछा, "क्या जवाब दिया महात्माजी ने?"

"कुछ नहीं," कुल्ली ने शुरू किया, "मैंने सत्रह चिट्ठियाँ (सत्रह या सत्ताईस कहा, याद नहीं) महात्माजी को लिखीं, लेकिन उनका मौन भंग न हुआ। किसी

एक चिट्ठी का जवाब महादेव देसाई ने दिया था। बस, एक सतर—इलाहाबाद में प्रधान आफिस है, प्रान्तीय, लिखिए।"

"आपने फटकारा नहीं?" मैंने उग्र सहानुभूति से कहा।

कुल्ली खाँसकर बोले, "आप क्या समझते हैं? मैंने लिखा—महात्माजी, आप मुझसे हजार गुना ज्यादा पढ़े हो सकते हैं। तमाम दुनिया में आपका डंका पिटता है, लेकिन हरएक की परिस्थिति को आप हरगिज नहीं समझ सकते। अगर समझते, तो मौन न रहते। जब मौन हैं, तब आप भगवान् हरगिज नहीं हो सकते। भगवान् अन्तर्यामी होते हैं, आप अन्तर्यामी नहीं हैं। यह मुझे पूरा-पूरा विश्वास हो गया है। आपको बनियों ने भगवान् बनाया है, क्योंकि ब्राह्मणों और ठाकुरों में भगवान् हुए हैं, बनियों में नहीं। जिस तरह बनियों ने आपको भगवान् बनाया है, उसी तरह आप बनिया-भगवान् हैं।"

मैंने कहा, "अरे, कुछ काम की बात भी लिखी?"

"काम की बात तो सत्रह बार लिख चुका था।"

"तो यह अट्ठारहवाँ पत्र है, या अट्ठाईसवाँ?"

"यह मुझे याद नहीं। आप आइएगा, तो आपको नकल दिखाऊँगा।"

मैंने कहा, "बीच-बीच में दोहा-चौपाई-शेर भी लिखे थे? इसमें प्रभाव पड़ता है।"

"उस वक्त कुछ याद ही नहीं आया। जो समझ में आया, लिखा। यह तो जानता ही हूँ कि मूर्ख हूँ, बड़ी बड़ाई मूर्ख कह लेंगे। लेकिन भगवान् तो मूर्ख और पण्डित नहीं मानते, उनकी दृष्टि में सब बराबर हैं।"

"लेकिन गांधीजी ऐसे भगवान् नहीं। वह तो सबको भगवान् बनाना चाहते हैं, इसलिए लोग उन्हें अवतार कहते हैं।"

"झूठ है।" कुल्ली ने कहा।

मैंने पूछा, "अच्छा, फिर आपने क्या किया?"

"फिर इलाहाबाद को लिखा (अछूतों के जिस ऑफिस का नाम कुल्ली ने लिया, वह मुझे याद नहीं), लेकिन पहले वहाँ से भी जवाब न आया, तब मैंने पं. जवाहरलालजी को लिखा।"

"कैसे लिखा, यह कहिए।"

गम्भीर होकर कुल्ली बोले, "पहले तो सीधे-सीधे लिखा, जैसा सबको लिखा जाता है। बड़े आदमी हैं, इसलिए कुछ इज्जत के साथ लिखा, लेकिन उसका उत्तर जब न आया—तब डाँटकर लिखा। अरे, अपने राम को क्या, रानी रिसायँगी, अपना रनवास लेंगी!"

मैं ताड़ गया, राजा इस समय कुल्ली खुद हैं; इसलिए राजा नहीं कहना चाहते। कहा, "इस साल जवाहरलालजी राष्ट्रपति हैं, राजा कहना चाहिए था।"

"वह राजा-रानी एक हैं।" कुल्ली ने कहा, "दूसरे पत्र का जवाब तो उन्होंने नहीं दिया, लेकिन पत्र को अछूतों के कार्यालय में भिजवा दिया। वहाँ से जवाब आया कि मदद की जायगी। रायबरेली में जिलावाली ऑफिस से रुपये लीजिएगा, यहाँ से भेज दिये जायँगे।"

मैंने पूछा, "फिर आपको रुपये मिले ?"

"हाँ, एक बार, बस।" कहकर कुल्ली ने बाहर की तरफ देखा। कहा, "बड़ों की बात बड़े पहचानें। ज्यादा कहना उचित नहीं। अपने सिर दोष लेना सीख रहा हूँ। इतना है कि तबियत नहीं भरी, जिस तरह चार पैसे के भोजन से सीधे व्यवहार से भरती है। मुझे लालगंज जाना है। वहाँ से उधर देहात घूमूंगा। कांग्रेस के मेम्बर बना रहा हूँ। फुर्सत कम रहती है। पाठशाला आपकी भाभी चलाती हैं। एक दिन जाइएगा। मैं कई रोज के लिए जा रहा हूँ। बहुत दुर्बल भी हूँ। भगवान् के भरोसे अब नाव छोड़ दी है। कोई खेनेवाला नहीं देख पड़ा। अच्छा, कुछ खयाल न कीजिएगा। नमस्कार।"

कुल्ली चले गये। अब यह वह कुल्ली नहीं हैं। प्रायः पचपन-छप्पन की उम्र। लेकिन कितनी तेजी ! कोई उपाय नहीं मिला, किसी ने हाथ नहीं पकड़ा, कुछ भी सहारा नहीं रहा, तब दूसरी दुनिया की तरफ मुँह फेरा है। कितना सुन्दर है, इस समय सबकुछ कुल्ली का ! मैं देखता और सोचता रहा।

पन्द्रह

दो-तीन दिन रहकर कुल्ली की पाठशाला और पत्नी को देखकर मैं लखनऊ चला आया। लेकिन जी नहीं लगा। कोई शक्ति मुझे दलमऊ की तरफ खींच रही थी, वहाँ की श्यामल-सजल प्रकृति, निर्मल गंगा, सुन्दर घाट, दिगन्त-विस्तार रह-रहकर याद आने लगा। सबसे अधिक आकर्षण कुल्ली का। एक जैसे पारलौकिक स्नेह मौन आमन्त्रण दे रहा था—तुम आओ, तुम आओ। इसी समय याद आया, बहुत दिनों से दलमऊ की कतकी नहीं नहायी। इस बार चलकर नहायें।

इस तरह तीन-ही-चार महीने के अन्दर फिर दलमऊ गया। गंगा-तट की शारद प्रकृति बड़ी सुहावनी मालूम दी। सघन वृक्षावली में एक पुरानी स्मृति जैसे लिपटी हो। प्रकृति जैसे वर्षा से नहाकर निखर गयी है। चारो ओर उज्ज्वलता। कुल्ली के लिए ऐसा ही उज्ज्वल समय आ गया है, सोचकर मन हर्ष से भर गया। मैं इक्के पर चला जा रहा था, पहले दिन की याद आयी, जब कुल्ली मिले थे। वह अदालती फैशन का बिगड़ा कुल्ली आदर्श आदमी बन गया है।

इक्का ससुराल के सामने रास्ते पर रुका। आदमी आया। सामान उतार ले गया। सासुजी फाटक के सामने खड़ी हुईं। इक्केवाले को पैसे दिला दिये। उतरकर मैंने उनके चरण छुए। भीतर गया। सलहज साहबा तिदरे के सामने आकर खड़ी हुईं। यह स्वागत था—कलश उनके प्राकृतिक थे, साक्षात् प्रकृति को मन में नमस्कार किया। त्रुटियाँ बहुत होती हैं, लेकिन इनकी कृपा के बिना पर्दा पार करना दुःसाध्य है, बहुत पहले से जानता था। भविष्य की भगवान् जाने। साले

साहब भीतर थे। बाहर निकले ! कहा, "जीजा, कुल्ली सख्त बीमार हैं, आप बड़े मौके से आये। मुलाकात हो जायेगी। डॉक्टर साहब कहते थे, अब नहीं बचेंगे— कम-से-कम हमारे मान की बात नहीं रही, क्योंकि यहाँ वैसे अस्त्र नहीं हैं, न वैसी दवा है; रायबरेली ले जायँ, वहाँ बचना हुआ, बच जायँगे। कल जाइए, देख आइए।"

मैंने पूछा, "हुआ क्या है ?"

उन्होंने मुँह बिगाड़कर कहा, "गर्मी। पहले थी, इधर दौड़े बहुत, क्वार की धूप सिर से उतरी, फाके किये, बीमार हो गये। लेकिन जीजा, यहाँ कोई गाँव नहीं, जहाँ कुल्ली ने कांगरेस के नियम्बर (मेम्बर) नहीं बनाये। नीचे का पेट तक सड़ गया है—सेरों पस निकलता है, इतनी बदबू आती है कि कोई छन-भर नहीं ठहर सकता। और..."

मैंने कहा, "और क्या ?"

साले साहब मुस्किराकर रह गये।

मैंने कहा, "हँसने की कौन-सी बात है ?"

अपनी अम्मा और पत्नी की तरफ देखकर साले साहब ने मुझे एकान्त में चलकर बुलाया, और मेरे जानेपर कान के पास मुँह ले जाकर कहा, "लिंग लापता है।"

"लापता ?" मैंने सन्देह के प्रकाश्य स्वर से पूछा।

"हाँ।" उन्होंने कहा, "लोग कहते हैं, अब नहीं रहा। कहते हैं—अब अगर कुल्ली जी भी गये, तो कुलियायन क्या करेंगी ?" मैं गम्भीर होकर चारपाई पर आकर बैठा।

सलहज साहबा गम्भीर होकर बोलीं, "हाँ, कुल्ली की बहुत खराब हालत है।"

सासुजी मेरे जल-पान की व्यवस्था के लिए भीतर चली गयी थीं। अपनी बहू की बात सुनकर उसे भीतर बुलाया। मैं दम साधे बैठा रहा। जल-पान के बाद घर की और-और बातें होती रहीं।

दूसरे दिन सवेरे धूप निकलने पर मैं कुल्ली के यहाँ गया। रास्ते में कई स्वयं-सेवक उधर जाते हुए मिले, दरवाजे पर कई अछूत लड़के, उनके तीन-चार अभिभावक। सबके चेहरे कह रहे थे, कुल्ली नहीं बचेंगे। मैं भीतर गया।

ठीक उसी जगह, जहाँ पहले दिन कुल्ली बैठे थे, आज पड़े दीखे। आज वे भाव यथास्थान अपनी कुरूपता को प्राप्त हैं, लेकिन मुख पर नहीं। मुख पर दिव्य कान्ति क्रीड़ा कर रही है। प्रवेश करते ही ऐसी बदबू आयी कि जान पड़ा, एक क्षण नहीं ठहर सकूँगा। हिम्मत करके खड़ा रहा। विद्या और अविद्या का आधा-आधा भाग कुल्ली की देह में पूर्ण रूप से प्रकाशित था। कुल्ली कुछ ध्यान में थे। आँखें खोलकर देखा—सामने देखकर, "आह ! आप हैं ? बड़े सौभाग्य, बड़े सौभाग्य, अब मैं कुछ नहीं चाहता।" कहकर विह्वल हो गये। एक अछूत से सिर-हाने की तरफ बिस्तर बिछा देने के लिए कहा, मुझसे कहा, "यह हाल है। बड़ी बदबू मिलती होगी। लेकिन इधर न मिलेगी। दिल के ऊपर मैं नहीं चढ़ने दे

रहा। मुझे इसका रूप देख पड़ता है। हृदय से ऊपर मैं बहुत अच्छा हूँ। सिरहाने बैठकर बताइए, बदबू मिलती है ?"

बैठकर मैंने मालूम किया, वास्तव में उधर बदबू नहीं थी। क्या कहूँ, क्या करूँ, कुछ समझ में नहीं आ रहा था। पाँच रुपये निकाले, और कुल्ली की स्त्री को देते हुए कहा, "आप दूध पीजिएगा।"

कुल्ली कुछ न बोले। केवल ऊपर की तरफ देखा। कुछ देर फिर मौन रहा।

मैंने पूछा, "डॉक्टर साहब क्या कहते हैं ?"

"डॉक्टर क्या कहेंगे ? अब कहने की बात नहीं रही। ईश्वर की इच्छा।" कुल्ली ने आँखें मूँद लीं।

कुछ देर तक मैं बैठा रहा। फिर बाहर निकला। कुल्ली की स्त्री रोने लगी। कहा, "रायबरेली ले जाने के लिए कहते हैं। खर्चा यही पाँच रुपया है। डोली में आयेंगे नहीं। लारी कोई आयेगी, यहाँ खाली होगी, तो उसमें ले जाऊँगी, लेकिन फिर वहाँ क्या होगा ? वहाँ भी खर्चा है।" कहकर रोने लगीं।

मैंने कहा, "आप इन्हें ले जाइए। मैं कुछ रुपये चन्दा करके रायबरेली आता हूँ। आगे ईश्वर मालिक है।"

आश्वस्त होकर कुल्ली की स्त्री देखती रहीं, मैं धीरे-धीरे बाहर चला।

घर में दूसरे दिन मालूम किया, कुल्ली की स्त्री एक लारी पर कुल्ली को लेकर रायबरेली गयी हैं। उत्तरदायित्व बढ़ गया। दलमऊ के स्वयंसेवकों को लेकर कांग्रेस-कमेटी के दफ्तर गया। वहाँ प्रेसीडेण्ट साहब अपना पक्का मकान बनवा रहे थे। उन्हीं के अधबने मकान के एक कमरे में कांग्रेस-कमेटी का दफ्तर है। स्वयं-सेवकों ने मेरा परिचय दिया। कुल्ली का काम वह देख चुके थे। रुपये की बात मैंने कही, तो बोले, "कांग्रेस का यह नियम नहीं, वह आपसे रुपये ले सकती है, पर दे नहीं सकती।"

"यह मैं जानता हूँ, पर जिसे योग्य समझती है, उसे इतना देती है कि दूसरों को पता नहीं चलता।"

बोले, "आपका मतलब ?"

मैंने कहा, "यह तो पहले अर्ज कर चुका।"

एक प्रेसीडेण्ट की हैसियत से बोले, "रुपये नहीं दिये जायेंगे।"

मैंने कहा, "पहले मैं पाँच रुपये दे चुका हूँ, अब और दो रुपये दे रहा हूँ। रायबरेली का खर्च बरदाश्त करूँगा। इससे अधिक इस समय मेरी शक्ति नहीं। तीन रुपये और तीन सज्जन मित्रों से एक-एक रुपया चन्दा करके लिया है। कुछ आप दे दें, तो काम चल जायगा।"

उन्होंने कहा, "सात रुपये विजयलक्ष्मी के स्वागत के खर्च से बचे हैं, आठ हो चुके हैं, हालाँकि वह आयीं नहीं, लेकिन वे रुपये जमा कर दिये गये हैं।"

मैंने कहा, "विजयलक्ष्मीजी के स्वागत से कुल्ली नम्बरदार की जान ज्यादा कीमती है, यह तो आप मानते हैं ?"

उन्होंने कहा, "मैं सबकुछ जानता हूँ। लेकिन यही शहरवाले जब घर बन गया, तब कहते हैं, दो हाथ म्युनिसिपैलिटी की जगह बढ़ा ली है ?"

'इसीलिए आप विजयलक्ष्मीजी का ध्यान कर रहे हैं ?' मैंने मन में कहा। खुलकर कहा, "कोई विजयलक्ष्मीजी का स्वागत करता है, तो पहले पता लगाती हैं—क्यों स्वागत किया गया। अगर कारण कोई उन्हें पाएदार मालूम हुआ, तो उसके पाए उखाड़कर तब दम लेती हैं। मैं तो लखनऊ में रहता हूँ, रोज देखता-सुनता हूँ। साक्षात् विजयलक्ष्मी हैं।" हाथ जोड़कर मैंने प्रणाम किया, "कभी किसी से नहीं मिलतीं, इसीलिए देश में क्या, संसार में उनकी जोड़ नहीं। लेकिन उन्हें मालूम हो जाय कि किसी ने कांग्रेस के किसी कार्यकर्त्ता के पीछे एक रकम फूंक दी है, तो फिर उनसे जो चाहे, करवा ले।"

लाला मुँह फैलाये सुनते रहे। पूछा, "आपसे मिलती हैं ?"

मैंने कहा, "नहीं, किसी से नहीं। लेकिन काम की बात होती है, तो इनकार भी नहीं करतीं।" मैंने फिर नमस्कार किया, "साक्षात् देवी।"

लाला ने कहा, "तो वे सात रुपये हैं, ले जाइए।"

"हाँ," मैंने कहा, "दीजिए, बड़ी देर हो गयी।"

लालाजी से रुपये लेकर मैंने रायबरेली जाने की तैयारी की। कुल्ली के एक मुसलमान मित्र भी स्टेशन पर मिले, वहीं जा रहे थे। रायबरेली पहुँचने पर सिविलसर्जन से मालूम हुआ, पहले से दशा सुधार पर है, क्योंकि पहले चिल्लाते थे, अब चुप रहते हैं। कुल्ली को देखने पर उल्टा फल मालूम दिया— शक्ति बिल-कुल क्षीण हो गयी है। ऑपरेशन के बाद से चित्त ऊबता जा रहा है। कुल्ली ने यहाँ भी कहा, "डॉक्टरों को कुछ नहीं आता। मैं कहता हूँ, ढाढ़स न दीजिए, मैं चन्द घण्टों का मेहमान हूँ, लेकिन कहते हैं, नहीं, यह दिल की घबराहट है, तुम अच्छे हो जाओगे।"

मैं देखता था, कुल्ली की वाणी में, मुख पर, दृष्टि में कोई दोष नहीं, उसकी कोई उपमा भी नहीं दी जा सकती।

इसी समय सर्जन साहब भी देखने आये। कुल्ली ने कहा, "बाबूजी, मैं बचूंगा नहीं, लोगों को अब मेरे ही पास रहने दीजिए, उन्हें फल और दवा के लिए दौड़ाएँ नहीं।"

डॉक्टर साहब ने कहा, "अगर तुम्हें यह दिव्य ज्ञान था, तो यहाँ आना ही नहीं था; जब आये हो, तब जैसा हम कहते हैं, करो। पहले तुम्हारा गला सोने पर घरघराता था, अब बन्द हो गया है।"

कुल्ली ने कहा, "बाबूजी, मेरा गला नहीं घरघराता था, नाक बोलती थी, अब कमजोर हो गया हूँ, नहीं बोलती।"

"चुप रहो," डॉक्टर साहब ने कहा, "नाक बजना और गला घरघराना एक बात नहीं। हम खुद देख-सुन चुके हैं। बोलो मत।"

डॉक्टर साहब दूसरे रोगी की तरफ चले गये। कुल्ली सीधी-सरल दृष्टि से उन्हें देखते रहे।

दलमऊ में मैंने सुना था, जब से कुल्ली की हालत और संगीन हुई, तब से उनकी स्त्री के यहाँ एक क्षण पैर नहीं जमते। रायबरेली-भर में भागी फिरती हैं

मैंने बात साफ कर लेने के लिए पूछा, "क्या दुःख से ?"

उत्तर बहुत शोभित नहीं मिला।

लेकिन, जब मैं गया, दुर्भाग्यवश वह वहाँ नहीं थी। रुपये लिये खड़ा रहा। वह सुनी बात रह-रहकर याद आती रही। अन्त में जब धैर्य जाता रहा, तब मैंने कहा, "आपकी श्रीमतीजी नहीं हैं, कुछ रुपये लाया हूँ।"

कुल्ली ने साथ गये मुसलमान सज्जन की ओर इशारा करके कहा, "इन्हें दे दीजिए। वह बेचारी तो इस-उस काम से दिन-भर मारी-मारी फिरती है।"

मैंने रुपये दे दिये। रहने के लिए कुल्ली ने पूछा, "यहाँ कहाँ रहियेगा?"

मैंने कहा, "कुछ मदद रायबरेली से भी पहुँचाने का इन्तजाम करूँगा। मेरे एक मित्र यहाँ ट्रेजरी-अफसर हैं। उनके बँगले में ठहरूँगा। वहीं बातचीत करूँगा।"

नमस्कार कर मैं विदा हुआ। कुल्ली ने कहा, "अब मुलाकात न होगी।" आँखों से आँसू टपक पड़े। मैं वहाँ से बाहर निकल आया।

सोलह

ट्रेजरी अफसर से कुल्ली की मदद के लिए कहकर मैं दलमऊ चला आया। दो ही तीन रोज में मालूम हुआ, कुल्ली का देहान्त हो गया है; उनकी लाश दलमऊ लायी जा रही है, दलमऊ के स्वयंसेवक अछूत और कांग्रेस-कार्यकर्ता जुलूस निकालेंगे। फिर नाव पर शव लेकर गंगाजी के उस पार अन्तर्वेद में जलायेंगे। दाह के लिए कुल्ली-वंश के कोई दीपक बुलाये गये हैं, उनकी स्त्री चूँकि विवाहिता नहीं, इसलिए उसके हाथ अन्तिम संस्कार न कराया जायगा। मैं स्तब्ध हो गया। कुल्ली का यह परिणाम देखकर, लेकिन साथ ही कस्बे-भर के मनुष्यों की उमड़ती हुई सहानुभूति से आश्चर्य भी हुआ। एक साधारण आदमी देखते-देखते इतना असाधारण हो गया। दुःख था, अब कुल्ली से मुलाकात न होगी। कुल्ली मुझे क्या समझने लगे थे, यह लिखकर कलम को कलंकित न करूँगा। उनके जीवन पर किसकी गहरी छाप थी, यह मुझसे अधिक कोई नहीं जानता। कुल्ली साधारण आदमी थे, हिन्दी के सुप्रसिद्ध व्यक्ति प्रेमचन्दजी और 'प्रसादजी' अन्तिम समय में अपना एक-एक सत्य मुझे दे गये थे; वह मेरे ही पास रहेगा, इसलिए कि उसकी बाहर शोभा न होगी, कदर्थ होगा; उनकी महान् आत्माएँ कुण्ठित होंगी। ऐसा ही एक सत्य कुल्ली के पास भी था। मनुष्य अपने समझे हुए जीवन की समझ ऐसे ही परिवर्तन के समय पाता है, और देता है। कुल्ली कुछ पहले दे चुके थे, इन लोगों ने बाद को दी, इसलिए कि इनमें स्पर्द्धा थी, इनसे स्पर्द्धा करनेवाला हिन्दी में न था।

दूसरे की मैं नहीं जानता, मुझ पर एक प्रकार का प्रभाव पड़ता है, जो दुःख नहीं, नशे की तरह का है, जब किसी प्रियजन का वियोग होता है, या वैसा भय मुझमें आता है। कुल्ली का देहान्त हो गया है, मैंने बैठके में सुना था। कुल्ली की

लाश दलमऊ पहुँची, उस समय मैं बैठके में था, स्वयंसेवक दो बार बुलाकर तीसरी बार बुलाने आया। जब जुलूस निकल रहा था, मैं वहीं था, न जा सकने की बात कही। कुल्ली को फूंककर लोग वापस आये, मैं वहीं बैठा था। घर के लोग देख-देखकर लौट गये। शाम को प्रकृतिस्थ होकर भोजन किया। कुल्ली की स्त्री चिल्ला-चिल्लाकर आसमान फाड़ रही है, सुना करता था; जा नहीं सका। दस दिन हो गये। कुल्ली का दसवाँ समाप्त हो गया। अवश्य मुझे यह मालूम न था कि कुल्ली का दसवाँ हो गया, एकादशाह है।

एकादशाह के दिन दस बजे के करीब कुल्ली की स्त्री को देखने गया। उस समय वहाँ एक घटना हो गयी थी, इसलिए कुल्ली की स्त्री में कुल्ली की अपेक्षा मुसलमानिनवाला भाव प्रबल था।

मुझसे स्वर को खींचकर कहा, "नम्बरदार तो चले गये, उनका सब काम हो गया, लेकिन दस दिन तक जो लोग आये, रहे, वे आज एकादशाह को क्यों नहीं आयेंगे ? मैं आपसे पूछती हूँ, यह हिन्दुओं का खरापन है या दोगलापन ?"

बात कुछ मेरी समझ में नहीं आयी। मैंने कहा, "भाव ज़रा और साफ करके बताइए। मैं इतने से नहीं समझा।"

श्रीमती कुल्ली दोनों हाथ के पंजे उठाकर उपदेश की मुद्रा से बोलीं, "देखिए, आप तो आये नहीं; नम्बरदार को दाग दिया —उनके हैं कोई, मैं नहीं जानती; अच्छा भाई, दाग दिया तो दिया; दस रोज माना, ठीक है; दसवें दिन पण्डित और टोला-पड़ोस, गाँवघर के सब आदमी थे। दाग देनेवाले ने मुझसे कहा, 'इतना तो हम कर सकते हैं। लेकिन साल-भर हम न मान सकेंगे, हमें काम है, फिर हमारे चाचा भी बीमार हैं—अरे हाँ, कुछ हो जाय, तो उनके भी कोई नहीं, इसलिए सपिण्डी तुम ले लो।' पण्डित ने भी कहा, 'ठीक है, ले लो।' गाँव के दस भलेमानसों ने भी कहा। मैंने कहा, 'अच्छी बात है, पण्डित जब कहते हैं, तब ले लें।' सपिण्डी ले ली। अब आज होम है। पण्डित को बुलाया, तो कहते हैं, हम न जायेंगे।"

मैंने पूछा, "क्यों ?"

जो बुलाने गया था, वह एक अछूत लड़का था। उसने कहा, "मन्नी पण्डित ने कहा है, एक तो यों ही हमारी बहन की शादी नहीं होती, क्योंकि हम गंगापुत्रों के यहाँ पण्डिताई करते हैं, कुल्ली की स्त्री के घर होम कराने जायेंगे, तो कोई पानी भी न पियेगा।"

"सुन लिया आपने ?" कुल्ली की स्त्री ने कहा, "यही मन्नी पण्डित कल कहते थे—सपिण्डी ले लो। अगर तुम्हें काम नहीं करना था, तो तुमने कहा क्यों ? और जब कहा, तब आओगे कैसे नहीं ? दस आदमी गवाह हैं—रामगुलाम पण्डित, राजाराम गंगापुत्र, घोखे महाबाह्मन..."

मैंने कहा, "यह अदालत तो है नहीं। जो नहीं आना चाहता, उसे दूसरे मजबूर नहीं कर सकते।" मन्नी पण्डित की दशा मुझे मालूम थी। वह कुलीन कान्यकुब्ज हैं। लेकिन उनकी बहन प्रायः बीस साल की हो गयी थी, कोई ब्याह नहीं करता था. कारण, वह गंगापुत्रों के यहाँ यजन करते थे, उनका धान्य लेते थे। मन्नी के लिए दूसरा उपाय जीविका का न था।

मैंने कहा, "आप घबराइए नहीं। आपका काम हो जायगा।"

कुल्ली की स्त्री ने आश्वास की साँस ली। कहा, "अब आप ही लोग हैं!" कहकर, कृत्रिम करुणा से जैसे कण्ठावरोध हो गया—आँखों में आँसू आ गये हों—आँचल एक दफा आँखों पर फेर लिया। फिर जोश में आकर बोली, "बिना आपके गये वह न आयेंगे। आप ऐसे ही कहिएगा कि···"

"मैं समझ गया," मैंने कहा, "मेरी वहाँ जरूरत नहीं। नहाकर मैं यहीं आता हूँ। तब तक आप एक दफा पण्डित को और बुला भेजें। मैं अभी आता हूँ। वह न आयेंगे, तो मैं हवन करा दूँगा।"

कुल्ली की स्त्री को जान पड़ा, साक्षात् वशिष्ठजी उनके घर जा रहे हैं।

मैं ससुराल की तरफ लौटा। रास्ते में ज्योतिषीजी का मकान है। यह वही ज्योतिषी हैं, जिन्होंने मेरा विवाह विचारा था; मैं मंगली था, ससुरजी इनकार कर रहे थे, लेकिन इनके पिता वहाँ के बृहस्पति थे—राना साहब, राजा साहब, लालसाहब, सब उन्हें मानते थे, अब भी उनके लड़कों को मानते हैं—उन्होंने कहा, विवाह बहुत अच्छा है, अगर लड़की को कुछ हो जायेगा, तो बुरा नहीं, फिर जहाँ लड़का मंगली है, वहाँ लड़की राक्षस है, पटरी अच्छी बैठती है। तब से इस खानदान पर मेरी एक-सी श्रद्धा चली आती है। ज्योतिषीजी मुझसे बड़े हैं। प्रणाम कर मैंने तिथि और संवत् वगैरा पूछा। ज्योतिषीजी चौंके। मैं किस काट और कोटि का आदमी हूँ, जानते हैं। पूछा, "क्या करोगे? तुम और तिथि?"

मैंने कहा, "मन्नी पण्डित बहन के ब्याह के डर से कुल्ली के घर नहीं जाना चाहते। हवन कराऊँगा। 'मासानां मासोत्तमे' तो हर महीने आप लोग कहते हैं। संकल्प में तिथि जान लेना जरूरी है।"

पण्डितजी ने पूछा, "हवन कैसे कराओगे? क्या तुम यह सब जानते हो?"

"जानता तो दरअसल कुछ नहीं," मैंने कहा, "लेकिन यह जानता हूँ कि हवन में ब्रह्म से लेकर देव-दानव, यक्ष-रक्ष, नर-किन्नर, सबमें चतुर्थी लगती है, बाद 'स्वाहा' और इतनी संस्कृत मुझे आती है कि कुल बातें अपनी रची संस्कृत में करूँ, यहाँ के पण्डितों से क्रिया शुद्ध होगी, क्या कहते हैं?"

पण्डितजी ने कहा, "हाँ, यह तो है।"

"अच्छा, पंचांग दीजिए।" मैंने कहा, "जल्दी है।"

पंचांग लेकर ससुराल गया। मेरे हाथ में देशी जूता देखकर सासुजी को उतना आश्चर्य न होता, जितना पंचांग देखकर हुआ। पूछा, "यह क्या है भैया?"

"पंचांग।" मैंने कहा, "चौकी और घड़ा-भर पानी रखा दीजिए, जल्दी है, नहा लूँ।"

"क्या है?" सासुजी ने आश्चर्य से पूछा।

"मन्नी पण्डित कुल्ली के एकादशाह को नहीं गये, सपिण्डी कुल्ली की स्त्री ने ले ली है, इसलिए; कहते हैं, एक तो यों ही गंगापुत्रों की पुरोहिती के कारण लोग पानी पीते डरते हैं, फिर तो बहन बैठी ही रह जायगी।" पंचांग रखकर मैं कपड़े उतारने लगा।

शंकित होकर सासुजी ने कहा, "तो तुम यह सब क्या जानो?"

"मैं जानता हूँ।" मैंने कहा।

"तो तुम वहाँ पुरोहिती करने जाओगे ?"

"हाँ, और एक जोड़ा जनेऊ निकाल लीजिए, पहन लूँ नहाकर।"

सासुजी घबरायीं। कहा, "बच्चा, तुम हमें मेटोगे !"

"कैसे ?" चौकी की ओर चलते हुए पूछा।

"ऐसे कि लोग हमारे यहाँ का खान-पान छोड़ेंगे।"

मैंने कहा, "मैं आपका ससुर हूँ या अजियाससुर ?" मेरे पापों का फल आपको क्यों भुगतना पड़ेगा, मेरा दिया हुआ पिण्ड-पानी जबकि आपको नहीं मिल सकता ? आप मुझे चौके में न खिलाइए, बस।"

सासुजी रोने लगीं। मैं नहाने गया। नहाकर जनेऊ पहना। कहा, "मैं जनेऊ नहीं पहनता, यहाँवाले जानते थे। तभी यहाँ का खान-पान छोड़ दिया होता। मैं ढोंगियों को जानता हूँ।"

नहाकर कपड़े पहने। चलने को हुआ, तो सासुजी को जैसे होश हुआ। बोलीं, "खाये जाओ।"

मैंने कहा, "लौटकर खाऊँगा।"

"नहीं," सासुजी ने कहा, "तुम वहाँ खा लोगे !" अपनी बहू से कहा, "गुट्टो, परस तो जल्दी।"

जल्दी-जल्दी भोजन कर मैं निकला। देखता हूँ, चारो ओर से लोगों का ताँता बँधा है—सब कुल्ली के घर जा रहे हैं। 1937 ई. में काफी प्रसिद्ध हो चुका था, कुछ प्राचीन भी, 40 पार कर चुका था। एकादशाह कराने जा रहा हूँ, वहाँ के जीवन में सबसे बड़ा आश्चर्य था।

कुल्ली के घर में आदमी नहीं अँट रहे थे। सबमें कौतूहल की दृष्टि। कुल्ली की स्त्री में भी वैसी ही श्रद्धा। वह समझती थी, मैं कृतार्थ हो गयी। लोग मुझे देखकर शर्मा-शर्माकर काना-फूसी करने लगते थे। बहुतों को यह शंका थी, यह कैसे करायेंगे। मैं निश्चिन्त था। मुख देखकर लोगों को विश्वास हो जाता था।

यथासमय मैं आँगन में जाकर बैठा। सामने हाथ जोड़कर कुल्ली की स्त्री बैठी। लोग कोई खड़े, कोई बैठे। कोई भीतर, कोई बाहर। मैं चौक पूरने लगा। सुरबग्घी लड़कपन में बहुत खेल चुका था। वैसा ही एक चौकोर घेरा बनाया। लेकिन जानता था कि नौ कोठे नवग्रहों के बनते हैं, बनाये। बालू की वेदी पर हवन की लकड़ी रक्खी। घट में स्वस्तिका बनायी। सामने गौर रक्खी। घट का दिया जलाया।

मन्त्र पढ़ते वक्त बार-बार अटकता था, क्योंकि पण्डिताऊ स्वर नहीं निकल रहा था। कुछ देर सोचता रहा, व्रजभाषा-काल में हूँ, सूरदास का सूरसागर और तुलसीदास की रामायण पढ़ रहा हूँ। अपने-आप वैसा ही मनोमण्डल बन गया। फिर क्या; अपनी संस्कृत शुरू की। संकल्प, गणेश-पूजन, गौरी-पूजन, घट की प्राण-प्रतिष्ठा करने लगा। लोग प्रभावित हो गये। खड़े जो जैसे रहे, रह गये, जैसे कवि-सम्मेलन में कविता पढ़ते वक्त होता है। पूजन कराकर, हवन कराने लगा, उँगली के पोरों में संख्या रख रहा हूँ। दिखाता हुआ। घी मेरे पास था, साकल्य कुल्ली

की स्त्री के पास। कुछ जाने-पहचाने नाम तो लिये, फिर जो जीभ के सामने आया, उसी के पीछे चतुर्थी छोड़कर 'स्वाहा' कहने लगा। कह दिया था, मेरे कहने के बाद कुल्ली की स्त्री स्वाहा कहती थी। हवन में जितनी देर लगती है, लगी। देखनेवाले अब तक पूर्ण रूप से आश्वस्त और विश्वस्त हो गये थे। पीछे की गर्द झाड़कर उठ-उठ चलने लगे थे। कुछ सहनशील बैठे हुए थे।

हवन पूरा हो जाने पर साल-भर ब्रह्मचर्य के साथ पति की क्रिया करते रहने की प्रतिज्ञा करायी, यहाँ भी अपनी ही संस्कृत थी—'मैं पं. पथवारीदीन की धर्मपत्नी' की संस्कृत उपस्थित लोगों में प्रायः सभी समझे। सुनकर मुस्किराये। एक छोर से दूसरे छोर तक दौड़ी इस मुस्कान के भीतर मैंने कुल्ली की एकादशाह-क्रिया समाप्त की। यजमान को आशीर्वाद देकर सीधा भेज देने के लिए कहा, और बाहर निकला।

बाहर निकल रहा था कि आलोचना सुन पड़ी, "सब ठीक हुआ। बन गयी कुल्ली की।"

खाँसकर गम्भीर मुद्रा से मैं ससुराल की तरफ बढ़ा।

शाम को कुल्ली के यहाँ से सीधा आया। मैंने सासुजी से कहा, "रखा लीजिए। आप लोग इसमें से कुछ न लीजिए। कल पूड़ी बना दीजिएगा।"

देखकर सासुजी ने कहा, "एक दफे में तुम्हारे खाये न खाया जायगा, इतना घी है।" मैं गम्भीर होकर रह गया।

दूसरे दिन सबेरे, जैसी आदत थी, चिकवे के यहाँ से गोश्त ले आया।

देखकर सासुजी ने कहा, "भैया, तुम तो आज पूड़ी खाने के लिए कहते थे।"

मैंने कहा, "कुल्ली की स्त्री पहले मुसलमानिन थीं; इसलिए प्रकृति ने उनके संस्कारों के अनुसार मुझे गोश्त खाने के लिए प्रेरित किया है। इसमें दोष नहीं।"

०००

बिल्लेसुर बकरिहा

कलाकार—

प्रिय बन्धु श्री अमृतलाल नागर को
स्नेह-भेंट

—**'निराला'**

प्रथम संस्करण की भूमिका

प्राक्कथन

'बिल्लेसुर बकरिहा' हास्य लिये एक स्केच है। मुझे विश्वास है, पाठकों का मनोरंजन होगा।

लखनऊ
25 दिसम्बर 1941

—'निराला'

द्वितीय संस्करण की भूमिका

निवेदन

'बिल्लेसुर बकरिहा' प्रगतिशील साहित्य का नमूना है। मित्रों ने इसका बड़ा समादर किया है। बड़ी स्तुति की है। पत्रों में काफी निबन्ध, आलोचनाएँ इस पर आ चुके हैं। इसका एक संस्करण बहुत जल्द बिक गया। बहिरङ्ग-चित्रण पर ही अङ्ग-चित्रण सूचित है जो प्रगतिशील साहित्य का प्रथम चरण है। कला ऐसी है जैसे तीन छोटी-बड़ी कहानियाँ एक जोड़ के साथ रख दी गयी हैं। अन्त समाप्त होकर भी लटका हुआ है जिससे पाठक को एक धक्का-सा लगता है, पर दिल को ताकत पहुँचती है। पढ़कर ही विवेचन करें।

दारागंज
15.4.45

—सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

चोटी की पकड़

श्रीमत् स्वामी विवेकानन्दजी
महाराज की
पुण्य स्मृति में

—निराला

निवेदन

'चोटी की पकड़' आपके सामने है। स्वदेशी-आन्दोलन की कथा है। लम्बी है, वैसी ही रोचक। पढ़ने पर आपकी समझ में आ जायगा। युग की चीज बनायी गयी है। जितना हिस्सा इसमें है, कथा का हिसाब उससे समझ में आ जायगा। इसकी चार पुस्तकें निकालने का विचार है। मुमकिन, दूसरी इससे कुछ बड़ी हो। चरित्र इसमें मुन्ना बाँदी का निखरा है। अगले में प्रभाकर का। इस बड़े उपन्यास को पढ़ियेगा तो ज्ञान और आनन्द वैसे ही बढ़ेंगे।

—'निराला'

एक

सत्रहवीं सदी का पुराना मकान। मकान नहीं, प्रासाद; बल्कि गढ़। दो मील घेरकर चारदीवार। बड़े-बड़े दो प्रासाद। एक पुराना, एक नया। हमारा मतलब पुराने से है। नये में जागीरदार रहते हैं। हैसियत एक अच्छे राजे की। कई ड्योढ़ियाँ। हर ड्योढ़ी पर पहरेदार। कितने ही मन्दिर, उद्यान, मैदान, तालाब, प्राचीर, कचहरी। दोनों ओर आम-लगी सीधी-तिरछी, चौड़ी-सँकरी सजी सड़कें। पीपल के नीचे चबूतरा, देवता। इक्के-दुक्के आदमी आते और जाते हुए।

भयंकर अट्टालिका। पीछे की तरफ कुछ गिरी हुई। फिर भी विशाल उद्यान की ऊँची प्राचीर से सुरक्षित। भीतर भी रक्षा का अन्तराल उठा हुआ। निकासों पर पहरे। पुरखों की सदी-सदी के जर्जीन वस्त्र, बासन, तम्बू, राजगृह के अनेकानेक साधन, माल-असबाब, कागजात और खजाना रहता है। कितने ही कमरों में, दालानों में, बड़ी-बड़ी बैठकों में, आदम-आकार की गची काठ की सैकड़ों पेटियाँ हैं, भीतर से कुफ्ल लगा हुआ। नीचे, सिंह-द्वार पर, लोहे के बड़े-बड़े सन्दूकों में राजकोष है। बन्दूक का पहरा। 5-6 बड़े-बड़े आँगन। पीछे दक्षिण की ओर, एक अहाते में कुल-देवता रघुनाथजी का मन्दिर। दूसरी ओर, ऊपर की मंजिल पर, कई अच्छे कमरों के एक अन्तःपुर में बूढ़ी मौसी के साथ बुआ रहती हैं। बड़ी-बड़ी खिड़कियाँ, प्राकार, उद्यान और सरोवर दिखते हैं। सूर्य की किरणों में चमकती हुई हरियाली। प्रातः और सन्ध्या की स्निग्ध वायु। रात में तारों से भरा आकाश। चाँद, चाँदनी, सूनापन।

बुआ विधवा हैं, मौसी भी विधवा। बुआ की उम्र पच्चीस होगी। लम्बी सुतारवाली बँधी पुष्ट देह। सुढर गला, भरा उर। कुछ लम्बे मांसल चेहरे पर छोटी-छोटी आँखें; पैनी निगाह। छोटी नाक के बीचोबीच कटा दाग। एक गाल पर कई दाँत बैठे हुए। चढ़ती जवानी में किसी बलात्कारी ने बात न मानने पर यह सूरत बनायी, फिर गाँव छोड़कर भग खड़ा हुआ। इज्जत की बात, ज्यादा फैलाव न होने दिया गया।

बुआ की देह जितनी सुन्दर है, चेहरा उतना ही। भयंकर वह जागीरदार-खानदान की लड़की नहीं, मान्य की मान्य हैं। बुआ के भतीजे का भाग। गरीब थे। जागीरदार को लड़की ब्याहनी थी। लडका ढूँढ़ा। वह पसन्द आये। बुला लिया। बच्चे थे। पढ़ाया-लिखाया। उठना-बैठना, बातचीत, रईसी के अदब

और करीने सिखलाये। फिर निवाह के लिए एक अच्छी-खासी जमींदारी लड़की के नाम खरीदकर उनके साथ ब्याह कर दिया। ब्याह पर दामाद साहब का लम्बा कुनबा आ धमका। बुआ इसी में हैं बहुत निकट की। जब भी बंगाल की प्रतिष्ठित प्रायः सभी ब्राह्मण और कायस्थ पहले के युक्तप्रान्त के रहनेवाले हैं, पर वे बंगाली हो गये हैं; यह जागीरदार-परिवार आदि से युक्तप्रान्तीयता की रक्षा कर रहा है।

आने पर, समधिन-साहबा यानी राजकुमारी की माँ रानी साहबा ने बुआ को बुलाया; अपनी सोलह कहारोंवाली गद्दीदार पालकी भेज दी। साथ वर्दी पहने चार सशस्त्र सिपाही। खिड़की के कब्जे पकड़ने के लिए दोनों बगल दो नौकरानियाँ। विधवा बुआ विधवा के श्वेत स्वच्छ वस्त्र से गयीं। रानी साहबा नयी अट्टालिका में रहती थीं। बड़े तख्त पर ऊँची-ऊँची गद्दियाँ बिछी थीं। ऊपर स्वच्छ चादर, कितने ही तकिए लगे हुए। सामने ऊँची चौकी पर पीकदान रक्खा हुआ। बगल में पानदान। विशाल कक्ष। साफ-सुथरा। संगमरमर का फर्श। दीवारों और छत पर अति-सुन्दर चित्रकारी। बीच में श्वेत प्रस्तर की मेज पर चीनी फूलदानी में सुगन्धित पुष्प। हाथ से खींचे जानेवाले पंख की रस्सी, दीवार में किये छेद से बाहर निकालकर ह्वील पर चढ़ायी हुई। तीन घण्टे दिन और तीन घण्टे रात की ड्यूटी पर चार पंखा-बेयरर लगे हुए। पंखा चल रहा है। तख्त की बगल में एक गद्दीदार चौकी रक्खी हुई है बुआ के बैठने के लिए।

जागीरदार साहब कुलीन हैं। साथ ही राजसी ठाट के धनिक। इनके यहाँ मान्यों की वह मान्यता नहीं रहती जो दूसरी जगह रहती है। यद्यपि इसका मुख्य कारण घमण्ड है, फिर भी ये अपनी बचत का रास्ता निकाले रहते हैं। इनका कहना है कि राज्य की मुहर रघुनाथजी के नाम है, हम उनके प्रधान कर्मचारी हैं; हमारे सिर पर केवल रघुनाथजी ही रहते हैं; दूसरे अगर इस राज्य की हद में हमारे सिर हुए तो वही जैसे इस राज्य के राजा बन गये; इससे रघुनाथजी का अपमान होता है। इस आधार पर जलसों में जागीरदार साहब के मान्यों के आसन उनके पीछे ही रक्खे जाते हैं, हल्के आसनों पर, बगल में भी नहीं।

आने पर बुआ की सेवा के लिए रानी साहबा ने एक बाँदी भेजी, नाम मुन्ना। रानी साहबा की प्रायः दस दासियों में एक मुन्ना भी। पाँच-छः साल से नौकर। हाल का ब्याह, खातिरदारी कसरत पर और कुछ इस उद्देश्य से भी कि ऐसा दूसरा नहीं कर सकता, इतना सुख कहीं भी नहीं। मुन्ना की उतनी ही उम्र है जितनी बुआ की। उतनी ऊँची नहीं, पर नाटी भी नहीं। चालाकी की पुतली। चपल, शोक। श्याम रंग। बड़ी-बड़ी आँखें। बंगाल के लम्बे-लम्बे बाल। विधवा, बदचलन, सहृदय। प्रायः हर प्रधान सिपाही की प्रेमिका। भेद लेने में लासानी। कितने ही रहस्यों की जानकार। प्रधान-अप्रधान नायिका, दूती, सखी। रानी साहबा ने जब-जब रण्डी रखने के जवाब में पति को प्रेमी चुनकर झुकाया, तब-तब मुन्ना ने प्रधान दूती का पाठ अदा किया। उसी से रानी साहबा को खबर मिली, बुआ की नाक कटी है, गाल पर दाँतों के दाग हैं। अनुगामिनी सहचरी बनाने का इतना साधन काफी है। रानी साहबा ने समधिन को बुलाया।

मुन्ना की जबान बंगला है। असल में इसका नाम है मोना या मनोरमा। बुआ इलाहाबाद की ठेठ देहाती बोलती हैं। मुन्ना ने अपनी सरल सुबोध बंगला में रानी साहबा से मिलने के करीने कई दफे समझाये, पर बुआ की समझ में कुछ न आया। फिर बुआ की मान्य के मान्य के सम्बन्ध में युक्तप्रान्त की बँधी धारणा थी, उसमें परिवर्तन हिन्दूपन से हाथ धोना था। मुन्ना के सश्रद्ध रानी साहबा के उच्चारण से बुआ अपने बड़प्पन को दबाकर खामोश रह जाती थीं, सोचती थीं, धर्म के अनुसार रानी साहबा में और मुन्ना में उनके समक्ष कौन-सा फर्क है? — जो काम उनके लिए मुन्ना करती है, वही रानी साहबा भी पुण्य के संचय के लिए कर सकती हैं। जो कुछ उन्होंने सीखा, वह है बंगाली ढंग से साड़ी पहनना, मशहरी लगाना, तकिये का सहारा लेना, बंगाली भाजियों को पूर्वापर विधि से खाना। यह भी इसलिए कि उनसे कहा गया था कि उनकी बहू अर्थात् राजकुमारी बिना इसके उनसे मिलेंगी नहीं, जब वह आयेंगी तब इसी वेश में रहना होगा, उनके जलपान के लिए ऐसी ही भाजियाँ देनी होंगी, थाली इसी तरह लगायी जायगी; नहीं तो वह भग जायँगी, एक क्षण के लिए नहीं ठहर सकतीं।

दो

मुन्ना के बतलाये हुए ढंग से बुआ ने एक सफेद साड़ी पहनी। विधवा के रजत वेश से पालकी पर बैठीं। वहाँ के सभी कुछ उन्हें प्रभावित कर चुके थे, पालकी एक ओर हुई। कहारों ने पालकी उठायी और अपनी खास बोली से कोलाहल करते हुए बढ़े। अगल-बगल दो दासियाँ, पीछे मुन्ना। दो सिपाही आगे, दो पीछे। पुरानी अट्टालिका से नयी चार फर्लांग के फासले पर है। पालकी नयी अट्टालिका के अन्दर के उद्यान में आयी। गुलाबों की क्यारियों के बीच से गुजरती हुई खिड़की के विशाल ज़ीने पर लगा दी गयी। सिपाही और कहार हट गये। जिस बाजू लगी, उधर की दासी ने दरवाजा खोला। मुन्ना पानदान लिये हुए सामने आयी और उतरने के लिए कहा। बुआ उतरीं।

दूसरी तरफवाली दासी रानी साहबा को खबर देने के लिए रनवास चली गयी थी। रानी साहबा तख्त की गद्दी पर बैठी थीं। लापरवाही से, ले आने के लिए कहा। उनकी लड़की, राजकुमारी, बुला ली गयी थीं। माता की बगल में बुआवाली चौकी से कुछ हटकर, एक सोफा डलवाकर बैठी थीं।

दासी बुआ को लेकर चली, साथ मुन्ना। बुआ पर प्रभाव पड़ने पर भी मन में धर्म की ही विजय हुई थी। उनका भतीजा ब्याहा हुआ है जिसके इन्होंने पैर पूजे हैं। ये उससे और उसकी माँ से बराबरी का दावा नहीं कर सकते, बुआ तो उनके इष्टदेवता से भी बढ़कर हैं।

भाव में तनी हुई बुआ रनवास के भीतर गयीं। वह समझे हुए थीं, समधिन मिलेंगी, भेंट देंगी, आदर से ऊँचे आसन पर बैठालेंगी, तब उससे कुछ नीची जगह पर बैठेंगी; जाति की हैं, जाति की बर्तावबाली बातें जानती हैं, इसीलिए मुन्ना की बातें कुछ समझकर भी अनसुनी कर गयी थीं; सोचा था, यह बंगालिन हमारे रस्मोरवाज क्या जानती है? पर भीतर पैर रखते ही उनके होश उड़ गये। रानी साहबा पत्थर की मूर्ति की तरह मसनद पर बैठी रहीं। एक नजर उन्होंने बुआ को देख लिया, उनके चेहरे पर सुना हुआ वर्णन मिलाकर चुपचाप बैठी रहीं। राजकुमारी ने आँख ही नहीं उठायी। एक दफे माता को देखकर सिर झुका लिया। मुन्ना ने भक्ति-भाव से हाथ जोड़कर रानी साहबा को, फिर राजकुमारी को प्रणाम किया। बड़े सम्मान के स्वर से बुआ को परिचय दिया—महारानीजी, राजकुमारीजी।

बुआ पसीने-पसीने हो गयीं। कोई नहीं उठीं, उनकी बहू को भी यह सीख नहीं दी गयी। पद की मर्यादा सर हो गयी। चुपचाप दो रुपये निकाले और बहू की निछावर करके मुन्ना को देने के लिए हाथ बढ़ाया। मुन्ना घबराकर उन्हें देखने लगी। लेने के लिए हाथ नहीं बढ़ाया। यह रानी साहबा का अपमान था।

रानी साहबा देखती रहीं। चौकी की तरफ उँगली उठाकर बँगला में बैठने के लिए कहा।

बुआ को यह और बड़ा अपमान जान पड़ा। आसन नीचा था। उनकी नसों में बिजली दौड़ने लगी। वह द्रुत पद से मसनद के सिरहाने की तरफ गयीं और तकिये के पास बैठकर रानी साहबा की आँख-से-आँख मिलाते हुए कहा, "समधिन, हम वहाँ नहीं बैठेंगे। वह जगह तुम्हारी है। अगर बड़प्पन का इतना बड़ा अभिमान था तो गरीब का लड़का क्यों चुना?" रानी साहबा का पानी उतर गया। अपमान से बोल बन्द हो गया। क्षमा उनके शास्त्र में न थी। दाँत पीसकर आधी बंगला आधी हिन्दी में कहा, "तुम्हारा नाक पर क्या है, तुम्हारा गाल पर किसका दाग है?"

"यहीं की तरह औरत पर हुए अपमान के दाग हैं। लेकिन हमारा चेहरा तुम्हारे दामाद से मिलता-जुलता भी है?—जैसा हमारा, हमारे भाई का, वैसा ही उसका; वह चेहरा भी ब्याह से पहले तुम लोगों को कैसे पसन्द आ गया?"

रानी साहबा पर जैसे घड़ों पानी पड़ा। राजकुमारी झेंपकर उठकर चल दीं। शोर-गुल होते ही कई दासियाँ दौड़ीं। रानी साहबा ने बुआ को उसी वक्त ले जाने की आज्ञा दी।

बुआ दूसरे कमरे में ले जायी गयीं। बाँदियों ने अपनी एक चटाई बिछा दी। बुआ ने वहाँ कोई विचार न किया। बैठ गयीं। रनवास गर्म हो रहा था। राजकुमारी ने अपने पति से शिकायत की—बुआजी असभ्य हैं। दामाद साहब के मन में यह धारणा जड़ पकड़ चुकी थी। उन्होंने बात को दोहराया। अब रानी साहबा भी आ गयीं और अतिशयोक्ति अलंकार का सहारा लिया।—बुआ रानी साहबा पर चढ़ बैठीं, गद्दी का सरहाना दबाकर उनका अपमान किया, अपशब्द कहे, रानी साहबा ने उन्हें अपनी पालकी भेजकर बुलाया था, बैठने के लिए चन्दन की

जड़ाऊ चौकी रखवायी थी, भूत झाड़ने की तरह एक या दो रुपये लेकर राजकुमारी के सिर पर मुट्ठी घुमाने लगीं, फिर मुन्ना दासी को देना चाहा, दासी ने नहीं लिया, वह कैसे ले सकती थी, फिर तरह-तरह की बातें सुनायीं जो गालियों से बढ़कर थीं। दामाद साहब ने सलाह दी, अब बिदा कर देना चाहिए। रानी साहबा इस पर सहमत नहीं हुईं। कहा—आदमी बनाकर भेजना अच्छा होगा। फिर कहा, जायगी भी कहाँ ?—तुम्हारी सगी बुआ है, अदबकरीने सीख जायगी तो विभा (विभावती राजकुमारी) की मदद किया करेगी। रानी साहबा की सहानुभूति से दामाद साहब ने प्रसन्न होकर सम्मति दी।

एक दूसरे कमरे में रानी साहबा ने मुन्ना को बुलाया और बुआ के सुधार के लिए आवश्यक शिक्षा दी। मुन्ना ने उनसे बढ़कर कहा कि लाख बार समझाने पर भी बुआ ने कहना नहीं माना। मुन्ना रोज बीसियों दफे उन पर रानी साहबा का बड़प्पन चढ़ाती थी; पर वह सुनी-अनसुनी कर जाती थीं। रानी साहबा ने अब के उपदेश के साथ अपने सम्मान से काम लेने के लिए कहा, जैसे स्वयं वह रानी साहबा हो।

इस बार बड़ी पालकी की जगह साधारण चार कहारोंवाली पालकी आयी। सिपाही और दासियाँ नदारद, सिर्फ मुन्ना। बुआ चुपचाप बैठकर चली आयीं।

तीन

ब्याह के बाद जागीरदार राजा राजेन्द्रप्रताप कलकत्ता गये। आवश्यक काम था। जमींदारों की तरफ से गुप्त बुलावा था। सभा थी।

मध्य कलकत्ता में एक आलीशान कोठी उन्होंने खरीदी थी। ऐशो-इशरत के साधन वहाँ सुलभ थे, राजा-रईस और साहब-सूबों से मिलने का भी सुभीता था, इसलिए साल में आठ महीने यहीं रहते थे। परिवार भी रहता था। राजकुमार इस समय वहीं पढ़ते थे। ये अपनी बहन से बड़े थे, पर अभी ब्याह न हुआ था। यह कोठी और सजी रहती थी।

बंगाल की इस समय की स्थिति उल्लेखनीय है। उन्नीसवीं सदी का परार्द्ध बंगाल और बंगालियों के उत्थान का स्वर्णयुग है। यह बीसवीं सदी का प्रारम्भ ही था। लार्ड कर्जन भारत के बड़े लाट थे। कलकत्ता राजधानी थी। सारे भारत पर बंगालियों की अँगरेजी का प्रभाव था। संसार-प्रसिद्धि में भी बंगाली देश में आगे थे। राजा राममोहन राय की प्रतिभा का प्रकाश भर चुका था। प्रिन्स द्वारकानाथ ठाकुर का जमाना बीत चुका था। आचार्य केशवचन्द्र सेन विश्वविश्रुत होकर दिवंगत हो चुके थे। श्रीरामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानन्द की अतिमानवीय शक्ति की धाक सारे संसार पर जम चुकी थी। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर

की बंगला, माइकेल मधुसूदनदत्त के पद्य, बंकिमचन्द्र चटर्जी के उपन्यास और गिरीशचन्द्र घोष के नाटक जागरण के लिए सूर्य की किरणों का काम कर रहे थे। घर-घर साहित्य-राजनीति की चर्चा थी। बंगाली अपने को प्रबुद्ध समझने लगे थे। अपमान का जवाब भी देने लगे थे। अखबारों की बाढ़ आ गयी थी। रविन्द्रनाथ के साहित्य का प्रचण्ड सूर्य मध्य आकाश पर आ रहा था। डी. एल. राय की नाटकीय तेजस्विता फैल चली थी। सारे बंगाल पर गौरव छाया हुआ था। परवर्ती दोनों साहित्यिकों से लोगों के हृदयों में अपार आशाएँ बँध रही थीं। दोनों के पद्य कण्ठहार हो रहे थे। जातीय सभा कांग्रेस का भी समादर बढ़ गया था। उसमें जाति के यथार्थ प्रगति के भी सेवक आ गये थे।

इसी समय लार्ड कर्जन ने बंग-भंग किया। राजनीति के समर्थ आलोचकों ने निश्चय किया कि इसका परिणाम बंगाल के लिए अनर्थकर है। बंगाल के स्थायी बन्दोबस्त की जड़ मारने के लिए यह चाल चली गयी है। यद्यपि लार्ड कर्जन का मूँछ मुड़ानेवाला फैशन बंगाल में जोरों से चल गया था—मिलनेवाले कर्मचारी और जमींदार लाट साहब को खुश करने के लिए दाढ़ी-मूँछों से सफाचट हो रहे थे, फिर भी बंगभंगवाला धक्का सँभाले न सँभला। वे समझे कि चालाक अँगरेज किसी रोज उन्हें उनके अधिकार से उखाड़कर दम लेंगे। चिरस्थायी स्वत्व के मालिक बड़े-बड़े जमींदार ही नहीं मध्यवित्त साधारण जन भी थे। इसलिए यह विभाजन की आग छोटे-बड़े सभी के दिलों में एक साथ जल उठी। कवियों ने सहयोगपूर्वक देश-प्रेम के गीत रचने शुरू किये। संवाद-पत्र प्रकाश्य और गुप्त रूप से उत्तेजना फैलाने लगे। जगह-जगह गुप्त बैठकें होने लगीं। कामयाबी के लिए विधेय-अविधेय तरीके अख्तियार किये जाने लगे। संघ-बद्ध होकर विद्यार्थी गीत गाते हुए लोगों को उत्साहित करने लगे। अँगरेजों के किये अपमान के जवाब में विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार की प्रतिज्ञाएँ हुईं, लोगों ने खरीदना छोड़ा। साथ ही स्वदेशी के प्रचार के कार्य भी परिणत किये जाने लगे। गाँव-गाँव में इसके केन्द्र खोले गये। कार्यकर्ता उत्साह से नयी काया में जान फूँकने लगे।

विज्ञान की उस समय भी हिन्दुस्तानियों के लिए काफी तरक्की हो चुकी थी, पर मोटरों की इतनी भरमार न थी। हवाई जहाज थे ही नहीं। तब कलकत्ते में बग्घियाँ चलती थीं। बाद को मोटरें हो जाने पर भी रईसों का विश्वास था, बग्घी रईसों के अधिक अनुकूल है, इससे आबरू रहती है। राजा साहब ने कई शानदार बग्घियाँ रक्खी थीं, कीमती घोड़ों से अस्तबल भरा था। शराब और वेश्या का खर्च उन दिनों चरम सीमा पर था। मांस, मछली, सब्जी और फलों के गर्म और क्रीम और बर्फदार ठण्ढे इतने प्रकार के भोजन बनते थे कि खाने में अधिकांश का प्रदर्शन मात्र होता था; वे नौकरों के हिस्से में आकर भी बच जाते थे। फूल और सुगन्धियों का खर्च अब शतांश भी नहीं रहा। पुरस्कार इतने दिये जाते थे कि एक-एक जगह के दान से नर्तकियों और गवैयों का एक-एक साल का खर्च चल जाता था। आमन्त्रित सभी राजे-रईस व्यवहार में हजारों के वारे-न्यारे कर देते थे। अगर स्वार्थ को गहरा धक्का न लगा होता तो ये जमींदार स्वदेशी-आन्दोलन में कदापि शरीक न हुए होते। इन्होंने साथ भी पीठ बचाकर दिया था। सामने

आग में झुक जाने के लिए युवक-समाज था। प्रेरणा देनेवाले थे राजनैतिक वकील और बैरिस्टर। आज की दृष्टि से वह भावुकता का ही उद्गार था। सन् सत्तावन के गदर से महात्मा गांधी के आखिरी राजनीतिक आन्दोलन तक, स्वत्व के स्वार्थ में, धार्मिक भावना ने ही जनता का रुख फेरा है। इसको आधुनिक आलोचक उत्कृष्ट राजनीतिक महत्त्व न देगा। स्वदेशी आन्दोलन स्थायी स्वत्व के आधार पर चला था। उससे बिना घरबार के, जमींदारों के आश्रय में रहनेवाले, दलित, अधिकांश किसानों को फायदा न था। उनमें हिन्दू भी काफी थे, पर मुसलमानों की संख्या बड़ी थी, जो मुसलमानों के शासनकाल में, देशों के सुधार के लोभ से या जमींदार हिन्दुओं से बदला चुकाने के अभिप्राय से मुसलमान हो गये थे। बंगाल के अब तक के निर्मित साहित्य में इनका कोई स्थान न था, उलटे मुसलमानी प्रभुत्व से बदला चुकाने की नीयत से लिखे गये बंकिम के साहित्य में इनकी मुखालिफ़त ही हुई थी। शूद्र कही जानेवाली अन्य दलित जातियों का आध्यात्मिक उन्नयन, वैष्णव-धर्म के द्वारा जैसा, श्रीरामकृष्ण और विवेकानन्द के द्वारा हुआ था, पर उनकी सामाजिक स्थिति में कोई प्रतिष्ठा न हुई थी, न साहित्य में वे मर्यादित हो सके थे। ब्राह्मण-समाज ने काफी उदारता दिखायी थी, आर्य-समाज का भी थोड़ा-बहुत प्रचार हुआ था, पर इनसे व्यापक फलोदय न हो पाया था। ब्राह्म समाज क्रिश्चन होनेवाले बंगालियों के भारतीय-धर्म-रक्षण का एक साधन, एक सुधार होकर रहा। इसमें सम्मिलित होनेवाले अधिकांश विलायत से लौटे उच्च-शिक्षित थे। मुख्य बात यह कि परिस्थितियों की अनुकूलता के बिना उचित राष्ट्रीय संगठन नहीं हो सकता, न हो सका। हिंसात्मक जो भावना स्वतन्त्रता की कुंजी के रूप में प्रचारित हुई, वह संगठनात्मक राष्ट्रीय महत्त्व कम रखती थी। गांधीजी का असहयोग इसी की प्रतिक्रिया है, पर इसकी एकता की जड़ और गहरे पहुँची थी।

अस्तु, इस समय गुप्त सभाओं का जैसा क्रम चला वैसा और उतना सिराजउद्दौला के समय अँगरेजों की मदद के लिए भी नहीं चला। कुछ ही दिनों में राजों, रईसों और वकील-बैरिस्टरों से मिलने पर, राजा राजेन्द्रप्रताप की समझ में आ गया कि देश को साथ देना चाहिए। चिरस्थायी स्वत्व की रक्षा ही देश की रक्षा है, इस पर उन्हें जरा भी सन्देह नहीं रहा। बहुत जगह दावतें हुईं, बहुत बार प्रतिज्ञाएँ की गयीं। वकील और बैरिस्टरों के समझाने से दूसरे-दूसरे जमींदारों की तरह राजा राजेन्द्रप्रताप भी समझे, उन्हें कोई खतरा नहीं। जिस मदद के लिए वह बात दे चुके हैं, पुलिस को उसकी खबर नहीं हो सकती, पुलिस उन्हें पकड़ नहीं सकती।

दूसरों की तरह राजेन्द्रप्रताप ने भी दावत दी। कोठी सजी। कलकत्ता के और वहाँ आये हुए बंगाल के जमींदार आमन्त्रित हुए। निमन्त्रण-पत्र में लिखा गया, राजकुमारी के ब्याह की दावत है। अच्छे पाचक बुलाये गये। राजभोग पका। विलायत की कीमती शराबें आयीं और कलकत्ता की सुप्रसिद्ध गायिका वेश्याएँ। विशाल अहाते में जमींदारों की बग्घियों का ताँता लग गया। प्रचण्ड रोशनी हुई। आलीशान बैठक में राजे और जमींदार गद्दियों पर तकियों के सहारे बैठे। शराब

ढलने लगी। गायिकाओं के नृत्य और गीत होने लगे। कुछ ही समय में भोजन का बुलावा हुआ। राजसी ठाट के आसन लगे थे। सोने और चाँदी के बरतनों में भोजन लगाकर लाया गया। सबने प्रशंसा करते हुए भोजन पाया। इशारे से बातचीत होती रही। सब-के-सब एकमत थे। भोजन के बाद थोड़ी देर तक गाना सुनकर, सभी श्रेणियों के लोगों को इनाम देकर जमींदार लोग अपनी-अपनी कोठियों को रवाने हुए। गायिकाएँ भी गयीं। केवल एक आदमी बैठा रहा। वह कलकत्ते का एक प्रसिद्ध बैरिस्टर है। उस समय कमरे में कोई न था।

उसने राजेन्द्रप्रताप से कहा, "हमको जगह चाहिए। आप लोगों के पास जगह की कमी नहीं। वहाँ कार्यकर्ता छिपकर काम करेंगे। आप उनकी निगरानी रख सकते हैं।"

"हाँ।"

"जगह आप लोग देंगे, आदमी हम। आपमें जो कलकत्ते के रहनेवाले हैं, वे अपनी कोठियों में जगह नहीं दे सकते। उनसे हम रुपया लेंगे और किराये की कोठियों में काम करेंगे।"

"हाँ।" राजेन्द्रप्रताप को विश्वास था कि वे दो-चार को क्या बीसियों आदमियों को छिपा दे सकते हैं। गढ़ के भीतर पुलिस के आने तक वे आदमी बाहर निकाल दिये जा सकते हैं, माल गहरे तालाब में फेंकवा दिया जा सकता है। पूर्वपुरुषों से जमींदारों की दुस्साहस्किता की जो बातें वह सुन चुके हैं और खुद कर चुके हैं, उनके सामने ये नगण्य हैं।

"सारा देश साथ है।" बैरिस्टर ने कहा, "घबराइयेगा नहीं। हमारे आदमी पकड़ जायँगे तो अपने पर ही कुल जिम्मेवारी लेंगे। आपको पकड़ायेंगे नहीं। कोठी में भी पकड़े जायँगे तो उनका यही कहना होगा कि वे एकान्त देखकर अपनी इच्छा से गये थे।"

राजा राजेन्द्रप्रताप को विश्वास का बल मिला। बैरिस्टर कहते गये, "किसी तरह की अनहोनी होती दिखे तो आप उन्हें जल्द सूचित कर दें।"

राजा साहब ने सम्मति दी। बैरिस्टर ने कहा, "जो आदमी वहाँ आपसे मिलेगा, वह आज से चौथे दिन तारकनाथ का आदमी कहकर मिलेगा। उसका नाम प्रभाकर है। उसके साथ तीन आदमी और होंगे। सामान की व्यवस्था की हुई रहेगी; भीतर ले जाने, ले आने और भोजन-पान का इन्तजाम आप करा दीजियेगा; साथ इस तरह कि भेद न खुले, बहुत विश्वासी आदमी काम में रहें जिनके जीवन की बागडोर आपके हाथ में हो। समझते हैं?"

"हाँ, हमारा सम्बन्ध तो आपको मालूम है।" राजा साहब मुस्कराये। बैरिस्टर साहब ने कुछ देर तक ऐसी ही बातचीत की, फिर बिदा हुए।

राजा राजेन्द्रप्रताप के कोचमैन मुसलमान हैं। तीन बग्घियाँ और आठ घोड़े कलकत्ता में हैं, कुछ अधिक, राजधानी में। अली एक कोचमैन हैं। इनके पिता लखनऊ में रहते थे, पूर्वज ईरान के रहनेवाले; बाद को शाह वाजिदअली के न रहने पर, मटियाबुर्ज चले आये। शाही खानदान के दरजी। कपड़े अच्छे सीते थे। अली आवारगी-पसन्द थे, सुई नहीं चला सके, घोड़े की लगाम थामी। हिन्दू भी आदमी हैं, यह धर्मानुसार समझ में नहीं आया। हिन्दू की आख्या गुलाम से बढ़कर नहीं कि ! अँगरेजों से लड़ाई में मुसलमान हारे, इसकी वजह हिन्दुओं की बेईमानी है, ऐसे विचार पाले रहे। फिर भी खामोशी से काम करते हुए गुजर करते रहे यानी मालिकों से काम के अलावा दूसरी बात न की। किसी हिन्दू को कभी राज नहीं दिया, बल्कि लिया, और बड़ी सफाई से, भलमंसाहत के बहाने।

बंगालियों की बढ़ती से अली इस नतीजे पर आये कि बिना अँगरेजी के चूल न बैठेगी। दूर तक पहुँच न थी, पुलिस के मुसलमान दारोगा को राज देने और उनके इशारे पर काम करने-कराने लगे। उन्हें एके की कुंजी मिली। जमींदारी हिन्दुओं की, कारोबार हिन्दुओं का, बड़ी-बड़ी नौकरियों पर हिन्दू, वकील-बैरिस्टर-डाक्टर-प्रोफेसर भी हिन्दू। यही हिन्दू अँगरेजों से मिले और मुसलमानों से दगा की। अली की आँख खुल गयी। यह मिलने का नतीजा है कि चारों तरफ हिन्दू मँडला रहे हैं। सरकार हरएक की है। भूखों मरनेवाले भूखों न मरेंगे अगर सरकार को साथ दिया। सरकार ने बंगाल के दो हिस्से किये हैं, यह मुसलमानों के फायदे के लिए। आये दिन ये जमीनें मुसलमानों की। जमींदारी का यह कानून न रहेगा। नवाबों से सारी मुसलमान रैयत को फायदा नहीं पहुँचा। नक्शा आँख के सामने आया। बादशाहत से वह दब गया था। कुछ यहाँ सुना, कुछ वहाँ; कुछ अपनी तरफ से सोचा। स्वदेशी का आन्दोलन चल चुका था। बातें मुसलमान और इतरवर्ग के नेता फैला रहे थे। अँगरेजी शासन के प्रारम्भ से ऐसी तोड़वाली बातों का महत्त्व है।

अली को कामयाबी हुई। लड़का पढ़ रहा था, एण्ट्रेन्स में 2 साल की उम्र में फेल हुआ, थानेदारी के लिए चुन लिया गया। उन्होंने देखा था, उनके राज से थानेदार इन्स्पेक्टर हो गये थे; वह अपने लड़के को राज देने लगे। पहले मालिक की गरदन नापी। सोचा, आसामी बड़ा है, तरक्की लम्बी होगी। आन्दोलन का हाल मालूम था। राजा साहब जहाँ-जहाँ गये थे, लड़के से कहा। कोठी में जिनकी-जिनकी बग्घी आयी थी बतलाया। मुसलमान कोचमैनों के नाम लिखवाये, भीतरी सूरत से गवाही लेने के लिए। फिर कहा, राजा थियेटर-रोडवाली मशहूर तवायफ एजाज़ के घर जाता है, वह भी कभी-कभी कोठी आती है, कभी अपने वहाँ, बिलासपुर, साथ ले जाता है, वहाँ महीनों ठहरती है।

पुत्र ने गम्भीर होकर कहा, सरकार से बगावत की तो मिट जायगा। खैर राज भी खुल जायगा। आप आराम कीजिए।

अली के लड़के का नाम यूसुफ है। पर हैं बदशक्ल। अली भी शक्ल से ईरानी नहीं मालूम होते। मुसलमान तोड़े कसते हैं। अली हिन्दुस्तान पर बुखार उतारते हैं—ऐसा मुल्क है कि हुमा भी चुग्द की शक्ल में बदल जाता है। फिर फ़ारिस के मशहूर लोगों को अपने खानदान का करार देकर उनके रंग और रूप की तारीफ करते हैं।

यूसुफ ने कसकर डायरी लिखी। फिर मामले में हाथ लगाने की देर तक सोचते रहे। उनके हलक़े में न राजा राजेन्द्रप्रताप की कोठी आती थी, न एजाज़ की। वह थाने के बड़े थानेदार भी न थे। उनसे बड़े जो दो-तीन अफसर थे, कुल-के-कुल बंगाली। वह खिंचे। कमिश्नर से मिलने की सोची, पर हिम्मत न हुई। कोई राज सरकार के खिलाफ नहीं मालूम हुआ। अभी सुबूत भी नहीं। आसामी बड़े-बड़े हैं। बाप नौकर। धेले की बुलबुल हाथ न लगे और टका हुशकाई पड़ जाय, पुलिस की आँख में गिर जाना है।

उन्हें हिम्मत हुई। एजाज़ मुसलमान है। इससे काम निकल सकता है। फिर कच्चे पड़े। उसका राज किसी बड़े मुसलमान के यहाँ रहता होगा। सीधी बात-चीत करेंगे तो पकड़ जायँगे। कुछ देर कशमकश में रहे। फिर रहा नहीं गया। शिकार हाथ से निकल जायगा। किसी बड़े के कान में बात पड़ी तो अपना बस न रहेगा और नामवरी भी शिकार में हाँकेवालों की रहेगी। बड़ा नाजुक वक्त है, सरकार को सुबूत दिलाया जा सका तो रात-भर में महल खड़ा हो जायगा।

यूसुफ पिता के कमरे में गये। अली की आँख न लगी थी। आवाज पर उठे। यूसुफ बैठे, कहा, "उस रण्डी को एक दफा हलक़े में ले आना है; झाबरमल डागा या जौहरी को फाँसिये। उसका मुजरा करायें।"

अली की निगाह बदली। कहा, "अबे उल्लू के पट्ठे, वहीं ढेर हुआ जहाँ दुश्मन। ये बक्काल बात पर आयेंगे। ये बड़े आदमी हैं। इनका राज बड़ों में रहता है। यों पर बँध जाते हैं। भेद खुल जायगा। बात मान, मछुआ बाजार के गुण्डों से काम ले। शिकायत लिखवा, देख, कैसी बेपर की उड़ाते हैं। उसका भी कुछ राज लिया या खातून समझ बैठा?" अली ने करवट बदली। यूसुफ चले आये।

पाँच

दूसरे दिन कुछ गुण्डों की मदद ली। भले-आदमी बने रहनेवाले दो आदमी फँसे। उन्होंने रपोट लिखवायी। कुछ पढ़े-लिखे थे, पर बायाँ अँगूठा घिसकर गये थे। अँगूठे का निशान लगाया। गुण्डों ने कहा, "हुजूर का काम हो गया, अब चड्ढी गठ गयी।" बाहर निकलकर कहा, "अब, बेटो, साल-भर इनके सिर चढ़े घूमो। फिर यही बँधे या तुम। तुम न बँधोगे। यह फँसेगा नया थानेदार। अब चलो,

शराब पिला दो, अब जल्द इस हल्क़े से कुछ काम लो।" ग़नी ने रुस्तम से कहा, "दाम दे दे। उस्ताद ख़रीद लेंगे।" रुस्तम ने पाँच रुपये का नोट उस्ताद क़मर को दिया।

क़मर को मालूम था, एजाज़ शरीफ है, शहर में उसकी इज्जत है, गाने में लासानी, उसके खाते में दर्ज है---पहला नाम, इनाम भी देती जाती है हर महीने बीस रुपये। सोचा, अच्छे-खासे रईस की हैसियत उसकी, 400) महीने का अँगरेजी-पढ़ा सिकत्तर रक्खे है, यह थानेदार चपेट में आयेगा। मामला जैसा भी हो, मालूम हो जायगा। सोचता, लापरवाही से साथियों के साथ बढ़ता हुआ, देशी शराब की दूकान की तरफ मुड़ा और भीतर घुसकर दो आदमियों से दो बोतलें खरीदीं, तब सस्ती थीं। वहाँ से बाजार की तरफ चला।

एजाज़, देखते-देखते मशहूर हो गयी। वह एक बड़े तवायफ की बेटी है। शिक्षा कायदे से हुई है। उर्दू, बंगला और अंगरेजी अच्छी जानती है। गाने-बजाने की भी बड़े-बड़े उस्तादों से तालीम मिली है। नये-पुराने दोनों तरह के गाने जानती है। बेजोड़ सुन्दरी। गोराई काफी निखरी हुई। उँगलियाँ, हाथ, पैर, गला, नाक, आँखें, भौंहें, सब लम्बी-लम्बी, जैसे चम्पे की कली। पहनावा भी वैसा ही लम्बा। प्रान्त-प्रान्त और देश-देश का पहनावा करनेवाली। उम्र 30 साल की होगी। साल-भर से राजा राजेन्द्रप्रताप की नौकर है। दो हजार महीना लेती है। साथ बाहर भी जाती है और राजधानी भी। राजधानी में उसके लिए अलग बँगला है। कुछ महीनों से राजा साहब ने दूसरी महफिल का गाना रोक दिया है। कलकत्ते में उसकी अपनी आलीशान कोठी है। चारों ओर लान, बगीचा। फौवारे लगे हुए। गुलाब और ऋतु-पुष्पों के पेड़। पत्थर की परियों की नंगी मूर्तियाँ। गाड़ी-बरामदा। नीचे और ऊपर सजी हुई बैठकें। विभिन्न प्रकार के साज। सुन्दर-सुन्दर तैल-चित्र। फाटक पर सन्तरियों का पहरा। दास और दासियाँ।

गाड़ी-बरामदे की ऊपरवाली छत पर फूलों के टब रक्खे हुए हैं। मेज पर दस्तर-खान बिछा हुआ है। गुलाब की सजी फूलदानी रक्खी हुई है। गिलास में रोजेड बर्फ-मिला रक्खा है। अभी लाल फेन नहीं मिटा। सूरज डूब चुका है, फिर भी उजाला है। सड़क के आदमी देख पड़ते हैं। मन्द-मन्द दखिनाव चल रहा है। एक-एक झोंके से कविता आकर गले लगती है। एजाज़ बैठी हुई गिलास के फूटते हुए फेन के बुलबुले देख रही है। रसीली आँखों से, मालूम नहीं कौन-सा विचार लगा हुआ है। एक कनीज खड़ी हुई आज्ञा की प्रतीक्षा कर रही है।

इसी समय यूसुफ फाटक पर देख पड़े। एजाज़ ने देखा, फिर आँखें फेर लीं। यूसुफ ने एजाज़ को नहीं देखा। सन्तरी के पास कुछ सिकण्ड के लिए खड़े हुए। मिलना चाहते हैं, कहा। सन्तरी ने सिर हिलाकर भीतर जाने का इशारा किया। यूसुफ निकल गये। पोर्टिको से बरामदे पर गये। कुर्सियाँ रक्खी थीं। एक बेयरा खड़ा था। आदर से बैठने के लिए कहा। यूसुफ बैठे। बेयरा ने कार्ड माँगा। कार्ड यूसुफ के पास नहीं था। उन्होंने कहा, सरकारी काम है।

रण्डी सरकारी काम में आ सकती है, कोई बड़ा काम होगा, जो मर्दों का किया हुआ नहीं पूरा हुआ, सोचता हुआ वह सिकत्तर के कमरे में गया। "खबर

दी, एक साहब तशरीफ ले आये हैं," कार्ड माँगने पर कहा, "सरकारी काम है।"

सेक्रेटरी का खास वक्त यही है, शाम के चार से रात के दस तक। इसी वक्त वह आफिस करते हैं। पत्रों के जवाब लिखते हैं, मिलनेवालों से बातचीत करते हैं। अपने कमरे से उठकर बाहर आये। यूसुफ साहब से हाथ मिलाया। पूछा, "जनाब का नाम ?"

"हाँ, एक है, मगर इस वक्त तो यही कि हम सरकारी।"

सेक्रेटरी कुछ सिकण्ड देखते रहे। पूछा, "क्या हुक्म है ?"

"हम मालिका-मकान से मिलना चाहते हैं।"

"उस वक्त दूसरा भी कोई होगा ?"

"नहीं।"

"यह नहीं हो सकता। आपको अपना कुछ पता देना होगा अगर आप अपना नाम नहीं बतलाना चाहते। फिर किस सरकारी काम से यहाँ आने की ज़हमत गवारा की, फर्माना होगा और मुझसे। मैं उनसे अर्ज करूँगा फिर उनका जवाब आपको सुनाऊँगा।"

"यह ऐसा काम नहीं।"

"मान लीजिए, वह नौकर हैं, खातून की हैसियत से रहने की कैद है।"

"आप पहले फर्मा चुके हैं, कोई दूसरे रहेंगे तो मैं उनसे बातचीत कर सकता हूँ। फिर कहा, मैं आपसे कुल बातें कह दूँ, आप जवाब ला देंगे अपना नाम या पता बताने के बाद। यह शायद किसी खास दरजे की खातून के बर्ताव में आता है ?"

"गुस्ताखी मुआफ फर्माएँ। रण्डी का मकान समझकर कितने ही लुच्चे आते हैं। हमें पेशबन्दी रखनी पड़ती है। सरकारी काम की पाबन्दी हमें कुबूल है, लेकिन वह कैसा सरकारी काम है, यह आप उन्हीं से कहेंगे, मैं उनका सेक्रेटरी हूँ, मुझसे नहीं; मेरे सामने भी आपको कहना मंजूर नहीं। ऐसी हालत में मैं आपको लुच्चा न समझकर सरकारी काम से आया हुआ अफसर समझूँ। मैंने कहा, वह नौकर हैं, खातून की तरह रहती हैं। इसपर भी आपने एक तुर्रा कस दिया। एक भले आदमी की तरह इतना समझने की तकलीफ भी आपको गवारा नहीं हुई कि जिन्होंने मालिका-मकान को नौकर रक्खा है, उन्हें उनकी बेपर्दगी, पसन्द न होगी, दोनों में नौकरी की शर्तें होंगी।"

"मैं समझा। अफसर को गाली आपने दी। अफसर क्या है, यह आपको अच्छी तरह मालूम होगा। अफसर इस तरह नहीं आता, न यों जवाब देता है। वह अपनी जगह पर बुलायेगा और नौकरी की कुल शर्तों को तोड़कर खातून साहबा को चलकर मिलना होगा। उस वक्त हम कुछ ऐसी तैयारी ला देंगे कि खातून साहबा उम्र-भर याद रक्खेंगी। हम कोई हैं और दर्ज होकर आये हैं। लौटकर कुछ लिखेंगे और भेजेंगे। आप सिकत्तर हैं, इसलिए मिल सकते हैं, और हम सरकारी काम से आये हैं, इसलिए नहीं मिल सकते। आपको खौफ है, जैसे हम कोई चाकू लिये हुए हैं और उनकी नाक काट लेंगे।"

यूसुफ की दहाड़ से सेक्रेटरी साहब दबे। कहा, "हमें जैसी हिदायत है, हमने आपसे अर्ज कर दी।"

फिर सँभलकर बोले, "अफसर जब बुलायेंगे, तब लिखकर बुलायेंगे या अपने नाम से आदमी भेजकर। मेरी समझ में नहीं आता, अफसर का बुलावा खुफिया तौर से कैसे होगा। फिर, जवाब मुख्तार आम से भी दिया जा सकता है या इन्हीं को हाजिरी बजानी पड़ेगी?"

"आप यह नहीं समझे कि सरकार मुख्तार आम का पेश होना मंजूर कर भी सकती है और नहीं भी। आप जैसी बातें कर रहे हैं, इनसे उलझन बढ़ती है। नतीजा साफ है, आपके हक में कैसा होगा। तैयार रहिए।"

"हम इतना जानते हैं, कई हजार रुपये हम इन्कम-टैक्स देते हैं; सरकार की निगाह में इसकी इज्जत है। फिर आपको कुल माजरा समझा दिया गया है। एक प्रोविन्शल मेरे साथ भी है। अच्छी बात, अब मैं आपसे समझूँगा। तैयार रहिए। आप अपना भेद नहीं बताना चाहते, मैं कहता हूँ, बगैर कुछ भेद दिये आप बचकर नहीं निकल सकते।"

थानेदार घबराये। फिर हिम्मत बाँधकर कहा, "हम जब यहाँ आये, समझिए, रत्ती-रत्ती हाल मालूम करके। हम अन्धे नहीं। सच, आपके मकान का ठाट आपकी हैसियत बयान कर रहा है। मगर हमारी बात मानियेगा तभी फायदा उठाइयेगा, सरकार के यहाँ नेक-नामी लिखी जायगी।"

"जब तक हमें इसका गुमाँ भी न होगा कि आप कौन हैं, हम आपके साथ लगे-लगाये रहेंगे। उधर हमारे पैर तभी उठ सकते हैं जब हमें कुछ राज मिल जायगा।"

"इस तरह से मिलने एक ही महकमे के आदमी आते हैं। नाम वह कभी नहीं बतायेंगे, सिर्फ काम बतला जायेंगे। कर दिया तो नेक-नामी, न किया या धोखा दिया तो इसकी सजा है। समझिए—हम-पुली···।"

"आप जो काम बतला जायँगे, उसका हासिल मालूम करने के लिए आप ही जायँगे या कोई दूसरे?"

"हमीं आयँगे; मुमकिन, और आदमी हमारे साथ हों। बाद को, गिरह पड़ गयी तो बड़े साहब भी आ सकते हैं।"

सेक्रेटरी उठकर अपने कमरे में गया। दिन, तारीख, मास, साल, समय और पुली के नाम से कही हुई उस आदमी की कुल बातें उसकी शक्ल के वर्णन के साथ लिख लीं। एक सिपाही को बुलाकर कहा, "तुम दो-तीन छिपे तौर से इस आदमी का हाल मालूम करो, पूरा पता ला सके तो इनाम मिलेगा। आदमी बरामदे में बैठा है। कोई छेड़ न करना।"

फिर बाईजी के पास खबर भेजी कि जरूरी काम से मिलना है। एजाज़ ने बुला भेजा। सिकत्तर साहब गये। उसने मेज की बगलवाली कुर्सी पर बैठाला। सिकत्तर बैठकर एक-एक करके कुल बातें संक्षेप में सुना गये।

एजाज़ कुछ देर तक सोचती रही। फिर पूरे इतमीनान से कहा, "सिकत्तर साहब, एक राज़ और लीजिए। कहिए, वह बातचीत करने के लिए तैयार हैं अगर उस बातचीत में राजा साहब का नाम नहीं आया। गुलाबबाड़ी में एक मेज और दो कुर्सियाँ डलवा दीजिए।"

नौकर से कहकर सिकत्तर यूसुफ के पास आये। कहा, "बाईजी आपसे बात-

चीत करेंगी, शर्त एक रहेगी, आप राजा साहब के बारे में कोई बात न उठायेंगे।"

"हम किसी शर्त पर बातचीत न करेंगे," यूसुफ ने पुतलियाँ पलटकर कहा।

सिकत्तर फिर एजाज़ के पास गये। सुनकर एजाज़ ने कहा, "आप समझे?—उन्हीं की गरदन नापी जायगी। हमारा और इनका कहना लिख लीजियेगा। हम नीचे चलते हैं। लिखकर सभ्यता से उन्हें भेज दीजिए; गुलशन ले आयेगी। आदमियों से कह दीजियेगा, होशियारी रक्खें।"

एजाज़ गुलाबबाड़ी में आकर बैठी। सिकत्तर ने लिखकर यूसुफ से आकर कहा, "सरकार की फतह रही। गुलाबबाड़ी में हैं। तशरीफ ले चलिए।" गुलशन की तरफ हाथ उठाकर कहा, "यह ले जायगी।"

गुलशन यूसुफ को ले चली। गुलाबबाड़ी में एजाज़ ने नसीम को कीमती साड़ी पहनाकर बैठाला था। बगीचे की शोभा देखते हुए यूसुफ चले। अँधेरा हो आया था। कुछ दूर एक गैस की बत्ती जल रही थी।

छह

यूसुफ फतहयाब थे—उनकी शर्तें कुबूल कर ली गयीं। गुरूर से कदम उठ रहे थे। गुलशन गुलाबबाड़ी में ले गयी। नसीम की तरफ उँगली उठाकर कहा, "आप।"

नसीम उठकर खड़ी हो गयी। बड़ी अदा से कहा, "आदाब अर्ज।"

यूसुफ बहुत खुश हुए। जवाब में हाथ उठाया, वह हाथ जैसे सरकार का हो।

नसीम ने पूछा, "हुजूर का मिजाज अच्छा?"

"खैरियत है।" थानेदार साहब ने जवाब दिया।

कुर्सी की तरफ उँगली का हल्का इशारा करके नसीम ने कहा, "हुजूर की कुर्सी।"

थानेदार साहब संजीदगी से बैठे। नसीम भी बैठी। बैठते हुए कहा, "हम हुक्म की तामील करनेवाले!"

थानेदार साहब बहुत खुश हुए। सोचा, रंग चढ़ गया; बाजी हाथ है। इधर-उधर देखा। गुलशन हट गयी थी।

"आप एजाज़ बाई हैं?" थानेदार ने पूछा।

"हुक्म।"

"काफी अरसा हुआ। दूसरा काम है। वक्त ज्यादा नहीं।" नसीम खामोश रही। थानेदार को सन्देह नहीं हुआ। वह सुन्दरी और खानदानी दिख रही थी। बातचीत साफ।

"आपकी शिकायत है।"

नसीम आँखें फाड़कर देखने लगी।

"दोस्त और दुश्मन सबके होते हैं। सरकार तहकीकात कर रही है। वक्त पर दूध और पानी अलग कर देगी।"

नसीम ने ललित स्वर से कहा, "क्या ही अच्छा हो कि इसके पूरे भेद से हम भी वाकिफ हो जायँ।"

"यह हमारे हाथ की बात नहीं। खुद हम इसके भेद से वाकिफ नहीं। पर एक सूरत हम ऐसी बतायेंगे कि शिकायत भी रफा हो जायगी और सरकार के मददगार दोस्तों में नाम दर्ज हो जायगा।"

"मेहरबानी।" नसीम ने विजयी स्वर से कहा।

"मैं मुसलमान हूँ। दूसरी शिरकत मजहबी है।"

नसीम गम्भीर हो गयी। कुर्सी पर हाथ समेटकर बैठी।

"आजकल जमींदारों और कुछ हिन्दुओं ने सरकार के खिलाफ गुटबन्दी की है। जिस जमींदार से आपके तअल्लुकात हैं, इस पर सरकार को शुभा है। इसका भेद मालूम होना चाहिए। इससे सरकार की मदद भी होगी और कौम की खिदमत भी। सरकार की मदद इस तरह कि आपके जरिये दुश्मन का राज सरकार को मिलेगा और कौम की खिदमत इस तरह की सुदेशी का बवेला जो हिन्दुओं ने मचा रक्खा है, यह जड़ से उखड़ जायगा। मुसलमान रैयत को फायदे के बदले नुकसान है अगर हिन्दुओं को कामयाबी हुई। सरकार ने बंगाल के दो हिस्से इस उसूल से किये हैं कि मुसलमान रैयत को तकलीफ है; मौरूसी बन्दोबस्तवाली 99 हर सदी जमीनों पर हिन्दुओं का दख्ल है; यह आगे चलकर न रहेगा। इससे मुसलमानों की रोटियों का सवाल हल होता है। आपके दोस्ताने के बर्ताव से दुश्मनों की की हुई शिकायत का असर जाता रहेगा, उल्टे फायदा उठाइयेगा।"

"आपकी सलाह नेक।" नसीम ने दोस्ती की आवाज में कहा।

"आदाब अर्ज।" थानेदार साहब उठकर खड़े हो गये, "अब मैं चलता हूँ। सीन याद रखियेगा। जो शख्स कहे, उसे अपना आदमी समझियेगा। उसे और कोई राज न दीजिए। सिर्फ कहिए, 'फँस गया' या 'नहीं फँसा।' पूरी बातें मैं ही मालूम करूँगा। मैं तीन और तीन कहूँगा। आप वाकिफ-हाल हैं। सहूलियत से काम लेना है। हमारे आप लोगों से गहरे तअल्लुकात रहते हैं।"

"पान-सिगरेट शौक फर्माते हैं?" थानेदार साहब चल पड़े थे, खड़े हो गये। नसीम ने सोने के पानदान से निकालकर पान दिये और डिब्बे से सिगरेट। सामने दियासलाई जलायी। थानेदार साहब ने आँखें भरकर देखा। दियासलाई के गुल होते जैसे दिल में अँधेरा छा गया।

सात

तीसरे दिन राजा साहब की चलने की तैयारी हुई। एजाज़ को भी चलना था। उससे बातचीत हो चुकी थी। उसने तैयारी कर ली। इस बार नसीम और सिकत्तर को यहीं छोड़ा। नसीम को कुल बातें लिखवा दीं। एक नकल अपने पास रक्खी। थोड़ा-सा सामान और गुलशन को लेकर जेट्टी के लिए गाड़ी पर बैठी। राजा साहब के साथ कुल सहूलियतें हैं। खुशी-खुशी चल दी। आदमियों से थानेदार साहब को भेद नहीं मालूम हो सका। फाटक के बाहर रास्ते पर भेस बदले हुए पुलिस के सिपाही थे, कुछ और आदमी। थानेदार निकलकर उल्टे रास्ते चले। काफी दूर निकल गये। फिर एक-एक छँटने लगे। थानेदार रेलवे-स्टेशन से डायमण्ड हारबर की तरफ रवाना हुए।

जेट्टी से राजा साहब का स्टीमर लगा हुआ था। आने-जाने के सुभीते के लिए उन्होंने खरीदा था। अच्छा-खासा स्टीमर, दो-मंजिला। नीचे सामान लद चुका था। सिपाही, खानसामे, बाबू, पाचक और खिदमतगार आ चुके थे। डेक की एक बगल लोहे के चूल्हों पर खाना पक रहा था। जाफरान और गर्म मसाले की खुशबू आ रही थी। ऊपरवाले डेक की सीढ़ी पर सशस्त्र पहरा लग चुका था। केबिन में और जहाज के सामने ऊपरवाले डेक पर ऊँचे गद्दे बिछ गये थे। अभी राजा साहब नहीं आये। एजाज़ की गाड़ी आयी। गुलशन ने उतरकर गाड़ी का दरवाजा खोला और कब्जा पकड़ा; सहारे के लिए बाँह की रेलिंग बन गयी। एजाज़ उतरी। लोगों की आँखें जम गयीं। रूप से हृदय भर गया। आज का पहनावा मोरपंखी है। साड़ी का वही रंग, वही बूटे, फरमाइश से तैयार की हुई। जमीन सुनहरे तारों की। सिर के कुछ बाल मोर की चोटी की तरह उठे हुए; हर डाँड़ी पर हीरे की कनियों के साथ नीलम बँधा हुआ। पैरों में कामदार मोती-जड़ी जूतियाँ। उतरकर एजाज़ मोर की ही चाल से चली। जेट्टी की एक बगल पुलिस का सिपाही खड़ा था। सलाम किया। जेट्टी और नीचेवाले डेक पर राजा के लोग खड़े थे। देखकर खुश हुए, पर मुँह फेरकर दूसरे को सुनाकर गाली दी। एजाज़ दूर थी। चलती हुई पास आयी। लोगों ने रास्ता निकाल दिया। डेक पर जाने की काठ की सीढ़ी लगा दी। उस डेक से दूसरे तले की सीढ़ी पर वह चढ़ने लगी। सिपाही ने रानी साहबा की सशस्त्र सलामी दी। हाथ उठाकर, एजाज़ ऊपर गयी। गुलशन ने पूछा, "कहाँ रहियेगा ?"

"केबिन में, जब तक राजा नहीं आते।"

"लोग अड़े हैं, कुछ उनका भी खयाल···?" कहते हुए गुलशन ने केबिन का दरवाजा खोला।

"अभी साड़ी और पहनावा देख रहे हैं," कहती हुई एजाज़ केबिन में चली गयी, "जब आदमी को देखेंगे, तब तू ही ठहरेगी। इस पहनावे से तो नहीं घिसटते ?" एजाज़ ने गुलशन की साड़ी का छोर खींचा। गुलशन मुस्करा दी। "अच्छा चलो, केबिन के सामनेवाली कुर्सी पर बैठो ज़रा देर।"

"मैं कहती हूँ, राजा साहब के आने पर डेक पर महफिल लगेगी।"

"तू राजा साहब बन जा, मैं शीशा और प्याली ले लूं।"

गुलशन भग गयी। दूसरी तरफ से बाहर निकली और कुर्सी पर बैठ गयी।

कोच-बाक्स की बगल में बैठे सिपाही ने पेटियाँ उठवाकर एजाज़ के केबिन में लगवा दीं। चलते वक्त की सलामी दी। एजाज़ ने गुलशन से बीस रुपये ले लेने के लिए कहा। 5) खुद ले, 5) कोचमैन और साईस को दे, 5) डेक के पहरेदार को, 5) पुलिस के सिपाही को।

सिपाही के चले जाने पर गुलशन को भेजकर राजा साहब के एक खिदमदगार से मालूम किया, राजा साहब और पुलिस के सिपाहियों को क्या इनाम मिला।

जेट्टी पर जहाज के ठहरने का तीन मिनट समय रह गया, राजा साहब की गाड़ी आयी। सिपाहियों और नौकरों पर अदबी सन्नाटा छा गया। रफ्तार के बढ़ने पर भी शोरोगुल का नाम न रहा। शान के कदम उठाते हुए जेट्टी से गुजरकर राजा साहब ने डेक पर चढ़नेवाला पीतल का चिकना डण्डा पकड़ा। एक बगल, साथ आये हुए सशस्त्र अर्दली और सीढ़ी के पहरेदार ने खड़े होकर बन्दूक की सलामी दी। राजा साहब सीढ़ी से चढ़े। ऊपर के डेक पर, जहाँ सीढ़ी खत्म होती है, एजाज़ खड़ी थी। उसके पीछे गुलशन। एजाज़ ने ललित सलाम किया। राजा साहब ने हथेली थाम ली। दोनों साथ-साथ सामने बिस्तर की ओर बढ़े। गद्दे पर पहले एजाज़ ने पैर रक्खा। दोनों तकिये लेकर बैठे। राजा साहब अतृप्त आँखों से एजाज़ का खुलता हुआ रूप और पहनावा देखते रहे। ज़रा देर के लिए सेक्रेटरी आये। राजा साहब ने पुलिस के लिए कहकर जहाज खोल देने की आज्ञा दी।

जेट्टी से बँधी हुई जहाज की मोटी रस्सियाँ और लोहे की साँकलें खोली गयीं। जहाज घूमा। फिर हुगली नदी से होकर दक्षिण की ओर चला। ऊपर के पीछेवाले हिस्से में सेक्रेटरी, कुछ कर्मचारी और ऊँचे पदवाले सिपाहियों के अफसर बठे। एजाज़ हुगली में बँधे हुए अँगरेज, फ्रेंच, जर्मन और अमेरिकन बड़े-बड़े जहाज देख रही थी, और उनसे होनेवाले विशाल व्यापार पर अन्दाजा लगा रही थी। मधुर दखिनाव के तेज झोंके लग रहे थे। दिल को कोई रह-रहकर गुदगुदा रहा था। जहाज फोर्ट विलियम कि ा के पास आया। किनारे लड़ाई के दो जहाज बँधे थे। इनकी बनावट दूसरी तरह की थी। रंग पानी से मिलता हुआ। एजाज़ ने चाव से इन जहाजों को देखा। एक नजर हाईकोर्ट की विशाल इमारत पर डाली। एडेन गार्डेन की याद आयी, यहाँ हवाखोरी के लिए वह बहुत आ चुकी है। यह एक शिकारगाह भी है। शाम को शहर के रईस बड़ी संख्या में आते हैं, टहलते हैं और बैण्ड सुनते हैं। जहाज तेजी से बढ़ने लगा।

राजा साहब ने घण्टी बजायी। एक बेयरा आया।

"लाल पानी," राजा साहब ने बेयरा से कहा।

बेयरा शेम्पेन की बोतल, बर्फ, छोटा टम्बलर और पेग ट्रे पर लाकर रख गया। गुलशन एजाज़ की बगल में बैठकर टम्बलर में बर्फ और शेम्पेन मिलाने लगी। पाचक ब्राह्मण कटलेट्, चाप और कबाब चाँदी की तश्तरियों पर रख गया। कहार ट्रे पर ढक्कनदार चाँदी के गिलासों में पानी ले आया। रखकर तौलिया

लेकर खड़ा रहा । गुलशन ने दो पेग भरे । एक हाथ में रक्खा, एक बढ़ाकर एजाज़ को दिया । एजाज़ ने पेग चूमकर राजा साहब के हाथ में दिया, फिर अपना लिया । गुड्लक् हुआ । दोनों पीने लगे ।

प्रायः एक डजन पेग थे । ये पिया पेग एक ही बैठक में नहीं इस्तेमाल करते । गुलशन तीसरा और चौथा पैग तैयार करने लगी । पेग खत्म करके राजा साहब ने हाथ बढ़ाया । बेयरा ने पकड़ लिया । एजाज़ ने भी बढ़ाया ।

गुलशन ने तीसरा दौर तैयार करके, चाँदी की पेग रखनेवाली रिकाब में लगाकर दोनों के बीच में रख दिया । दोनों, मौसम, गंगा, शिवपुर के बागीचे, हवा आदि का जिक्र करते हुए, साथ-साथ नाश्ता करने लगे ।

दूसरा दौर भी समाप्त हुआ; तीसरा भी हुआ । नशे का प्रभाव बढ़ने लगा । दोनों के हाथ धुला दिये गये । गिलोरी और सिगरेट की तश्तरियों को छोड़कर नौकर और कुल चीजें उठा ले गये । फिर केबिन के पास के पर्दे, आड़ के लिए खोलकर, रेलिंग के डण्डों के साथ बाँधने लगे । क़ीमती हारमोनियम लाकर रख दिया । गुलशन को छोड़कर और सब बाहर निकल गये ।

"कुछ सुनने की तबीयत हो रही है ।" राजा साहब ने प्रेम से कहा ।

एजाज़ ने गुलशन की तरफ देखा । गुलशन ने पीकदान बढ़ाया । पान थूककर एजाज़ ने कहा, "तेज हवा है । आवाज उड़ जायगी ।" कहकर हारमोनियम खोला ।

"तुम्हारा गाना है, हारमोनियम हो, पियानो या सितार-इसराज, छाकर रहेगा ।" राजा साहब ने सहृदय स्वर से बढ़ावा दिया । एजाज़ हिली ।

पर्दे पर उँगली रक्खी । कहा, "मयकशी के बाद आवाज पर काबू नहीं रहता ।" कहकर स्वर निकाला । राजा साहब तद्गतेनमनसा ध्यानावस्थित हुए ।

एजाज़ की मधुर आवाज निकली । जहाज-भर के लोग, नीचे और ऊपर के, कान लगाये रहे । गाना शुरू हुआ—

"हर एक बात प' कहते हो तुम कि तू क्या है,
तुम्हीं कहो कि यह अन्दाज़ेगुफ्तगू क्या है ?
जला है जिस्म जहाँ, दिल भी जल गया होगा,
कुरेदते हो जो अब राख जुस्तजू क्या है ?
रगों में दौड़ते फिरने के हम नहीं क़ायल,
जब आँख ही से न टपका तो फिर लहू क्या है ?"

लोगों पर सच्चा जादू चला । सभी ने दिल दे दिया, वही दिल जो हाथ से छुटकर मजबूती से हाथ पकड़ता है । छोटे-बड़े सभी उसके भक्त हो गये । कोयला झोंकनेवाले एक झुक्की झोंककर नीचे से डेक पर चढ़ आये । श्रम को हल्का कर लिया । सोचा, वह कौन-सा स्वर है जो दिल पर अपनी पूरी-पूरी छाप लगा देता है ? खड़े लोगों में क्षण-भर के लिए विषमता नहीं आयी; किसी बड़प्पन के कारण या पैसा होने की वजह गायिका का कण्ठ इतना मधुर है, यह वे नहीं सोच सके; विरोध का क्षण ही मिट गया । उन पंक्तियों के लेखक महाकवि ग़ालिब के समय के सताये हुए और गानेवाली एजाज़ समय की संस्तुत, फिर भी दोनों में साम्य !

यह किसी अधिकार की बात न होगी। अधिकार से वस्तु, विषय या बात इतनी सुन्दर नहीं बनती, ऐसी पूरी नहीं उतरती। यह वह आधकार है जहाँ अधिकार ढीला है।

विलासी राजा एकटक उस सच्चे रूप और स्वर को देखते-समझते रहे। कुछ देर एजाज़ ने दम लिया। निगाह उठायी। भरा पेग उठाकर राजा साहब को दिया। खुद एक लौंग दबायी। दो कश खींचकर पीकदान में डाल दी और हारमोनियम सँभाला।

एक ठुमरी गायी—

"जाने दे मोको सुनो सजनवा,
काहे करत तुम नित नित मोसन रार,
नहीं, नहीं मानूंगी तिहार।
छेड़ करत, नहीं मानत देखो री सखि,
मेरी सुनै ना,
बिन्दा करत अब नित नित मोसन रार,
नहीं, नहीं मानूंगी तिहार।"

अभी दुपहर नहीं हुई। भैरवी का वक्त पार नहीं हुआ। श्रीश राजा साहब को गम्भीर, और चलते हुए जहाज के सिवा कोई आवाज न आती हुई देखकर एजाज़ समझ गयी—लोग कान लगाये हुए हैं। वह खुशी से भर गयी।

एजाज़ ने छेड़ा—

"यामिनी न येते जागाले ना केन
बेला होल मरि लाजे।
शरमे जड़ित चरणे केमने
चलिब पथेरि माझे।

आलोक-परशे मरमे मरिया
हेर लो शेफालि पड़िछे झरिया
कोनो मते आछे पराण धरिया
कामिनी शिथिल साजे।

निबिया बांचिल निशार प्रदीप
ऊषार बातास लागि,
नयनेर शशी गगनेर कोने
लुकाय शरण मागि,

पाखी डाकि बले गेल विभावरी,
वधू चले जले लइया गागरी,
आमिओ आकुल कवरी आवरि
केमने याइब काजे।"

रवीन्द्रनाथ का गीत; कलकत्ता का आधुनिक फैशन एजाज़ ने सच्चा अदा किया—वही उच्चारण, वही अँगरेजियत। राजा साहब पर और आधुनिक शिक्षित बंगालियों पर इसी स्कूल का सबसे अधिक प्रभाव है, रवीन्द्रनाथ के गानों में स्वर का सबसे अधिक मार्जन मिलता है। राजा साहब की आँखों के सामने गंगा के शुभ्र फेन की तरह गीत का अस्तित्व तैरने लगा।

एजाज़ ने हारमोनियम हटा दिया। एक पेग और उठाकर राजा साहब को दिया, एक खुद लिया।

शराब, बातचीत और गाने के बीच एजाज़ देखती जाती है, मटियाबुर्ज पार हुआ—शाह वाजिद अली का कारागार, तेल का केन्द्र बजबज पार हुआ, उलूबेड़िया पार हुई, कितनी ही मिलें निकल गयीं, जिनका अधिकांश मुनाफा विदेशियों के हाथ जाता है। एजाज़ अँगरेजी जानती है, संवाद-पत्र पढ़ती है, दूर निष्कर्ष तक आसानी से पहुँच जाती है, सम्पादक की टिप्पणी पर टिप्पणी लगा सकती है।

गुलशन राजा साहब को सिगरेट और पान देती जाती है। गाना बन्द करके एजाज़ ने सिगरेट के लिए उँगली बढ़ायी। गुलशन ने हीरे की पाइप में सिगरेट लगा दिया। एजाज़ पीने लगी।

"तुम्हारे नहाने, भोजन और आराम करने का वक्त हुआ।" राजा साहब ने कहा।

"पूजा करने की बात छोड़ दो ?" एजाज़ ने बड़ी-बड़ी आँखें मिलायीं।

"वह दिल में होती रह गयी।"

"उसने मिला भी दिया।"

राजा खामोश हो गये। एजाज़ ने कहा, "तुम उठो। नहाना मत। तवालिया गर्म पानी से निचोड़कर बदन पोंछवा डालो, धोती बदल दो। शराब पर नहाना!"

राजा साहब उठ गये। एजाज़ बैठी हुई, नदी की शुभ्र शोभा, श्याम तटभूमि देखती रही।

आठ

पुरानी कोठी के सिपाहियों के अफसर जमादार जटाशंकर सिंहद्वार पर रहते हैं। पलटन में हवलदार थे। ब्रह्मा की लड़ाई के समय नाम कटा लिया। जवान अच्छे तगड़े। नौकरी ढूँढ़ते-ढूँढ़ते यहाँ आये। निशाना अच्छा लगाते हैं। राजा ने रख लिया। खुशामद करने में कमाल हासिल, तरक्की कर गये।

कोठी के सामने पुराना फव्वारा है। अब नहीं चलता। चारों तरफ से पक्का हौज। दीवार पर बैठे थे। मुन्ना गुज़री।

दोनों ने एक-दूसरे को देखा। मुन्ना ने छींटा जमाया, "एक घोड़ा फेर रही

हूँ।"

"वाह रे मेरे सवार! कौन घोड़ा?"

"एक हिन्दुस्तानी घोड़ा है।"

जमादार जटाशंकर झेंपे। गुस्सा आया। पर सँभलकर कहा, "और घोड़ी बंगाली है?"

मुन्ना को भी बुरा लगा। बदलकर कहा, "जब हमसे बातचीत करो, रानी समझकर करो।"

जटाशंकर सकपका गये। क्रोध में आकर कहा, "क्या कहा?"

"कह रही हूँ, तुम्हारी नौकरी नहीं रहेगी। पहले रानीजी की सलामी दो।" तिनककर मुन्ना ने कहा।

जटाशंकर ने रानीजी की सलामी दी। फिर ताव में आये। कहा, "मैं राजा हूँ, राजा की सलामी दे।"

"तुम गँवार हो," मुन्ना ने कहा, "मैं रानी हूँ, रानी; रानी राजा को सलामी देती हैं? जवाब में चूमती हैं। तुम मुझको चूमो।"

जटाशंकर ने सोचा, 'रानी और राजा का खेल कर रही है।' प्रेम बढ़ गया। चूमने के लिए मुँह बढ़ाया कि गाल पर मुन्ना का चाँटा पड़ा। जटाशंकर चौंककर हाथ-भर उछल गया। साथ ही मुन्ना ने कहा, "रानी का तुम्हारे लिए यही जवाब होगा। रही बात राजा को सलामी देने की; तुम्हें मालूम होना चाहिए कि हम सिपाही नहीं; हम प्रणाम करते हैं।" मुन्ना ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया, कहा, "इस तरह; अब तुमसे फिर कहती हूँ, मेरे साथ रानीजी का मान है, उन्होंने दिया है, इसको अँगरेजी में आनर कहते हैं; राजा ने तुमको मान नहीं दिया, तुम अपनी तरफ से राजा का मान लेते हो। रानी का मान पहले तुमसे लिया जायगा। हम जब आयेंगे, तुम उठकर खड़े हो जाओगे और हाथ जोड़कर रानीजी की जय कहोगे। तभी हम रानीजी का आनर वहाँ चढ़ा सकेंगे।"

"कहाँ?"

"वहीं जहाँ हम काम करते हैं।"

"हम रानीजी से पूछ लें।"

"और किस रानीजी से तुम पूछोगे? रानी का मान है यहाँ, तुमको यह बतलाया जा चुका है, वहाँ तुम जाओगे, दासी से कहोगे, खबर भेजोगे, तुमको जवाब नहीं मिलेगा, बिना मान की रानी जवाब क्या देंगी? तुम इतना नहीं समझते, रानीजी का मान दूसरी के साथ तभी बाँधा जाता है जब कोई उनका पानी उतारता है। जहाँ हम काम करते हैं, वहाँ की उस औरत ने रानीजी का मान घटाया है, उसका मान घटाया जायगा। तुमसे यह भेद बतला दिया गया। अब बताओ, तुम साथ दोगे, या नहीं।"

"रानीजी के मान बढ़ाने में क्यों साथ नहीं देंगे?"

"अच्छा, अब रानीजी का मान हम रानीजी को देते हैं। अब हम हम हैं। अब हमको तुम चाहो तो चूम लो।"

जटाशंकर फिर चूमने के लिए लपके। पकड़कर चूमने लगे, तो मुन्ना ने उनके

होंठो के भीतर जीभ चला दी और कहा, "तुमने हमारा थूक चाटा। हमारी जात कहार की है। हम गढ़-भर में कहेंगे। तुम कौन बाँभन हो ?"

जटाशंकर सूख गये। सोचा, 'यह कुल चकमा उनकी जाति मारने के लिए था। कल से कोई पानी नहीं पियेगा।' बहुत डरे। देवता की याद आयी कि उन्होंने न बचाया। सोचा, ब्रह्मा की लड़ाई में काम आ गये होते तो अच्छा होता।

मुन्ना टकटकी बाँधे हुए पं. जटाशंकर मिश्र के बदलते हुए मनोभाव देखती रही। पण्डितजी ब्रह्मा की लड़ाई में नहीं मरे, इसलिए डरे। कहा, "तू मुझे अपना गुलाम समझ, जो कहेगी, करूँगा; थूक चाटने को कहे तो चाटूँगा, मगर किसी से कह मत।"

मुन्ना की रग-रग में घृणा भर गयी। समझ गयी, यह "आदमी प्रणयी नहीं हो सकता। यह धोखा देगा। इसको उतारकर रखना चाहिए।" खुलकर कहा, "तुम जब तक हमारी बात मानोगे, हम किसी से नहीं कहेंगे।"

हाथ जोड़कर जटाशंकर ने कहा, "मंजूर।"

"हमारे यहाँ" मुन्ना ने कहा, "घोड़ा-घोड़ी दोनों को घोड़ा कहते हैं। उसी को हम फेर रहे हैं, यही कहा था। कारण भी समझा दिया।"

प्रसन्न होकर जटाशंकर ने कहा, "हाँ, अब समझ में आ गया।"

"तो उस घोड़ी का अपमान करने के लिए एक घोड़ा चाहिए।"

"हाँ।"

"वह घोड़ा तुम बनोगे या मैं ?"

जटाशंकर फिर जगे। आँखें लाल हुई देखकर मुन्ना ने कहा, "गाल पर पड़े तमाचेवाली बात कहूँ या होंठों के अन्दर गयी जीभवाली ?"

जटाशंकर फिर ठण्ढे हो गये।

मुन्ना ने कहा, "हम इसी तरह घोड़ा फेरते हैं, उसको भी फेरते हैं, तुमको भी। बोलो, घोड़ा बनोगे ?"

"बनना ही पड़ेगा।"

"दो तीन रोज लगातार उसी तरह हाथ जोड़कर रानीजी की जय कहोगे। तीसरे दिन अन्दर के बागीचेवाले तालाब में दिन के दस बजे जब वह नहाने जायँगी, तब···समझे ?"

"अन्दर के बगीचे में मर्द के जाने की मुमानियत है।"

"तो, उसको तुम्हारे पास भेज दें ?"

जमादार जटाशंकर बहुत हैरान हुए। कहा, "अच्छा, जायँगे।"

मुन्ना ने कहा, "जमादार, तभी तुमको मालूम होगा। हम तुमको नमस्कार करते हैं, तुम्हारी सेवा करते हैं, पर तुमको खुश नहीं कर पाते, हमारे छूने से तुम्हारी जाती मारी जाती है। तुम हमें चूमोगे, इससे कुछ नहीं होगा, पर हम तुम्हें चूमेंगे, इससे तुम्हारा धर्म जाता रहेगा। कोई चूमना ऐसा भी है जिसमें दोनों के होंठ न मिलें ? अच्छा, तुम भी ब्राह्मण हो, यह भी ब्राह्मण है; तुम इसके पास जाओगे तो तुमको मालूम होगा कि तुमसे यह और कितनी बड़ी ब्राह्मण है। उस दिन रानीजी के सामने इसका तेज देखकर दासियाँ हैरान हो गयीं।"

जटाशंकर ने कहा, "अच्छा मुन्ना, मेरी स्त्री गुजर गयी है। तू मेरी स्त्री, और यही मैं तुझे समझूंगा। जा, तू गढ़-भर में कह दे कि मेरा-तेरा थूक एक हो गया।"

मुन्ना खिल गयी। "यह मर्द है, जमादार, तुम मेरे मर्द। मैं कुछ समझकर तुम्हारे पास आयी थी। औरत का प्यार जल्द समझ में नहीं आता। मैं भी बेवा हूँ, बेवा ही यहाँ दासी बनकर आ पाती हैं। मैं तुम्हारी दासी, तुम्हें मैं अपना ही रक्खूंगी। जैसा कहा है, वैसा करो; तालाब में जाओ; मैं दूसरा पेंच लड़ाऊँगी। तुम्हारा एक अपमान होगा; सह जाओ। इस औरत के लिए भगवान् हैं। यह नेक है।"

नौ

राजा राजेन्द्रप्रताप राजधानी में एजाज़ के साथ रह रहे हैं। उसी रोज आ गये।

गढ़ के बाहर एक बड़े तालाब के बीच में टापू की तरह सुन्दर बँगला है। चारों तरफ से लोहे की मोटी-मोटी छड़ें गाड़कर पुल की तरह सुन्दर रेलिंगदार रास्ते बनाये गये हैं। तालाब के किनारे-किनारे चारों रास्तों के प्रवेश पर ड्योढ़ियाँ बनी हुई हैं, वहाँ पहरे लगते हैं। बाहर, दूर तक सुन्दर राहें, दूब जमायी हुई, तरह-तरह के सीजनल और खुशबूदार फूल, क्यारियाँ, कुंज, बागीचे, चमन। कटीले तारों से अहाता घिरा हुआ; तारों पर बेल चढ़ायी हुई। हवा भी सदा-बहार, हर झोंके से सुगन्ध आती हुई। तालाब का जल स्वच्छ, स्फटिक के चूर्ण की तरह। बँगले का फर्श संगमारवर का, डबल दरवाजे—एक काठ का, एक शीशेदार, रेशमी परदे लगे हुए। बैठक के फर्श पर बहुमूल्य कारपेट बिछा हुआ। कीमती बाजे, पियानो, हारमोनियम, फ्लूट, क्लेरिअनेट, वायलिन्, सितार, सुरबहार, मृदंग, तबले, जोड़ी आदि यथास्थान रक्खे हुए। बेशकीमत कोच, सोफे, चीनी फूलदानी में सज्जित फूलों की मेजों के किनारे, एक-एक बगल लगे हुए। बीच में गद्दी बिछी हुई, गाव लगे हुए। रात में बत्तियों का तेज प्रकाश। चाँद और तारों के साथ प्रकाश का बिम्ब पानी में चमकता, चकाचौंध लगाता हुआ।

चारों तरफ से विशाल बरामदा, हर तरफ की राह से एक ही प्रकार का। हर बरामदे के भीतर बैठक एक ही प्रकार की, सजावट भिन्न-भिन्न। दो एजाज़ के अधिकार में हैं, दो राजा साहब के। और भी कमरे हैं। एजाज़ की बैठकें रोज नये परदों से सजायी जाती हैं; सूती, रेशमी, मखमली झालरदार; हरे, नीले, जर्द, बसन्ती, बैंगनी, लाल, गुलाबी, हल्के और गहरे रंग के; कभी सफेद। कोच और सोफों पर भी वैसा ही गिलाफ बदलता हुआ। फूलदानियों में उसी रंग के फूलों की अधिकता ? एजाज़ के बदन पर उसी रंग के पत्थरों के जेवर। उसी रंग की साड़ी,

सलवार-कुर्ता या पाजामा-दुपट्टा ।

राजा साहब अपनी बैठक में बैठे हुऐ हैं । दिलावर सिंह पहले से तैनात किया हुआ था, आया । कहा, "प्रभाकर आ गये ।"

जागीरदार साहब ने कहा, "ये सब तुम्हारे तरफदार हैं । इनसे भी काम लिया गया है । पुलिस के जिन लोगों ने तुम लोगों को गिरफ्तार करना चाहा था, बाद को शिनाख्त न हो पाने की वजह—(तुमने दाढ़ी मुड़वा ली थी और रामफल का मुसलमानी नाम रख लिया गया था—रूप भी कैसा बनाया गया ।)—थाने से उनका तबादला हो गया था, इन्होंने उन्हें खोजकर निकाला और पूरी खबर ली । अब इन्हें छिपा रखना है । दीवार को भी पता न चले। पुलिस पकड़ना चाहती है। ये पकड़ गये तो बच न पाओगे ।"

दिलावर ने नम्रता से कहा, "हुजूर का जैसा हुक्म, किया जायगा ।"

'पुराने गढ़ के पीछे ठहराओ । खुद दोमंजिले पर रहो । रसद ले जाया करो, इन्हें पकाया-खिलाया करो; रामफल को साथ रखना । दूसरा काम तुम लोगों से न लिया जायगा । चोर-दरवाजे की ताली ले जाओ। वे जब बाहर निकलना चाहें, उसी से निकाल दिया करो, रात के 12 से चार के अन्दर। जब कहें तब खोलकर भीतर ले आने को पहले से तैयार रहा करो, एक सेकण्ड की देर न हो । उनका काम न देखना, हम खुद देख लेंगे । खाना अच्छा पकाया करना, मछली-मांस भी । हमारी रसोई में दो-तीन भाजियाँ पकती हुई देख लो ।"

"जो हुक्म हुजूर।"

"ऐसा करो, अगर ये भी तुमको फँसाना चाहें तो न फँसा पायें । अब तो तुम्हारी दाढ़ी बढ़ गयी है । रामफल की मूँछें भी बढ़ गयी होंगी । यहाँ से चलकर बहल जाओ । रामफल का मियाँवाला रूप तुम बना लो और तुम्हारा ठाकुरवाला वह । नाम भी बदल लो । उसको अपने नाम से पुकारना और उसी को ले जाने के लिए भेजना । हम कभी-कभी तुम लोगों से मिला करेंगे ।"

'जो हुक्म ।" दिलावर ने प्रणाम किया । राजा साहब की ओर मुँह किये हुए पिछले-कदम हटा। तालाब के पश्चिमवाले रास्ते से बाहर निकलकर गढ़ की तरफ चला, दूसरी ड्योढ़ी से घुसकर रामफल से मिलने के लिए। प्रभाकर के साथी बाजार में हैं । वह ड्योढ़ी के आगन्तुक-आगार में बैठा है । कभी निकलकर पान खाने के लिए बाहर चला जाता है । पैनी नजर से इधर-उधर देख लेता है ।

राज्य की क्रिया का ढंग सब स्थानों में एक-सा है । सब जगह एक ही प्रकार के नारकीय नाटक, षड्यन्त्र, अत्याचार किये जाते हैं । सब जगह रैयत की नाक में दम रहता है । चारे का प्रबन्ध ही सत्यानाश का कारण बनता है । अत्याचार से बचने की पुकार ही अत्याचार को न्योता भेजती है । जमींदार हो, तअल्लुकेदार; राजा हो या महाराज; कृपा कभी अकारण नहीं करता । जिस कारण से करता है, वह इसकी जड़ मजबूत करने के लिए, मुनाफे की निगाह से, दूने से बढ़ी हुई होनी चाहिए । उसका कोप भी साधारण उत्पात या प्रतिकार के जवाब में असाधारण परिणाम तक पहुँचता है । सारे राज्य में उसके खास आदमियों का जाल फैला रहता है । वह और उसके कर्मचारी प्रायः दुश्चरित्र होते हैं, लोभी, निकम्मे, दगा-

बाज। फैले हुए आदमी प्रजाजनों की सुन्दरी बहू-बेटियों, विरोधी कार्रवाइयों, संघटनों और पुलिस की मदद से जमींदार के आदमियों पर किये गये अत्याचारों की खबर देनेवाले होते हैं। निर्दोष युवतियों की इज्जत जाती है, रिश्वत में रुपये लिये जाते हैं, काम में आराम चलता है, बचन देकर रैयत से पीठ फेर ली जाती है, बहाना बना लिया जाता है। पुलिस भी साथ ली जाती है। कभी चढ़ा-ऊपरी की प्रगति में दोनों अपने-अपने हथियारों के प्रयोग करते रहते हैं।

किसी गाँव में मुसलमानों की संख्या है। त्योहार है। गोकुशी वर्जित है; पर बकरा महँगा पड़ा, गोकुशी की ताल हुई। आदमी से खबर मिली। एक रोज पहले, रात को पचास आदमी भेज दिये गये। कुछ मुखियों को उन्होंने मार गिराया।

कोई बड़ा मालगुजार है। किसी कारण पटरी न बैठी, लड़ गया। ताका जाने लगा। शाम को उसकी लड़की तालाब के लिए निकली। अँधेरे में पकड़कर खेत में ले जायी गयी या दूसरे मददगार के खाली कमरे में कैद कर रक्खी गयी। दूसरे-दूसरे आदमी दाढ़ी लगाकर या मूँछें मुड़वाकर चढ़ा दिये गये—ज्यादातर मुसलमानी चेहरे से। उन्होंने कुकर्म किया। उसके फोटो लिये गये। तीन-चार रोज बाद लड़की घर के पास छोड़ दी गयी। एक फोटो आदमी के गाँव में, दूसरी थाने में डाक से भेजवा दी गयी। नाम अण्टशण्ट लिख दिये गये—चढ़नेवालों के; लड़की के बाप का सही नाम। गाँव और पुलिस की निगाह में दोनों गिर गये। गाँव का भी आदमी पुलिस का, उसके पास दूसरी तस्वीर, पुलिस के पास दूसरी। बाप से पूछा जाने लगा। उस पर घड़ों पानी पड़ा। गाँववालों ने खान-पान छोड़ दिया।

किसी प्रजा ने खिलाफ गवाही दी। उसका घर सीर के नक्शे में आ जाता है। कभी उसके खानदानवाले पास की जमीन बटाई में लिये हुए थे। गुमाश्ते को कुछ रुपये देकर एक हिस्सा दबाकर घर बना लिया था। इस फेल का उल्टा नतीजा हुआ। रात-ही-रात सैकड़ों आदमी लगा दिये गये। घर ढहा दिया। लकड़ी, बाँस, पैरा उठा ले गये। गोड़कर घर की जगह गड्ढा बना दिया। नक्शे में वह जगह सीर में है।

किसी ने लगान नहीं दिया। वह गरीब है। विश्वास दिलाकर बुलाया गया कि सरकार से अपना दुख रोये। आने पर अँधेरी कोठरी में ले जाया गया। वहाँ ऐसी मार पड़ी कि उसका दम निकल गया। लाश उठाकर पुराने तालाब के दल-दल में गाड़ दी गयी। गाँव के गुमाश्ते ने कुबूल ही न किया कि वह गढ़ में ले जाया गया था। कुछ लोग ऐसे भी निकले जो पिटते समय उसको बाजार में उलटे कई कोस के फासले पर देखा था।

बच-बचकर पुलिस से भी झपाटे चलते हैं। थानेदार ने इन्स्पेक्टर और डी. एस. पी. आदि की मदद से प्रजाजनों को किसी मामले में खिलाफ खड़ा किया, खूब दाँव-पेंच लड़े, राजा का पाया कमजोर पड़ा, समझौते की बातचीत हुई, रिश्वत की लम्बी रकम माँगी गयी, एक उचित ठहराव हुआ। काँटा निकाल फेंका गया। पर दिल की लगी खटकती रही। दूसरा मामला उठा। थानेदार फाँस दिये गये।

बलात्कार साबित हुआ। एस. पी. और डी. एस. पी. की सिफारिश बदनामी के डर से न पहुँच सकी। तहकीकात का अच्छा नतीजा न निकला। थानेदार को सजा हो गयी। नौकरी से हाथ धोना पड़ा।

गरमी निकालने के लिए डी. एस. पी. या एस. पी. ने बुलाया। राजा ने मुख्तारआम या मैनेजर को भेज दिया। कमजोरी से कभी बात न दबी, डी. एस. पी. ने पूछा, "राजा नहीं आये।" मुख्तारआम ने कहा, "इजलास में तो मैं ही हुजूर के सामने हाजिर होता हूँ," या मैनेजर ने कहा, "आपकी सेवा के लिए हम लोग तो हैं ही।" उस दफे खामोशी रही। दोबारा बदला चुकाया गया। पहले कुछ प्रजाओं की दस्तखतशुदा शिकायतें की गयीं। ऊँचे कर्मचारियों को दिखाया गया। कहा गया कि राजा पर सरकार का शासन नहीं, थान में थोड़े लोग रहते हैं, राजा के लोग उनको डरवाये रहते हैं, राजा बदचलन है, रैयत की इज्जत बिगाड़ता है, पुलिस की सच्ची तहकीकात नहीं होने देता, पुलिस को अधिकार के साथ काम करने दिया जाय तो रास्ते पर आ जाय। हुक्म लेकर दरबार का चकमा दिया गया। राजा गये। पर दरबार से शिकायत करनेवाले लोगों की ही शिरकत रही। राजा को कुर्सी भी न दी गयी। लाट साहब से शिरकत करनेवाले डी. एस. पी. भी खड़े रहे। लिखी शिकायतों के आधार पर कुछ भला-बुरा कहा, कुछ नसीहत दी। डी. एस. पी. साहब की तारीफ करते रहे। जिन शिकायतों का आधार लिया गया था, उनमें राजा का हाथ न था, फलतः चेहरे पर सियाही न फिरी, कलेजा न धड़का।

दरबार समाप्त हो जाने पर उन्होंने लाट साहब को लिखा कि दरबार के नाम पर उनके साथ डी. एस. पी. ने ऐसा-ऐसा बर्ताव किया, वहाँ कुछ प्रजाजन थे, वे उन्हें पहचानते नहीं—किनके थे, कौन थे। उनके आदमी घुसने नहीं दिये गये। जो बातें डी. एस. पी. ने कहीं, उनका तात्पर्य वह नहीं समझे। वे ऐसी-ऐसी बातें थीं। पुलिस में नौकर होनेवाले ये साधारण लोग रिश्वत लेकर देश को उजाड़ दे रहे हैं। इसका व्यक्तिगत सम्बन्ध ही है। पुलिस के दाँत यहाँ तक डूबे हुए हैं कि नियत आमदनीवाली प्रजा झूठे मामले में रिश्वत देकर राजस्व नहीं दे पाती। यह एक-दो की संख्या में नहीं, सैकड़ों की संख्या में, जमींदारों के 25 थानों में प्रतिमास होता है। नतीजा यह हुआ है कि जाल में फँसायी गयी प्रजा रिश्वत से पैर छुड़ाकर फिर राजस्व नहीं दे पाती। यह प्रक्रिया उत्तरोत्तर बढ़ रही है। जमीदार को राजस्व न मिलने पर वह कर्ज लेकर सरकार को देगा या न दे पायेगा। इस परिणाम से भी उन्हें गुजरना पड़ा है। सरकार से इसका प्रतिकार होना चाहिए।

जब इस मामले को लेकर राजा राजेन्द्रप्रताप कलकत्ता थे, डी. एस. पी. की बुरी हालत कर दी गयी। वह हिन्दू थे। हिन्दू-मुस्लिम-समस्या से दिलचस्पी रखते थे। इसी समय एक आदमी गया। मुसलमानों के गाँव, शमशेरपुर, में रहा। बात-चीत की। मुसलमानों को उनका स्वार्थ समझाया। कहा, वह उनका अपना आदमी है। उन्हें गोकुशी नहीं करने दी जाती, यह उन पर ज्यादती की जाती है। जिले के वकील नूर मुहम्मद साहब का नाम लेकर कहा, काम पड़ने पर वह बगैर मेहनताना

लिये हुए लड़ेंगे। फिर कलकत्ते के इमाम साहब का नाम लिया, कहा कि उनका हुक्म है, मुसलमान अपने हक से बाज न आयें। एटर्नी अब्दुल हक़ का नाम लेकर कहा, वह हाईकोर्ट में मुफ्त लड़ेंगे और हिन्दोस्तान-भर में यह आग लगेगी। वे सिर्फ एक दरख्वास्त दे दें कि बकरीद को वे गोकुशी करेंगे, उन्हें इजाजत मिले। सरकार को इजाजत देनी पड़ेगी। अगर हिन्दू होने की वजह से डी. एस. पी. मदद न करे तो उसको इसका मजा चखा दो। थोड़ी-सी मदद हम भी दूसरे मौजे के भाइयों को भेजकर करेंगे। रात के वक्त बदला चुकाना। पीछे कदम न पड़े।

फिर वह सज्जन कस्बे में आये। वहाँ दाढ़ी-मूँछें मुड़ायीं। फिर डी. एस. पी. साहब से मिले। कहा, अधिकारियों के कर्मचारी हैं। पास के अधिकारी अच्छे जमींदार हैं। खास बात के बहाने एकान्त निकालकर कहा, "अधिकारी हुजूर की सेवा करते आ रहे हैं। अबके शमशेरपुर में बड़ा जोश है। बकरीद को गोकुशी होनेवाली है। मुसलमान चिल्ला-चिल्लाकर कहते हैं, गोकुशी करेंगे और हुजूर के सामने करेंगे। हिन्दुओं के धार्मिक प्राणों को दुःख होता है। माँ, मझले बाबू की बहू, उन्हीं के पास नक्द ज्यादा है, बहुत दुखी हैं। जबसे सुना है, पानी एक घूंट नहीं पिया।" कहकर आँखों में आँसू लाने लगे। मुझे घर बुलाकर कहा, "रामचरण, तुम हुजूर के कचहरी में जाओ; हम लोगों का कौन-सा अपराध है कि ऐसा होनेवाला है? ऐसा तो कभी नहीं हुआ। हुजूर हिन्दू हैं। हुजूर के रहते···।"

"सुनो, तुम्हारा क्या नाम है?" साहब दुचित्ते थे, सजग होकर पूछा।

"रामचरण, हुजूर!"

"रामचरण कौन?"

"रामचरण अधिकारी, हुजूर! हम सब एक ही हैं।"

"तुम हमारे आदमी हो?"

"हुजूर, मैं हुजूर के गुलाम का गुलाम।"

"तुम्हारी मालिका को बहुत डर है?"

"हुजूर, अन्न-पानी छोड़ रक्खा है।"

"तो अबके शमशेरपुर के मुसलमान गोकुशी नहीं कर पायेंगे। पर ··"

डी. एस. पी. गरीब घर के हैं। पढ़ने में प्रतिभाशाली थे। आर्थिक कष्टों से छुटपन से लड़ रहे हैं। कान के पास मुँह ले जाकर कहा, "हम देखेंगे, तुम्हारी मालकिन कितना खर्च कर सकती हैं।"

"हुजूर, बहुत।"

डी. एस. पी. ने सोचा, साँप भी मर जायगा, लाठी भी न टूटेगी। अभी उनको गोकुशी की कोई सूचना न मिली थी। कहा, "अच्छा, परसों मिलना।"

रामचरण ने कहा, "हुजूर, उसी गाँव में मिलूँगा। देखें मुसलमान, हिन्दुओं में दम है या नहीं। है! मालकिन का अन्न-जल छूटा हुआ है। पहले हुजूर के इकबाल से खिलाऊँ-पिलाऊँ।"

"तो कितना?"

"हुजूर कुछ अन्दाजा?"

"पाँच—"

रामचरण ने झुककर सलाम किया। "वहीं केम्प में हुजूर के सामने—" कहकर चला।

"पाँच है—समझे ?"

"हुजूर, खिलाना-पिलाना है पक्का रहा।" कहकर रामचरण सलाम करके भगा।

दो-तीन दिन में डी. एस. पी. समझे, रामचरण की बात सही थी। बकरीद के दिन आ गये। गोकुशी रोकी। जोश बढ़ा। रामचरण से मिलने की आशा से थानेदार और सिपाहियों को घटनास्थल पर बढ़ा दिया। इधर दुर्घटना हो गयी। उनकी एक ज्ञानेन्द्रिय विकृत कर दी गयी।

यह सब राजा के कर्मचारी और सिपाहियों का काम था, पर कुछ पता न चला। पुलिस बहुत लज्जित हुई। बात जिले-भर में फैली। डी. एस. पी. की नौकरी गयी।

दस

पहले दिन। मुन्ना ने सिपाही की आँख बचाकर जमादार को आने की सूचना दी और आड़ में जहाँ बातचीत की थी, रास्ता छोड़कर उसी तरफ चली। जमादार ड्योढ़ी में कुर्सी पर बैठे थे। सिपाही खजाने के पास पहरे पर खड़ा था। सुबह का वक्त। सूरज की मीठी किरनें शबनम के फर्श पर जोत का समन्दर लहरा रही थीं। नीचे से पत्तियों की हरियाली अपना रंग उभारती हुई। रंगीन फूल झूमते हुए, मुन्ना सूरज की तरफ रुख किये हुई खड़ी रही। जमादार गये, हाथ जोड़कर कहा, "रानीजी जय हो!"

मुस्कराती हुई मुन्ना चल दी। पहले पहरेदार को पार किया, दूसरे को किया, तीसरे को देखकर रुकी। दूसरी मंजिल पर, वहाँ एकान्त था। पहरेदार भी खासा पट्ठा, पठान। नाम भी रुस्तम। यह पहरा बुआ के वास के पास लगता था। कुछ आगे पिछवाड़ेवाला ज़ीना, हमेशा थोड़ा प्रकाश। अन्दर महल की कितनी ही दालानें, दूसरे-दूसरे महलों से, उस ज़ीने की तरफ गयी थीं। मुन्ना रुस्तम के सामने खड़ी हो गयी। रुस्तम कुछ देर तक खड़ा हुआ देखता रहा। फिर पूछा, "क्या है ?"

"तुम्हारा नाम क्या है ?" मुन्ना ने पूछा।

"रुस्तम।"

"मैं रानीजी के पास से आती हूँ, तुम्हें मालूम है ?"

"हाँ।"

"तुम तरक्की चाहते हो ?"

"इसी के लिए नौकरी करता हूँ।"

"मेरी बात मानो, रानीजी का काम करो। कौन-सी तरक्की चाहते हो ?"

"जमादारी।"

"बाद को मालूम होगा। यह बात किसी से कहना मत। कहो, नहीं कहूँगा।"

"नहीं कहूँगा।"

"यह जमादार कैसा आदमी है ?"

"अच्छा।"

"अच्छा आदमी है, तो क्या जमादारी करोगे ? कहो, बुरा है।"

"हमारा अफसर।"

"तुमको जगह अफसर की कहाँ से मिलेगी ? इसी आदमी की जगह तुमको दी जायगी। समझकर कहो, चाहिए या नहीं ?"

"चाहिए।" आवाज गिर गयी।

मुन्ना एक कदम बढ़ी। कहा, "कहो, रानीजी से कुल बातें कही जायँ।"

खुश होकर रुस्तम ने कहा, "रानीजी से कुल बातें कही जायँ।"

"अच्छा, तलवार निकालकर कसम खाओ, कहो, हम रानीजी का साथ देंगे।"

रुस्तम तन गया। तलवार निकालकर कसम खायी।

मुन्ना ने कहा, "तलवार हमें दे दो।"

इधर-उधर देखकर रुस्तम ने तलवार दे दी।

मुन्ना ने तलवार लेकर सलामी दी। कहा, "यह जमादार के साथ रानी और राजा की सलामी है। अब तुम जमादार से छुट गये। कहो, हाँ।"

"हाँ।"

"यह लो अपनी तलवार।" रुस्तम को तलवार दे दी। कहा, "जैसी जमादार को सलामी मैंने दी वैसी मुझे रानी कहकर तुम दो।"

रुस्तम ने वैसा ही किया। मुन्ना ने कहा, "तुम पास हो गये। याद रहे अब कल काम की बात बतलाऊँगी और परसों काला चोर पकड़ाऊँगी। मुझे रानी समझना। जब जिसको रानी समझने के लिए कहूँ, समझोगे। बाद को देखोगे, तुम्हारी मुराद पूरी हो गयी। मतलब गठ गया।"

रुस्तम खुश हो गया। मुन्ना बुआ के कमरे में गयी।

बुआ बैठी थीं, मुन्ना सामने खड़ी हुई। कहा, "खड़ी हो जाओ।" बुआ बैठी रहीं।

मुन्ना ने कहा, "खड़ी हो जा।"

बुआ के आँसू आ गये, खड़ी हो गयीं। मुन्ना ने कहा, "इधर आओ।"

बुआ चलीं, मुन्ना बरामदे की तरफ बढ़ी। पहुँचकर कहा, "मैं जो पहले थी, अब वह नहीं। अब तुम्हारे लिए पहले मैं रानी हूँ। फिर तुम्हारा काम करनेवाली। पर काम मैं दरअसल रानीजी का करती हूँ। बात तुम्हारी समझ में आयी ?"

बुआ सहमीं। आँखें फाड़कर मुन्ना को देखने लगीं।

मुन्ना ने कहा, "हाथ जोड़कर हमको नमस्कार करो।"

बुआ की त्योरियाँ चढ़ीं। मुन्ना ने कहा, "नमस्कार करो, नहीं तो सिपाही बुलाऊँगी।"

बुआ ने कहा, "हमारे भतीजे को बुला दो। हम घर चले जायेंगे।"

मुन्ना ने मुस्कराकर कहा, "तुम्हारा भतीजा राजा का दामाद है, अपनी स्त्री से सुन चुका है। समझ गया है, राजा का क्या सम्मान है। गाँठ बाँधो, वह तुमसे नहीं मिल सकता। जाना चाहती हो तो तभी जा पाओगी जब रानी को सम्मान मिल जायगा। तुमने सिखाने पर भी बात नहीं मानी। दासी का तुमने अपमान कराया, तुमको नहीं मालूम। हाथ जोड़ो, हम रानी हैं।"

बुआ फिर भी खामोश रहीं। मुन्ना ने कहा, "यह काम हम तुमसे ले लेंगे। हाथ जोड़ो, नहीं तो सिपाही बुलायेंगे। वह जबरदस्ती जोड़ायेगा।"

बुआ ने हथेलियाँ जोड़ीं।

मुन्ना ने कहा, "सिर से लगाओ।"

बुआ ने सिर से लगायीं।

मुन्ना ने कहा, "दो दफे और।"

बुआ ने दो दफे और प्रणाम किया और वहीं गिर गयीं।

मुन्ना दासी का काम करने लगी। पानी ले आयी, मुँह में छींटे लगाये, फिर पंखा झलती रही। एक अरसे के बाद बुआ होश में आयी। लाज और नफरत से आँखें न मिला सकीं। मुन्ना ने कहा, "तुम्हारी मौसी को समझाया जा चुका है, वे बैठी हैं। तुम इतना समझो कि तुम्हारी निगाह में हम जितने छोटे हैं, रानी की निगाह में तुम और छोटी हो। जब तक राह पर नहीं आतीं रानी तुम्हारा पीछा नहीं छोड़ेंगी। कहो, रानी जैसा-जैसा कहेंगी, करना मंजूर ?"

बेदम होकर बुआ ने कहा, "मंजूर है।"

"तुमको तीन रोज तक इसी तरह प्रणाम करना होगा। अगर इन्कार किया तो सख्ती होगी।"

लाचार होकर बुआ ने स्वीकार किया।

मुन्ना ने कहा, "दूसरे दिन तुमको सखी की तरह बागीचा दिखाने ले जायँगे। तुमने देखा है, पर तुमको बागीचे के पेड़ों के नाम नहीं मालूम। बाद को एक साथ नहायेंगे। तीसरे दिन क्या होगा, यह तुमसे बागीचे में कहेंगे। जब हमारी-तुम्हारी पटरी बैठ जायगी, तभी तुम्हें मालूम होगा, असलीयत क्या है। तुम्हारी दासी अब चुन्नी है। वह आती होगी।"

ग्यारह

दिलावर रामफल के पास गया । अपने जीवन से उसको बड़ी ग्लानि हुई । बचाव नहीं । नसों से जैसे देह, वह दुनिया के जाल से बँधा हुआ है और सिर्फ दस रुपये महीने के लिए । जान की बाजी लगाये फिर रहा है । कहीं से छुटकारा नहीं । जहाँ तक निगाह जाती है, यही जाल बिछा हुआ है । लुभानेवाली जितनी चीजें हैं, सभी खून से रँगी हुई ।

जितने सिपाही हैं, सबके जोड़े मिलाये हुए । बाहरवाले नहीं पहचान सकते । एक तरह के तीन-चार भी । उन्हीं की तरह यह इमारत, जमींदारी, हीरे-मोती, जवाहरात, चमक-दमक, रूप-रंग—कुल बनावटी । इनकी असली सूरत कुछ और है । यह स्वर्ग दिखता हुआ दृश्य नरक है । ये राजे-महाराजे राक्षस । ये देवी-देवता पत्थर के, काठ के, मिट्टी के ।"

रामफल बैठा हुआ था । दिलावर ने कहा, "चलो, बदलो ।"

"कैसे ? क्या बात है ?" जितना ही विश्वास करके रामफल ने देखा, उतनी ही अविश्वासवाली जहरीली ज्योति आँखों से निकली ।

"अब तुम हम, हम तुम । हमारी जैसी दाढ़ी रक्खो । चलो, एक देवता आये हैं, कोई साधु हैं, ले आना है, दामाद की तरह रखना है । खास राजा की बात है, दीवार भी न सुने । वह भी उस काल-कोठरी में कभी-कभी दर्शन देंगे । जल्द चलो ।"

'क्या बात है ?"

"चल जल्द । बात तो दुनिया-भर की जानता है ।"

रामफल उठा । दोनों राजा की ओर से रक्खे गये सिपाहियों के नाई की ओर चले ।

नाई फुरसत में था । कहा, "पालागो, रामफल महाराज, राम-राम दिलावर साहब ।"

रामफल ने आशीर्वाद दिया । दिलावर ने राम-राम की ।

रामफल ने कहा, "दाढ़ी बहुत बढ़ गयी है, खुजला रही है, इसके बराबर कर दो, मूँछें भी । किनारे छाँट दो ।"

"वाह, महाराज," नाई ने कहा, "हम समझे, आप शोक बुझाते हुए पितरों को भूल गये ! लेकिन परमात्मा की कृपा है । बैठ जाइए । धन्य हूँ मैं ।"

रामफल बैठे । नाई ने दिलावर की जैसी दाढ़ी-मूँछें बना दीं । फिर दिलावर से पूछा, "आपका, साहब, कौन-सा फैशन होगा । आजकल तो कर्जन फैशन की चाल है ।"

"वह, काम पूरा होने पर, सराध में जैसे । इसने काम अधूरा छोड़ रक्खा है । इसकी जैसी थी, वैसी ही बना दो । अभी दाढ़ी के बाल कुछ छोटे हैं, खैर नोकदार बना दो । नाक के नीचेवाले बाल सफाचट कर दो ।"

नाई गम्भीर हो गया । दिलावर बैठे । रामफल तल्लीन होकर शीशा देखते

रहे।

बाल बन जाने पर दोनों तालाब में स्नान करने गये। दिलावर ने लुंगी पहनी। दोनों चले। बाहर के फाटक पर प्रभाकर बैठा हुआ ऊब रहा था। दिलावर ने रामफल को दिखाया, कहा, आप हैं। रास्ते में उसने अच्छी तरह समझा दिया था।

उसकी बात प्रभाकर ने नहीं सुनी। दिलावर के रूप में रामफल को देखकर उसको धुकचा लगा। पर उसको अपने काम से काम था। दिलावर ने कह दिया था कि उसी का नाम बतलायेगा।

रामफल ने प्रभाकर को बाहर बुलाया। कहा, "चलिए, आप लोगों को दूकान में अच्छी तरह भोजन करा दें। रात को ले चलेंगे। अभी रास्ता साफ नहीं है। वहाँ आप लोगों की जगह दुरुस्त की जायगी। बैठने-लेटने के पलँग-बिस्तर-मशहरी, मेज-कुर्सी आदि लाने-लगाने पड़ेंगे। तब तक चलिए, बाजार की सैर कीजिए।"

"तुम्हारा नाम क्या है ?"

"हमारा नाम है दिलावर।"

बाजार में राजा की ही व्यवस्था थी। सामान वहीं रक्खा था। आदमी इधर-उधर टहलते थे। प्रभाकर को देखकर सब इकट्ठे हो गये।

एक दर्जी ने पूछा, "सिपाहीजी, आप कौन हैं ?"

दिलावर ने कहा, "उस्ताद हैं, जैसे आप खलीफा।"

"गवैये हैं ?" एक दूसरे ने पूछा।

"हाँ नचनिये भी हैं, आजकल तो तबले का बोलबाला है। वह आ गयी है न ? बिरादरों की आमदरफ्त हो चली है। रात को ठनकेगा।"

खलीफा झेंपे। पर बड़ों का प्रभाव रखते थे, खामोशी से रख लिया।

दिलावर, प्रभाकर और उसके साथियों को लेकर एक दूकान में गया। इच्छानुसार भोजन कराया। जिस घर में सामान था; वहाँ विश्राम के लिए ले जाकर पूछा, "बाबू, आपका कौन-कौन-सा सामान है, हमें दिखा दीजिए। हम वक्त पर उठवा ले जायेंगे।"

दूसरे कमरे में सामान बन्द था। ताली जिसके पास थी, वह आदमी बाहर था। प्रभाकर जानता था। कहा, "सामान की कोई चिन्ता नहीं, जब चलेंगे, सामान भी लिवाते चलेंगे।"

दिलावर-नामधारी को टोह न मिली कि कैसा आदमी है, कैसा सामान है।

बारह

दूसरे दिन। जमादार जटाशंकर कुर्सी पर बैठे तम्बाकू मल रहे थे। रुस्तम पहरा बदलने के लिए आया। जमादार को उसने देखा, पर मुँह फेरकर चल दिया,

सलामी नहीं दी ।

जमादार ने पुकारा, "रुस्तम !"

रुस्तम का कलेजा धड़का । पर हिम्मत बाँधी और खड़ा हो गया ।

"रुस्तम, क्या गलती की ?" जमादार ने गम्भीर होकर पूछा ।

रुस्तम का पारा चढ़ गया । गुस्से से कहा, "हम इसका जवाब देंगे इसी कुर्सी पर बैठकर ।" यह कहकर रुस्तम चला ।

जमादार ने खजाने के सिपाही से कहा, "इसको पकड़ लो ।"

तलवार निकालकर खजाने का सिपाही बढ़ा । रुस्तम को जैसे किसी ने बाँध लिया ।

जमादार ने कहा, "तुम कितना बड़ा कसूर कर रहे हो, तुम्हारी समझ में आ रहा है ? अभी मुआफी है । फिर उधर नहीं, इधर से निकल जाना होगा और हमेशा के लिए ।"

रुस्तम के जी में आ रहा था, भगकर मालखाने के पहरे पर चला जाय और दो रोज किसी तरह गुजार दे, लेकिन पैर नहीं उठ रहे थे ।

जमादार ने कहा, "इधर आओ ।"

रुस्तम ने देखा, कदम जमादार की ही तरफ उठ रहा है, दूसरी तरफ नहीं । वह चला ।

जमादार अपनी कोठरी में गये । रुस्तम भी पीछे-पीछे ।

"जमादार, मुसलमान हूँ, लेकिन पैर पकड़ता हूँ । मैं ऐसा आदमी नहीं था । मुझसे छल किया गया ।"

"किसने किया ?"

रुस्तम की जबान बन्द हो गयी । होंठों पर उँगली रखकर इशारे से समझाया कि बोल नहीं फूट रहा ।

जमादार ने कहा, "अच्छा, लो राजा को और बोलो ।"

रुस्तम पर जैसे कूड़ा पड़ा । एक चीख निकली ।

जमादार ने कहा, "अच्छा, तुम खजाने के पहरे में रहो, खजाने का पहरा हम मालखाने भेज देंगे ।"

"जमादार, खाना-खराब न करो । हमारी तरक्की होनेवाली है ।"

"कैसी ?"

"हमको जमादारी मिलेगी ।"

"अरे बेवकूफ, तेरी नौकरी जायगी ।"

रुस्तम घबराया । जमादार ने कहा, "जब तुम्हारी तरक्की होगी, सिफारिश हम करेंगे, तरक्की राजा देंगे ।"

"रानीजी देनेवाली हैं, उनका एक काम करना है ।"

"रानीजी किसी राज-काज में दस्तन्दाजी कर सकती हैं ? राज्य की मुहर पर उनका नाम भी है ?"

रुस्तम को मालूम हुआ, वह नौकरी भी गयी । कहा, "जमादार, गरीब आदमी हूँ, पेट से न मारियेगा ।"

"कुल बातें बता दो। किसने तुमसे कहा ?"

मुन्ना के स्मरणमात्र से रुस्तम के सिर पर माया-जाल छा गया। फिर न बोल सका, जैसे उसकी सत्ता ही गायब हो गयी।

जमादार ने पूछा, "कुछ इशारा ?"

"व···रोज···।"

"अच्छा तुम अपने पहरे पर जाओ, तुमको कुछ नहीं होगा अगर तुम सिपाही रहोगे।"

थोदी देर बाद मुन्ना आयी। जटाशंकर का जी मरोड़ खाकर रह गया। मुन्ना को उसी किनारे देखकर उठे, गये और हाथ जोड़कर प्रणाम किया।

"जमादार, कभी मत भूलिए कि मुन्ना छिनी है, यहाँ रानी हैं। बातें जाती हैं। हम भी भला-बुरा करते-कराते हैं। राजा रहेंगे तो रानी भी रहेंगी, नहीं तो रण्डी रहेगी। जो रानी का सम्मान रण्डी को दिलाता है, वह राजा नहीं, भँड़वा है। तुम्हारी स्त्री रानी में हैं, रण्डी में नहीं। वहाँ जाओगे, तो रण्डी को राज दोगे। राजा अब राजा नहीं क्योंकि उसकी रानी कहाँ हैं ?"

जमादार को अक्षर-अक्षर सत्य जान पड़ा। पर घबराये कि राजा की तौहीन हुई। सोचा, रुस्तम इससे कह आया। कहा, "क्या वह चला गया ?"

"वह कौन ?" मुन्ना ने डाँटकर पूछा।

जमादार सहम गये। उस पर उनका सम्मान न चढ़ा। मुन्ना समझ गयी कि उसका आनर पकड़ा गया। चलने को हुई तो मालूम हुआ, जमादार से जुड़ गयी है। कहा, "राजा से पूछ सकते हो कि रण्डी को रानी का सम्मान क्यों दिया जाता है ? हम कह चुके कि रानी का मान छिना है। वह मान रानी का आदमी छीनेगा तभी रानी रानी है। फिर दूसरा सँवारेगा। जब ऐसा होगा, रानी के तरफदार रानी को मान देते फिरेंगे। अब वह रानी का आदमी है, इसलिए राजा का भी है। तुम्हारा सम्मान रानी के आदमी ने नहीं किया, मैंने किया। तुम कल वचन दे चुके थे, आज पाल न सके। हमने कह दिया था थोड़ा-सा अपमान सह जाओ; पर तुम नहीं मान सके। तुम मर्द नहीं. इतर हो। तुमने हमारा आदमी बिगाड़ दिया। हम तुमसे पूछते हैं, रानी का अपमान तुम करोगे। तुमने देखा है रानी को ? बोलो, नहीं तो ठोंकती हूँ अभी लौटकर। तुमसे कहा कि तुम दर्ज हो गये। रानी की डायरी में तुम लिख गये कि रानी का अपमान किया। आज तुम राजा से कहोगे तो क्या होगा ? हम कल लिखा चुके।"

जमादार का थूक सूख गया। कहा, "हमसे खता हुई।"

"यह बताओ, इस रण्डी को देखा है या नहीं ?"

"देखा है।"

"सलामी दी ?"

"हाँ, दी।"

"वह किसकी सलामी है ?"

"रानीजी की।"

"वह रानी है ?"

"नहीं।"

"तुम इस राजा के बच्चे से पूछ सकते हो कि रानी की सलामी इसको क्यों दी जाती है ?"

जमादार चुप रहे।

"यही तलवार राजा को मारने के काम में खोल सकते हो ?"

"नहीं।"

"लेकिन कोई अगर उस पर चढ़ जाय और राजा कहे—?"

"रानी पर ?"

"जिसके पास हम रहते हैं, यहाँ नहीं, वहाँ।"

जमादार का सिर झुक गया।

"इसी को मान कहते हैं। यह मान मर्द ने छीन लिया है। यह सिपाही जो मान देता है, वही मान उस सिपाही को दो और अपनी ड्योढ़ी पर; नहीं तो समझ जाओ कुल बातों के साथ पहले ही पेश किये जाओगे।"

जमादार का सिर न उठा। मुन्ना ने फिर कहा, "बोलो, क्या मंजूर है ?"

"ड्योढ़ी पर एक दूसरा सिपाही भी रहता है, वह देखेगा।"

"हर सिपाही से तुम्हारी तौहीन करायी जायगी, जूते लगाये जायँगे और निकालकर बाहर कर दिये जाओगे।"

जमादार के आँसू आ गये। कहा, "मंजूर है।"

मुन्ना चली, पीछे-पीछे जमादार। समझ गये कि खिड़की के रास्ते निकलकर रुस्तम इससे कह आया। भेद खुल जाने पर क्या होगा, सोचकर घबराये। चारा न था। चारों तरफ से गसे हुए थे। ड्योढ़ी पर मुन्ना खड़ी हो गयी। कहा, खड़े रहो।

सिपाही अपने जमादार की बेइज्जती देखकर हुक्म पाने के लिए देखता रह गया। मुन्ना ने सिपाही से पूछा, "यह कौन है ?"

सिपाही जैसे बीच से टूट गया। तलवार की मूठ के लिए हाथ बढ़ाया, पर हाथ बँध गया।

मुन्ना ने डाँटकर पूछा, "यह कौन है ?"

सिपाही ने कहना चाहा, 'जमादार', पर जीभ ऐंठ गयी। मुन्ना ने कहा, "रानीजी की सलामी लाओ।"

जमादार ने हाथ का इशारा किया। सिपाही ने तलवार निकालकर रानीजी की सलामी दी। सिपाही को मालूम हुआ, एक नया जोश उसमें भर गया।

मुन्ना ने कहा, "यह बदमाश है। इसने रानीजी की तौहीन की।"

सिपाही क्रोध से जमादार को देखने लगा।

मुन्ना ने कहा, "सिपाही, कुछ मत बोलो, रानीजी मुआफ करना भी जानती हैं। अभी देखो और समझो।"

मुन्ना मालखाने में रुस्तम के पास गयी। कहा, "तुम्हारी तौहीन हुई इसलिए आज ही तुम जमादार बनाये जाओगे। अपनी वर्दी उतारो।" सिपाही ने उतार दी। मुन्ना ने वर्दी पहनी। कहा, "चलो।" सिपाही डरा। पर हिम्मत बाँधकर

चला। दोनों नीचे खजाने के पहरे पर आये। मुन्ना को देखकर सिपाही और जमादार दोनों घबराये जैसे राज्य उलट गया हो। मुन्ना ने तलवार को सलामी दी, कहा, "यह रानीजी की सलामी," फिर जमादार की सलामी दी, कहा, "यह जमादार की सलामी।"

फिर खजाने के सिपाही से कहा, "अब इसको देखो।" रुस्तम की तरफ उँगली उठायी। रुस्तम काला पड़ गया था, झुका हुआ टूटा जा रहा था जैसे कोई बोझ सँभाला न सँभलता हो।

मुन्ना ने कहा, "यही पाप है रानीजी पर चढ़ाया हुआ। इसी को मारना है।"

फिर कहा, "सिपाही अब यह है, वर्दी वहाँ मिलेगी।"

रुस्तम पूरी शक्ति से लिपटकर खड़ा हो गया।

खजाने के सिपाही से मुन्ना ने कहा, "जब तक यह पाप नहीं मारा जाता, यह बात किसी से न कहना। कहने पर अच्छा न होगा।"

रुस्तम को तलवार देकर मुन्ना ने कहा, "यह शक्ति लो और पहरे पर चलो, हम आते हैं। अभी रानीजी का काम बाकी है। रानीजी की निगाह में अब तुम्हीं जमादार हो।"

रुस्तम ने तलवार ले ली और चला गया। मुन्ना ने जमादार को देखकर कहा, "सिपाही, इधर आओ।"

जमादार ने कहा, "हद हो गयी।" खजाने के सिपाही की त्योरियाँ चढ़ीं। पर कुछ कहते न बना। मुन्ना ने कहा, "वह सिपाही ही था। उसकी भी तौहीन हुई। तुम भी कुछ कर चुके होगे। रानीजी कुछ नहीं, क्यों?"

"इधर आओ," कहकर मुन्ना आगे बढ़ी। जमादार पीछे-पीछे चले। दूसरी मंजिल के सदरवाले ज़ीने के पास मुन्ना ने जमादार से कहा, "घण्टे-भर बाद बागीचे में आओ। छिपे रहना वह औरत इस मुसलमान के बच्चे से फँसी है। देख लो। साथ गवाह भी लेते आना इसी सिपाही को। खजाने का सदर फाटक बन्द कर देना, यहाँ कौन है? लेकिन कुछ कहना मत। तुम नहानेवाली सीढ़ी की दीवार की बगल में छिपे रहना और अपने आदमी को उसी तरफ के आम के पेड़ पर चढ़ा देना। तुम पहले आना। उस आदमी को आधे घण्टे बाद उतरने को कहना।"

मालखाने में आकर रुस्तम से कहा, "यहाँ तो कोई आता-जाता नहीं। यह जमादार इस औरत से फँसा है। यह नहाने जायगी। नहाते वक्त मुझे भेज देगी। तभी दोनों अपना काम करेंगे। मैं तुझे भेजूँगी। लेकिन गवाह ले जाना तम्बूवाले पहरेदार को। खिड़की के पास उसको छिपा देना। वह कुछ कहे नहीं। फैसला रानीजी करेंगी। वह गवाही देगा। जमादार लौटेगा तो वह देखेगा ही। खिड़की से आवाज दे देना, देख लिया।"

"बिना देखे?"

"अरे गधा बाद को तो देखेगा। निकलेगा कहाँ से? और राह नहीं। तम्बूवाले को समझा देना।"

तेरह

मुन्ना ने आधे घण्टे तक विश्राम किया। फिर प्रणाम लेकर बुआ को पीछे लगाकर बागीचे चली। बुआ का दो ही रोज की कवायद में इतना बुरा हाल हुआ कि सिर पर जैसे मनों का बोझ लद गया हो; जैसे गन्दे पनाले से नहलायी गयी हों। रिश्ते का गौरव कहीं गायब हो गया। मौसी का पहले ही अपमान हो चुका था, आज्ञा मिल चुकी थी कि जबान खोलने पर मठा डालकर सिर घुटाकर गधे पर चढ़ाकर निकाल दी जायगी और साथ-साथ जीवन-चरित जनता को सुनाया जाता रहेगा; वह कैसी थीं; यह मालूम हो चुका है। अगर खामोश रहीं तो समझ में आ जायगा कि अपमान उनका नहीं, उनके दुश्मन का हुआ है।

बुआ मुन्ना के साथ कोठी से उतरकर बागीचे गयीं। धूप प्रखर हो गयी है, फिर भी सुहानी है। तरह-तरह की चिड़ियाँ चहक रही हैं। रंगबिरंगी सुरीली आवाजवाली; भँवरे, सुए, रुकमिनें, बुलबुल, पीली गलारें, कोयलें, पपीहे, कौए। स्वच्छ जलवाले विशाल सरोवर पर राजहंस तैरते हुए। कहीं-कहीं बगले ताक लगाये बैठे हुए। गिलहरियाँ टहनी से टहनी पर उछलती हुई। धीमी-धीमी हवा चल रही है जैसे साक्षात् कविता बह रही हो। सरोवर पर हल्की-हल्की लहरियाँ उठती हुई उस किनारे से इस किनारे आ रही हैं।

चारों ओर विशाल उद्यान 13-14 हाथ की ऊँची चारदीवार से घिरा हुआ। सरोवर और चारदीवार के किनारे नारियल के पेड़। बीच में, अलग-अलग, निम्बू, नारंगी, सन्तरे, सुपारी, अनानास, लीची, आम, जामुन, गुलाबजामुन, कटहल, बड़हर, बादाम, हड़बहेड़, आँवले, अनार, शरीफे, शहतूत, फालसे, अमरूद आदि फलों के पेड़ एक-एक घेरे में लगे हुए। कितने फूले हुए, कितने पकते हुए, कितनों में बौर, कितने खाली। एक तरफ फूलों का बागीचा उजड़ा हुआ क्योंकि अब रनवास यहाँ नहीं। कहीं जंगली पेड़ों के झाड़। बीच-बीच बेला, जुही, गुलाब, गन्धराज, नेवाड़ी, चमेली, कुन्द आदि उगे हुए जीने का व्यर्थ प्रयत्न करते हुए आज भी फूलों के अर्घ्य दे रहे हैं। पक्की सुथरी राहों पर वर्षा की काई जमी हुई है। कटीले झाड़ उग रहे हैं। एक तरफ चारदीवार में दरवाजा है। इस तरफ से भी ताला लगा है, उस तरफ से भी। इस तरफ की ताली जमादार के पास है, उस तरफ की माली के पास।

जिस तरफ जमादार को छिपने के लिए कहा था, उस तरफ मुन्ना नहीं गयी। कहा, "आज चलो, इधर का बागीचा देख लो। एक रोज में पूरा देखा न देख जायगा।"

हवा के मन्द-मन्द झोंके लग रहे हैं। दुःख के बाद सुख का अनुभव हुआ। मुन्ना ने पूछा, "कैसी हवा है?"

"बहुत अच्छी।"

"दिल इसी तरह खुला रक्खा करो। कोई दिलदार मिल जाय इस वक्त तो?"

"धत्, ऐसा नहीं कहा जाता।"

"अच्छा, सखी, हमसे गलती हुई। पर हमारा-तुम्हारा तो हँसी-मजाक का ही रिश्ता है ?"

"हाँ, है।"

बुआ की आवाज क्षीण होकर निकली।

"अगर हमारा अपमान हो तो क्या वह तुम्हारा भी है ?"

बुआ भीतर से जल गयीं। उस जलन को दबाकर कहा, "हाँ, है।"

"हमारा इतना अपमान होता है कि हम किसी को सिर पर नहीं रख सकते। बाद को सखी बनाकर, हंसाकर, रिझाकर समझा देते हैं कि हम सखी हैं और ऐसी।"

"हमारे भाग।" बुआ ने नम्रता से कहा।

"देखो, यह नारियल का पेड़ है। सरोवर के चारों ओर पहले इसी की कतार है। फिर उस किनारे से है। दोनों कतारों में नारियल की बीसियों किस्में हैं। कच्चे नारियल को डाब कहते हैं। इसका पानी तुमने पिया है।"

"हमारे यहाँ यह पेड़ नहीं होता।"

मुन्ना आगे बढ़ी। कहा, "यह देखो, ये अनानास के झाड़ हैं।"

"अनानास क्या है ?"

"यह लीची है।"

"हाँ, हमारे यहाँ आती है।"

मुन्ना जल्दी कर रही थी। कहा, "यह शरीफ़ा है।"

"यह भी हमारे यहाँ नहीं होता।"

"ये सुपारी के पेड़ हैं। वह देखो, सुपारी फली है।"

बुआ खुश हो गयीं। मुन्ना बढ़ती गयी।

"यह बादाम का पेड़ है।"

"वही जो ठण्ढाई में पड़ता है ?"

मुन्ना ठण्ढाई नहीं जानती थी। बढ़ती गयी। कहा, "यह गुलाबजामुन है।"

"कौन ? जो बाजार में बिकता है ?"

"तो क्या आसमान पर बिकता है ?"

"वह तो मिठाई है।"

मुन्ना रुकी। गुलाबजामुन कोई मिठाई है, यह उसको नहीं मालूम था। गुस्से में आकर कहा, "जैसा-जैसा सिखाते हैं, वैसा सीखो। सही है कि गुलाबजामुन कोई मिठाई हो, पर यह फल है। कुल पेड़ तुम्हें दिखायेंगे, नाम बतायेंगे, याद करके सीख लो। तुम्हें जो मिठाइयाँ जल-पान के लिए दी जाती हैं, उनमें कभी गुलाबजामुन आयी ?"

"हाँ, रोज आती है।"

"तुम्हें कुल किस्मों के नाम मालूम हैं ?"

"नहीं।"

"गुलाबजामुन कौन-सी है ?"

"काली-काली।"

"उसको यहाँ पान्तोआ कहते हैं।"

"वह हमारे वहाँ की-ऐसी नहीं।"

"यहाँ छेने की मिठाई बनती है। तुम्हारे उधर मैं जा चुकी हूँ। वहाँ की मिठाई इन लोगों को कम पसन्द है। यहाँ घर का दूध, घर का छेना है, और होशियार हलवाई नौकर है, यहीं बनाता है, यहीं का घी। तुम कभी त्योरी न चढ़ाया करो। यह इतना बड़ा बागीचा है। इसमें सैकड़ों किस्मों के फल हैं। तुम्हें आम, जामुन, अमरूद जैसे थोड़े ही फलों की पहचान है। यह रानीजी की सास और पहले की रानियों का बागीचा है। इनका बागीचा और बड़ा है, पेड़ जैसे हीरे और नीलम-जड़े पत्थरों पर खड़े हों, उनके थालों की नयी कारीगरी है। फलों की भी सैकड़ों किस्में हैं। तुम जहाँ गयी थीं, वहाँ रानीजी का शयनागार नहीं। वहाँ बेशकीमत हजारों जिन्सें है। तुम्हें दस साल में भी कुल नाम न याद होंगे। जो बड़ी अनुचरी हैं, वह जानती हैं। 15 साल से कम की नौकरीवाली दासी का यह पद नहीं होता। वह जमादार की तरह दासियों से काम लेती है। तुम्हें नहीं मालूम कि बड़प्पन यहाँ नामों की जानकारी से है। रानीजी हजारों चीजों के नाम जानती हैं। कभी इनके मुँह न लगना। अब नहा लो। धोती घाट से सौ गज के फासले पर उतारकर डाल दो और आधे घण्टे तक नहाओ। फिर निकलकर बिना किसी की परवा किये ऊपर चली आओ। तुम्हें तुम्हारा प्यार मिलेगा। तुम्हें इसकी ख्वाहिश है। शरमाओ नहीं। डटी खड़ी रहना। साड़ी बिना लिये चली आना। हमें दूसरा काम है। खबरदार हुक्म की तामील सीखो। बाद को समझ में आयेगा कि रानीजी कितनी अपनी हैं। उनका भी हाल मालूम होगा। सिर चढ़ाचढ़ी तब न होगी जब दोनों एक। उधर जाओ।"

मुन्ना बिजली की तरह मालखाने में गयी और रुस्तम से कहा। रुस्तम तम्बू के पहरेवाले के साथ तैयार हो गया और ज़ीने से जल्द-जल्द उतरकर अपनी जगह पर, खिड़की के दरवाजे पर गया। उसका साथी एक अँधेरी कोठरी में छिप रहा। रुस्तम अवसर ताक रहा था। खजाने का सिपाही राजाराम आम के पेड़ पर घने पत्तोंवाली डाल के बीच में बैठा देख रहा था।

रुस्तम के जाने के साथ मौसी को बुआ के शयनागारमें भेजकर और जब तक बुआ न आयें वहीं रहने के लिए कहकर मुन्ना खजाने की तरफ बढ़ी। पैर की चाप सँभालकर दौड़ी। ज़ीने से उतरकर देखा, फाटक बन्द है। कमर से एक ताली निकाली, जिसे सन्दूक की ताली बताया गया था उसको देखा। गुच्छे की तालियों से उसका बाहरवाला ताला खोला, फिर अपनी ताली से भीतरवाला। खोलकर देखा, नोटों के बण्डल थे। कुल-के-कुल बाहर निकालकर डाल लिये। नोट नम्बरी भी थे और दस-पाँच रुपयेवाले भी। जल्द-जल्द सन्दूक बन्द कर दिया। तालियों का गुच्छा खूंटी से लटका दिया और अपनी ताली कमर की मुर्री में लपेट ली। नोटों के बण्डल ज़ीने के तलेवाली अँधेरी कोठरी में डाल दिये। भगी हुई ऊपर गयी। बुआ के बरामदे से देखा, वह नहाकर निकल रही थीं। जैसा कहा था, वैसी ही थीं।

रुस्तम तके हुए था। इसी समय निकलकर कुछ कदम बढ़ा और चिल्लाकर कहा, "चोर पकड़ लिया।"

बुआ की लाज दूर हो गयी। वह तनकर खड़ी हो गयीं।

रुस्तम आवाज लगाकर भगा हुआ कोठरी में घुस गया। मुन्ना दूसरी मंजिल की खिड़की के पास खड़ी होकर चली आने के लिए हथेली का इशारा करने लगी। बुआ चलीं।

राजाराम पेड़ से देख रहा था। मुलुककर जमादार ने भी देखा था। बुआ के जाने के कुछ अरसे के बाद जमादार और राजाराम चले। इनसे पहले मुन्ना ने नीचे उतरकर रुस्तम को आवाज लगायी, अगर वहाँ हो। उसके आने पर कहा, "खजाने में चलकर बैठो और जमादार के आने पर कहो—हमारी जमादारी का हुक्म है, तुम बदमाश हो। हमारी जगह पर जाओ।"

चौदह

जमादार जटाशंकर और राजाराम जब खजाने को लौट रहेथे, तब आँगन से देखा कि फाटक खुला हुआ है और कुर्सी पर रुस्तम बैठा हुआ है। जमादार को बुरा लगा। राजाराम की भी भवें चढ़ गयीं। रुस्तम जानकारी की निगाह से देखता हुआ मुस्कराता रहा; जमादार पास आये तो डाँटकर कहा, "तुम बदमाश हो, रानीजी ने तुम्हें बरखास्त किया है। अब हम जमादार हैं। हमको उसी तरह सलाम करो और हमारे पहरे पर रहोगे। इसी वक्त चले जाओ, आँख से ओझल हो जाओ।" रुस्तम कुर्सी पर बैठा हुआ आराम से टाँगें हिलाने लगा। मुसलमान की पूरी शान में आकर कहा, "अब तुमको मालूम होगा कि सिपाही पर क्या आफत गुजरती है जब वह अफसर और जमादार को सलाम करता है।"

जमादार के मुँह में जैसे ताला पड़ गया। वह हक्के-बक्के हो गये।

"उल्टा चोर कोतवाल को डाँटे।" राजाराम ने डपटकर कहा। "उठ, नहीं तो ठोंकता हूँ अभी।"

"तू नीम-बदमाश है, इसका साथी है, वहाँ तू क्यों गया?"

"तुझको पकड़ने। मैं गवाह हूँ।"

"तू गवाह है, बदमाश, नंगी नहा रही थी, तब तू देख रहा था या नहीं? और बहुत कुछ किया है, तुम दोनों ने।"

"हमको सब मालूम है।" नेपथ्य से मुन्ना ने कहा।

"तो फिर अब तुम्हीं फैसला कर दो।" जमादार ने काँपते हुए कहा। मुन्ना चुप हो गयी। रुस्तम ने कुर्सी नहीं छोड़ी।

"बदमाश कहीं का। फैसला कर दो!"

राजाराम कुर्सी के पास आ गया, "उठता है या नहीं ?"

तुराब तम्बू का पहरेदार था। दोमंजिले की खिड़की से नीचे को देखते हुए कहा, "खबरदार, राजाराम, मैं भी गवाह हूँ। तुम दोनों बदमाश हो। जमादार-रुस्तम पकड़नेवाले हैं। मैं उनके साथ था।"

"तुम यहाँ से क्यों गये ?" राजाराम ने पूछा।

"तुम यहाँ से क्यों गये ?" तुराब ने डाँटा।

"हम बदमाश पकड़ने गये।"

"बदमाश पकड़ने नहीं गये, बदमाशी करने गये। उस बागीचे के अन्दर मर्द के जाने का हुक्म नहीं, यह सबको मालूम है। तुम गये। जमादार-रुस्तम भीतर नहीं गये।"

इसी समय मुन्ना आ गयी। कहा, "रानीजी का फैसला सबको मंजूर होगा।"

सबने समस्वर से कहा, "हाँ, होगा।"

मुन्ना ने कहा, "राजाराम आपस में लड़ो नहीं, अपना काम करो।" फिर जमादार से कहा, "जटाशंकर, इधर आओ।"

जटाशंकर को उसी जगह ले गयी जहाँ पहली बातचीत हुई थी। रुस्तम मुस्कराता हुआ बैठा रहा। तुराब ने कहा, "भाई, आपकी किस्मत खुल गयी। हमारा ही पहला सलाम है।" रुस्तम ने टाँगें हिलाते हुए कहा, "हमको याद रहेगा।" राजाराम ने जमादार को डिसमिस हुआ जानकर पहरे की वर्दी पहनते और तलवार बाँधते हुए कहा, "लेकिन जमादार का कोई कसूर नहीं।"

"जमादार तो हम हैं," रुस्तम ने स्वर चढ़ाकर कहा, "हमारा कौन-सा कसूर है ?"

अड़गड़े में पहुँचकर मुन्ना ने कहा, "जटाशंकर, क्या तुम अब भी हमको चाहते हो ?"

जटाशंकर राँड़ की तरह रोने लगे।

"एक बात," मुन्ना ने कहा, "तुम मुझे चाहते हो या जमादारी ?"

"अरी, बड़ी बेइज्जती हुई; हमारी जमादारी रहने दे।"

"अब तुम समझे, हम समझ जाते हैं, कौन कैसा है। तुम हमारी तरह उतर नहीं सकते, यह तुम्हारा खयाल था; मगर तुम इतना उतर जाओगे कि यहाँ जमना दुश्वार होगा। जब किसी को पकड़ो तब उसी को पकड़े रहो, यह कायदा है। तुम समझे थे, मैं तुम्हारी रखेली की तरह रहूँगी; अपनी स्त्री बनाकर तुम मुझको खुश किये रहोगे। मैं जैसी औरत हूँ, मैं तुम्हें रखवाले की ही तरह रख सकती हूँ; मगर राजा ही बनाये रहती। यह न समझना कि मैं गरीब हूँ। मैंने कहा, मैं रानी हूँ। तुम्हारा यह खयाल कि एक औरत को रखेली बनाकर रहनेवाला वैसा ही ब्राह्मण है जैसे तुम, बिलकुल गलत है। हमारे दिल में ब्राह्मण का सम्मान है, पर चैतन्यदेव-जैसे ब्राह्मण का, जो बाद को वैष्णव हो गये, और सबको अपनी तरह का आदर दिया। मैं वैष्णव हूँ। तुम पर मुझे प्यार नहीं होता, दया आती है। तुम इतने बड़े मूर्ख हो कि अपनी तरफ से कुछ समझ नहीं सकते। खजाने का जो जमादार होगा,

कुछ दिनों में उसकी जान की आफत आयेगी।"

जमादार काँपे। आँखों से तरह-तरह की शंकाएँ, भय, उद्वेग, पाप, अत्याचार, क्षुद्रता, हृदयहीनता आदि निकल पड़ी। राज लेने के लिए मित्र बनने की कोशिश करते हुए कहा, "क्यों ?"

"तुम हमारे आदमी हो।"

जमादार की जान चोटी पर आ गयी। कहा, "अब जो कुछ भी हो, हम हुजूर के आदमी हैं।"

"अब तुम समझे। अच्छा बताओ, अगर खजाने का रुपया चुरा गया हो ?"

जटाशकर को जान पड़ा, वज्र टूटा; धड़ाम से गिर पड़े, "अब सही-सही मरा। —मुझको भगा दो। दया करो, दया करो, देवी, कहीं का नहीं रहा।"

"यही रुपया तुमको देना चाहती हूँ, लेकिन तुमको हमारी जाति और हमारी दासता लेनी पड़ेगी।"

"हमको रुपया नहीं चाहिए।" तनकर जटाशंकर ने कहा।

"यही तुम्हारा बड़प्पन है। हम इसी को प्यार करते हैं। मेरे प्यारे, मुझे चूम लो।" मुन्ना ने जीभ लपलपायी।

जटाशंकर को जान पड़ा, काल है। खजाने की चोरी की बात सोचते हुए तनकर सिपाहियाने स्वर से कहा, "गलत बात है; खजाने की चोरी नहीं हो सकती।"

"क्यों ?"

"अब तू ही बता," कहकर फिर उन्होंने एक कड़ी निगाह गाड़ी।

"यह जो जमादार बना है, इसी ने चुरवाया है, यह रानी का प्यारा है।"

"झूठ बात, हम रपोट करेंगे।"

"क्यों रपोट करोगे ?"

"यही, तू जो कुछ कहती है।"

"तुमको और तुम्हारे पहरेदार को ये दूसरे पहरेदार पकड़े हुए हैं कि तुम लोग बदमाश हो। मैं इसकी गवाही गुजार दूंगी। तुम ठोंके जाओगे, नौकरी से भी हाथ धोओगे।"

"हम कहेंगे, खजाना चुराने का इसने जाल किया है। हमसे पहले ऐसा-ऐसा कह चुकी है।"

"खजाना चुरा गया है, तुम्हें इसका क्या पता ? अगर न चुरा गया हो—?"

जमादार ने करुण दृष्टि से देखा। मुन्ना ने कहा, "अच्छा लाख-दो लाख दे दिये जायँ तो तुम क्या करो ?"

"हम खजाने में रखा देंगे।"

"कैसे ?"

जमादार फिर हक्के-बक्के हुए।

मुन्ना ने कहा, "जमादारी चाहते हो तो चलो, बैठो, लेकिन याद रक्खो, जिस दिन खजानची आयेगा, उस दिन तुम्हारा कोई कर्म बाकी न रहेगा। बात मानोगे तो बचे-बचाये चले जाओगे। चोरी और छिनाले का भेद तब तक नहीं खुल सकता

जब तक रानी का मान वापस नहीं आ जाता।"

"रुस्तम की वर्दी पहनकर रुस्तम की जगह पहरा दो और रुस्तम को जमादार मानो।" कहकर मुन्ना नये गढ़ की तरफ चली।

जमादार जटाशंकर खजाने आये। वहाँ से मालखाने गये। रुस्तम की वर्दी पहनी। बाकी रहा थोड़ा समय पहरा देने लगे।

पहरा बदला। दूसरे सिपाही आये। बात फैली कि रुस्तम जमादार हो गया। रानीजी ने बनाया है। जमादार और राजाराम बदमाशी में पकड़े गये हैं।

जटाशंकर मुँह दिखाने लायक न रह गये। कुल सिपाही बराबरी का दावा करने लगे और उन्हीं के दिल से कसूरवार करार देने लगे।

राजाराम भी मुरझाया था। फुर्सत के वक्त एकान्त में जमादार से बातचीत करता हुआ राज लेने लगा, "जमादार, बड़ा अपमान हुआ। अब तुम सिपाही हो, रुस्तम जमादार। हुक्म राजा का नहीं। माजरा समझ में नहीं आता।"

जमादार ने पूछा, "तुमको क्या जान पड़ता है ?"

"या तो तुम फँसे थे, इस औरत ने झूंठमूंठ हमको भी फँसाया या बुआ की तौहीन की गयी और करनेवाला मुसलमान, इसमें राजा की राय हरगिज नहीं मालूम देती। बुआ राजा की मान्य की मान्य हैं।"

"इसके बाद इस मुसलमान का हाल क्या होता है, देखना। राजा एक मुसलमान तवायफ लिये ही पड़े रहते हैं। इनके यहाँ बस इतना ही सम्बन्ध है। रानी का हाथ है, ऐसा हमारा विचार है। यह भी सम्भव है कि खजाने की चोरी रानी ने करायी है। बोलो मत, इसमें बड़ा भारी भेद है। किसी को मालूम नहीं हो सका। रुस्तम का आगे चलकर बुरा हाल होगा। तुमको हम दूसरी जगह बदलने की कोशिश करेंगे।"

बात आग की तरह फैली।

पन्द्रह

बाप से यूसुफ को एजाज़ का राज मिल चुका था। जब एजाज़ कलकत्ता रहती थी, खोदाबख्श खजानची तनख्वाह के रुपये लेकर कलकत्तेवाली कोठी में ठहरता था और वहीं से तनख्वाह चुकाकर रसीद लेता था; एजाज़ को डाकखाने के जरिये रुपये नहीं भेजे जाते थे; अली को यह खबर थी। उन्होंने लड़के को भेद बतलाया था।

इधर, राजा का रानी के पास आना-जाना घटा कि दासियों, दूतियों और तरफदारों से पता लगवाना शुरू हुआ। खोदाबख्श इस पते पर आ गये। ऐसे कई और। रानी के तरफदारों की चालें मामूली खजानची खोदाबख्श, लालच और

रानी के प्रेम में न काट सके; जाल में कुन्जी डाल दी। प्रेम की कहानी बहुत-कुछ पहली-जैसी, इसलिए घटना और दुर्घटना का बयान रोक लिया गया।

इसी समय उनके भाग्य के आकाश पर दूसरा तारा चमका। एजाज़ के मकान से चलकर यूसुफ राजधानी आये और बाजार में ठहरे। भेस बदले हुए थे। प्रभाकर को देखकर चौंके; दूकान में एक जाकेट सिला रहे थे। शाम के बाद से प्रभाकर का पता न चला।

मैनेजर ने बुलाया है, एक अजनबी आदमी से कहलाकर राह पर मिले और मैनेजर ने भेजा है, कहकर भाव ताड़ने लगे। खजानची की कुन्जी हाथ से छूट चुकी थी, कलेजा धड़का। डरकर सँभले।

"हम आपका भला कर सकते हैं," यूसुफ ने कहा।

खोदाबख्श रानी की मैत्री की ताकत से आगन्तुक को देखते रहे।

"आपका राज बिगड़ा है, मान जाइए।" यूसुफ ने कहा।

खोदाबख्श का दिल बैठ गया। मैनेजर उससे बड़ा है; कुछ गड़बड़ मालूम हुई हो, सोचकर दहले। उठा कि कह दें, पर सँभाल लिया।

यूसुफ ने कहा, "आपको अब मैनेजर के पास न जाना होगा, हमीं उनकी मारफत आपसे मिलने आये हैं। उनसे हमारा हाल मालूम करने की हिमाकत न कीजिएगा। हम सरकारी। आप हमसे फायदा उठा सकते हैं? फिर हम भी मुसलमान हैं।"

खजानची को बहुत खुशी न हुई, क्योंकि एक फायदा अभी पूरा-पूरा नहीं उठा पाये थे। फिर भी, यह सोचकर कि आगे क्या आनेवाला है और खुदगर्ज अपनी ओर से फायदे में ला रहा है, बात सुन लेनी चाहिए।

यूसुफ जानते थे, कहकर भी राज निकाला जाता है; अगले सवाल से काम हासिल होगा। कहा, "हमें आपसे राज मिलता रहना चाहिए। हम आपकी निजी उलझनों की मदद करेंगे।"

खोदाबख्श को जी मिला। पूछा, "जनाब का निजी और भी कुछ अगर मालूम किया जा सके?"

"बाद को, जब गठ जाय। आप समझें, हम कोई?"

"माजरा क्या है?"

"वह यह कि एजाज़ से सरकार की तरफ की सिखायी औरत भेजकर यह मालूम करना है कि क्या हालात हैं; बस। अपनी तरफ से आप भी पता लगाय कि सरकार के खिलाफ क्या कार्रवाई है। मुसलमान और नीची-कौमवाले हिन्दू मिट्टी में मिल जायँगे। आप याद रखिए। पहले किसी नीची-कौमवाले को फँसाइए।"

खजानची को जँच गयी। फड़ककर कहा, "कुछ पता भी आपका···"

"अभी नहीं। अस्सलाम वालेकुम्। खयाल में रक्खें।"

"वालेकुम्।"

प्रभाकर बैठा था। यूसुफ ने अतिथि-भवन की बैठक में झाँका। कहा, "आपसे मिलने के लिए मैनेजर साहब खड़े हैं।"

प्रभाकर चौंका। देखकर चुपचाप बैठा रहा। कुछ देर ठहरकर यूसुफ भीतर

चलकर कुर्सी पर बैठे। कहा, "मैं उनका नौकर नहीं। खड़े हैं, कहा, कह दिया, अब आप समझें।"

प्रभाकर ने रीढ़ सीधी की और बैठा हुआ टुकुर-टुकुर देखता रहा।

दिलावर बाहर पहरेदार के पास बैठा था। यूसुफ को घुसते हुए देखा कि गारद से एक आदमी बुला लाया और लगा दिया। यूसुफ की निगाह चूक गयी।

"जनाब का दौलतखाना?" यूसुफ ने पूछा।

"जनाब का शुभ नाम?" प्रभाकर ने पूछा।

"नाचीज हुजूर की खिदमत में।" यूसुफ ने जवाब दिया।

"रहमदिली?" प्रभाकर ने मुस्कराकर कहा।

"रहमदिली—अलअमाँ।" यूसुफ ने दोहराकर दोस्ती जतायी।

प्रभाकर दबा। उभरकर पूछा, "किस अन्दाज से हैं?"

"सिर्फ दोस्ती।"

प्रभाकर ने हाथ बढ़ाया।

"यों नहीं।" यूसुफ ने बड़प्पन रक्खा, "आप कैसे तशरीफ ले आये?"

"यह तो आपको मालूम हो चुका है।"

"कहाँ?"

"यह भी मालूम होगा।"

"कुछ भी नहीं बदला हुआ नजर आया?"

"आपका मतलब?"

"मैंने कहा, कुछ आपसे हल हो।"

"आप तो जवाब नहीं देते।"

प्रभाकर चुप हो गया।

"आप बड़े सयाने। पर खुलकर रहेगा।"

प्रभाकर को ताव आया, पर सँभाल लिया।

इसी समय दिलावर घुसा। यूसुफ के पीछे आदमी लगा रहा।

"चलिए।" दिलावर ने प्रभाकर से कहा।

प्रभाकर चले।

दिलावर ने यूसुफ से पूछा, "जनाब का कहाँ से आना हुआ?"

"मैनेजर साहब के कहने से।" यूसुफ साथ-साथ चले।

दिलावर कुछ न बोला। प्रभाकर और दिलावर मुड़कर एजाज़वाले महल की तरफ चले, यूसुफ दूसरी तरफ से अपने डेरे की ओर।

यहाँ थाना है, यह पहले से जानते थे। दिल में कोई धड़कन न थी।

पीछे लगा आदमी आँख बचाकर चला। यूसुफ ताड़ न पाये, दिल में खटक न थी। आदमी ने यूसुफ की कोठरी का पता लगा लिया।

सोलह

कमरे में सनलाइट जल रही थी। राजा साहब अपनी बैठक में थे। मसन्द लगी हुई। गाव-तकिये पड़े हुए। एक तकिये का सहारा लिये हुए प्रतीक्षा कर रहे थे कि वेयरा सिपाही से खबर लेकर गया। कहा, प्रभाकर बाबू आये हुए हैं। राजा साहब ने आदरपूर्वक ले आने के लिए कहा। दिलावर बाहर रास्ते के पहरे पर रह गया, प्रभाकर उसी पुलनुमा राह से सरोवर की कोठी को चले। कोठी में पहुँचकर राजा साहब का कमरा, अन्दर जाने के लिए, वेयरा ने प्रभाकर को दिखा दिया। प्रभाकर गये। राजा ने उठकर स्वागत किया और नवयुवक को पास बैठा लिया। स्नेह से कहा, "हम आपसे उम्र में···"

प्रभाकर सिर झुकाये रहे।

"बड़ी जिम्मेवारी है।" राजा साहब ने स्वगत कहा।

प्रभाकर स्थिर भाव से बैठे रहे।

"आपका प्रबन्ध हो गया है। आप वहाँ चलकर रह सकते हैं।"

प्रभाकर को साहस से प्रसन्नता हुई।

"आप तो हमारे गवैये के रूप में हैं।"

"गा लेता हूँ।" प्रभाकर ने सीधे स्वर से कहा।

"कुछ पान ?"

"जी नहीं।"

"भोजन तो कीजिएगा ?"

"जी हाँ।"

"मांस-मछली ?"

"हाँ।"

"आप कुछ सुनिए और कुछ सुनाइए।"

राजा साहब ने एजाज़ के आने के लिए खबर भेजी, साजिन्दे भी बुला लाने को कहा। फिर प्रभाकर से गप लड़ाने लगे।

समय पर साजिन्दे आ गये। एजाज़ भी तैयार हो गयी। साज बाहर से मिलाकर लाये गये। प्रभाकर देखते रहे।

प्रभाकर को राजा साहब नाप न सके, कितना गहरा है।

एजाज़ तैयार होकर आयी। राजा साहब को सलाम किया और बगल में एक तकिया लेकर बैठ गयी। प्रभाकर को देखा, फिर देखा, फिर चुपचाप राजा साहब से पूछा, "आपकी तारीफ ?"

उसी फिसफिसाहट से राजा साहब ने जवाब दिया, "आपके खानदान के। गवैये हैं। देखा जाय, कैसे हैं ?"

"तगड़े जान पड़ते हैं।"

"शिक्षित हैं।"

"यहाँ कैसे ?" एजाज़ को शक हुआ।

"गायेंगे, रहेंगे। जब चाहेंगे, चले जायेंगे।"

एजाज़ को राजा साहब की बात का विश्वास न हुआ, उनके स्वर में ऐसा ही, कटता हुआ आदमी मिला। खामोश हो गयी। एक दफे कमर सीधी की, फिर एकटक देखती हुई बैठी रही।

प्रभाकर ने मुद्रा को और अच्छी तरह देखा, दिल में गाँठ ली।

साजिन्दे नौकर, रह-रहकर एक नजर राजा साहब को देख लेते थे।

राजा साहब की कठिन अवस्था हुई। न एजाज़ को गाने के लिए कह सकते थे—अविश्वास की ऐसी प्रतिक्रिया हुई, न प्रभाकर को, प्रभाकर का गुरुत्व ऐसा गालिब था।

उन्होंने नौकर रखने के भाव को काफी मुलायम करके एजाज़ को देखा। एजाज़ ने अनुभव किया कि वह दब गयी। बड़ा बुरा लगा। अपने से घृणा हुई। पर दबाकर, सैकड़ों पेंच कसने और सुलझानेवाली मुसकान से प्रभाकर को देखकर कहा, "जनाब ही क्यों न श्रीगणेश करें ?"

प्रभाकर समझा। नम्रता से स्वीकार कर लिया। पूछा, "क्या गाऊं ?"

"जो जी में आये, कोई ऊँचे-अंगवाली।"

तानपूरा स्वर भरने लगा। एजाज़ के गले से मिलाया हुआ।

राजा साहब ने कहा, "आपके स्वर में नहीं मिला। दिक्कत हो तो अभी ठहर जाइए।"

एजाज़ कुछ और दबी। प्रभाकर ने कहा, "चल जायगा। घटा लूंगा।"

"अच्छा, मैं ही बिसमिल्लाह करती हूँ।" एजाज़ मसनद के बीच में आ गयी। दिल को चोट लग चुकी। पूरा-पूरा व्यवसायवाला रुख लेकर बैठी। साजिन्दे खुश होकर अनुपम रूप देखने लगे। प्रभाकर ने भी देखा, जैसे पत्थर को देख रहा हो। एजाज़ की हार्दिक सहानुभूति उस क्षण कलाकार प्रभाकर के लिए हुई। भरकर, राजा साहब से बदली हुई, एजाज़ ने अलाप ली।

प्रभाकर मुग्ध हो गया। चुपचाप बैठा खयाल सुनता रहा। तानों की तरहें दिल में समा गयीं। साजिन्दे काम करते हुए प्रभाकर को देख लेते थे। राजा साहब निर्भीक कद्रदाँ की तरह बैठे रहे।

खयाल गाकर एजाज़ हट गयी। इसका मतलब था, अब नहीं गायेगी। राजा साहब समझकर खामोश रहे। साजिन्दे उसको कुछ कह नहीं सकते थे। प्रभाकर आगन्तुक।

एजाज़ पहले की तरह राजा साहब की बगल में नहीं बैठी। गाने के लिए प्रभाकर का जी उठ नहीं रहा था। फिर भी रस्म पूरी करनी थी। शिक्षित घराने का शिक्षित युवक सुकण्ठ और संगीतज्ञ था। ढर्रा छोड़कर उसने धमार गाया। काफी जमी। राजा साहब उछल पड़े।

एजाज़ समझ गयी, यह पेशेदार गवैया नहीं। इसका राज लेना चाहिए, दिल में बाँधा। डटी बैठी रही। कलकत्तेवाली, सरकार के आदमी से हुई, बातचीत याद आयी। धीरज हुआ। पर राजा की तरफ से सदा के लिए पेट में पानी पड़ गया।

राजा साहब ने देखा, प्रभाकर की तारीफ से एजाज़ का दिल छोटा नहीं पड़ा।

वह और बढ़कर बोले, "अभी आप थके-माँदे आये हैं।"

"अच्छा, कहाँ से ?" एजाज़ ने पूछा।

"क्यों, साहब ?" राजा साहब ने प्रभाकर को देखा।

"वर्धमान से।" प्रभाकर ने कहा।

"जनाब का नाम ?" एजाज़ ने पूछा।

"प्रभाकर।"

"उस्ताद हैं ?"

प्रभाकर ने साधारण नमस्कार किया।

"अरे भाई, बोस साहब बैरिस्टर हैं, उनके भाई हैं। आये हैं।"

एजाज़ और दूर तक गाँठ गयी, "कुछ रोज रहेंगे, यानी बहुत कुछ सुनने को मिलेगा। राजा साहब का दरबार है।" खिलखिलाकर हँसी।

आज के बर्ताव से एजाज़ को इच्छा हुई, दूसरे दिन कलकत्ता रवाना हो जाय और नौकरी छोड़ दे, मगर बड़ा रहस्यमय रूप सामने देखा, जिसको खानदानी पढ़ी-लिखी वेश्या छोड़कर न भगेगी; आखिरी दम तक सुलझायेगी।

सत्रह

राजा साहब ने देखा कि एजाज़ का मिजाज उखड़ा-उखड़ा है, उन्होंने साजिन्दों को रुखसत कर दिया। प्रभाकर को भोजन कराना था, इसलिए बैठाले रहे। काट कुछ गहरा चल गया था; यानी एजाज़ को राजा साहब चाहते थे, पर दिल देकर नहीं; अगर दिल देकर भी कहें तो भेद बतलाते हुए नहीं। सिर्फ कला-प्रेम था या रूप और स्वर का प्रेम जो रुपये से मिलता है। यही हाल एजाज़ का। उसके पास धन था, रूप और स्वर भी, पर तारीफ न थी, यह दूसरों से मिलती थी, और उन्हीं लोगों से जो रूप, स्वर और यौवन खरीद सकते हैं। षोडशी होकर जिस समूह में वह चक्कर काटती थी, वह कैसा था, आज प्रभाकर को देखकर उसकी समझ में आया। वह बड़प्पन कितना बड़ा छुटपन है, राजा साहब के बर्ताव से परिचित हुआ। प्रभाकर को न देखने पर वह समझ न पाती कि आदमी की असलियत क्या है। आजकल जैसे उस छुटपनवाले बड़प्पन से उसका छुटकारा न था। आज के परिवर्तन के साथ प्रभाकर का प्रकाश उसके दिल में घर करता गया। खेल और मजाक दिल नहीं। किसी को बनाना और किसी को बिगाड़ना दिलगीरी नहीं, सौदा है। जो कुछ भी अब तक उसने किया वह एक बचत थी। असलियत क्या थी, कहाँ थी, वह नहीं समझ पायी। आज भी नहीं समझी। सिर्फ उसे दिल नहीं माना। टूटी जा रही थी। असलियत असलियत से मिल गयी। प्रभाकर की जैसी शालीनता उसने किसी में नहीं देखी। जो बातचीत सुन चुकी है, उससे

अगर इस आदमी का तअल्लुक है तो गजब है यह आदमी—'स्वदेशी !'

एजाज़ रहस्य मालूम करने के लिए उतावली हो गयी। प्रभाकर ने जो गाना गाया, उसमें प्रदर्शन न था, किसी की परवा नहीं, फिर भी किसी से नफरत नहीं। यह अच्छा गाना जानता है, पर अच्छों का प्रभाव नहीं रखता। गाने के सम्बन्ध में चढ़ी रहकर भी एजाज़ चढ़ी न रह सकी। राजा साहब से जो दुराव हुआ था, वह उनके प्रभाकर के लिए हुए प्रेम के कारण था। अब वह एक हार बनकर रह गया। उसको खुशी हुई—'एक कुंजी उसके पास भी है।'

अपमान को भूलकर उसने राजा साहब से कहा, बड़ा रूखा-रूखा लग रहा है—"मत्रकशी ?"

"क्या बुरा ?"

राजा साहब जो बाजी लगा चुके थे, वह प्रभाकर को बाहर का आदमी नहीं समझ सकती थी।

एजाज़ का इशारा मिलते ही गुलशनशीशा और पैमाना ले आयी। उसी तरह ढालकर एजाज़ को दिया। एजाज़ ने राजा साहब को। प्रभाकर के लिए लेमनेड आया। एक प्याला पिलाकर दूसरा भरा, तीसरा भरा। राजा साहब खाली करते गये। एजाज़ भी साथ देती गयी। पूरा नशा आ गया। भोजन की थाली आने लगी। तीनों भोजन करने लगे।

"प्रभाकर बाबू से तो गहरे तअल्लुकात हैं।"

"हाँ।" राजा साहब ने कहा।

"हमारे कौन-कौन से फायदे आपसे हैं, हमें मालूम हो तो हम भी साथ हो जायँ। बात हम तीनों की है। हमारी मदद काम कर सकती है।"

"इसमें क्या शक।"

प्रभाकर ने मधुर स्वर से पूछा, "आपके जमींदारी है ?"

राजा साहब को प्रश्न बहुत अच्छा लगा। वह स्वयं इतना साधारण प्रश्न नहीं कर सकते थे।

एजाज़ को जवाब देते हुए झेंप हुई। कहा, "अब हमें आप लोगों के सवाल का जवाब देना पड़ता है। पहले हमीं जवाब लेते थे। आते-जाते हमीं पहले बोलते थे। हिन्दू जवाब देते थे।"

"इसी डर से हमने हुजूर से बातचीत नहीं की कि हुजूर खुद पूछें।" राजा साहब ने चुटकी लेते हुए कहा।

"ऐसी बात का हमें कोई खयाल न था !"

"कुछ तो होगा ही।" राजा साहब डटे रहे।

"वह बहुत अनुकूल नहीं।"

"हमारे ?"

"हाँ।"

"आपके ?"

"राज देते रहें तो सरकारी तौर से हो सकती है।"

"राज तो आपने हमें दे दिया।"

एजाज़ प्रभाकर को देखती रही। प्रभाकर ने कहा, "अब हमारा फर्ज़ है, हम आपकी सेवा करें। अभी इतना ही कि हम स्वदेशी।"

"इस राज से हमारी सरकार के यहाँ कद्र बढ़ सकती है।"

राजा साहब की आँख झप गयीं—'इससे दिल का हाल नहीं कहा।'

एजाज़ प्रभाकर से सुनने के लिए बैठी रही। प्रभाकर ने कहा, "मैं स्वदेशी का सक्रिय हूँ। सूत, चरखा, करघा, कपड़े तथा ग्रामीण वस्तुओं के प्रचलन का बीड़ा उठाया है। काम करता हूँ। राजा साहब की सहानुभूति है।"

"जमींदार छोटे-मोटे हम भी हैं। आपसे हमारा स्वार्थ है, हम समझते हैं। हमारे यहाँ एक डाट लगा दी गयी है। हमसे आपका उपकार हो सकता है। कुछ राज हमें काम करने के लिए दीजियेगा।"

राजा साहब बहुत खुश हुए। कहा, "हमारा एक ही रास्ता है।"

"हम बातें आपसे नहीं कर सकते, आज्ञा है। आपने जो कुछ कहा है, उसका कुछ प्रमाण भी हमें चाहिए। यहाँ हम कपड़े के केन्द्र मजबूत करेंगे। व्यवसाय बढ़ायेंगे। आपको अर्थ और अनर्थ के सम्बन्ध में काफी जानकारी है।"

"उस तरफ से तो कुछ मिलेगा नहीं।" एजाज़ ने कहा।

"इस तरफ का भी कुछ न जाना चाहिए। इतना खयाल रखिए, उनके आने के दिन की बातचीत मिल जानी चाहिए।"

"मिलेगी। जमींदार तो हम भी हैं, इतना काफी है। कोई दूसरी मदद ?"

"क्या पार्टी को दस्तखत करके नाम दे सकती हैं ?"

"यह सोचूँगी, शायद नहीं। पहले की बात होती तो हिम्मत बाँधकर देखती।"

"पुलिस या खुफिया का राज यहाँ का है या कलकत्ता का ?"

"कलकत्ता का।"

"एक आदमी यहाँ आया है, आपको बता रहा हूँ।" प्रभाकर ने यूसुफ के चेहरे का वर्णन किया।

"ऐसा ही आदमी वह भी था। पहले-ही-पहल आया था।" एजाज़ ने कहा।

"आपको यह आदमी कहाँ मिला ?"

"गेस्ट-हौस में।"

"किसी दूसरे ने भी देखा ?"

"हाँ, उसने देखा जो हमारे साथ है।"

एजाज़ ने बड़ी-बड़ी आँखें निकालीं।

राजा साहब ने खिदमतगार को भेजा। कुछ ही अरसे में दिलावर आया। भीतर बुलाकर राजा साहब ने पूछा, "आपके पीछे किसी को देखा ?"

"राज मिल गया है। बाजार में ठहरा है। बाहर का आदमी है।"

"जहाँ-जहाँ जाय, आदमी लगा रक्खो, देखे रहे, मालूम कर ले, असली कौन है।"

"जो हुक्म।" कहकर दिलावर बैठक छोडकर चला।

"हमारे लिए अच्छा होगा, अगर आप कलकत्ता चली जायँ, आप इस तरह हमारी ज्यादा मदद कर सकती हैं। यह आदमी आपके कारण आया है। क्या

राजा साहब यह बतलायेंगे कि हमारा राज किसी को उनसे नहीं मिला।"

"नहीं, नहीं मिला। इनसे हम कहते, लेकिन दूसरे की बात है, इसलिए नहीं कहा।"

"हमें इसका दुःख नहीं।" एजाज़ दृढ़ हुई।

"हमारी क़िस्मत।" प्रभाकर ने कहा, "यह आदमी आपके लिए (एजाज़ की ओर उँगली उठाकर) आया है। यहाँ इसका कोई आदमी होगा। मुझसे मैनेजर का नाम लिया,, मगर मैनेजर से इसकी जान-पहचान भी न होगी।"

राजा साहब सीधे होकर बैठे। प्रभाकर कहता गया, "जिस तरह भी हो, आप-लोगों में किसी से कोई आदमी मिलेगा। अब होशियारी से चलना है।"

राजा साहब चौंके।

"इसलिए कुछ रोज जाने की बात न करें। लेकिन जाना बहुत जरूरी है। नसीम यहाँ नहीं। इस मामले की वही मुखिया है।"

"यानी ?" प्रभाकर ने पूछा।

"अभी हमारी चड्ढी नहीं गठी। यह राज बाद को। आपका अस्ली नाम प्रभाकर है ?"

"मैं प्रभाकर हूँ। और मैं कुछ नहीं जानता।"

"आप कलकत्ते में मुझसे मिलेंगे ?"

"प्रभाकर ही आपसे मिलेगा।"

राजा साहब को ताल कटती हुई-सी जान पड़ी। हृदय में कोई रो उठा, मगर बैठे रहे।

प्रभाकर ने विदा माँगी। देर हो गयी। उसके साथी अभी छूटे हुए थे। रहने के लिए उन्होंने सम्भवतः दूसरा कमरा दूसरे मकान में लिया हो। एक तरह से पकड़ा जाना ही समझना चाहिए। प्रभाकर सोचकर बहुत घबराया।

राजा साहब ने पालकी मँगा दी। प्रभाकर बैठे। राजा साहब ने अतिथि-भवन में रखने की आज्ञा दी। दूसरे दिन सबेरे जगह पर भेजने के लिए कहा। दिलावर ने सुन लिया। प्रभाकर ने कहा, "मैं पता लेकर ही जाऊँगा। ये मेरी पूरी मदद करें। ऐसी आज्ञा दीजिए।"

राजा साहब ने दिलावर को बुलाकर हुक्म दे दिया।

एजाज़ के मन से संसार का प्रकट सत्य दूर हो गया। कल्पनादर्श में रहने की आकांक्षा हुई। प्रभाकर का ऐसा व्यक्तित्व लगा जैसा कभी न देखा हो। इसके साथ जिन्दगी का खेल है, खिलाफ मौत का सामाँ।

अट्ठारह

रुस्तम बहुत खुश थे कि रानी साहबा ने उन्हें जमादारी दी। जटाशंकर जान बचाने के लिए रुस्तम की जगह पहरा दे रहे थे। राजाराम रहस्य का भेद न पाकर खामोश हो गया। दूसरे पहरेदारों ने सुना और रुस्तम के तरफदार हो गये। जटाशंकर यह उड़ाये हुए थे कि वे शौकिया सिपाही का काम नहीं कर रहे। जल्द रुस्तम पर आफत आती है और ऐसी कि सँभाली न सँभलेगी। तीनों पहरों के सिपाही जो मौके पर नहीं थे, तरह-तरह की दीवार उठाते और ढहाते रहे।

सुबह का वक्त। रुस्तम कुर्सी पर बैठे थे। मुन्ना आयी। राजाराम के सामने कहा, "रानीजी की सलामी दो।"

रुस्तम झेंपा। बोला, "रानीजी यहाँ कहाँ हैं?"

राजाराम तनकर देखने लगा। तम्बू के उसी सिपाही को पुकारकर कहा, "देख लो, जमादार का हाल।"

मालखाने से जमादार जटाशंकर भी तद्गतेन मनसा देखने लगे।

मुन्ना ने कहा, "सलामी नहीं देते तो जमादारी से बरखास्त किये जाओगे।"

रुस्तम घबराया। उठकर झेंपकर सलामी दी। देखकर मुन्ना ने कहा, "एक दिन में तुम्हारी चर्बी बढ़ गयी। जमादारी के लिए तुमने कहा था, जमादारी तुमको दी गयी। लेकिन तनख्वाह तुम्हारी वही रहेगी।"

राजाराम और तम्बूवाला सिपाही हँसा। तम्बूवाले ने कहा, "जमादार साहब ने इतनी मिहनत से चोर पकड़ा, जमादारी मिली, लेकिन अब तो कुछ और ही बात जान पड़ती है।"

मुन्ना ने कहा, "रानीजी की इच्छा। जमादार जटाशंकर को उन्होंने सिपाही बना दिया, लेकिन तनख्वाह वही रक्खी। आज हुक्म हुआ है, जमादार को 20) का इनाम मिले, क्योंकि काम बहुत अच्छा किया।"

राजाराम ने अपनी तरफ से समझा और खुश होकर दोमंजिले के मालखानेवाले पहरेदार जमादार जटाशंकर को, जो आँगन की ओर खड़े थे, आवाज लगाकर, कहा, "जमादार, कैसा सच्चा फैसला आया है!" तम्बूवाला, रुस्तम का तरफदार, कुछ न समझा। आवाज बैठाकर कहा, "बड़े आदमी का फैसला बड़े आदमी जानें।"

"अगर सही मानी में तरक्की चाहते हो तो चलो उठकर।" मुन्ना ने कहा। रुस्तम उठकर चला। ज़ीने पर मुन्ना ने कहा, "अगर खजाने में उसी वक्त चोरी हो गयी हो तो छाँट दिये जाओगे या बचोगे?"

रुस्तम उछलकर सहम गया, "ऐं!"

"रानी के हथकण्डे हैं, कुछ समझता भी है? जैसा-जैसा कहा जाय, कर।" कहकर मुन्ना ने पाँच रुपये का एक नोट निकालकर दिया। शरमाकर रुस्तम ने ले लिया, कहा, "बस?"

मुन्ना ने कहा, "काम तुम्हारा चार आने का भी नहीं। जब काम पसन्द

आयेगा, तब। यह तुम्बा-फेरी किसलिए हो रही है, यह न तुम जानते हो, न हम। यह सिर्फ रानीजी को मालूम है। चलो, अभी तुमसे बहुत काम है। अपनी वर्दी पहनो, अब तुम फिर सिपाही के सिपाही।"

जमादार जटाशंकर ने वर्दी उतार दी। रुस्तम ने खीस निपोड़कर पहनते हुए कहा, "जमादार, जो कुछ भी आपने किया, आप समझें; जमादारी में आपसे हमने सलामी ली, इसका ख्याल न करें, मुआफ कर दें।"

जमादार खुश हो गये। कहा, "यह राजा-रानी का खेल है। कभी घोड़े पर चढ़ना पड़ता है, कभी गधे पर।"

मुन्ना ने कहा, "चलो।" कुछ आगे बढ़कर तीस रुपये दिये। कहा, "दस राजाराम को दो और बीस तुम लो। रानीजी ने इनाम दिया है।"

रुपये लेकर जटाशंकर ने कहा, "लेकिन वहाँ ताला टूट गया होगा, तो क्या होगा ?"

"देखो, जमादार, तुम्हारे पास बचत है, तुम्हारे पास एक ही कुंजी रहती है। दूसरी कुंजी कहाँ से आयी, खजानची से पूछोगे तो नौकरी जायगी। खजानची भी क्या जाने ? वह खजाने का ताला तोड़वायेगा? जिनका रुपया है, वे ऐसे निकालें या वैसे; किसी का क्या ?"

"यह भी ठीक है।"

"चुपचाप बैठे रहो। अब चढ़ाई होगी।"

"चढ़ाई क्या ?"

"रानीजी की विजय।"

"उनकी तो विजय ही है।"

उन्नीस

मुन्ना खजानची खोदाबख्श के यहाँ गयी। दूसरी औरत से खजानची का तअल्लुक कराकर, दूसरे मर्द से रिश्वत दिलाकर, 'एक औरत से उसका तअल्लुक हो गया है' उसकी बीवी से कहकर लड़ाकर, बिगड़ाकर, राजा साहब के नकली दस्तखत से इम्प्रेस्ट से रुपया निकलवाकर, गवाह तैयार करके मुन्ना ने खजानची को कहीं का न रक्खा था। उसको पुरस्कार भी मिलता था। इन कामों में रानी साहबा का हाथ था। धीरे-धीरे रानी का प्रेम घनीभूत किया गया। दो-एक बार रात को कोठी में बुलाकर खिलाया-पिलाया गया। खजानची की कल्पना दूर तक चढ़ गयी। रानी का चरित्र जैसा था, उससे उन्हें जल्द सफल होकर राज्य करने में अविश्वास न रहा।

कुंजी देते हुए मुन्ना ने कहा, "रानी साहबा ने कहा है, अब तुम यहाँ तक आ

गये।" कहकर उसने अपनी छाती पर हाथ रक्खा।

खोदाबख्श खुश होकर बोले, "मेहरबानी !"

मुन्ना ने कहा, "आप आज ही जाइए और हिसाब लगाकर मुझे बताइयेगा, मैं राह पर पीपल के नीचे मिलूंगी, कितना रुपया निकाला गया। आपको तो मालूम है, काम दूसरे से कराया जाता है, हिसाब दूसरे से लिया जाता है। जिसने रुपया निकाला वह खा नहीं गया, मालूम हो जायगा। फिर उसी तरह बिल बनाकर जरूरी लिखकर सही करा लीजिए। रानी साहबा वह बिल देखकर वापस कर देंगी। अकौण्टेण्ट के पास बाद को भेज दीजिए। काम हो जाने पर इनाम मिलेगा।"

कहकर मुन्ना लौटी। खजानची देखते रहे। सोचते रहे। उनसे नोटोंवाले सन्दूक की कुंजी ली गयी थी। अन्दाजन दो लाख रुपया था। सोचकर काँपे। दो लाख रुपये का जाल। इम्प्रेस्ट से हजार-पाँच सौ रुपये निकाल लेना बड़ी बात नहीं। अकौण्टेण्ट को शक नहीं होता। दो-दो लाख का बिल ! इतना रुपया तो मालगुजारी के वक्त ही जाता है।

मुन्ना ने यह रुपयेवाला जाल अपनी तरफ से किया था। रानी साहबा को इसकी खबर न थी। बुआ को झुकाने के लिए उन्होंने आज्ञा दी थी कि किसी सिपाही या जमादार से फँसा दी जायँ, कुंजी उनके हाथ में रहे; लेकिन मुन्ना ने लम्बा हाथ मारा।

खजानची ग्यारह बजे के करीब आये। जटाशंकर बैठे थे। खजाने में उस समय राजाराम का पहरा बदल चुका था। रामरतन था। उसने बहुत तरह की बातें सुनी थीं। पर वह आदी था। खड़ा रहा। खजानची ने वही सन्दूक खोला। सन्दूक में एक भी नोट न था। सन्दूक का बीजक निकालकर देखा, दो लाख तेरह हजार के नोट थे।

जटाशंकर तके हुए थे। रामरतन पहरे पर टहल रहा था। क्या हो रहा है, क्या नहीं, इसकी उसको खबर न थी। खजानची ने चुपचाप बीजक निकालकर जेब में किया और सन्दूक में ताली लगायी, फिर बाहरवाला ताला लगाया। जटाशंकर फाटक की आड़ से साधारण भाव से देख रहे थे। सिपाही चौंका, पर सँभलकर टहलने लगा।

खजानची ताला लगाकर चले। पीछे-पीछे जटाशंकर हो लिये। खजानची घबराये हुए थे। जटाशंकर के लिए इतना काफी था। अभी तक कोई पकड़ उन्हें न मिली थी। खजाने से कुछ दूर निकल जाने पर खजानची ने उन्हें देखा, घबराहट को दबाकर पूछा, "क्यों जमादार, क्या बात है ?"

जटाशंकर ने जवाब नहीं दिया। खजानची की जेब पकड़ ली। "हाथ-पैर हिलाये कि उठाकर दे मारा और हड्डी-हड्डी अलग कर दी।" गरजकर कहा।

"यहाँ तुम्हारा क्या है ?"

"यहाँ हमारी रोटियाँ हैं और आपकी भी।"

"हम पर हाथ उठाने का नतीजा मालूम होगा ?"

"बहुत अच्छी तरह।"

"जबान हिलायी तो…"

"चुप रहिए।"

"हम वही जिन्होंने रानों के नीचे रक्खा और सदियों। यहाँ कुछ ऐसा ही।"

जटाशंकर फौजी आदमी थे। धोखे-पर-धोखा खा चुके थे। ताव आ गया। चाहा कि उठाकर पटक दें। लेकिन सँभल गये। कहा, "खजानजी साहब, हमको यही हुक्म है। आप तो अब वही हैं। सलाम।"

खजानजी ने कहा, "रा···"

"हुजूर, निकालनेवाले तो हमी हैं। यह फर्द हमको दे दीजिए।"

"उन्हीं का हुक्म ?"

"हुजूर ! लेकिन उससे न कहियेगा, और आगेवाली कार्रवाई पहले हमसे। यहाँ भी तो एक कुंजी रहती है ?"

"हाँ, हाँ, ठीक है। यह लो।" खजानची ने बीजक दे दिया। देना नहीं चाहते थे, हाथ काँपा। पर काँटा ऐसा ही था। सोचा, 'रुपये इसी ने निकाले हैं। दो आदमियों के सामने कहला लेना है।'

जटाशंकर ने बीजक लेकर कहा, "इसकी बात उससे मत कहियेगा, नहीं तो हम पकड़ जायँगे। उससे यह मालूम कीजिए कि कहाँ रक्खा है ? आपसे कहे देते हैं कि निकालकर हमने दिये।"

"तो वे पहुँच गये।"

"कितने लिखे हैं ? बताइए, नहीं तो हमें पकड़ना पड़ेगा।"

"दो लाख तेरह हजार। जमादार, बहुत नाजुक मामला है। भेद न खुले। तुम्हें भी मिलेगा।"

"आगेवाली लीपापोती भी हमें मालूम होनी चाहिए। रुपया रक्खा कहाँ है, पूछ लीजियेगा, नहीं तो हम पुछवायेंगे। कल हुजूर इसी वक्त खजाने में तशरीफ ले आने की मिहरबानी करें, नहीं तो रा—के पास मामला दायर होगा। खूब खयाल रहे (बीजक दिखाकर) इसका हाल किसी से कहियेगा तो बचियेगा नहीं। हमीं-आप तक इसका भेद है।"

"यह तै रहा। लेकिन तुम भी इसका जिक्र न करना।"

"हुजूर का मामला, जिक्र किससे किया जायगा ?"

जमादार राजा को सम्बोधन कर रहे थे, खोदाबख्श अपने को समझते थे। सलाम करके जमादार वापस आये, खजानची आगे बढ़े। पीपल के चबूतरे पर मुन्ना बैठी थी। देखकर मुसकराती हुई सामने आयी। "कितनी है ?" होंठ रँगकर पूछा।

"पाँच लाख।" खजानची ने छूटते ही कहा।

मुन्ना ने अंक मन में दोहराये।

"तो जल्द बिल तैयार हो जाना चाहिए। राजा साहब के दस्तखत बनाकर अकौण्टेण्ट के पास पहुँचा दिया जाना चाहिए।"

खजानची मन में कुढ़ा। सोचा, इस बेवकूफ को कौन समझाये, दो-दो, ढाई-ढाई लाख रुपये, ज्यादा रुपये होने पर छिपा रखने के सिवा, सीधे रास्ते से हज्म नहीं किये जा सकते। वे राजा की निगाह पर आयेंगे। बिल जाली बना लिया जा सकता है, पर खर्च का मेमो राजा की नजर से गुजरेगा। इम्प्रेस्ट का रुपया एक

साथ मेमो बनकर निकलता है घर के खर्च के लिए। उससे हजार-पाँच सौ साल-छः महीने में निकाल लिया जा सकता है। उसके बिल सही होकर अकौण्टेण्ट के पास भेजे जाते हैं तो कैश-लेजर कर लिया जाता है, उसका अलग से मेमो में उल्लेख नहीं आता।

खुलकर खजानची ने कहा, "अच्छी बात है," फिर पूछा, "रुपये रानी साहबा के पास पहुँच गये ?"

"उसी वक्त," स्वर को मुलायम करके मुन्ना ने कहा, "नहीं तो रक्खे कहाँ जायेंगे ?"

"बिल बनाकर अकौण्टेण्ट के पास भेजने के लिए क्या रानी साहबा ने हुक्म दिया है ?"

"हमसे सवाल करने के क्या मानी ? हम जैसा सुनते हैं, वैसा कहते हैं।"

"अच्छा तो उसी तरह बिल भेज देंगे।" खजानची को अँधेरा दिखा। वह रास्ता काटकर चले।

मुन्ना को जान पडा, कुछ बिगड़ गया। कुछ अप्रतिभ हुई। मगर फिर चेतन होकर कहा, "आप इतना नहीं समझते जब लोहे के सन्दूक से नोट गायब हो सकते हैं, तब बाकी कार्रवाई भी हो सकती है।"

"कैसे ?"

"जैसे आपसे कुंजी ली गयी।"

"वैसे ही मेमो पर राजा के दस्तखत करा लिये जायँगे और पाँच लाख रुपये के खर्च पर ?"

"जहाँ पाँच लाख की चोरी होती है, वहाँ एक लाख की कम-से-कम रिश्वत होगी, और इस रकम से काम न हो, ऐसा काम अभी संसार में नहीं रचा गया।"

"यह तो हम समझे, लेकिन मेमो पर राजा के दस्तखत कैसे होंगे ?"

"मेमो क्या है ?"

"जिस पर बिल के रुपये लिखे जाते हैं।"

"राजा की सही हो जाने पर ये रुपये दर्ज कर दिये जायँगे।"

खजानची खुश हो गये। कहा, "हाँ, ऐसा हो सकता है। लेकिन वहाँ भी लगाव होगा।"

"राज्य रानी का भी है, लगाव सबसे है, जो उनका काम करेंगे, उन पर वे मिहरबान रहेंगी।"

"अच्छी बात है; अब कुल कार्रवाई कर ली जायेगी, लेकिन अकौण्टेण्ट समझ जायँगे।"

"कौन समझेगा, कौन नहीं, इसकी चिन्ता व्यर्थ है।"

"यह भी ठीक। हमें क्या मालूम, कौन-कौन नेक नजर पर हैं।"

मुन्ना खज़ानची की नुकीली दाढ़ी देखती रही। खजानची ने खुश होकर रास्ता पकड़ा।

बीस

यूसुफ के पीछे तीन आदमी लगाये गये। होटल में यूसुफ ने कलकत्ते के एक मित्र का पता लिखाया था। रात को प्रभाकर अपने मित्रों की तलाश में बाजार में गये। पालकी के अन्दर बैठे रहे। पालकी के दरवाजे बन्द। दिलावर ने साथियों के साथ यूसुफ का पता ला दिया। बाजार के लोगों पर राजा के लोगों का प्रभाव था। जिस कमरे में सामान था, उसमें प्रभाकर के साथी नहीं मिले। प्रभाकर लौटे। अतिथिशाला के कमरे में आकर पूछा, "बाजार में रहने के कितने होटल हैं?"

दिलावर ने कहा, "सिर्फ तीन।"

"और कोई रहने की जगह है?"

"और रण्डियों के मकान हैं।"

निश्चय करके प्रभाकर ने पूछा, "क्या नाम इस आदमी ने लिखाया है?"

"शेख नज़ीर।"

कलकत्ते का पता दिलावर ने लिखा लिया था। प्रभाकर ने कहा, "सावधानी से इस आदमी का पीछा किया जाना जरूरी है। वहाँ तीन आदमी जायँ। एक पहले ही उस पते पर पहुँचे। साथ वकील और पुलिस का अच्छा आदमी, कम-से-कम इन्सपेक्टर होना चाहिए। हम चिट्ठी देंगे, वकील आदमी ले लेगा। इस पते का आदमी अगर यह नहीं, तो वह मिलेगा। इसके पहुँचने के पहले वहाँ पहुँचना चाहिए। यह भी बाद को वहाँ जायगा, और यह कहेगा कि वह स्वीकार कर ले कि वह यहाँ आया। तुम समझे?"

"हाँ, लेकिन अगर कहकर आया होगा तो सब-का-सब गुड़-गोबर हो जायगा। बड़ा नीचा देखना होगा। वह इसी का नाम बतलायेगा, या नहीं मिलेगा। यह सरकारी आदमी है, वह भी होगा। इस तरह न बनेगा। अभी आप कच्चे हैं, बाबू। हम होटलवाले से कह आये हैं, कल वह इनसे इनके एक रिश्तेदार का नाम पूछेगा, अपने मन से पूछेगा, जैसे साले का नाम या मामू का या मौसी का। इन्हें जवाब देना होगा, अगर जवाब न दिया तो कहा जायगा कि ये राजा के सुपुर्द किये जायँगे। ये गलत नाम बतलायेंगे। इस तरह यहीं गवाही पक्की हो जायगी। फिर कलकत्ते का हाल मालूम कर लेंगे। राजा भी सरकार के हैं। अगर उन्होंने बात न मानी तो इनसे इतने सवाल किये जायँगे कि होश फाख्ता हो जायँगे।"

दिलावर की बातों से प्रभाकर को खुशी हुई। सिर झुका लिया। कहा, "आप लोगों से बहुत कुछ सीखना बाकी है।" मन में कहा, 'काम उस तरह भी पक्का था, झूठ से कहाँ बचाव है?'

"बाबू, आपकी शराफत के हम कायल हो गये। आप हमें अपने आदमी मालूम होते हैं। हमीं आपके साथ रहेंगे। छोटी-सी तनख्वाह में ऐसी गिरह लगानी पड़ती है, नहीं तो लोग बिना शहद लगाये राजा को चाट जायँ। अब आप आराम कीजिए।"

प्रभाकर लेटे। रात का तीसरा पहर बीत रहा था।

सबेरे होटलवाले ने यूसुफ से एक रिश्तेदार का नाम पूछा। यूसुफ चौकन्ने हुए। मगर मामला तूल पकड़ जायगा सोचकर अपने रिश्तेदार का नाम बतलाया। होटलवाले ने यूसुफ के दस्तखत कराये। यूसुफ ने बिगाड़कर दस्तखत कर दिये। फिर कलकत्तेवाले जहाज के लिए रवाना हुए। खबर लेकर उनके पीछे तीन आदमी लगे। बहुत से यात्री थे। उन्हें मालूम नहीं हो सका, कौन उनकी गरदन नाप रहा है।

कलकत्ते में उतरने के साथ उन्होंने अपने नाम के साथ जो पता लिखा था, उस पर पहुँचने के लिए एक आदमी तीर की तरह छुटा। पहले दरजे की बग्घी किराये की की और जल्द चलने के लिए कहा। उसके दो साथी, रास्ते पर यूसुफ को तीसरे दरजे की टूटी बग्घी ठहराते हुए देखकर, पूछताछ करने लगे, "कहाँ जाना है—जनाब कहाँ से तशरीफ ले आये ?" मतलब जवाब लेना नहीं, रोके रहना था। यूसुफ सस्ते भाव चढ़ना चाहते थे, जल्दबाजी नहीं की। एक बग्घीवाले से तै न हुआ दूसरे के पास चले।

आगन्तुकों ने स्थान का नाम न सुना था। ज़रा देर करके आये थे। वे दूसरे के पास गये, साथ-साथ यह भी गये।

यूसुफ ने कहा, "तालतला ?"

"हाँ, बाबू।" बग्घीवाले ने जवाब दिया।

"क्या लोगे ?"

"डेढ़ रुपया।"

"वह क्या है थोड़ी दूर पर। डेढ़ रुपया बहुत है। ठीक-ठीक बतलाओ।"

"अरे साहब, हम भी साथ हो जायँगे, क्या बुरा है ? तै कर लीजिए। आप बड़े आदमी हैं। पीछे बैठिए। हम आगे, पिछौड़े रहेंगे। आधा आप दीजिए, आधा हम।"

बात यूसुफ को जँच गयी। पूछा, "आप लोग भी वहीं चलेंगे ?"

"जी हाँ," एक ने कहा, "कुछ दूर और चलना है। पैदल चले जायँगे।"

"कहाँ से आ रहे हैं ?"

"उलूबड़िया से।"

एक साथी मुसलमान था। यूसुफ मान गये। गाड़ी तै की। सवा रुपये की ठहरी। तीनों बैठे। मुसलमान दोस्त असल में हिन्दू था, फ्रेंचकट दाढ़ी रखाये हुए। चुपचाप बैठ रहे। गाड़ी चलती गयी।

पहले के गये हुए आदमी ने राज़ ले लिया। यूसुफ उससे कहकर नहीं गये। बतलाने जा रहे थे। राज़ लेकर और यह कहकर, "आप फँसाये गये हैं अपने किसी दोस्त से, उन्होंने अपने नाम की जगह आपका नाम लिखाया है और किसी मामले में फँस गये हैं; अगर आप हमारे पूछने का राज़ उन्हें न दीजियेगा, वे कहाँ गये थे, क्यों गये थे, किससे-किससे मिले थे, आगे का क्या इरादा है, उनसे दोस्त की हैसियत से मालूम करके हमें बतला दीजियेगा, तो बच जाइयेगा, कुछ फायदा भी होगा, वे कोई हों, एक आदमी हैं, अपने को पहले बचायेंगे, सरकारी आदमी खास तौर से आपको फँसा देंगे और खुद पर मारकर अलग हो जायँगे। याद

रखियेगा। हम आपसे फिर मिलेंगे।" यह कहकर वह आदमी अलग हो गया। दूर चलकर खड़ा हुआ। बातचीत हो चुकी थी कि यह आदमी अगर उधर जायगा तो पीछा करनेवाले साथी दो घण्टे के अन्दर उस जगह पहुँच जायँगे। यह साथी दो घण्टे तक प्रतीक्षा करेगा। यह पढ़ा-लिखा मुसलमान था।

यूसुफ तालतल्ले पहुँचे। गाड़ी रोकी। दोनों साथी आधा दाम देकर उतर पड़े और सलाम-वालेकुम् करके चल दिये। तीसरा साथी प्रतीक्षा कर रहा था। तपाक से मिला। पूछा, "वह कहाँ है ?"

"साथ आया है।" एक ने कहा।

"राज़ मिल गया।"

"फँस जायगा ?"

"अब इसको कौन छोड़ता है ?"

"यहाँ जड़ जमानी पड़ेगी ?" एक ने पूछा।

"मानी बात है।" उस मुसलमान साथी ने कहा।

"गुंजाइश है ?"

"बहुत।" पहलेवाले ने कहा।

"तुम्हारी किस्मत खुल गयी।"

"मुमकिन, गहरी रकम हाथ आये।"

इक्कीस

"भाई नजीर !" यूसुफ ने पुकारा।

नजीर बैठे थे। अभी ही फुर्सत मिली थी। सोच रहे थे। कहनेवाले आदमी की बात पक्की मालूम हो रही थी। घबराये भी थे। गरीब थे। यूसुफ की दोस्ती से फायदा न हुआ था। कटने की ठान ली। आवाज पहचानकर उठे। दिल से नफरत थी, मगर मुस्कराहट से होंठ रँग लिये। थानेदार की निगाह से निगाह भी नीची रखी।

"अस्सलामवालेकुम्।"

"वालेकुम् अस्सलाम।"

"भाई, तुम्हारा नाम एक जगह लिखाया है।"

"किस जगह ?"

"तुम पुलिस से राज़ लेने लगे।"

"क्या हमसे पूछा गया ?"

"यह बातचीत तो पहले हो चुकी है।"

"इसका यह मतलब नहीं कि हम खुदा के लिए मुसलमान न रह जायँ।"

"इस दफे के लिए मान जाओ।"

"आप पूरा-पूरा हाल बयान कीजिए, वरना···"

"वरना ?"

"हाँ।"

"वरना आप सरकार से बदला चुका लेंगे।"

"नहीं चुकवा लूंगा।"

"तुम तो बहुत बिगड़े।"

"बात भी कोई बनायी ?"

"बात तो बनायी ?"

"बातें बनाते हैं।"

"अच्छा तो जो जी में आये कर लो।" कहकर थानेदार साहब ने नकली ठहाका लगाया।

"मैं मजाक नहीं कर रहा।"

थानेदार साहब गर्म पड़े। कहा, "ऐसा भी होगा कि हम तुम्हारा दिल देख रहे हों और अस्लियत कुछ हो ही नहीं।"

"मुमकिन।" नजीर के स्वर में निवेदन न था।

"अच्छा तो आखिरी बात। अगर आप नहीं माने तो आज ही आपका चालान करा दूंगा।"

नजीर घबराये। कहा, "हमारी बात और हमें मालूम भी न हो, क्या तमाशा है।"

"अच्छा तो आप तैयार रहिए।"

"आप भी तैयार रहिए।"

थानेदार घबराये। अजीजी से कहा, "पुलिस राज़ दे देती है तो उसका बल घट जाता है। काम हासिल नहीं होता। आप मान जाइयेगा तो वक्त पर मीठा फल खाने को मिलेगा। नहीं माने तो हाथ मलते रह जाइयेगा।"

"पर हमें मालूम कर लेना है।"

यूसुफ हार गये। कहा, "हम एक जगह गये थे, जहाँ आपका नाम हमने लिखाया है।" फिर न बताया।

"कहाँ गये थे ?"

यूसुफ ने एक दूसरी जगह का नाम बताया। कहा, "सरकारी काम था।"

"आप ऐसा कहते हैं तो हमारी छाती दूनी हो जाती है। फिर ?"

"फिर और कुछ नहीं। यह याद रहे कि तुम्हारे मामू के तीन लड़के हैं, यह भी लिखाया है।"

"मेरे तो मामू ही नहीं। खुदा के फजल से अब्बाजान के सालियाँ चार थीं, साला एक भी नहीं।"

"आपको हम बचाये हुए हैं, यह आप समझे या नहीं ?"

"हाँ, यह तो है।"

"और आप नहीं गये, यह भी साबित है।"

"हाँ, यह भी।"

"आपको जिल्लत गवारा करनी पड़ी, इसका हमको अफसोस है।"

नजीर सिर झुकाये खड़े रहे। यूसुफ गाड़ी खड़ी करके आये थे। उधर को चले। विचार में नजीर को सलाम करने की याद न रही।

गाड़ी तै करके यूसुफ बैठे। गाड़ी चली। कुछ दूर पर एक दूसरी गाड़ी किराये पर ली हुई थी। कुछ फासले से पीछे लगी वह भी चली।

यूसुफ के चले जाने पर नजीर के पास वही पहला आदमी गया। बुलाकर पूछा। नजीर ने दीन भाव से कहा कि यूसुफ की उनसे तनातनी हो गयी है, उन्होंने बतलाया नहीं, जो कुछ कहा—यह-वह करके, वह थानेदार हैं, उनसे जान-पहचान है, दूर के रिश्ते में आते हैं।

आगन्तुक ने कहा, "आप हमारे आदमी हैं। इन्होंने आपको फँसा दिया है। हम आपको बचा लेंगे। कुछ रुपये भी देंगे। बाद को काम निकलने पर और मदद करेंगे। अभी आप एक चिट्ठी लिख दीजिए कि आपका यह नाम है, यह वल्दियत, इतने मामू हैं, और इसके इतने लड़के—यह यह।"

नजीर ने, बात पक्की है, सोचा। गरीब थे। रुपये मिल रहे थे। दावात-कलम लेकर कुल बातें सामने लिख दीं।

आगन्तुक ने उन्हें पच्चीस रुपये दिये। नजीर हर तरह से उसके आदमी बन गये। यूसुफ का पूरा-पूरा हाल आगन्तुक को मालूम हो गया—वह कहाँ रहते हैं, उनके वालिद क्या करते हैं, आजकल क्या रुख है, किस कार्रवाई में लगे हैं।

आगन्तुक वहाँ से राजा की कोठी आया। उसके साथी भी आये। उन्होंने घर का पता और बाप का नाम मालूम कर लिया था। सामने के पानवाले ने बतलाया था, दोनों जगहों की बातें मिल गयीं। लोग खुशी-खुशी टहलते रहे। अली को देखा। अली ने पूछताछ शुरू की। लोगों ने कहा, "बर्दवान से आये हैं।"

अली ने पूछा, "बर्दवान में सुदेशी का आन्दोलन कैसा है?"

"कौन सुदेशी?" एक ने पूछा।

"यही जो सरकार के खिलाफ बमबाजी हो रही है।"

"आप अखबार तो पढ़ते होंगे?"

"हाँ, हमने कहा···"

दूसने ने कहा, "बमवाले हैं।"

"कौन?" अली ने कहा, "हमारे साहबजादे थानेदार हैं।"

तीसरे ने कहा, "हमारे मामू के साले के ससुर इन्स्पेक्टर हैं।"

बाईस

प्रभाकर को जहाँ रक्खा है, उसी कोठी का पिछला हिस्सा है। दूसरी तरफ बुआ रहती थीं। प्रभाकर के दोमंजिले की छत, दूसरे छोर तक, बरगद और पीपल की डालों से छायादार है। भीतर, कोठों में, अँधेरा। इतना प्रकाश कि काम कुल हों। खुली तरफ खिड़कीवाला बाग। दूसरे किनारे मर्दों के लिए बड़ा जलाशय, गहरा, मछलियों की खान। किनारे नारियलों की कतार। दूसरी पर, आम, जामुन, कटहल, लीची, नारंगी, शहतूत, फालसा, बादाम, रक्तचन्दन आदि के पेड़। कहीं-कहीं गुलचीनी, गन्धराज, अशोक, हींग, अनार, गुलाबजामुन, योजनगन्धा।

खुली हवादार खिड़कियों के एक बगल पलँग बिछा है, मशहरी लगी है। एक बड़ी मेज लगी है; काठ की; मगर अच्छी, कई कुर्सियाँ चारों ओर से रक्खी हैं। दो आलमारियाँ हैं जिनमें सामान, कपड़े और किताबें हैं। भीतर, दूसरी खमसार के रूप, बड़ी बैठक है। बत्ती से ही उजाला होता है। वहाँ प्रभाकर साथियों के साथ काम करता है। बैठक की दूसरी दीवार अकेली है, बड़ी खिड़कियाँ लगी हैं, खोल दी जायँ तो गुप्त कार्य दिखें, लेकिन पेड़ों की घनी छाँह है। फिर भी काम चल जाय, दिये जलाने की दिक्कत न रहे, पर, डाल पर चढ़े अजनबी से दिख जाने की शंका, प्रभाकर खिड़कियाँ बन्द रखता है। ज़ीने की तरफ के पहरे से, एक दूसरे आँगन के बरामदे से आने-जाने का रास्ता है। प्रभाकर के कमरे के छोर से तालाब को निकलने का एक बाहरी ज़ीना है। पहले नीचे और ऊपर के दरवाजों में ताले पड़े रहते थे; लोहे के पात जड़े बाहरवाले और काठ के भीतरवाले में। यह उसका एकान्त रास्ता है। घिर जाने पर पहरेवाले ज़ीने से उतरने का दूसरा रास्ता है, फिर कई तरफ फूटी दालानें, आँगन से आँगन को चलनेवाली हैं।

वास निर्जन। निकलने और पैठने की राहें प्रभाकर देख चुका। सरोवर के दूसरी ओर मर्दाना बाग है, जिसमें तीन हजार पेड़। गढ़ की दीवार के दूसरी तरफ गाँव का रास्ता। निर्जन और भी राहें हैं। इससे वह एक रोज बाहर के लिए निकल चुका है। रासपुर, बड़ा गाँव, केन्द्र है, चर्खे और करघे का काम होता है, जनता और जुलाहों में प्रचार भी। सभी कमकरों का दिल बढ़ा हुआ। स्वदेशी-प्रचार के गीत गाते हुए। काम करते हुए। प्रभाकर का व्याख्यान हुआ। निरीक्षक-जैसे गये थे। बहुत-से दूसरे केन्द्र गये। फिर कलकत्ता चलने का बहाना बनाकर लौटे और रात को अपने प्रासाद-वास पर आये।

बंगाल और सारे देश में आन्दोलन की चर्चा है। सैकड़ों कर्मी प्रान्त में फैले हुए। संगठन और व्याख्यान और काम करते चले। विदेशी का बहिष्कार जोरों पर। जगह-जगह 'युगान्तर' की छिपकर बातें। सुरेन्द्रनाथ और विपिनचन्द्र के व्याख्यानों की तारीफ। अखबार रँगे हुए। वन्देमातरम् का पहला समस्वर आकाश को चीरता हुआ। गीत; भिन्न कवियों-गायकों के भी संगठन, काम; दिन-रात काम; एक लगन।

प्रभाकर नहाने चला। सरोवर पर पक्के घाट हैं, लम्बान की दोनों पंक्तियों के बीचोबीच दूसरा घाट निकट है। एकान्त रहता है। कोठी के पिछले छोर से दूसरी तरफवाला घाट निकट पड़ता है। प्रभाकर उसी में नहाता है। कोठी के सदर फाटक की बगल में सरोवर का राजघाट है। उसमें लोग आते-जाते हैं। दोनों घाटों के चारों ओर मौलसिरी के पेड़ लगे हैं और काफी पुराने हो चुके हैं। बड़ी घनी छाया है। वैसी ही ठण्डक भी।

प्रभाकर ने डुबकियाँ लगाकर स्नान किया। भीगे अँगोछे से बदन मला। हाथ-पैर रगड़े। कुल्ले किये। कुछ तैरा, कुछ खेला। इधर-उधर के दृश्य देखे, पानी से भीगी पलकों से कैसे दिखते हैं। फिर निकलकर धोती बदली और निचोड़कर, गीली धोती और तौलिया लेकर चला।

तेईस

खजानची खोदाबख्श, मुन्ना और जटाशंकर के पेट में पानी था। तीनों ने बचत सोची। तीनों के हाथ में पकड़ है।

जटाशंकर से मिलने का वक्त आया। खजानची कलकत्ता और राजधानी एक किये हुए हैं।

दुपहर का समय। किरणों की जवानी है। हरियाली का निखार। मुन्ना कोठी की बगलवाले रास्ते से गुजर रही है। रुपया रक्खा है, दूर से निगरानी रखती है। कई दफे वह अँधेरी कोठरी देखती है। सदर की तरफवाले घाट की बगल से, किनारे-किनारे जो सड़क दूसरे घाट को जाती है, उसी पर टहलती हुई। प्रभाकर को दूसरे किनारे से कोठी की तरफ चलते, फिर कोठी के भीतर चले जाते देखा। पेड़ों की आड़ है और सिंहद्वार से दूर है। अन्दर-महलवाली दासी के लिए कोठी के दूसरे किनारे तक बढ़ जाना, अन्देशे के वक्त, स्वाभाविक है। उसकी प्रभाकर पर नजर पड़ी कि तेजी आयी। चौकन्नी हुई। अपने में पूछा। किसी को उधर से जाते नहीं देखा। वहाँ ज़ीना है, नहीं मालूम। कभी गयी नहीं। कोठी का उधर-वाला हिस्सा नहीं दिखा। प्रभाकर को किनारे से भीतर जाते देखा।

खजानची अभी नहीं आया। आयेगा, कुछ ठहरकर चलेगी, राह पर मिलेगी। पूछना और काम लेना है। छिपी भी है, देखती भी है। यहाँ से सिंहद्वार और वह रास्ता नहीं देख पड़ता। अनुमान है, वक्त पर लौट पड़ेगी। सजग है—खजानची लौट न जाय।

खजानची बेचैन हैं। घटना घट चुकी। बीजक जमादार के हाथ पड़ा। परदा फाश हुआ। बँध गये। सरकारी आदमी की शरण ली। काम कर रखने की ठानी। एजाज़ से बातचीत करानी है। राज़ लेना है। निचले वर्ग की औरत से मदद

चाहिए। मुन्ना आँख के सामने आयी। सहारा मिला। आखिरी हिम्मत बाँधी कि इस जाल से छूट जायें। सरकार की शिरकत के ख्याल ने पाया जमाया।

जटाशंकर से मिलना आवश्यक है, खजानची यथासमय आये। खजाने की तिजोरियाँ खोलीं, बीजक देखे। जटाशंकर भी खड़े हुए देखते रहे। चपरासी के सन्दूक बन्द करने पर खजानची से जटाशंकर ने पूछा, "ठीक है ?"

"ठीक है।" गम्भीर अप्रसन्नता से खजानची ने कहा। जटाशंकर सिपाही की गवाही तैयार कर रहे हैं। दोस्ती रही। लेकिन बीजक छिन गया है। बस नहीं। फँसे हैं। बचकर चले।

जमादार काम ले गये, खजानची से उतरते-उतरते न सहा गया। कहा, "जमादार, क्या यह गवाही अलग से पेश होगी ?"

सिपाही समझ गया। पूछा, "कैसी गवाही ?" बातें इधर-उधर सुन चुका था। खजाने की बातचीत ने जड़ जमा दी। खजानची के सामने सिपाही ने कहा, "मैं समझ गया।"

तेज पड़कर खजानची ने कहा, "नहीं सुना ? हमने कहा, ठीक है।"

"बादवाली बातें भी ?" सिपाही ने फिर सवाल किया।

जमादार ने कहा, "हम सधे होते तो पूछते क्यों ? सवाल मत करो।"

मगर सिपाही का भूत न उतरा, शंका-समाधान न हुआ। छुटकारा भी न था।

खजानची ने निकलते हुए धीरज दिया, सब लोग एक ही राह से गुजरेंगे। जहाँ आपकी गवाही होगी, वहाँ हम भी होंगे।

सिपाही खड़ा रहा। जमादार और खजानची साथ निकले। रास्ते-रास्ते निकल गये। सिंहद्वारवाले घाट से कुछ फासले पर एक कुंज में बातचीत करने लगे। मुन्ना ने देखा। छिपकर बातचीत सुनने के लिए, रास्ते के किनारे की मेंहदी की बेड़ों से बचती हुई पास पहुँची। खजानची से मिलने का मुकाम कुछ आगे है। जटाशंकर की नाड़ी छुट रही थी। पूछा, "क्या खबर है ?"

खजानची ने कहा, "अभी दो रोज मत बोलो।"

"तब तो हमारी नौकरी चली जायगी।"

"तब और नहीं बचेगी। पहले की बातें भी हमसे बताओ।"

"आप यह बताइए कि आगे की कार्रवाई क्या होगी ?" जटाशंकर ने पूछा।

मुन्ना समझ गयी, इन दोनों का मेल मिल चुका है। कारण समझ में न आया। जमादार के रपोट करने के विचार से डरी। पर जमी बैठी रही।

"अभी कुछ नहीं कहा जा सकता, जमादार।" खजानची ने लाचार होकर कहा।

"अब हमारे मान की बात नहीं।"

"जमादार, सिर्फ इस कोठे का धान उस कोठे गया है। दबा जाओ।"

"दबा कहाँ से जायँ ?"

जमादार रपोट न कर दे, इस डर से मुन्ना निकली। मिलने की ठानी। मेंहदी के किनारे से सड़क पर आ गयी।

एकाएक उसके पहुँचने पर दोनों त्रस्त हुए। उसने कहा, सिपाही की ओर से

मेरी गवाही होगी।

खजानची सकपका गया। जटाशंकर अपने बीजक की ढाल से तलवार झेल जाने को तैयार था। मुन्ना ने कहा, "मेरा हाल दोनों को मालूम है। हम तीनों का मिलना था। क्योंकि रानीजी हैं। रानी और राजा मिल गये। रुपया हमी लोगों में है, हमी लोगों का है। मिल्लत से चलना है, क्योंकि हमको बचना है। सिपाही को हम समझा लेंगे। क्या कहते हो जमादार?"

जमादार का बीजक-बल घट रहा था। चुपचाप खड़े थे।

मुन्ना ने सोचा, परदा फाश हुआ तो बुरी हालत होगी, रिश्वत दे दी जायगी तो अभी मामला दबा रहेगा। कहा, "रानीजी जल्द आजकल में रुपया देनेवाली हैं। आप लोग रानी के तरफदार रहिए। यह काम इसीलिए किया गया है। राजा के कान में बात पड़ जायगी तो बाँसों पानी चढ़ेगा। मामला बहुत बढ़ेगा। नौकरियाँ जायँगी। पुलिस के हाथ गया तो सजा की नौबत आयेगी। हमी लोग बँधेंगे। रानी और राजा को कुछ नहीं होगा। संगठन रहेगा तो मजे में चले चलेंगे, क्या कहते हैं?"

"इससे अच्छी और कौन-सी बात है?"

जटाशंकर ने भी खजानची की बात दुहरायी।

मुन्ना ने कहा, "जमादार, अब तुम चलो, उस सिपाही से मैं बातचीत कर लूंगी। यह बात हम तीनों की रही। रानी साहबा से तुम मिल नहीं सकते।"

जमादार चलने को न हुए, फिर कुछ कहना चाहा, मुन्ना ने बीच में खुलकर कहा, "अब चलो जल्द, यह मालूम नहीं— ये रानी साहबा के क्या हैं और होंगे?"

जटाशंकर चले। रास्ते पर सोचा, 'राजा को बीजक लेकर न दिखायें। पहले का हाल कहना होगा; नहीं मालूम, मामला पल्टा खाय। जाने दिया जाय।'

चौबीस

खजानची और मुन्ना पीपल के पास गये। खजानची ने गम्भीर होकर कहा, "जब कि हमने काम कर दिया है, एक काम हमारा तुम कर दो या रकम वापस करो। अब बात दो की नहीं रही।"

मुन्ना, "कौन-सा काम है?"

"पहले हम बता दें, तुम्हारा-हमारा फायदा कहाँ है। हमको नहीं मालूम, रुपयों का तुमने क्या किया। यह बता सकते हैं कि जिनकी वजह इतना रुपया निकाल सकती हो, उनसे सरकार बड़ी है, वहाँ से और फायदा उठा सकती हो। अगर हमारी बात पर न आयीं, तो मजबूरन यह राज़ सरकारी आदमी को देना होगा। नहीं तो बचत नहीं। जिसके पास रुपया है, चोर साबित होगा। सरकार

आसानी से पता लगा लेगी, रुपया रानी के पास है या नहीं। अगर न निकला तो तुम्हारा क्या हाल होगा, समझ लो। इस मामले को लेकर सरकार के पास हमारे जाने के यही माने होते हैं कि हमारा कुसूर नहीं, ताली चुरायी गयी।"

"यह कौन कहता है कि नहीं चुरायी गयी, कहो मैं भी कहूँ, हाँ, लेकिन मैंने चुरायी, यह तुम्हें कैसे मालूम हुआ ? कैसे कहोगे, फलाँ ने चुरायी ? सुनो, तिजोड़ी के फिर से खुलने का सुबूत गुजर चुका है। इतने उड़ाके न बनो। तुम नप चुके। मेरी के मानी, रानी की पकड़ है, और तुम्हारी—बचत के लिए सरकार की। क्या रानी अपना सत्यानाश करा लेंगी ? तुमसे पहले यहाँ दगेगी। यहीं रहना है। इस आग से सारा खानदान जल जायगा। फिर, माने रहने पर, वह हासिल हो सकता है। रुपये खैर मिलेंगे ही। काम भी सँवार दिया जा सकता है।"

"यह सही है, पर तुम्हारी भी पैठ होगी, और ऐसी जो हमसे नहीं हो सकती। सरकार की तरफ से उधर की बातें तुम्हीं से ली जायँगी। तुमारे सीधे तअल्लुकात होंगे। सिर्फ यह कि यह काम हमसे सुनकर तुम्हें करना है, फिर हम सरकार के आदमी से तुम्हारा हाल कहेंगे : वहाँ का कोई तुमस पूछेगा। सम्बन्ध हो जायगा।"

"इस तरह सम्बन्ध नहीं होता। वह कौन-सा काम है ?"

"एजाज़ से कुछ पूछना है।"

"हाँ !"

"हमारा फायदा है। यह तुम्हारी समझ में आ जाय तो गुल खिल जाय। तुमसे तुम्हारे आदमी उठेंगे। तुम्हें यहाँ से कहाँ तक बढ़ना है। जमींदार तुम्हारे-हमारे आदमी नहीं। हम मुसलमान पहले ऐसे थे जैसे अँगरेज। अब रैयत की रैयत हैं। माली हालत हमारी-तुम्हारी एक है। सरकार बंगाल के दो टुकड़े कर रही है। इससे तुमको हमको फायदा होगा यहाँ—जमींदार की जड़ हिलेगी, यानी रैयत को फायदा होगा। इस काम में सरकार की मदद करनी है।"

मुन्ना पर असर पड़ा। जिससे जाति-भर का भला हो वह काम सरकार ही कर सकती है। जाति-प्रथा की सतायी मुन्ना का कलेजा डोला। जब्त किये खड़ी रही, चपल अपढ़ औरत। फँसकर कहाँ तक बहती है, देखने की उमंग आयी। पूछा, "एजाज़ से क्या पूछना है ?"

"एजाज़ से आजकल में मिलकर पूछ लो, क्या हालात हैं ? लौटकर जवाब दे जाओ।"

मुन्ना सहमत हुई। खजानची मन में सोचता हुआ बढ़ा कि रुपये रानी को दिये गये या नहीं।

पच्चीस

डाल के सैकड़ों हाथों ने मुन्ना पर फल रक्खे। चली जा रही थी, पराग झरे, भौंरे गूँजे। तरह-तरह की चिड़ियों की सुरीली चहक सुन पड़ी। दुपहर के सन्नाटे के साथ मौसम की मिठास। फिर प्रभाकर याद आया। दूर से घुसते देखा है। कोठी में रहता है। कौन है ? मुन्ना धीरे-धीरे वहीं चली। कोठी की बगल से जानेवाला रास्ता सुनसान रहता है। आदमी इक्के-दुक्के। मुन्ना ज़ीने के पास खड़ी हुई। जहाँ से आये थे वहाँ के लिए अनुमान किया, और घाट की तरफ चली नजर उठा-कर इस हिस्से की बनावट देखती हुई। बुआवाले बाग के सामने दोमंजिला है। निकलने का दूसरा ज़ीना है। बाग में जाने का ज़ीना नहीं। उसी राह जाना पड़ता है। नीचेवाली मंजिल में पुरानी चीजें कुफ्ल में रक्खी हैं। कोई राह नहीं। एक अँधेरी कोठरी है, एक तरफ का दरवाजा टूटा है। उसको बाग का हिस्सा समझ सकते हैं। तालाब के किनारे की कोठी उसने नहीं देखी; यों बहुत-सा हिस्सा नहीं देखा। बगीचे की तरफ खुले कमरों को देखकर लौटी। उसको जान पड़ा, सुनसान दिखता है। रहने की आहट नहीं मिलती।

रहस्य से मुस्कराकर सिंहद्वार लौटी। जमादार बैठे थे। मुन्ना को सुनाकर कहा, "देखो, रघुनाथजी की क्या इच्छा है।"

"हम अभी आते हैं।" मुन्ना ने कहा, "बस, आज रानीजी का बदला चुका लिया जाय।"

"कैसे ?" षड्यन्त्रवाले की आवाज से पूछा।

"अभी आती हूँ, उसको चाहते तो नहीं ?"

जमादार सन्न हो गये। मुन्ना ने ज़रा रुककर पूछा, "हम हों या वह ?"

"तुमको कौन पाता है ? तुम्हारी चल रही है।"

"फिर उसकी तरफ लपकना मत।"

"अच्छा, चली आ।"

मुन्ना घूमी, "सिपाही भगता नहीं, जीत की जगह है लेता है। हमारी हो, तो अपनी गरदन नपाये देते हैं।" ड्योढ़ी की ओट में खड़े जटाशंकर ने कहा।

प्रेम की आँखों मुन्ना ने देखा।

"हम राह देख रहे थे। बता दो, कितने की चोरी हुई ?"

"पाँच लाख की।"

"गलत है।"

मुन्ना ने जटाशंकर को देखा। जटाशंकर हाथ पकड़कर कागजात के कमरे में ले गये। देर तक बातचीत की। हाल समझकर रुपये बताकर बीजक दे दिया। दोनों के गहरे सम्बन्ध हो गये।

छब्बीस

मुन्ना की निगाह नीली हो गयी, चाल ढीली। चलकर महलवाले भीतरी तालाब में अच्छी तरह स्नान किया। गीली धोती से निकलकर बुआ के कमरे में गयी। एक बज चुका था। चुन्नी फर्श पर चटाई बिछाकर दुपहर की नींद ले रही थी। मुन्ना की थाली चूल्हे पर रक्खी हुई। भोजन करके चटाई बिछाकर लेटी। आँख लग गयी।

जब उठी, चुन्नी काम कर रही थी। बुआ लेटी हुई थीं। बगल की दूसरी कोठरी में मौसी बैठी हुई खाने का मसाला तैयार कर रही थीं।

मुन्ना कुछ नोट ले आयी। बरामदे पर गिने। दस और पाँच रुपये के पहचानती थी। ये थोड़े थे। जटाशंकर को एकान्त में बुला ले गयी और कहा, "आज ही सिपाही इकट्ठे कर लेने हैं, बाजार चले जाओ, पुलिस के साफेवाला कपड़ा खरीद लो। सबको सिपाहियों की तरह पेश करना है कि बाहर के पहरेवाले न पहचान पायें। पहले रानी का बदला। राजा से एक जवाब तलब करा लूँ, फिर खजांची की खबर लूँ।"

"उससे क्यों तन गयीं ?"

"कट गया। फिर फाँसा। मैं फँसी। इसका काम करना है। मगर अकेली रही तो इसको अपने रास्ते न ला पाऊँगी। तुम्हारी मदद पार कर सकती है। तुम हमारा हाथ न छोड़ो, तुमसे दिल टूट चुका था। मगर तुमने, डराकर भी बाँध लिया। इस मामले में हम अकेले थे, अब दो-दो हैं। भेद किसी दिन खुलेगा, जब तक बच निकलना है, या पुख्ता सूरत निकाल लेनी है। तुम हमसे मिले, खजांची से भी, हमारा खजांची का यही हाल। हम एक-दूसरे को फँसाना भी चाहते हैं। खजांची सरकार की मदद लेगा।"

"पहले हमको भेद बतला दिया होता ?"

"तो न उधर का फँसना होता, न इधर का।"

"अब तो सारा संसार फँस गया।"

"नहीं तो मतलब नहीं गठ रहा था।"

"रुपये रानीजी के पास नहीं, यह टेढ़ा है।"

"टेढ़ा हो, सीधा, बचत न थी अगर तुम बीजक रख लेते।"

"कहो, बचत के लिए दे दिया।"

"नहीं, मर्दानगी के लिए।"

मुन्ना बुआ के पास गयी। बुलाकर बाग ले गयी। सूरज नहीं डूबा। पेड़ों पर सुनहली किरणों का राज है। तेज हवा बह रही है। बुआ का शानदार आँचल उड़ रहा है। मुन्ना सिपाही या फौजी हिन्दुस्तानी औरत की तरह दोनों खूँट कमर में खोंसे हुए है। अनानास के झाड़ की बगल में मौलसिरी का बड़ा पेड़ है, तने के चारों ओर कमर-भर ऊँचा पक्का गोल चबूतरा बँधा हुआ है। दायीं ओर कुछ दूर तालाब, पीछे और बायीं ओर ऊँची चारदीवार, सामने कोठी; वही जगह जहाँ प्रभाकर रहता है। मुन्ना देर तक बैठी हुई बरामदे पर आँख गड़ाये हुए बुआ को फूल-पत्तियों की बातचीत में बहलाये रही। प्रभाकर के बरामदे पर एक चिड़िया न दिखी। बुआ से उसने कहा, "कैसा समय है ?"

"बहुत अच्छा।"

"क्या चाहता है जी ?"

"बहुत कुछ।"

"सबसे पहले क्या ?"

"हमको लाज लगती है। हमारा जी कुछ नहीं चाहता। जब भाग फूट गया, तब चाह कैसी ?"

"यह तो हमारे लिए भी है। लेकिन न जाने क्यों, चाहना पड़ा, भाग को जगाना पड़ा।"

बुआ का ब्राह्मणत्व जोर मारने को था, मगर सँभल गयीं। कहा, "जैसा कहा जाता है, वैसा करती ही हूँ।"

"हमको रानीजी की हैसियत से कहना पड़ता है। तुम यह समझ चुकीं कि पीछा नहीं छूटता। तुमको ऐसा करना चाहिए कि पीछा छुड़ाकर मर्द भगे।"

"अच्छा नहीं जान पड़ता। परमात्मा के घर जाना है। जी को बेपर्दगी पसन्द नहीं। लाज बड़ी चीज है। दूसरा जबर्दस्ती खोलता है तो बचाव की जगह रहती है।"

"तुमने दिल दे दिया। यह दिल मर्द को न दो। लेने लगोगी तो मालूम होगा कि वह तुम्हारा नहीं। या तो वह तुम पर है या तुम उस पर। आज तक मर्द को ही तुमने अपने ऊपर पाया होगा। अब उल्टा नजर आयेगा। बचत की और जगह मिलेगी। मर्द झुका रहेगा।"

बुआ को बल मिला। पूछा, "क्या मर्द के पीछे लगना होगा ?"

"हाँ, और वह इतना बड़ा मर्द है कि यहाँ उससे बड़ा मर्द नहीं।"

"वह कौन है ?"

"वह राजा है। वही यह अपमान कराता है। आज तुमको रानी का सम्मान दिया जायगा। साथ सिपाही रहेंगे। यह न समझना कि तुम रानी नहीं, बुआ हो। कभी यह न जाहिर करना कि किसी मतलब से तुम गयी हो। तुम्हारे साथ सब पुलिस के सिपाही रहेंगे। खूब याद रहे, कहना, मैं रानी। तुमको कोई पहचान न

पायेगा। मैं साथ रहूँगी, लेकिन दूर। जो सिपाही बहुत पास रहेगा, उसको अपना जिगरी मत समझना।"

"हमको डर लगता है।"

"हम कई आदमी साथ रहेंगे। डर की कोई बात नहीं। कहो, क्या कहोगी।"

"मैं रानी।"

"हाँ।"

सन्ध्या की छाया पड़ने लगी। मुन्ना ने बरामदे की तरफ देखा, कोई नहीं देख पड़ा। बुआ को साथ लेकर लौटी। हवा और सुहानी हो गयी। बुआ को पहले शंका थी, मगर हृदय के कपाट जैसे खुल गये; जान पड़ा, संसार में धर्म का रहस्य कुछ नहीं—सब ढोंग है।

बुआ को टहलने के लिए छत पर छोड़कर मुन्ना सिपाही के पास गयी और उस तरफ जाने के लिए कहा।

सिपाही ने कहा, "वह देख, बरामदे का दरवाजा बन्द है। वहाँ, माल की निगरानी करनेवाला जाता है।"

"वहाँ कोई रहता नहीं ?"

"नहीं।"

"तुमको और कुछ मालूम हुआ ?"

"हाँ, जमादार ने सबको हाजिर रहने के लिए कहा है, और यह खबर है कि रानीजी ने इनाम भेजा है, सब सिपाही इस कोठी के आ जायँगे, तब दिया जायगा।"

अट्ठाईस

रात आठ का समय होगा। प्रमोदवाले कमरे में राजा साहब बैठे हैं। कुल दरवाजे और झरोखे खुले हैं बड़े-बड़े। सनलाइट का प्रकाश। तेजी से, लेकिन बड़ी सुहानी होकर हवा आती हुई। दूर तक सरोवर और आकाश दिखता हुआ। सरोवर में बत्तियों की जोतवाले कमल बिम्बित। कही-कहीं हवा से होता लहरों का नाच दिखता हुआ। चारों ओर साहित्य, संगीत, कला और सौन्दर्य का जादू। साजिन्दे बैठे हैं। कान के बाहर से साज चढ़ाकर बजाने की आँख देख रहे हैं। बेबसी से बचने की उम्मीद भी है। प्याले चल चुके हैं। फर्श पर बिछी ऊँची गद्दी पर एजाज़ और राजा बैठे हैं। एक बगल प्रभाकर है। नीचे कालीन बिछी चद्दर पर साजिन्दे।

राजा साहब ने एजाज से पूछा, एजाज ने सम्मति दी। साजिन्दों ने अपने-अपने साज़ पर हाथ रक्खा। एजाज़ ने गाया—

"ज़ाहिद, शराबेनाज से जब तक वज़ू न हो,
क़ाबिल नमाज पढ़ने के मसजिद में तू न हो।
पहलू से दिल जुदा हो तो कुछ ग़म नहीं मुझे,
ऐ दर्दे-दिल जुदा मेरे पहलू से तू न हो।
वह गुमशुदा हूँ मैं कि अगर चाहूँ देखना,
आइना में भी शक्ल मेरी रूबरू न हो।
शाखें उसी की हैं यही जड़ है फ़साद की,
पहलू में दिल न हो तो कोई आरज़ू न हो।
मसजिद में मैंने शेख को छेड़ा यह कहके आज
मय लाऊँ मैकदे से जो आवे-वज़ू न हो।
सारी दमक-चमक तो इन्हीं मोतियों से है,
आँसू न हों तो इश्क में कुछ आबरू न हो।"

फिर गाया—

"बाजी कहूँ बैरन, बिखभरी सवत बाँसुरी
अधर-मधुर ध्वनि नेक सुरन सों
कूक-कूक तड़पाय, सखी री, वाकी
गाँस फाँस जिय हूक। छन आँगन, छन
चढ़त अटा पर, कर मल-मल
पछितात सेज पर,
बैरन सवत सताये चाँद,
रह-रहके तान नयी फूंक।"

ठुमरी का रंग जमा। राजा साहब ने प्रभाकर से गाने का अनुरोध किया। प्रभाकर ने गाया—

"प्रथम मान ओंकार।
देव मान महादेव,
विद्या मान सरस्वती
नदी मान गंगा।
गीत तो संगीत मान,
संगीत के अक्षर मान,
बाद मान मृदंग,
निरतय मान रम्भा।
कहें मियाँ तानसेन,
सुनो हो गोपाल लाल,
दिन को इक सूरज मान,
रैन मान चन्दा।"

प्रभाकर के गाने के भाप पर तूफान उठा। एजाज़ की गायिका हिली। स्वदेशी आन्दोलन में आज की धनिक और श्रमिक की जैसी समस्या न थी; पर आन्दोलन को असफल करने के लिए यह समस्या लगायी गयी थी। प्रभाकर विचार करता

था तब तक साहित्य द्वारा रूस के जन-आन्दोलन की खबरें आने लगी थीं। जमींदार मुसलमान स्वदेशी के तरफदार थे; इसलिए मुसलमान रैयत बहुत बिगाड़ नहीं खड़ा कर सकी। पुराणों का राज्य समाज में तब और प्रबल था, बादशाहत का लहजा नहीं बिगड़ा था। प्रभाकर सोचता हुआ बैठा रहा। गाने की तरंग उठकर जैसे निकल गयी। एजाज़ उसकी गम्भीर मुद्रा से प्रभावित हुई। राजा साहब भी खामोश बैठे रहे। देशप्रेम जुआ था। रौशनी, पश्चिम का बानिज। स्वामी विवेकानन्द की वाणी लोगों में वह जीवनी ले आयी, खासतौर से युवकों में, जिससे आदर्श के पीछे आदमी जगकर लगता है। प्रभाकर राजनीति में इसी का प्रतीक था। धैर्य से बैठा रहा।

इशारा पाकर साजिन्दे चले। प्रभाकर उठने को था कि दिलावर भीतर आया; राजा साहब के कान में कान लगाया। खबर राजनीतिक है। राजा साहब ने प्रभाकर के सामने पेश करने के लिए कहा। दिलावर उछल पड़ा। कलकत्ता-वाले सुबूत दिखाये—वह कागज, नज़ीर के नाम से यूसुफ का आकर ठहरना, बातचीत करना, होटल में गलत नाम लिखाना।

एजाज़ ने हुलिया पूछा। आदमियों ने बताया। एजाज़ खामोश हो गयी।

प्रभाकर आग्रह-धैर्य से सुनता रहा। राजा साहब ने धन्यवाद देकर सबको विदा किया। इनाम की घोषणा की।

राजा राजेन्द्रप्रताप ने प्रभाकर से पूछा, "आपका क्या अन्दाज है?"

"चर है, सरकारी।"

"अब हमको एक छन की देर नहीं करनी। कलकत्ता रवाना हो जाना है। बँध गया। हमारे पास भी मसाला है। यह वही आदमी है।" एजाज़ ने कहा।

"लिखा प्रमाण हमको दीजिए।" प्रभाकर ने कहा।

राजा साहब ने कहा, "नहीं, हमीं रक्खेंगे, बैरिस्टर साहब से सलाह लेंगे, इस तरह आपका भी हाथ हो गया।"

"तो हमें भी आपके साथ या कुछ पीछे, या दूसरे रास्ते से चलना चाहिए।"

"आप परसों या और दो रोज बाद आइए।"

प्रभाकर शान्त भाव से उठा और कहा, "अच्छा, तो आज्ञा दीजिए।"

राजा साहब ने नमस्कार किया।

उन्तीस

मुन्ना ने देखा, दस बज गये। सिपाहियों को 20)-20) रुपये इनाम दिया था। बाजार से कपड़ा आ गया था। टुकड़े काटकर साफे बना लिये। रानी के अपमान का प्रभाव सब पर है। सब चाहते हैं, राजा ऐसा न करें कि उनके रहते एजाज़

को रक्खें।

डण्डे सबके हाथ में, पुलिसवाले नहीं, मिर्जापुरी। चमरौधे की नोक देखते, सिंहद्वार की वत्ती के इधर-उधर टहल रहे हैं।

रुस्तम को सिखा दिया। चलने और पहुँचने का रास्ता और समय मुकर्रर कर दिया। पहरे की दो तलवारें निकलवा लीं। रुस्तम को दीं। एक बुआ के बाँधकर ले चलने के लिए, एक खुद बाँधे रहने के लिए। एकान्त में दो घण्टे तक रहना है, कहकर ध्वनि में समझा दिया, और विश्वास बँधा दिया कि बुआ को उसने समझा दिया है।

बुआ उसकी बात पर आ चुकी थीं, एक सत्य, एक न-जाना दबाव, एक तड़प थी जिससे उनके पैर उठे। ढाढ़स बँधा, मुन्ना मिलेगी। कुछ बिगड़ने न पायेगा, अगर वे खुद न बिगाड़ बैठीं।

बुआ को सबसे पहले मुन्ना ने खिड़की से निकाला। सिपाहियों को यह बात नहीं मालूम। रुस्तम कोठी की खिड़की की दूसरी तरफ खड़ा राह देख रहा था। दोनों कन्धों पर पेटी से बँधी म्यान के साथ दो तलवारें लिये था। मुन्ना ने बुआ को रुस्तम के हवाले किया और लौटी। मन में ब्राह्मणों के सत्यानाश का दरवाजा खोला।

बुआ शरमायीं। मुन्ना को देखकर एक दफे जैसे बल खा गयीं। सँभलकर निगाह बदली और रुस्तम के साथ चल दीं।

मुन्ना मुस्करायी। जमादार के पास आयी। सिपाहियों को मिठाई और पूरी और दस-दस बीड़े पान बाँध लेने के लिए बाजार भेजा। दो घण्टे का वक्त निकाला। जमादार को एकान्त में लेकर बातचीत करने लगेगी।

तीस

रुस्तम बुआ को लेकर चला। रात के दस के बाद का समय। गढ़ सुनसान। मर्दाना बाग से चला। बुआ को शंका हुई। फिर मिट गयी।

"देखती हो दो तलवारें हैं?" रुस्तम ने प्रेमी गले से पूछा।

"हाँ," शरमाकर बुआ ने कहा।

"एक तुमको बाँधनी है।"

"हाँ।"

"बाँधना आता है?"

"नहीं।"

"हमी बाँधेंगे। सुना है?"

"हाँ।"

"इसका मतलब समझ में आया।"

बुआ लजा गयीं। सामने आमों के पेड़ थे। रुस्तम बढ़ा। एक की झुकी डाल पर दोनों तलवारें टाँग दीं।

"यहाँ सिर्फ हम हैं और तुम।"

बुआ शरमायीं। रुस्तम का पुरुष पूरी शक्ति पर था। कहा, "उस रोज नहा-कर तुम जैसी निकलीं, वैसा ही हो जाना है।"

बुआ का हाथ रुका। जी ऊबा।

रुस्तम ने पूछा, "तालाब में और लोग थे, वे क्यों थे?"

"हमको नहीं मालूम।"

आवाज से रुस्तम समझ गया कि जमादार का कहना दुरुस्त; वे फँसाये गये, अपनी तबियत से नहीं गये।

घबराया कि इसका धर्म बिगाड़ा तो बुरा हाल न हो; फिर सोचा, मुन्ना का इशारा कुछ ऐसा ही है।

कहा, "हम वे हैं जिनके बहुत-सी बीवियाँ होती हैं?"

"यह हमारे यहाँ नहीं?"

"तुमको आज हमारी बीवी बनना होगा।"

"मैं बीवी नहीं बनती।"

"तुमने उससे कुछ कहा, उसकी बात मानी?"

"जबरदस्ती कहलाने से कोई कहना है या मानना।"

"लेकिन हमारे साथ के लिए तुम बात हार चुकी हो।"

"मैं बात नहीं हारी।"

"यह तलवार कैसे बाँधी जायगी? कमर नापनी पड़ेगी या नहीं? इससे कुछ समझ में नहीं आया? राजे से बातचीत हँसी-खेल है? हम बगल में रहेंगे, इससे तुमको इशारा कर दिया गया, तुम्हारी मंजूरी ले ली गयी, इतनी दूर तुम निकल-कर आ गयीं। यहाँ हम पकड़ जायँगे, तो कोई क्या कहेगा? ये दोनों इतनी रात को यहाँ क्या करते थे, क्यों आये थे, इनका आपस में क्या रिश्ता है? हम तभी बच सकते हैं जब मियाँ-बीवी—तुम रानी, हम राजा। वहाँ तुमसे क्या कहलाया जाना है?"

बुआ झेंपीं, मगर यह झेंप मंजूरी नहीं।

"हम तुम्हारी कमर नापें?"

"हे भगवान्!" बुआ अन्तरात्मा से रोयीं।

"कौन हो तुम?" रुस्तम के पास पहुँचकर किसी ने पूछा। भरी आवाज।

रुस्तम डाल की ओर बढ़ा और मूठ पकड़कर तलवार निकाल ली—"सुअर, कौन है तू?" पूछा।

तलवार के निकलते ही पिस्तौल की आवाज हुई, मगर आदमी के निशाने पर नहीं; मर्द का गला गरजा, "भग यहाँ से, या रख तलवार, नहीं तो खाता है गोली।"

रुस्तम भगा। बागीचे में पहले का जैसा सन्नाटा छा गया।

प्रभाकर डेरे पर आ रहा था। यही उसका रास्ता था। आते हुए देखा। बुआ से पूछा, "आप कौन हैं ?"

घबराहट के मारे बुआ का बोल बन्द हो गया, प्रभाकर खड़ा रहा। धैर्य देकर पूछा, "आप कौन हैं ?"

"हम बुआ।" लड़की के स्वर से, रक्षा पाने के लिए, बुआ ने कहा।

देर अनुचित है सोचकर प्रभाकर ने कहा, "बचना है तो हमारे साथ आइए।"

"यह तलवार ले लूँ।"

तलवार एक और है, समझकर प्रभाकर चौंका। कुछ समझ में न आया। कहा, "हमारी निगाह में अब तलवार का जमाना नहीं रहा। जिनकी तलवार होगी, वे ले लेंगे। यहाँ इस आदमी के अलावा और कोई था ?"

"और कोई नहीं।"

"यह कहाँ से तुमको ले आया ?"

"मुन्ना ने इसके साथ कर दिया था और बहुत से काम करने के लिए कहे थे।"

"किसके खिलाफ ?"

"राजा के।"

"आदमी किनके ?"

"राजा के।"

"तरफदारी किनकी ?"

"रानी की।"

"अच्छा।" प्रभाकर मुस्कराया।

"आपको रहना मंजूर है या हमारे साथ चलना ?"

"हम एक छन इस नरकपुरी में नहीं रहना चाहते।"

"हमारे साथ आइए।"

प्रभाकर बढ़ा। बुआ पीछे हो लीं। तालाब के किनारे बुआ को खड़ा किया। दो एक सवाल और पूछे। समझ की निगाह उठायी और अपने ज़ीने की ओर चला।

कोठी पर कमरे में गया। दो साथियों को बुलाया। कहा, "बाहर एक औरत है। ललित, उसको लेकर बेलपुर जाओ। हम दो-तीन दिन में आते हैं। महराजिन बताना। भेद न देना। बाहरवालों से मिलाना मत। काम किये कराये जाना। इसको भी लगाये रहना। मामला रंग पकड़ रहा है। यहाँ से आजकल में बोरिया-बधना समेटना है। प्रकाश ताली लगाकर चले आयेंगे। गढ़ की चारदीवार में बहुत से दरवाजे हैं। हमारे की ताली दूसरे के पास भी है या नहीं, सही-सही नहीं मालूम।"

साथियों को लेकर प्रभाकर नीचे उतरा। चिन्ता की हल्की रेखा मन पर। बुआ के पास पहुँचकर कहा, "इस आदमी के साथ चली जाओ, यह जैसा कहे करो। कोई हाथ नहीं उठायेगा। बाद को जहाँ कहियेगा पहुँचा देगा।" बुआ को जान पड़ा, एक अपना आदमी, जिसको औरत अपना आदमी कह सकती है, बोला। वे सहमत हुईं।

प्रकाश ताली लेकर चला।

इकत्तीस

रुस्तम के जैसे पर लग गये, ऐसा भगा। फैर से दिल धड़का, पैर उठते गये। खेत से भगे सिपाही की तरह सिंहद्वार में घुसा। बात रही, हथियार नहीं डाला। हाँफ रहा था। जैसे दम निकल रहा है। 3-4 सिपाही बाजार गये थे, बाकी हैं। मुन्ना भी है।

रुस्तम को देखकर लोग चकराये। मुन्ना की आँख चढ़ गयी। पूछा, "क्या है रुस्तम ?"

रुस्तम बोल न पाया।

रुस्तम के घबराये हुए हाँफते रहने पर सिपाहियों को उतना आश्चर्य न हुआ जितना तलवार लिये रहने पर।

जटाशंकर का काठ में पैर पड़ा। धीरज उनके स्वभाव में है। बैठे देखते रहे।

रुस्तम ने आधा घण्टा लिया। मुँह धोया गया, कुल्ले कराये गये, सिर पर पानी के छींटे मारे गये, पंखा झला गया।

रुस्तम ने कहा, "देव है। आदमी ऐसा नहीं होता। गढ़ के अन्दर ऐसा आदमी !"

लोग कुछ नहीं समझे। ऐसे आदमी के बारे में किसी से नहीं सुना, नहीं देखा।

मुन्ना ने कहा, "हम पूछकर बताते हैं।" रुस्तम को बुलाकर ले चली।

एकान्त में पूछा, "क्या हुआ ?"

रुस्तम ने कहा, "एक आदमी मिला। मैं भगा, नहीं तो गोली का शिकार हो गया होता।"

मुन्ना को नहाकर लौटी सूरत याद आयी। पूछा, "कैसा है ?"

रुस्तम ने एक बाबू का हुलिया बतलाया।

"बुआ का क्या हुआ ?"

"हमको उसी की कार्रवाई मालूम होती है।"

मुन्ना को विश्वास हो गया।

ठहरकर पूछा, "बुआ क्या उस आदमी के साथ रह गयीं ?"

"हाँ।" रुस्तम ने कहा।

मुन्ना ने तीन सिपाही लिये। रुस्तम से घटनास्थल ले चलने के लिए कहा।

लोग चले। जहाँ घटना हुई थी वहाँ अँधेरा है। रुस्तम ने डाल देखी। दो म्यान और एक तलवार लटक रही है। बुआ का निशान नहीं।

मुन्ना तुरन्त घूमी। जहाँ प्रभाकर का ज़ीना है, चली। आदमी भी साथ।

तब तक प्रकाश ताली लगाकर लौट चुका था। लोगों ने ज़ीने के दरवाजे सिपाही की हैसियत से आवाजें लगायीं। कोई न बोला।

कोठी घूमकर मालखाने के पहरे से जाना चाहा, दरवाजे बन्द मिले। खुलते ही नहीं।

एक दफे पुलिस की याद आयी। खजांची बैठा न रहेगा, सोचा। राजा से रानी के बदले की बात गयी, बल जाता रहा।

रुपये निकालने गयी। पाँच रुपये और दस रुपये के नोटों के बण्डल दो-दो करके निकाल सके, इस तरह रक्खे थे। एक हजार के करीब नोट निकाले और 50)-50) रुपये सिपाहियों को और दिये। बाकी जमादार को।

नोटोंवाली तिजोड़ी बाहर गड़वा दी।

बत्तीस

घटना क्या, अनहोनी हो गयी। मुन्ना को खजांची का डर था। जमादार भी बचत चाहते थे। इसी से उलझते गये। बेधड़क बढ़े। फँसे सिपाहियों ने रानी का पल्ला पकड़ा। निगाह धर्म पर थी। तिजोड़ी के गाड़े जाने पर सिपाहियों की नसें ढीली पड़ीं। एक ने डूबते स्वर से कहा, रानी से राजा का सितारा बुलन्द है। मुन्ना ने कहा, "गयी, चलते ठोकर लगी, ईंट दूसरे की रक्खी है, वह रानी का ही आदमी है, नादानी कर रहा है; न इधर का होगा न उधर का। मुमकिन, बदला चुकाने को रानी ने दूसरा हथियार चलाया हो। धीरज छोड़ने की बात नहीं; कल-परसों तक आज का अँधेरा न रहेगा। अगर कहो कि इसके लिए सजा होगी, तो काँटा न लगेगा। सब लोग बाल-बाल बच जायेंगे। रुपये भी मिलेंगे। अभी साँस काफी है।"

सिपाही खुश हो गये। सबको अपनी-अपनी जगह जाने के लिए मुन्ना ने कहा। कहा, "रानी का हाल मालूम हो तो जी में जी आये।" यह कहकर रात-ही-रात नयी कोठी की तरफ चली।

जहाँ दासियाँ सोती हैं, वहीं घुसकर, एक बगल लेट रही। नींद नहीं आयी। दूसरे को बहलाने से अपना जी नहीं मानता। तरह-तरह की उधेड़-बुन से रात कटी। पौ फटी कि उठकर बुआ के महल के लिए चली। नयी कोठी में शोर था कि सूरज की किरन के साथ जहाज खुल जायगा। जागीरदार साहब कलकत्ता रवाना हो रहे हैं। मुन्ना ने एक कहार को तैनात किया कि जागीरदार साहब के साथ कौन-कौन जाता है, देख आये, रानीजी का हुक्म है।

कहार मुस्कराया। कहा, "वे तो जायेंगी ही।"

"कौन?"

"कौन हैं जो गाती हैं?"

"और कौन-कौन जाता है; खासतौर से यह देखना, कौन-कौन ओरत जाती है; उसके साथ एक ही बाँदी है, और भी कोई यहाँ की बाँदी जाती है या नहीं। रानी साहबा इनाम देंगी। समझ गया?"

"रानी साहबा अभी तक चाहती हैं। मैंने अरई कहारिन को छोड़ दिया, कहा, तेरी शक्ल उससे मिलती है। उसने कह दिया। वह एक पन्दरहीं नहीं बोली। अरई के लिए माफी मँगा ली, तब दम लिया। सो भी तब जब अबकी तनख्वाह से गुच्छी-करनफूल बनवा देने का कौल करा लिया।" कहकर मटरू हँसा। अपनापे से पूछा, "मुन्ना, तेरी कैसी कटती है?"

"फिर तो नहीं माफी माँगेगा?"

"मैंने कहा जात की है, कहीं बैठ जा, या बैठा ले। राम दोहाई, आँख झप जाती है जब देखता हूँ, तेरे लिए बारोमहीने कातिक है। सिपाही कुत्ते-जैसे पीछे लगे रहते हैं। बहँगी में तीन-तीन को लादकर फेंकूँ।"

"अच्छा चला जा। देखें, कितनी जानकारी रखता है। इनाम में एक थान के दाम मिलेंगे; मगर पक्की खबर दे।"

मटरू खुश होकर जहाज घाट की ओर चला।

राज का ही जहाज है। मटरू जानता है। आदमियों में सबसे दबा, कहार। पहचानकर सबने राह दे दी। उस वक्त तक राजा या एजाज़ का आना नहीं हुआ था। मटरू सारा जहाज घूम आया। फिर एक किनारे खड़ा हुआ।

आधे घण्टे के अन्दर एजाज़ की पालकी आयी। एजाज़ किनारे उतरकर काठ की सीढ़ी से जहाज पर गयी—इनाम भेजा।

राजा की सवारी आयी। शान से चढ़े। लोग चढ़ने लगे। जहाज खुला।

मटरू ने एक-एक को देखा। रह जानेवाले लोगों के साथ लौटा। एक पहर दिन चढ़ चुका था।

लौटकर मुन्ना से एक-एक बात कही। और पुरस्कार के लिए लाचार निगाहों से देखकर मुस्कराया।

मुन्ना समझ गयी। संवाद से खुश होकर पीपलवाले चबूतरे के पास दुपहर ढलते बुलाया। मटरू मानकर खुले दिल से दूसरे काम को चला। मुन्ना पुरानी कोठी चली।

तैंतीस

प्रभाकर सचेत हो गया। मौका देखकर बचा हुआ मसाला पानी में फेंक दिया और प्रकाश को दिन होने पर पास के केन्द्र भेज दिया। दो आदमी और रहे और प्रभाकर। देख-रेख के लिए दिलावर और दो नौकर हैं, जिनके बाहर के मानी छत से हैं। श्री रघुनाथजीवाली छत से, जल भरनेवाले कहारों से, दिलावर पानी चढ़वा लेता है। उसी ज़ीने से दिन रहते-रहते नौकर और पाचक एक दफा बाहर की हवा खा आते हैं।

मुन्ना जमादार से मिली। जमादार के होश फाख्ता थे। राजा को बुआ के गायब होने की खबर नहीं दी गयी।

मुन्ना को देखने पर साथी का बल मिला। रास्ता निकालने की सोची। पूछा, "क्या इरादा है?"

मुन्ना ने कहा, "बुआ लापता हैं, यह सबसे खतरनाक है।"

"क्या तअज्जुब, रुस्तम ने उड़ा दिया हो।" जमादार ने कहा।

"हो सकता है, मगर बात झूठी भी हो सकती है। पहले पता लगा लेना चाहिए। एक बात जँचती है। उधर एक आदमी रहता है। वह कोठी में ही रहता है। वह कौन है, उसका हाथ हो सकता है।"

"हाँ," जमादार सँभले, "राजा का गुप्त रूप है, यह रामफल से सुना है। उन लोगों की आमदरफ़्त दूसरी है। वहाँ पुजारीजी का हाथ है।"

"तुमको यह नहीं मालूम, रहनेवाला काला है या गोरा है?"

जमा.—"या एक है या तीन, नहीं।"

मुन्ना—"एक दूसरी शाख है?"

जमा.—"हाँ।"

मुन्ना—"माई के लाल बहुत हैं।"

जमा.—"अब बचना कठिन है।"

मुन्ना—"जहाँ तक हो आँट पर न चढ़ो।"

जमा.—"कैंची काटती हो?"

मुन्ना—"हमारे ही साथ सती होना है।"

जमा.—"तभी तो कहा, कैंची काटती है।"

मुन्ना—"बस, अब साथ न छोड़ो। अगर भगें तो साथ।"

जमा.—"रास्ता और क्या है? इतनी बड़ी चोरी के बाद गाँव में क्या मुँह दिखावेंगे और क्या पुलिस के हाथ बचेंगे?"

मुन्ना—"हमारा प्रेम ही ऐसा है। पति को खा गयी।"

जमा.—"हमारा ही कौन कमजोर है?"

मुन्ना—"इस आदमी का पता लगाना है। जमादार अब ताकत बाहर की आ गयी है। खतरा बहुत है। हमारे पास धन है, लेकिन इसको इस रूप में हटाकर हम बहुत दिन खा नहीं पायेंगे। सहारा लेना है। कुछ मददगार बनाने हैं।"

जमा.—"हाँ।"

मुन्ना—"राजा का रवाना होना मतलब से खाली नहीं।"

जमा.—"कुछ लगाया?"

मुन्ना—"खजांची की तरफ की कोई कार्रवाई होगी। इसका भी, जिसके लिए मैं कह रहा हूँ, कोई हाथ हो सकता है।"

जमा.—"हमारी हैसियत तो इतनी ही है। पहले तो यह कि नम्बरी नोट चलाये नहीं चलेंगे। दूसरे, इतना रुपया हज्म करनेवाला हमारा पेट नहीं।"

मुन्ना—"मगर रुपयों के साथ अब जान पर ही खेलना है, यानी जान रहते रुपये न जायँ, और जायँ तो हम दुनिया भी दूर तक देख लें। इतने रुपयों से इतना

भेद खुल सकता है। सिर्फ पकड़ में नहीं आना।"

जमा.—"अब हमको बयान बदल देना है।"

मुन्ना—"हाँ, तभी बचाव है।"

जमा.—"सन्दूक गाड़ दिया गया। ताली फेंक दी गयी। बीजक अपने पास है ही। उसमें लिखा है! क्यों री, तू इतनी भी बंगला नहीं पढ़ी कि मालूम हो जाय कि कितने-कितने के नोट हैं?"

मुन्ना—"यह मालूम हो जायगा। दम कहाँ मिला? मगर खर्च बहुत होगा।"

चौंतीस

कहार से बातें मालूम करके, इनाम देकर, मुन्ना पिछली तरफवाले घाट पर चलकर बैठी। मन में खलबली थी। बुआ का पता नहीं चला। जल्द कोई कार्रवाई होगी, दिल कह रहा था। धड़कन त्यों-त्यों बढ़ रही थी। बचाव की सूरत नजर आती थी और कुछ देर बाद मिट जाती थी। मुन्ना ने देखा, किरनों में कई हाथ पानी के नीचे मछलियाँ दिख रही हैं। फिर देखा, पास की डालवाले पत्तों की रेखाएँ गिनी जाती हैं। दूसरी तरफ आँख उठायी, घने बागीचे में छिपने लायक अँधेरा नहीं। सबकुछ खुल गया है। अपने भविष्य पर डरी।

इसी समय देखा, ज़ीने का दरवाजा खुला, एक युवक निकला, ज़ीना बन्द किया और घाट की तरफ चला। उसकी शान्ति में घबराहट नहीं, बड़ी दृढ़ता है। एक ऐसा संकल्प है जो आप पूरा हो चुका है। जवानी की वह चपलता नहीं जो औरत को डिगा देती है, बल्कि वह जो साथ लेकर ऊपर चढ़ जाती है, और जहाँ तक औरत की ताकत है वहाँ तक चढ़ाकर अपने पैरों खड़ा करके, और चढ़ जाती है। चरित्र के पतन से बचकर और भले कामों की तरफ रुख फेरती है। मुन्ना को जान पड़ा, उसका हृदय खुल गया। वह निर्दोष है। यह युवक उसको इस अवस्था में सदा रख सकता है। दिल की बातें उससे कह देने के लिए उतावली हो गयी।

जैसे-जैसे प्रभाकर पास आता गया, मुन्ना के बुरे कृत्य भी जो नीची तह के किये हुए थे—उसके ऊँचा उठने के कारण छुटे हुए, काई की तरह सिमटकर पास आते गये। प्रभाकर की चाल के धक्के से निकलते गये। मुन्ना जैसे बदल गयी प्रभाकर से मिलने के लिए। जो मुन्ना होगी उसके बुरे संस्कार छुटने लगे।

वह अपने स्वरूप में आयी। अभी तक प्रभाकर की नजर नहीं पड़ी। अपने काम की बातें सोच रहा था।

हवा चल रही थी। पेड़ों की पत्तियाँ और डालें हिल रही थीं। चिड़ियाँ उड़ रही थीं। सरोवर पर लहरें उठ रही थीं। उन पर किरनें चमक रही थीं।

प्रभाकर आया। बायीं तरफ एक औरत की छाँह देखी। उसने घाट के फर्श पर सिर टेककर प्रणाम किया। प्रभाकर ने विचारशील आँखें उठाकर देखा। पूछा, "कौन हो ?"

"मैं मुन्ना हूँ।"

"क्या काम है ?"

"मैं रानी साहबा की दासी हूँ।"

प्रभाकर स्थिर हो गया। सोचा, कोई काम है। पूछा, "फिर ?"

"आप कौन हैं, यह मालूम हो जाना चाहिए।"

"यह राजा साहब से मालूम हो जायगा।"

"वे तो चले गये हैं।"

"फिर लौट सकते हैं, या जहाँ गये हैं, वहाँ से।"

"आपके दिल में रानी साहबा की जगह है ?"

"क्या है ?"

"आप जानते हैं, राजा साहब के साथ रानी साहबा नहीं !"

प्रभाकर दुखी हुए।

मुन्ना को मौका मिला। कहा, "रानी साहबा आपके लिए कुछ नहीं कर सकतीं अगर आप उनकी सहायता करें ?"

प्रभाकर पेंच में पड़े। काट न चला। सहानुभूति आयी। दिल कमजोर पड़ा। कहा, "हमारा काम दूसरा है।"

"वह कौन-सा ?"

"क्या तुम और रानी साहबा उसमें हो ?"

"हाँ, हम हर तरह आपके साथ होंगे।"

"हमको दोनों की सहानुभूति चाहिए।"

"रानी साहबा धन और जन से आपकी मदद कर सकती हैं।"

"विश्वास है। रानी साहबा से हमारी बातचीत हो सकती है ?"

"हाँ।"

"मगर आज होनी चाहिए।"

"हाँ, आपसे शाम को यहीं मिलूँगी। आपको मालूम है, रानीजी के लिए दूसरे से बातचीत करना मना है।"

"हाँ।"

"मगर काँटा निकालने के लिए मिलेंगी।"

प्रभाकर कुछ न बोले। एजाज़ का स्वभाव उन्हें पसन्द है। रानी साहबा कैसी हैं, देखना चाहते हैं। उनका काम केवल मर्दों के हाथ से ज्यादा औरतों के साथ से बढ़ेगा। स्वदेशी का, देशप्रेम का जितना प्रचार होगा, देशवासियों का कल्याण है।

"रानी साहबा पढ़ी-लिखी हैं ?"

"जी हाँ।"

"सुन्दरी भी हैं ?"

मुन्ना मुस्करायी। कहा, "हाँ, बहुत।"

"राजा साहब को व्यसन होगा। गाती भी हैं ?"

"जी हाँ।"

"काँटा निकल जायगा। राजा साहब जिस रास्ते के पथिक हैं, रानी साहबा भी उसकी होंगी, तो मेल स्वाभाविक है।

"वह कौन-सा रास्ता ? क्या हम लोग उस रास्ते आपके पीछे चल सकते हैं ?"

"पहले तुम्हीं लोगों का काम है। यों फायदा नहीं कि जमींदारी जमींदार की रहे : मगर यों है कि तुम अपने आदमियों के साथ रहो, अपना फायदा अपने हाथों उठाओ। इसमें दूसरे तुमको बहका सकते हैं, बहकाते होंगे। बाजी हाथ आने पर, हम खुद जीने की सूरत निकाल लेंगे। अच्छा, बताओ, यहाँ कोई औरत रहती थी जो लापता है ?"

मुन्ना घबरायी। प्रभाकर आँख गड़ाये थे। झूठ नहीं निकली, कहा, "जी हाँ।"

"वह कौन है ?"

"वह कुमारीजी की फूफी-सास हैं। आपको मालूम है, वे कहाँ हैं ?"

"हम नहीं कह सकते। मगर बचा दे सकते हैं। पुलिस के हाथ बुरा हाल होगा।"

मुन्ना ने पैर पकड़ लिये। कहा, "आप बचा सकते हैं। आपका काम करूँगी।"

प्रभा मुस्कराते रहे। कहा, "अच्छा नहाते हैं, शाम को आना। घबराना मत। हमारा काम, तुम्हारा काम है। अब चलो।"

मुन्ना खुश होकर चली। जान पड़ा, भगवान ने बचा लिया।

प्रभाकर नहाने लगे।

पैंतीस

जमादार सूख रहे थे, चोरी खुलेगी, बहाना नहीं बन रहा। घबराये जो कलंक नहीं लगा, लगेगा, जेल होगी; बाप-दादों का नाम डूबेगा। राजा गये; दूसरी आफत रहेगी।

इसी समय मुन्ना मिली। जमादार ने देखा, उसमें स्फूर्ति है। उनकी बाँछें खिल गयीं, सोचा, बचत निकल आयी।

मुन्ना ने अलग बुलाया। वे चले। दोनों घाट की चारदीवार की आड़ में एक मौलसिरी की छाँह में बैठे।

मुन्ना ने कहा, "अब किनारा साफ नजर आ रहा है।"

"क्या बात है ?" जमादार ने पूछा।

"एक महात्मा मिले हैं, उनसे आशा बँध रही है।"

"कहीं धोखा तो नहीं ?"

"नहीं, सिर्फ तुम्हारा विचार है कि कहीं नीचा न दिखा दो। नहीं तो, लड़की साफ बैठेगी।"

"कैसे ?"

"पहले बताओ, तुम हमारे साथ रहोगे या नहीं।"

"हमने तो बीजक तक दे दिया।"

"ठीक है। बात यह, हम दूसरी चाल चलेंगे।"

"क्या ?"

"रानी को दूसरी तरह हाथ में करना है। पहला वार खाली गया। वह राह कट गयी, अच्छा हुआ। वह सूझ खजानची की थी, अपनी भी। अब लाठी भी न टूटेगी और साँप भी मरेगा।"

"समझ में नहीं आया।"

"जमादार, बहुत गहरी बातें हैं। एकाएक समझ में न आयेंगी। खजानची का साथ किसी सरकारी आदमी से है। खजानची की मार्फत एजाज़ से राज लेना चाहता है और हमारे राजा साहब का। राजा साहब सरकार के खिलाफ फँस जायँगे; क्योंकि वे रास्ता बतानेवाले हमारे नये गुरुदेव के मददगार हैं और गुरुदेव सरकार के खिलाफ कार्रवाई करनेवालों में हैं। स्वदेशी का जो आन्दोलन चला है, गुरुदेव उसमें हैं। सरकार चाहती है, बंगाल के दो टुकड़े कर दे। ज़मींदार ऐसा नहीं चाहते। उनको डर है कि स्थायी बन्दोबस्त फिर न रह जायगा। इसका देश में आन्दोलन है। सरकार के लोगों का कहना है, स्थायी बन्दोबस्त न रहने पर इतर जनों को फायदा पहुँचेगा, मुसलमान जनता सरकार के पक्ष में की जा रही है। असली बात इतनी है। हम लोग बहुत काफी बातचीत सुन चुके हैं। सच जो कुछ भी हो, मगर गुरुदेव की बात का असर पड़ता है। उन पर अपने आप विश्वास हो जाता है। बड़े अद्‌भुत आदमी हैं। इतर जन ही हम लोग हैं। हम लोग भी सहानुभूति और अधिकार चाहते हैं। यह हमको सरकार से तब मिलेगा, जब हम सरकार की जड़ मजबूती से पकड़ेंगे। मगर हमको रहना तुम्हीं लोगों में है।"

"हमारे जो कुछ था, हम दे चुके।"

"हाँ, मगर समाज से डरते हो; हम समाज की बात कहते हैं।"

"भीमसेन ने हिडिम्बा से ब्याह किया, महाभारत में है, तो किसने उनको जाति से निकालकर बाहर कर दिया ?"

"मगर हिडिम्बा के अधिकार वैसे न रहे होंगे जैसे द्रोपदी के।"

"अधिकार वैसे ही थे, भेद यह रह गया था कि एक राक्षस की बेटी रही, दूसरी क्षत्रिय की। क्या बाप भी बदल गये ?"

मुन्ना गम्भीर हो गयी। कहा, "बुआ का पता इनको मालूम है। रुस्तम शायद इन्हीं की बातें करता था।"

जमादार जर्द पड़े। कहा, "कुल भेद खुला ? बुआ ने एक-एक गाँठ सुलझायी होगी।"

"सम्भव। ताल पर चलना है। नहीं, गिरेंगे। बुआ राजा के साथ न थीं। बचाव का मिलकर बचकर रास्ता निकालना है।"

"बुरा हुआ। सरकार के खिलाफ हैं तो जरूर बचकर रहना है। हम भी पकड़ा सकते हैं अगर पकड़ में हैं।"

"हाँ, मगर नहीं। राजा ने रक्खा है तो मिल जाना चाहिए।"

"हाँ।"

"राजा खिलाफ न हों तो खिलाफ गवाही देते अकेले हो जायँगे, मगर खजानची का एक गरोह है, हम उसमें हैं, बचत है।"

"हाँ।"

"ये इसी कोठी में रहते हैं, तुमको मालूम था ?"

"नहीं।"

"राजा ने तुमसे छिपाया है। कोई होगा, जिसको देख-रेख सौंपी गयी। यहाँ रहना मायने रखता है।"

"हाँ।"

"फिर साथ होते अड़चन नहीं। रानी का उपकार करेंगे। कारण साथ है। राजा को ये मिला दे सकते हैं।"

"हाँ।"

"आदमी सज्जन हैं। रानी से मिलाना है। बातचीत सुननी है। अगर रानी से किसी की मार्फत बातचीत करायी तो मैं हूँगी; खुद की तो सुनूँगी। बहाना है।"

"हाँ।"

"इनका भेद मिलेगा, आगे भी मिलता रहेगा। इनको काम के लिए धन चाहिए। मैं मदद करूँगी। इस तरह इनका बाजू पकड़े रहना है। पूरी जानकारी हासिल होगी। जैसे अँधेरे में हूँ। तुमने लम्बी दुनिया देखी है।"

"हमारा देश छ: सौ मील है।"

"तुम जगह देखना चाहो, चलो दिखा दूँ। रानी के पास ले चलते वक्त दूर से देख लेना छिपकर।"

छत्तीस

चार का समय, दिन का पिछला पहर। रानी साहबा की फूलदानियों में ताजे फूल दोबारा रक्खे गये। हार आ गये केले के पत्ते में लपेटे हुए। बर्फ-क्रीम-फल तश्तरियों में नाश्ते के लिए आ गये। दक्खिनवाले बड़े बरामदे में छप्परखाट पर थीं। दखिनाव तेज चल रहा था। इक्की-दुक्की दासी घूम जाती थी। दोपहर के आराम के बाद गद्दी से उठकर काठ के ज़ीने से रानी साहबा उतरीं और चन्दन की

चौकी पर बैठीं, जिस पर बढ़िया कालीन बिछा था। मुन्ना आयी। बाहर की आज्ञावाहिनी दासी से कह आयी थी, कोई न आये।

मुन्ना को देखकर रानी साहबा ने सहृदयता से पूछा, "क्या खबर है ?"

मुन्ना ने प्रणाम करके दूसरे एकान्तवाले कमरे में बुलाया, जहाँ प्रायः रानी साहबा रहती थीं। वे उठकर चलीं। एक मखमल की गद्दीवाली कुर्सी पर बैठीं। मुन्ना को स्टूल लेकर बैठने के लिए कहा। मुन्ना पंखा यहाँ चलाने के लिए बाहर आज्ञा दे आयी, फिर स्टूल लेकर बैठी। प्रसन्न है, रानी ने गौर से देखा। दिल में गम है, मुन्ना ताड़ रही थी। राजा साहब के लिए जगह है।

सँभलकर कहा, "हुजूर के दर्शन हुए। यहाँ एक भले आदमी टिके हैं। राजा साहब टिका गये हैं। पुरानी कोठी में रहते हैं। दूसरों की आँख बचायी जाती है। और भी उनके साथी हों, सम्भव है। आज पता चला है। बातचीत की है। राजा साहब गये, अब वे भी जायँगे। सच्चे और अच्छे पढ़े-लिखे आदमी हैं। अभी नौजवान हैं। तेजस्वी हैं। क्यों हैं, क्या हैं, यह हुजूर को और मालूम होगा। मैं समझती हूँ, उनसे काम निकल सकता है।"

"हमारे मनीजर के इतने पढ़े होंगे ?"

"हाँ, जान ऐसा ही पड़ता है।"

"मनीजर को बुलाना होगा।"

"हुजूर, मैं मनीजर साहब की मार्फत बातचीत कराने का बीड़ा नहीं लेती। जब राजा साहब के खास हैं, तब मनीजर साहब से बातचीत नहीं भी कर सकते।"

"फिर क्या सलाह है ?"

"आपका भला हो सकता है।"

"अच्छा, कब बुलाना ठीक होगा ?"

"शाम के वक्त, दीयाबत्ती हो जाने पर।"

"बुला लेना। यहाँ से कलकत्ता जायगे ?"

"सरकार !"

"एजाज़वालों में हैं ?"

"नहीं, यही आपको जान लेना है।"

"अच्छी बात है।"

"पालकी बड़ी ले जाने का विचार है।"

"ले जा।"

मुन्ना आज्ञा मिलने पर बाहर निकली। कहारों को बड़ी पालकी ले चलने के लिए कहा। खास रानीजीवाली। कहारों ने तैयारी की। मुन्ना साथ पुरानी कोठी की तरफ चली। कहारों को अचम्भा हुआ। मगर चलते हुए सोचते रहे, रानी साहबा वहाँ कहाँ मरीं। तालाब की बगल पालकी रखाकर मुन्ना ने कहारों को हट जाने के लिए कहा। कहारों ने वैसा ही किया। दिल से उमड़ रहे थे जैसे कोई बात पकड़ी हो, कलंक पकड़ा हो। प्रभाकर तालाब के घाट पर बैठे थे। मुन्ना गयी, और पालकी चलने के लिए रक्खी है, कहा। प्रभाकर सन्ध्या की सुगन्ध के भीतर से चले। मुन्ना कुछ देर फिर उनकी चाल देखती रही।

आमों की राह से होते हुए गुलाबजामुन के बाग के भीतर से मुन्ना पालकी ले चली। कई दफे आते-जाते थक चुकी थी। उमंग थी। एक नयी दुनिया पर पैर रखना है। लोगों को देखने और पहचानने की नयी आँख मिल रही है।

खिड़की पर कहारों और पहरेदार को हटाकर दरवाजा खोलकर प्रभाकर को ले गयी। पंखे से समझ गयी, रानी साहबा उसी बैठके में हैं। बड़ेवाले में ले गयी।

प्रभाकर ने देखा, एजाज़वाले बँगले से यह आलीशान और खुशनुमा है। बड़ी बैठक है। छप्परखाट बड़ी, मेजें बड़ी। आईने बड़े, फूलदानियाँ बड़ी। दरवाजे बड़े। झूलें बड़ी। सनलाइट की बत्तियाँ भी बड़ी। अधिक प्रकाश, अधिक स्निग्धता, अधिक ऐश्वर्य, अधिक सजावट। संगमरमर का फर्श, खुला हुआ, हिन्दूपन के चिह्न। दीवारों और छतों पर अत्यन्त सुन्दर चित्रकारी।

प्रभाकर को चाँदी की कुर्सी पर बैठालकर पास एक सोने के डण्डेवाली गद्दीदार कुर्सी रख दी। प्रभाकर साधारण दृष्टि में बड़प्पन लिये हुए देखता रहा। मुन्ना रानी साहबा के कमरे में गयी। हाथ जोड़कर खबर दी।

रानी साहबा ने हार पहना देने के लिए कहा। फिर दूसरी दासी से घण्टे-भर में भोजन ले आने के लिए कहा।

हार पहनाकर मुन्ना ने कहा, "रानीजी आ रही हैं।" जूतियों की मधुर चटक सुन पड़ी। प्रभाकर ने देखा, एक सुश्री सुन्दरी आ रही थीं। समझकर कि रानी हैं, उठकर खड़े हो गये। हाथ जोड़े। रानी साहबा ने म्लान नमस्कार किया। अपनी कुर्सी पर आकर बैठ गयीं। मेहमानदारी के विचार से आँचल गले में डाल लिया था।

प्रभाकर की ऐसी कुर्सी थी कि सनलाइट का प्रकाश मुँह पर पड़ता था। रानी साहबा मुँह देखकर बहुत खुश हुईं।

हवा के साथ बाहर के बागीचे से फूलों की खुशबू आ रही थी। उनके आने पर उस बैठक में पंखा चलने लगा।

"आपका शुभ नाम ?" रानी ने पूछा।

"जी, मुझको प्रभाकर कहते हैं।"

"आप यहाँ हैं, हमको न मालूम था। कितने दिनों से हैं ?"

"यह आप राजा साहब से…" प्रभाकर सहज लाज से झेंपे।

"आपका इधर राजा साहब के बँगले जाना नहीं हुआ ?"

"जा चुका हूँ।"

"उसको देखा होगा ?"

"जी, हाँ।"

रानीजी को एक धक्का लगा। सँभालने लगीं। कहा, "हम मँज गये हैं। उससे भी मिले ?"

"जी, हाँ, मिले।"

रानी साहबा झेंपीं। कहा, "बाजार का अच्छा माल है। राजा साहब खरीदेंगे तो अच्छा देखकर।"

प्रभाकर खामोश रहे। जब्त करते रहे। कहा, "आदमी की पहचान मुश्किल है।"

"हाँ।" रानी साहबा ने कहा, "हमने देखा है, कलकत्ते में, मगर फूटी आँख। तारीफ थी। उससे क्या काम ?"

"तरफदार बनाना।"

"आप दमदार हैं। गला बतलाता है। पहले किसी से बातचीत ऐसी ही मिल्लतवाली रहेगी, फिर, दिल में जम गया तो फायदे की सोची।"

शराफत-भरे बड़प्पन से प्रभाकर सिर झुकाये रहे। हल्का मजाक किया, "राजा साहब को चाहिए था, पहले आपसे मिलाते।"

"हम खुद मिल लिये। राजा साहब का कुसूर हट गया।"

"जी।"

रानी साहबा ने पूछा, "आप सिगरेट-पान शौक फरमाते हैं ?"

"पान खा लूंगा।"

मुन्ना एक बगल खड़ी थी। रानी साहबा ने देखा, वह गिलौरीवाली तश्तरी उठा लायी। प्रभाकर के सामने मेज पर रख दी। प्रभाकर ने पान खाये। मुन्ना हटकर अपनी जगह खड़ी हो गयी।

"आप कब तक कलकत्ता रवाना होंगे ?" रानी साहबा ने पूछा।

"दो ही दिन में, अभी समय का निश्चय नहीं किया। जरूरी काम है।"

"कैसा काम आपके सिपुर्द है, क्या आप बतलायेंगे ?"

"अभी नहीं। काम आपके फायदे का है।"

"आपकी हम क्या मदद कर सकते हैं ?"

"सहयोग।"

"यह तो यों भी है। आप हमारे घर हैं। आपको नहीं मालूम, हम ऐसी हालत में आपके दोस्त रहेंगे या दुश्मन।"

"सही।"

"आपकी हमारी बातचीत पक्की, मगर राजा साहबसे हमारा भेद न खुले।"

"हम ऐसा काम नहीं करते। भेद एक ही है हमारा। उससे आपको फायदा होगा तो होगा। आप अपनी परिचारिका से समझ लें, जो हमको ले आयी है। फिर हमारे काम से, जो हर तरह नेकचलनी का है, आप मददगार हों; राजा साहब भी हैं; आपकी और उनकी पटरी इस तरह बैठ जायगी।"

"मदद की सूरत क्या हो ?"

"आपके यहाँ हमारे केन्द्र हैं, देशी कारोबार बढ़ाने के; आप महिला होने के कारण उनकी स्वामिनी; गृहलक्ष्मी शब्द का उपयोग आप ही लोगों के लिए होता है; आप उसकी चारुता बढ़ाने, प्रसार करने में सहायता करें। देश में विदेशी व्यापारियों के कारण अपना व्यवसाय नहीं रह गया। हम उन्हीं के दिये कपड़े से

अपनी लाज ढकते हैं; उन्हीं के आईने से मुँह देखते हैं; उन्हीं के सेण्ट, पौडर, लेवेन्डर, क्रीम लगाते हैं; उन्हीं के जूते पहनते हैं; उन्हीं की दियासलाई से आग जलाते हैं। ब्राह्मण की आग गयी; क्षत्रिय का वीर्य गया; वैश्य का व्यापार चौपट हुआ। यह सब हमको लेना है। इसी के रास्ते हम हैं। बंगभंग एक उपलक्ष्य है। दूसरे प्रान्त अभी बहुत जाग्रत नहीं, यों कांग्रेस में सभी हैं, यह स्वदेशीवाला भाव हमको घर-घर फैलाना है। आप गृहलक्ष्मी तभी हैं। इस समय रानी होकर भी दासी हैं। आपके घर की तलाशी ली जायगी तो अधिकांश माल विदेशी होगा। आप इसी में हमारी मदद करें। आपकी सहानुभूति भी हमारे लिए बहुत है।"

मुन्ना खुश हो गयी। रानी साहबा दासी हैं, उसको बहुत अच्छा लगा। उसमें रानी का सही स्वत्व आया। वह तन गयी।

प्रभाकर कहते गये, "और यहीं से इस उलझन का खात्मा नहीं हो जाता।" अर्थशास्त्र की उलझनदार बड़ी-बड़ी बातें हैं, दूसरे मुल्कों से हमारे क्या सम्बन्ध रह गये हैं, हम कितने फायदे और कितने घाटे में रहते हैं, बैंक क्या है, कारोबार की क्या दशा है, यह सब एक मुद्दत की पढ़ाई के बाद समझ में आता है। राज्य और राजस्व बिगड़ा हुआ है। इस प्रकार कभी हमारा उत्थान नहीं हो सकता। जाति की नसों में राजनीतिक खून दौड़ाकर एक राजनीतिक जातीयता लाने में कितना श्रम चाहिए, इसका अनुमान आप लगा सकती हैं। मैं आपका एक ऐसा ही सेवक हूँ।"

रानी साहबा को जान पड़ा, उनका पहला अस्तित्व स्वप्न हो गया है। दूसरा जीवन से उबलता हुआ। देखा, वे मुन्ना से छोटी पड़ गयी हैं। मगर उनको बुरा नहीं लग रहा। हृदय के बन्द-बन्द खुल गये हैं। मुन्ना खड़ी मुस्करा रही है।

रानी साहबा ने कहा, "हम आपसे सहमत हैं। आप जैसा कहेंगे, हम करेंगे।"

प्रभाकर सोचते रहे। कहा, "इसकी मार्फत हम खबर भेजेंगे और भेजते रहेंगे।" मुन्ना की तरफ इशारा किया। और कहते गये, "हरएक की अपनी सुविधा होती है। दूसरे की आज्ञा वह अपनी सुविधा को छोड़कर नहीं मान सकता या मान सकती। इसका अनुभव महीने-दो महीने साथ रहने पर हो जाता है। फिर हमारे बहुत तरह के काम हैं, कौन किस योग्य, इसकी पहचान की जाती है।"

"आप इसकी मार्फत खबर भेज दीजियेगा, और काम बढ़ाते रहियेगा। आज यहीं भोजन कीजिए। काफी वक्त हो गया। आपको अपनी जगह जाना है।" यह कहकर रानी साहबा उठीं और अपने पहलेवाले कमरे में गयीं। प्रभाकर ने उठकर बिदा किया। पाचक थाली एक मेज से लगा गया था।

हाथ-मुँह धुलाकर भोजन से निवृत्त करके मुन्ना प्रभाकर को उसी तरह उनकी कोठी पर भेज गयी। उनकी आज्ञा भी मिली।

अड़तीस

प्रभाकर बहुत काम न कर सके। कुछ किया और कुछ बरबाद कर दिया। भेद खुल जाने की शंका से इसी रात रवाना हो जाने की सोची। मुन्ना को कह दिया कि अच्छा हो अगर रानी साहबा के साथ या अकेली कलकत्ते में राजा साहब की कोठी पर मिले। घनिष्ठता के लिए पास रहना जरूरी है। अगर दल में आने की इच्छा होगी तो कर्मियों के साथ, अनेकानेक गृहकार्य करने के लिए आ सकती है। मुन्ना ने कलकत्ते में मिलने के लिए कहा।

प्रभाकर आज ही रात रहे लोगों को लेकर बेलपुर रवाना हो गये। रहा-सहा व्यवहारवाला सामान कलकत्तेवाली राजा की कोठी में ले जाने के लिए समझा दिया। रात प्रभात होते मुकाम पर पहुँच गये।

पौ फटते पहुँचे। बुआ जग गयी थीं। स्नान से निवृत्त हो चुकी थीं, दिन-भर घर से बाहर न निकलती थीं। एक साधारण जमींदार ने जगह दी थी। बाँस के घेरे में मिट्टी लगाकर दीवार बनाकर छा लिया गया था। तीन-चार कोठरियाँ थीं, तीन-चार चारपाइयाँ और चरखे-करघे आदि। बुआ भोजन पकाती थीं। कर्मी वस्त्र-वयन आदि करते थे। काम जितना था, जोश उससे सैकड़ों गुना अधिक। हिन्दू और जमींदारी प्रथा से फँसी जनता साथ थी। जितना अभाव था, पूर्ति उससे बहुत कम। चारों ओर पूर्ति का मन्त्रोच्चार था। लोगों में भक्ति थी। इससे बुआ का स्वास्थ्य अच्छा रहा। लोगों को एक सहारा मिला। राज लेनेवाले जमींदार को भी यह पता न हुआ कि एक औरत आयी है।

किरण फूटी। प्रभाकर हाथ-पैर धोकर बैठे थे। दूसरे साथी भी बैठे थे। दरवाजा बन्द था। बुआ प्रभाकर को प्रणाम करने आयीं। आँखों में भक्ति और उच्छ्‌वास, काम की एक रेखा। मुख पर प्राची का पहला प्रकाश। प्रभाकर देखकर खड़ा हो गया। हाथ जोड़कर नमस्कार किया। बुआ ने भी किया। प्रभाकर ने पूछा, "कैसी रहीं ?"

बुआ ने इशारे से समझाया, "अच्छी तरह।" अभी वे बंगला बोल नहीं सकतीं। थोड़ी-थोड़ी समझ लेती हैं। यहाँ आने पर उनका मन बिलकुल बदल गया। वहाँ के प्रभाव का दबाव जाता रहा। ललित ने कहा, "थोड़ी-सी चाय पिला सकती हैं ?"

बुआ चूल्हा जलानेवाली थीं। चलकर जलाया। कर्मी चाय पीते हैं। सामान है। पानी उबालने लगीं। आधे घण्टे में बढ़िया चाय बनाकर प्यालों में ले आयीं। तश्तरी में सुपाड़ी, लौंग, इलायची, सौंफ, जवाइन, मुखशुद्धि के लिए। लोग मुँह धो चुके थे। चाय पी, लौंग-सुपाड़ी खायी। काम की बातचीत करने लगे, कितना कपड़ा महीने में बनकर कलकत्ता जाता है, कितना काम बढ़ाया जा सकता है, लोगों की सहानुभूति कैसी है, अधिक संख्या में लोग व्यापार के लिए तैयार हैं या नहीं। जवाब मिला, जमींदार आये थे, दरवाजे पर बैठे थे, कहते थे, सरकारी लोग खल-मण्डल करते हैं; कारोबार चलने नहीं देना चाहते; डरवाते हैं, जड़समेत उखाड़-

कर फेंक देंगे; सज़ा कर देंगे; बदमाशी के अड्डे हैं, कहते हैं।

प्रभाकर ने कहा, "मिलों का मुकाबला है, मुश्किल मुकाम है; मिलवाले जमींदारों की तरह इस आन्दोलन में शरीक नहीं, सरकार को उनकी तरफदारी प्राप्त है; दलाल हैं ये लोग; विघ्न डालेंगे; देहात के बाजारों में इनका माल आता है; ज्यादातर विदेशी माल हैं; दूकानदारों को ये लोग बाँधे हैं; माल खपाते हैं; विदेशी बनियों का भी सरकार पर प्रभाव है; वे ज्यादती करने की प्रेरणा देते होंगे; बड़ी मुश्किलों का सामना है। देश के इन गधों से ईश्वर पार लगाये।

बुआ सुन रही थीं। प्रभाकर से सहानुभूति थी।

ललित ने पूछा, "मछली पका सकती हैं? आज प्रभाकर बाबू को यहाँ के जमींदार के तालाब से पकड़कर खिलायी जाय, हम लोग भी खायँ, हम बता देंगे, या हमीं बनायेंगे।"

बुआ ने कहा, "बाद को बना देंगे, हमारे घर में लोग मछली खाते थे। खास तरह की हो तो बता देना।"

ललित एक साथी लेकर मछली की तलाश में गया। बुआ ने आलू-परवल के भाजे, डालना, रसेदार, शकरकन्द की इमली और शकरवाली तरकारियाँ पकायीं, दाल बनायी, भात बनाया; कुल बंगाली प्रकार जैसा बताया गया था। दुपहर तक भोजन तैयार हो गया। मछली भी आयी थी, भोजन एक किनारे रखकर उसको भी बना दिया। आसन बिछाये। गिलासों में पानी रक्खा। पत्तलें लगायीं। कटोरियों में दाल रक्खी; मिट्टी के प्यालों में रसेदार तरकारी और मछली। फिर सबको खिलाया। प्रभाकर बुआ के काम से बहुत प्रसन्न हुए। देहात निरापद नहीं, खासतौर से जब यह तैयारी हो रही है।

दूसरे दिन बचकर बुआ को लेकर वे कलकत्ता रवाना हुए। कुछ दूर चलकर नाव किराये पर की, फिर रेल पकड़ी।

उन्तालीस

यूसुफ छनके। पिता से कुल हाल कहा। अली स्वदेशी के मामले से, राजों के कलकत्तेवाले कोचमैनों से मिले, उनमें किसी का लड़का थानेदार न हुआ था, अली को इज्जत से बैठाला। सच-झूठ हाल सुनाकर आन्दोलन में सरकार की मदद के लिए अली ने उनको उभाड़ा। उन्होंने साथ देने को कहा और अली के गरोह में आ गये। खिलाफ कार्रवाई में भेद देने का इरादा पक्का कर लिया। कुल काम कर चले।

इसी लगाव से अली ने एजाज़ के घर एक कोचमैन भेजा। नोटबुक के अनुसार 'सीन' कहने के लिए कहा और क्या जवाब मिलता है, खामोशी से लौटकर सुनाने

के लिए समझाया। गरोह की पहचान के लिए दूसरे-दूसरे राजों के दो कोचमैन भेजे, ताकि हिम्मत बँधी रहे, यों सरकारी आदमी को कोई खतरा नहीं, यह भी कहा। लोग गये आगे-पीछे रहे। एजाज़ की कोठी देखी। बागीचे देखे। दरबान से बातचीत की। 'सीन' कहा। नसीम को मालूम हुआ। एजाज़ आ गयी थी। समझ-कर कह दिया, "फँस गया।" लौटकर लोगों ने अली से कहा। अली बहुत खुश हुए। यूसुफ से कहा।

यूसुफ को जान मिली। कुछ अरसा किया, फिर गये। खुशी और कामयाबी का दरिया बह रहा था। तरह-तरह की भवरें उठ रही थीं। दिल में गड़ गया कि एक नाका तोड़ लिया, इसी रास्ते चले चलेंगे। बग्घी किराये की। दो आदमियों को बैठालकर चले। डोर लगी थी। बढ़िया-बढ़िया स्क्वायर और रास्ते पार करती बग्घी चली, बढ़िया-बढ़िया मकान। एक बढ़िया फाटकदार बँगलानुमा प्रासाद में बग्घी गयी। यूसुफ को उतारकर रास्ते पर खड़ी हुई। यूसुफ दरबान से कहकर गेस्टरूम में बैठे। सेक्रेटरी आये। देखकर पहचान गये। यूसुफ ने कहा, "तीन और तीन।"

सेक्रेटरी मुस्कराकर दबे-पाँव एजाज़ के पास गये। एजाज़ मेज पर थीं, खत-किताबत कर रही थीं। सेक्रेटरी को देखकर मुखातिब हुईं। सेक्रेटरी ने 'तीन और तीन' के साथ आये आदमी का परिचय भी दिया।

एजाज़ ने कहा, "आप अपने नोटबुक में दर्ज कर लीजिए। कुछ मेरा भी हिसाब है। यहाँ के सुबूत जहाँ तक हैं, लिये रहिए। वकील की मार्फत भेजियेगा। कुर्सी डलवा दीजिए।" सेक्रेटरी गये। एजाज़ ने नसीम को अपने पाजामे-दुपट्टे से भेजा। कामदार जूतियाँ। सिखला भी दिया। यों नसीम भी भेद लेना जानती थी।

नीचे सेक्रेटरी की बगलवाले कमरे में कुर्सियाँ डाली गयीं। वह आकर बैठी। यूसुफ से चलने के लिए कहा गया। वे गये। नसीम ने उठकर सलाम किया। फूल-दानी की बगल से, कुर्सी पर बैठने के लिए हाथ बढ़ाया। यूसुफ ने बैठे देखा यह वही हैं। पूछा, "मिजाज अच्छा ?"

"जी, हाँ।"

"हमको पूरी जानकारी चाहिए।"

"हम अपना भी हिसाब रखेंगे।"

"इससे सरकार की तरफ से बहुत फायदा न होगा। क्योंकि खैरख्वाही की सिफारिश पहले हमारी ली जायगी। यह एक तरह की कमजोरी है और इससे सरकार के कान खड़े होते हैं। आपकी तबियत, जैसा आप चाहें, करें।"

काले कारनामे

एक

सावन का महीना आँख पर तरी बरसा रहा। खेत लहालोट हैं, हरे-भरे ज्वार, अरहर, उड़द, सन, मक्का और धान लहरा रहे हैं। आम, जामुन के दूर तक फैले हुए बागीचे फल दे चुके हैं, इस समय विश्राम की साँस ले रहे हैं। चिड़ियों के पर भींगे हुए हैं। फड़काकर पानी झाड़ लेती हैं और मधुर-मधुर चहकती हुई, इस पेड़ से उस पेड़ पर उड़ जाती हैं; नीचे टिड्डे जैसे कीड़ों पर नजर रखती हुई बुलबुल, गलार, पिड़की, रुकमिन, सतभैये, कोयल, पपीहा, कबूतर और बरसात की बगले की जातवाली अनेक प्रकार की चिड़ियाँ तालाब के किनारे के ऊँचे पीपल और इमली के पेड़ पर बसेरा लिए हुए। ताल पर सिंघाड़े की बेल फैलती हुई। लड़के अखाड़े कूदते हुए। औरतें काम-काज से घर और बाहर आती-जाती हुईं। गाँव में चहल-पहल। हिंडोले पड़े हुए। लड़कियाँ झूलती हुईं। कजली, सावन, बारहमासी गाती हुईं। मर्द रात को रोज होते हुए आल्हे की कड़ियाँ गाते कन्धे पर लट्ठ रखे तम्बाकू ठोंकते हुए आते-जाते हुए। गलियारे में पानी भरा हुआ। मेड़ के ऊपर से लोगों की निकली हुई पगडण्डी, वह भी पानी बरस जाने से बिछलहर। कुएँ पर पनिहारियों का जमघट।

जमींदार रामराखन के पक्के मकान से खेत, बाग और पेड़ आदि के दृश्य दिखते हैं। गाँव के उत्तरी निकास पर खासा-अच्छा पक्का मकान। घर में लोगों की खासी-अच्छी संख्या। कहते हैं, इस मकान में ब्याह करते साधारण परिवार भी घबराता है। जो औरत रोटी करने के लिए चौके में जाती है, उसको दिन-भर लग जाता है। जो पिसान पीसती हैं उनको रोज पाँच पसेरी से भी ज्यादा पीसना पड़ता है। जिनकी पानी भरने की बारी आती है उनको एक-एक वक्त पचीसों घड़े पानी खींचना पडता है। जिनके हवाले गोबर उठाने और गाय-भैंस दुहने का काम रहता है, उनको भी दुहकर कण्डा पाथकर आते-आते दुपहर हो जाती है। दो नौकर कुट्टी काटने और चारा-पानी करने से फुरसत नहीं पाते। लड़के चरवाहे बागों में ढोर ले जानेवाले अलग हैं। घर-भर गजी-गाढ़े से रहते हैं। मगर गाँव में इज्जत है। सबसे बड़े जमींदार हैं।

मनोहर पड़ोस के एक गाँव का रहनेवाला विद्यार्थी है। भरा अच्छा बदन, गठा हुआ। इस जमींदार घराने से उसकी रिश्तेदारी है। जमींदार साहब को उसकी फूफी ब्याही हुई हैं। अपने गाँव राजपुर से वह जमींदार के गाँव सरायन रोज शाम

के वक्त जोर करने के लिए पहलवान रामसिंह के अखाड़े जाता है। वहीं अहीरों से तीन पसेरी का दूध तै कर लिया है; जोर करने के बाद शक्कर मिलाकर सेर-डेढ़ सेर पी लेता है और शाम की बियारी उसी रिश्तेदारी में करके सो जाता है। चार बजे उठकर गाँव चला आता है और कुछ पढ़कर स्नान-भोजन करके पास के संस्कृत पाठशाले चला जाता है। आचार्य कक्षा के दूसरे साल का विद्यार्थी है।

मनोहर के पिता बम्बई में एक सेठ के यहाँ नौकर हैं। साधारण अच्छी आमदनी है। घर में खेती-बारी होती है, बैल हैं, गाय-भैंसें हैं, गाड़ी है, और स्नेहशीला महिलाएँ हैं। गाँव के लोग इनको भलेमानुस कहते हैं।

आज अखाड़े जाते हुए पहलवान रामसिंह के पड़ोसी पटियैत से चार आँखें हुईं। शीलवान मनोहर को उन्होंने चंग पर चढ़ाया। कहा, "जोर कराने जा रहे हो !"

मनोहर ने कोई जवाब न दिया। बरसात का कीचड़ बचाकर ऊँची पगडण्डी से निकलने को हुआ कि पड़ोसी ने खखारकर कहा, "वह हमारा मकान है, गलियारा भी हमारा है, गाँव में जो शोहरत है वह कही, हाँ, बदन जैसा गठीला है और रेख-उठान उम्र, हमको विश्वास है, इस ठाकुर को जोर करा देते होगे।"

मनोहर फिर भी सब पी गया। लजीले डग आगे रखने को हुआ कि पड़ोसी ने फिर आवाज कसी, "अच्छे भलेमानुस हो ! आदमी तो आदमी मकान उठाये लिये जा रहे हो ! अरे हम जमींदार के भी मान्य हैं, जवाब दे जाओ, नहीं तो हम उन्हीं से समझेंगे।" मनोहर ने कहा, "हम तो जोर करने आते हैं, आपकी बात सच होती तो इन्हीं को हमारे गाँव जाना होता।" पड़ोसी ने कहा, "हमको मालूम है, तुम्हारे गाँव में छाया अखाड़ा नहीं है, इसलिए यहाँ तक पैज भरते हो। हमारा नाम है लीलाराम।"

मनोहर सन्न हो गया। कुछ समझ न सका। पैर बढ़ाये गया। पड़ोसी कुछ दूर हो गया। आवाज दी, 'तो फिर तुमको अपने ही घर समझ गये न, (एक बुरी मुद्रा दिखाते हुए) हकीकत समझ में आ जायेगी, हम पीठ नहीं लगवाते।"

मनोहर को आश्चर्य हुआ। मगर समझकर भी तरह दे गया। कुछ दिल धड़का, टेढ़ी खीर सीधी नहीं हुई। चुपचाप अखाड़े पहुँचकर लँगोटा बाँधा और नाली में दण्ड करने लगा। सौ-डेढ़ सौ दण्डें कीं कि उस्तादजी नहाकर आ गये। लालटेन जलाकर अखाड़े के छप्पर में बँधी रस्सी के साथ बाँध दी गयी। चौदह-पन्द्रह साल-वाले लड़के अखाड़ा गोड़ चुके थे, छप्पर की थूनिया पकड़े हुए बैठक कर रहे थे। दो-तीन लड़के उसी गाँव के, उनसे कुछ बड़े, मगर मनोहर से उन्नीस, जोर करने के लिए आ गये।

उस्ताद ने लँगोटा बाँधा। पहले गाँव के बड़े लड़कों को लड़ाया। छोटे लड़के एक दूसरे से अखाड़े के किनारे-किनारे लडते रहे। अखीर में उस्ताद ने मनोहर को बुलाया। मनोहर तगड़ा है। लड़ता भी अच्छा है। बम्बई जाता है तो बड़े पहलवान से जोर करता है। कई दाँव रवाँ हैं। उस्ताद सम्हले रहते हैं। मगर जोर वे मनोहर के जैसे दो-तीन को करा सकते हैं। दस्ती, उतार, लोंकान, पट, ढाक,

कलाजंग, घिस्से आदि दाँव चले और कटे। ताकत में भी रामसिंह बीस थे। मनोहर को जोर कराकर हरे होने लगे।

ठण्डे होकर लोगों ने अखाड़ा बिदा किया। मनोहर दूकान से आधा पाव शक्कर लेकर अहीर के घर गया। दुपट्टे में शक्कर रखकर दूसरे लोटे में दूध छान लिया और वहीं बैठे-बैठे पी गया; फिर रोज की तरह अहीर से पानी मँगवाकर दोनों लोटे धोकर दे दिये और जमींदार की हवेली के सामने पीपल के तलेवाले चबूतरे पर बैठकर पुरवैया के झोंके लेता रहा। अब तक रात एक पहर हो आयी थी।

मनोहर को यहाँ कुश्ती के लिए आते अभी बहुत दिन नहीं हुए। माजरा यह है कि वह बम्बई में पिता के पास रह रहा था। संस्कृत वहीं पढ़ता था। मगर खाने-पीने का आराम रहने पर भी बम्बई का पानी उसको उतना अच्छा नहीं लगा। घरवाले साल-छः महीने के लिए बम्बई रह आते थे, मगर दिल घर पर ही लगा रहता था। मनोहर का गाँव ऐसी जगह है, जहाँ से कस्बे की संस्कृत पाठशाला नजदीक है। घर में रहने का भी सुभीता है, इसलिए उसके पिता ने और घरवालों ने उसका घर रहना ही अच्छा समझा। रामसिंह से उसकी मुलाकात यों हुई कि निर्वाह के लिए रामसिह कपड़े की दूकान करते थे; कस्बे के बाजार गाड़ी पर लादकर कपड़े ले गये थे। गाँव के जमींदार के लड़के मनराखन ने कुश्ती के शौकीन मनोहर से दूर से रामसिह को दिखाते हुए कहा, "अपने यहाँ के यह सबसे अच्छे पहलवान हैं, जोर करना चाहो तो इनसे बातचीत कर लो, फिर हम भी अच्छी तरह दाँव-पेंच सिखाने के लिए कह देंगे। हमारे रिश्तेदार होते हैं।"

मनोहर सीधे स्वभाव का रेख-उठान युवक, रामसिंह के पास मुस्कराता हुआ गया और जोर करने की बातचीत छेड़ी। सुनकर रामसिंह देखते रहे और तोलकर रहा, "अच्छी बात है आया करो।" इसके बाद मनराखन एकान्त में मिला और अपनी जमींदारी का राज कहकर जैसे अपनी रक्षणशीलता रामसिंह को दी। रामसिंह ने मुस्कराकर राज लेते हुए कहा, "अच्छी बात है, मगर हमारे गाँव का हिसाब है।"

मनराखन ने कहा, "आप लोगों का हिसाब ठाकुरों के सिवा दूसरे जमींदार क्या लेंगे! देख लिया जायगा। असामी मोटा है। जमींदार की निगाह न रही तो किसी रोज सर हो सकता है। यों, सर किये रहिए।"

रामसिंह का राज गाँव में एक पड़ोसी जमींदार के यहाँ था, मगर गाँव-भर के छोटे जमींदारों का राज मनोहर के रिश्तेदारों के यहाँ रहता था। सरकारी मालगुजारी इन्हीं की सबसे ज्यादा थी।

मनोहर के आने पर पहले-पहल किसी ने कोई छेड़छाड़ नहीं की, जैसे कुछ होता हुआ भी न हो रहा हो। दो-एक रोज बाद बातों-ही-बातों रामसिंह ने अपने राज का इजहार किया। दूसरे जमींदार का माथा ठनका। उसने कहा, "तुम हमराज हो, किसी को जो तुम्हारा रिश्तेदार नहीं, अगर लो तो हमसे पूँछकर, क्योंकि ऐसा ही सरकार और जमींदार का कायदा है। जिस गाँव के यह हैं, वहाँ का जमींदार जिम्मेवार होगा। रात आठ-नौ बजे के बाद जब यह आपके यहाँ से

चले जाते हैं तब कहाँ जाते हैं, क्या करते हैं, किसी को नहीं मालूम। अगर कोई चोरी-डाका हो जाय तो क्या तुम इसके जिम्मेदार होगे ?"

रामसिंह ने कहा, "यहाँ वह जो तुमसे भी बड़े जमींदार हैं, इनके रिश्तेदार हैं। वहीं रात को रहते हैं। सबेरे गाँव जाते हैं। हमको इतना ही मालूम है। इनके गाँव के जमींदार हमारे रिश्तेदार हैं। राज हमारा ठाकुरों का। सिर चढ़कर बात-चीत की तो हजारों घोड़े मुतवावेंगे।"

इस तरह बातचीत बढ़ते-बढ़ते बढ़ गयी और गाँव-भर में तरह-तरह का रंग चढ़ने और उतरने लगा। मनोहर के रिश्तेदार ने गम्भीर होकर सुन लिया। लोगों की सलाह उनको पसन्द आयी। रामसिंह चने होकर भाड़ कैसे फोड़ सकते हैं, उनके जमींदार की यह शिकायत उनको सही मालूम हुई। उन्होंने मतलब बैठा लिया कि किस रास्ते गुजरा जाय, गाँव के मामले में रामसिंह की मदद दूसरे गाँव से कैसे पहुँच सकती है।

मनोहर चबूतरे पर बैठा हवा ले रहा था। हवेली की चौपाल से चबूतरा देख पड़ता है। जमींदार मनोहर के फूफा साहब उठकर चले। मनोहर के पास आकर बैठे। पहले मन लेते रहे, बहलाते रहे। यह मालूम होने पर कि मनोहर सच्चा है और रामसिंह को उस्ताद की निगाह से देखता है, उन्होंने कहा, "बच्चा! देहात का हिसाब-किताब तुमको कम मालूम है। जमीं का जाल बिछा है। जो जमीं तुम्हारी नहीं उस पर पैर रखने का भी हक तुमको नहीं, अगर उसका जमींदार किसी सूरत से तुम्हारा रखवाला नहीं। सरकार को एक जवाब जमींदारी के अन्दर के किसी कारनामे के लिए देना पड़ता है। तुम जिस गाँव से आये हो, तुम्हारे साथ उस गाँव का राज भी आता है। उस गाँव के जमींदार का राज इस गाँव का जमींदार रियाया की हैसियत से न लेगा। जो तुम्हारे पहलवान हैं वह तुम्हारे नौकर नहीं, तुम खुद उनके यहाँ लड़ने आते हो यानी उनके मातहत हो। ऐसा होने पर जमींदार के साथ का उनका रिश्ता जाता रहता है। बर्ताव में बल पड़ता है। जमींदार से वह एक रैयत की हैसियत से नहीं पेश आ सकते। रैयत के तौर पर वह तुमको पेश करते हैं। लेकिन जमींदार तुमको नहीं ले सकता, क्योंकि तुम्हारे साथ हमारा हिसाब है, और हम जमींदार की तौहीन होने से हर तरह बचायेंगे। गर्ज यह कि हमारे रिश्तेदार की हैसियत से तुम वहाँ जा सकते हो, मगर यहाँ के जमींदार के आदमी बनकर। कल अपने जमींदार से कहकर आना कि हम उनके आदमी हैं हमारा नाम लेकर, तब तुम्हारी समझ में बात आ जायगी। इस गाँव में हमारे आदमी को अपने आदमी करार नहीं दे सकते और जमींदार के आदमी को नहीं लड़ायेंगे तो क्या गुजरेगी यह उनके आगे आयेगा।"

फिर हँसते हुए दूसरी बातचीत करने लगे। मनोहर ने सुना, उन्होंने मन-ही-मन कहा, ठाकुर बहक गये।

कुछ देर बाद जमींदार साहब उठकर चले गये। मनोहर विचार में पड़ गया। उसको नया विषय मिला, नया रास्ता जिससे वह कभी नहीं गुजरा। उसको गाँव के जमींदार की बातें याद आयीं, बाद को बाजार में मिलने का दृश्य एक बार फिर आँखों पर घूम गया, हकीकत बड़ी भयावनी लगने लगी। हाथ-पैर ढीले हो चले।

उसने कभी नहीं सोचा, जमींदार की जात ब्रह्म-राक्षस से बढ़कर है जिससे पीछा कभी नहीं छूटता। क्षण-भर में उसके मन की दशा बदल गयी। पूरा-पूरा ज्ञान इस सम्बन्ध का पा लेने के लिए उकताने लगा। इतनी भाप भर गयी कि दूसरे ही दिन बम्बई रवाना हो जाने की सोचने लगा।

कुछ देर बाद एक आदमी बुलाने के लिए आया। मनोहर खाना खाने चला। घर के गैर लोगों को बाहर निकालकर उसकी फूफी आज खुद थाली परोसकर बैठीं।

मनोहर हाथ-पैर धोकर, कुल्ले करके थाली पर बैठा। उसकी फूफी ने मुस्कराकर कहा, "क्यों रे, तू पागल है! तुझको यहाँ लड़ना था तो हमसे कहता? रामसिंह आँखें क्या चढ़ाने लगा! ले-देकर एक जोड़ी बैल, एक गाड़ी और एक-दो गांठ कपड़ा! जैसा कहा, कल वैसा कर। अभी तक हम लोग चुप थे। लड़का है, खिलवाड़ है। कल सही हाल मालूम हो जायगा। इसके बाद, जब यहाँ से जायगा, गाँव के डाँड़ तक हमारा राज, उधर उनका।"

मनोहर को सारी रात बेचैनी रही। पड़ा तारे गिनता रहा। बहुत दूर तक अक्ल चलती नहीं थी। फिर भी जमीन-आसमान के कुलावे मिलाता रहा। जब ठण्डी हवा लगती थी, सोचता था, दुनिया में लोग एक-दूसरे से इस तरह क्यों नहीं मिलते कि छोटे-बड़े का भेद-भाव भूल जाय, एक-दूसरे के गले-लगे दोस्त हों, गर्दन नापनेवाले दुश्मन नहीं। माजरा जैसा रंग पकड़ रहा है, आखिर तक किसी की जान से गुजरकर रहेगा।

लेटे कुछ देर हुई कि एक नौकर आया। उसने कहा, "गाँव में किसी चिड़िया को यह हाल न मालूम हो। जमींदार से कह आना दूसरे गाँव का हमारा राज हमारे रिश्तेदार के यहाँ है। यहाँ मालिक के छोटे भाई आपसे मिलेंगे। जैसा-जैसा कहें करते जाइयेगा।" यह कहकर वह चला गया।

मनोहर फिर करवटें बदलने लगा। पुरवाई के झोंके कभी-कभी झाड़ियों की खुशबू से लदे मस्त करते हुए आने लगे। आल्हा की धुन सुन पड़ने लगी। साथ ढोलक बज रही थी। कुछ देर बाद मनोहर अपनी उधेड़-बुन में आ गया। जैसे भूल-भुलैयों में पड़ गया हो, निकलने का रास्ता न पा रहा हो। जी उकताने लगा। आँखों पर रात पार हो गयी। पौ फटने की सूरत नजर आयी। वह उठकर गाँव को चला।

दो

जब घर आया तब भी चक्कियाँ चल रही थीं। ढोर नहीं छूटे थे। पनहारिनें पानी को नहीं निकली थीं। गाँव के बाहर एकाध स्यार तब भी चक्कर काट रहे थे।

घरों के दरवाजे नहीं खुले थे। मनोहर रात-भर का जगा था। किसी को आवाज नहीं दी। चौपाल की खाली चारपाई डालकर लेट गया। देखते-देखते आँख लग गयी। आज पाठशाला जाने की उतावली न थी। घर की तरफ से न निश्चय था, न अनिश्चय। बम्बई जायगा या घर रहेगा, फैसला न कर सका था।

घर के लोगों ने उठकर उसको लेटा हुआ देखा, तो जगाया नहीं। उसकी अम्मा को कुछ झझक हुई, मगर वह भी जगने तक मुँह दबाये रहीं। दिन का काम, पीसना, भैंस लगाना, कण्डे पाथना, पानी भरना, रोटी करना आदि होता रहा। कभी-कभी मनोहर के सोते रहने पर फब्तियाँ चलती रहीं। जब जगा तब दुपहर थी। नींद के आ जाने से बदन हल्का हो गया। जंगल गया और दातौन के लिए नीम का एक गोजाह लेकर लौटा। फिर डोल, लोटा, डोर और धोती लेकर पक्के कुएँ को चला। नहा-धोकर घर लौटा, मकान के भीतर देवता को प्रणाम करने गया, कुछ देर बैठा माला जपता रहा, फिर चन्दन लगाये हुए लौटा और चौके को गया। उसकी माता ने थाली परोस दी और बैठी मक्खियाँ उड़ाती रहीं। जब आधा भोजन कर चुका, एक गिलास पानी पी लिया, तब उसकी माता ने पूछा, "क्यों भैया, आज आते ही सो गये ? पाठशाला नहीं गये।"

मनोहर ने जवाब दिया, "कुछ ऐसा ही पेंच पड़ गया है। तुमसे कहूँगा। बड़ी बात नहीं, एक बतंगड़ है।"

माँ मुँह देखती रहीं। आग्रह आँख से फूटकर निकल रहा था। मनोहर ने भोजन समाप्त किया। हाथ-मुँह धोये, कुल्ले किये। माँ ताक पर थीं, इसलिए घर की खिड़की से गोंड़े की तरफ गया, इशारे से माँ को बुलाकर।

उधर चारों तरफ से चारदीवार बीच में तीन-चार नीम के पेड़ हैं, छाया किये हुए। दो एक चारपाइयाँ पड़ी हैं। औरतों के विश्राम की जगह है। बाहर से कोई देख नहीं सकता। जैसे छोटा नीम का एक बागीचा हो। एक तरफ एक कुआँ है। पानी खारा होने के कारण चौका-टहल और नहाने-धोने के ही काम में लाया जाता है। खुली जगह होने के कारण पुरवाई के विरामपूर्ण झोंके आ रहे हैं। नीमों पर चिड़ियों की चहक दिन-भर सुन पड़ती है।

मनोहर पड़ी हुई चारपाई पर बैठ गया। माँ भी एक किनारे आकर बैठीं। सशंकित दृष्टि से माँ को देखता हुआ कुल हाल मनोहर धीरे-धीरे बयान कर गया। माँ ने कहा, "बाहर की बात है, घर के पुरखे यहाँ हैं नहीं, इसलिए ननदोईजी का कहना ही करना चाहिए।"

मनोहर ने कहा, "अम्मा ! बात यह बड़ी पेचीदी जान पड़ती है। हम किसी अधिकार के आदमी हों, हमारे रक्षण के कोई नियम हों, उनका पालन होना जरूरी है, इस बात से इसका विरोध जाहिर होता है। ऐसी ही बात बम्बई में गुजरी, जिसके कारण हम लोगों को यहाँ चला आना पड़ा। किराये के जिस मकान में रहिए, किराया देते रहने पर भी जैसे अपना कोई स्वत्व न हो। पिताजी जहाँ नौकर हैं, वहाँ माह-माह काम करने और तनख्वाह लेने के अलावा उनकी व्यक्तिगत कोई जिम्मेवारी नहीं। स्वत्वाधिकार सेठ भी हैं जिनके वे नौकर हैं। किराये के मकान में स्वत्वाधिकार जमींदार का है जिसका वह मकान है। हमारा

समाज इस तरह स्वत्वहीन गुलामों का एक समाज हो रहा है, और यह ब्राह्मणत्व ! इस पर भी तरह-तरह से नीचा देखने की नौबत आती है। अब इतर जन सिर उठाने लगे हैं। हमारी अवमानना समाज की उन्नति का पहला साधन हो रही है। दूसरे हमारा ब्राह्मणत्व हमारी एक छोटी-सी पहिचान के सिवा, एक छोटे-से दायरे में आ जाने के सिवा कोई ताकत नहीं रखता—दूसरे प्रान्तों में हम शूद्रों से भी बदतर समझे जाते हैं। आपको मालूम हो कि मकान-मालिक के इतर विचार के कारण हमने सिर उठाया था, जिससे नीचा देखना पड़ा। समाज में उसकी ब्र ह्मण के लिए हुई मान्यता उसके पुरोहित के हक में गयी थी। हम जैसे ब्राह्मण हीन रहे हों। जाति की आँखों में जातिगत अभिमान नहीं रहा। इस तरह आदमी लगा-कर दूसरे का स्वत्व खींचना आदमी का अपमान है जिससे हमको सिर उठाना पड़ा। तुमको भी कितना नीचा दिखाया जब उसने अपनी जुबान से अपनी ब्राह्मणी लगाकर कहा, हमारे घर में पूजा-दान के समय इन्हीं का मान है, तुम्हारा नहीं; तुम कौन हो कौन नहीं, हमको क्या ज्ञान ? उस मकान में रहकर बेइज्जती सिर किये रहने से बाज आये। मकान छोड़कर चले आये। यहाँ वही माजरा है। अब अगर फिर किसी कारण से हमको गाँव छोड़कर बम्बई जाना पड़ा तो हम कौन-सा मुँह लेकर जायेंगे।"

माता ने सुन लिया। देखते-देखते उनके हृदय की सिंहनी जैसे ऊपर को छलाँग मारी, उनका सिर तमाम आदमियों के ऊपर उठ गया। बड़े ही स्नेह तथा गम्भीरता के स्वर से उन्होंने कहा, "बेटा, मुझको विश्वास है कि तू मेरे दूध की लाज रखेगा और इन कामों की तह तक पहुँचकर इनकी जंजीर तोड़ने के काम आयेगा। अभी तो कच्चा बच्चा है। इन तमाम लांछनों को चुपचाप सिर उठाये हुए तैयार होता कि एक वक्त तू इनकी जड़ें काटे। दूसरा कोई चारा नहीं। हम एक मुद्दत से यह कसाले झेल रहे हैं। माँ से बेटे को बरासत में जो बातें मिलती हैं, वे हमारे कौम की गर्दन झुका देनेवाली हैं। मुसलमानी जमाने से जो अपमान होते आये हैं, बेटे, तू अभी बच्चा है, मुझसे कहने-लायक नहीं, सिर्फ तैयार होता जा कि माँ के सपूत का जवाब दे—वे बातें दुधारी तलवार हैं, मत समझ कि तेरी माँ, तेरी बहन एक धर्म के रिश्ता के सिवा और कुछ रखती हैं। मजबूरी के सिवा मरदों के हाथों उनके और भी जो अपमान होते हैं वे सैकड़ों बिच्छुओं के डंक मारने से ज्यादा जलनेवाले और जहरीले हैं। मरदों की आँख के नीचे उनके अपमान हुए हैं और मरदों के हाथ-पैर नहीं चले। हम पीढ़ियाँ लिख रखते हैं। हमारी माँ का कहना था सौ पीढ़ियाँ बीत चुकी हैं; यह तैंतालीसवीं पीढ़ी के बाद। हम उसको भगवान को अर्पण कर देते हैं और बाकी पीढ़ियाँ चलती हुई बाँधे रहती हैं। यही कामना दिन-रात रहती है कि नारियों का अपमान है, हे भगवान्, बदला चुकाओ। सिर्फ बदले की आग धधकती है।"

मनोहर चुपचाप सुनता रहा। कहा, "माँ मैं, तुम्हारा योग्य-पुत्र होने की कोशिश करूँगा।"

कहकर वह उठ खड़ा हुआ और बाहर चला गया।

तीन

गाँव में चारों तरफ हरियाली-ही-हरियाली है। अरहर और ज्वार के पेड़ इतने बड़े हो गये हैं कि उनसे तमाम खेत हरे-भरे नजर आते हैं। धान भी दूसरों की हरियाली से होड़ कर रहे हैं। सन की तो बात ही नहीं। पौधे मुट्ठी-भर रोज बढ़ते हैं। सबसे ज्यादा ऊँचे वही दिख रहे हैं। बागों में घास भी घुटना छूने लगी है। गाँव के लड़कों की डोर फूट के खेतों में लगी है, जिनकी ककड़ियाँ उतरकर आने लगी हैं। क्षण-भर में चारा-पानी हो जाता है। सींचने की कहीं चिन्ता नहीं। मकान छाये-छोपे जा चुके हैं। किसान आराम की साँस ले रहे हैं। बड़े-बडे आदमियों की चौपालों में दो-दो, चार-चार, छः-छः आदमी बैठते हैं। बाजरे की खेती कौन-कौन करेंगे इसकी बातचीत हो रही है। जमींदार का मकान चापलूसी का अड्डा है। मनराखन खासे अच्छे पलँग पर कालीन बिछाये बैठा हुआ है, सटक पी रहा है। कुछ फासले पर साधारण-सी नंगी चारपाई पर सिपाही बैठा है, सरहाने के सहारे लट्ठ रखे हुए। कुछ किसान जो साधारण जातियों के हैं, चौपाल के चबूतरे पर छप्पर के नीचे उकड़ूँ बैठे हुए हैं। आशा है, मालिक पी चुकें तो वे लोग भी चिलम पियें। चापलूसी में एक-दूसरे से तेज पड़ रहे हैं। बड़े मालिक बैठके में आराम कर रहे हैं। मनोहर दरवाजे की नीम की छाँह से गुजरता हुआ चौपाल पहुँचा। जिस चारपाई पर सिपाही बैठा था उस पर बैठने को हुआ। जमींदार का सिपाही सरहाने की तरफ सरक गया। बैठने के साथ मनोहर का कलेजा भी जैसे बैठ गया। मनराखन ने उसको सिर्फ ऊँचे से जैसे एक दफे देख लिया और धीरे-से सटक गुड़गुड़ा दी। सिपाही को हिम्मत हुई वह सरहाने की तरफ सरक गया, मुस्कराया और मनोहर को देखकर कहा, आओ बैठो। रोज-रोज का अभिवादन गाँव के जमींदारी प्रकरण में नहीं भी रहता।

मनोहर ने देखा, हिम्मत बँधकर भी ढीली पड़ जाती है। ऐसा बंधान है जो उखाड़ा नहीं उखड़ता। आज इतनी ही देर के आवेश में उसकी निगाह में वह ताकत आ गयी है जो हर एक की सूरत का जिन देख लेती है और समझ जाती है कि यह आदमी जान-बूझकर कमजोरी का शिकार बना हुआ। यह उस समय की बात है जब देश में राजनीतिक संस्थाएँ प्रवल नहीं थीं। सरकार के यहाँ रियाया की तरफ से जवाब देनेवाले जमींदार ही थे।

सिपाही ने मुस्कराकर पूछा, "आज दुपहर-दुपहर कैसे आये! ऐसे वक्त, गाँव में कभी तुम्हारी चिड़िया भी नहीं दिखी।"

मनोहर ने कहा, "पाठशाला नहीं गये। मनराखन से कुछ काम है।" सिपाही ने रोक लिया, "काम की बात करते हो तो हमसे पूछो। हम इनके पिता से करेंगे! खेल-कूदवाली बात हो तो इनसे करो। पहलवानी यह करते नहीं, जरूरत पड़ेगी तो हाँ, दो-चार पहलवान ला देंगे। यह इनका पानी चढ़ा रहने के सिवा उतर न जायगा।"

कहकर सिपाही हाथ में अपनी लाठी उठाकर उसकी बँधी राखी खोलने लगा

कि फिर सुधारकर बाँध दें।

लागन बोल मनोहर को चुभा। उसने कहा, "विजयसिंह, हम तुम्हारे पास नहीं आये और चारपाई में पाँयते ही बैठे हैं और अभी तक वह जमाना नहीं आया कि हम लोगों से तुम हाथ बाँधे हुए न पेश आओ।"

विजयसिंह भी नौजवान है। तन्दुरुस्ती वैसी अच्छी नहीं। जमींदार का सिपाही, लत लुच्चई की पड़ी हुई। जवानी में जैसे चूसा आम हो। मनोहर की तन्दुरुस्ती से खार खाता था। आज मौके पर पाकर बुखार उतारा। मनराखन अमीरजादे की तरह सटक पीता हुआ कृपा की दृष्टि से रह-रहकर मनोहर को देख लेता था।

पहले जो हिम्मत पस्त हुई थी बगावत में बदल गयी, मगर सँभालकर उसने सिपाही से लाठी ले ली। ढीली पकड़ी लाठी विजय के हाथ से निकल गयी। उसको अपने क्रोध के कारण डर हुआ। साथ ही चीख निकली, "अरे अपमान कर डाला!"

इन्द्रमन लोध उन बैठे आदमियों में था। बिना कहे उससे नहीं रहा गया। उसने कहा, "मालिक, तुम तो हवा से बिगड़ते हो!" इन्द्रमन को जलन थी। सिपाही ने उसकी बहन की अस्मत बिगाड़ी थी। रोटी पड़ने के डर से उसने किसी से कहा नहीं। जहर के घूँट पीकर रह गया। आज एक मौका हाथ आया।

विजयसिंह इसको ताड़े बिना न रहा। मगर तरह देकर बात बनायी। कहा, "सावन का अन्धा हो रहा है? हरियाली झूमती है! लाठी जमींदार की, यह देख, हाथ खाली है," कहकर अपने हाथ दिखाये और हुक्म दिया, "झपटकर छीन लाठी।"

इन्द्रमन की कुल नसें ढीली पड़ गयीं। दूसरी सवारी गठी देखी। मनोहर से कहा, "रखिए महाराज, लाठी उधर, जिनकी है। इनके लिए, जब यह अपने आये हैं, एक लौंडा काफी है, तुम्हारी इनकी हाथी और मेढ़े की जोड़ है।"

मनोहर लाठी लिये ही रहा। मनराखन इन्द्रमन की बात पर जगे। आँखें तरेरकर कहा, "तुम्हारे लिए ठाकुर ही हैं, कायदे के खिलाफ कैसे बोलते हो?"

इन्द्रमन ने कहा, "और जो यह पाँयते बैठे हुए हैं, यह कौन हैं। इनको तो विजयसिंह ने बेबात-की-बात में ले-दे डाला।" मनराखन उठकर खड़े हो गये। कहा, "सूद बिना जूतों के सीधा न होगा।" कहकर ताव में आकर लतखोरे तक लपककर जो जूता उठाया वह इन्द्रमन ही का था।

इन्द्रमन ने कहा, "मालिक, ए, राम के हाथ ऐसा फैसला है। यह जूता हमारा है।"

मनोहर उठकर खड़ा हो गया। मनराखन से कहा, "चलाओगे तो पहले हमीं को लगेगा, इसको डाल दो।"

मनराखन ने जूता डाल दिया।

मनोहर ने कहा, "यह लो अपनी लाठी।" मनराखन ने लाठी ले ली। मनोहर कहता गया, "गाँव के जमींदार का राज आप लोगों के यहाँ रहा। बाहर का हमारे रिश्तेदारों के यहाँ। उस रोज की बाजारवाली बात न भूलो। तुम्हारी अगर वहाँ

तक बिसात हो तो अपनी कर गुजरना। हमारा वहाँ का हिसाब यहाँ के जमींदार के साथ नहीं रहा।"

उस वीर के सामने मनराखन की हिम्मत पस्त हो गयी। जैसे किसी ने नजर बाँध दी। मनोहर उतरकर सीधे घर चला।

"बड़ा बुरा रवैया है भैया, ठहर जाओ, हम लोग भी चलते हैं," कहते हुए किसान भी अपने-अपने जूते पहनकर चौपाल छोड़कर चल दिये। क्षण-भर में जैसे समाँ बदल गया। मनराखन और विजयसिंह के मुँह पर मक्खियों ने कई चक्कर मारे।

चार

मनोहर की नसों में तनाव आ गया था, परन्तु भगवान के भीतरवाले कमरे में बैठ अपने को शान्त कर लिया, और समय से पहले तीसरे पहर के ढलते-ढलते अपना लँगोटा-जाँघियाँ लेकर अपनी फूफी के घर के लिए रवाना हो गया। कुछ गर्मी आँख में थी, वह उसके चरित्र और स्वास्थ्य के कारण भी, वह सिर दबाये हुए भरसक निगाह नीचे से निकाल रहा था। चलते हुए भीटों को बायें छोड़ा। नाला मिला जिसका पानी बह चुका था। उससे निकल लोमड़ी दूसरी झाड़ी की ओर भगी जाती दिखी। देखा, गर्मी के हरे-भरे जवासों के पौधे पानी के पड़ने पर झुलस चुके थे। उनके बीच से हरी घास ने सिर उठाया था। कुछ आगे बढ़ा, तो कमर तक बढ़ी भंजूर से एक चौगड़ा लोमड़ी के घुसते ही निकलकर भागा और कूदता हुआ बगल की दूसरी झाड़ी में जा छिपा। मनोहर कदम बढ़ाता गया। कुछ आगे उसके फूफा का एक बाग मिला। उस गाँव में उनके दो-ढाई सौ बीघे बागात हैं। यह बाग भरा है। फिर भी रीएँ और बबूल के पेड़ अधिक हैं। गाँव की जमींदार से हर-तीसरे साल हजारों के खदरी पेड़ उसके फूफा जमींदार साहब बेचते हैं, जिनमें सौ पचास रुपये के किसानों के भी पेड़ पड़ जाते हैं। गाँव के किनारे का पक्का ताल और संकटेश्वर महादेव का शिवाला मिला। यह भी उसके फूफा लोगों की कृतियाँ हैं।

आगे गाँव आया। गलियारे से होते हुए मनोहर अपने फूफा की हवेली की तरफ चला। पहले ही रामसिंह के मुहल्लेवाली राह छोड़ दी थी। घर पहुँचकर फूफी, फूफा, फूफा के भाई और उनकी स्त्री आदि गुरुजनों के पैर छुए। फिर दरवाजे की बड़ी चौपाल में आकर चारपाई डालकर बैठा। उसके फूफा के छोटे भाई राम-शंकर हैं। गाँव का कुल हाल इसने उनसे कहा। राज चला देने के इरादे से वह उस को लेकर एक काछी के यहाँ गये जो उनका किसान है। रामशंकरजी ने मनोहर से कहा, "यहाँ जितने हमारे किसान हैं, सब हमीं-हम हैं। तुम यही समझो, यही

तुम्हारे रिश्तेदार और जमींदार हैं।"

मनोहर पीता गया।

रामशंकर ने आवाज दी। काछिन बैलों को सानी दे रही थी, हाथ में खली और भूसा लपेटे बाहर निकल आयी।

रामशंकरजी ने उसके गुप्त अंग की ओर उँगली उठाकर कहा, "यह तुम्हारी फूफी हैं और जमींदारिन, इनके सरपरस्त हैं सरकार, कहो हाँ।"

मनोहर ने कहा, "हाँ।" मगर सिमिटकर रह गया।

रामशंकरजी ने दूसरा दृश्य जो उनका असली है, दिखाया। कहा, "काछिन भउजी, वही आज फिर दे जाओ। यह तुम्हारे भतीजे हैं, इनका कुछ आदर-स्वागत करना है।"

काछिन ने कहा, "ऐ, अभी तो बतियाँ हैं। जब बढ़ेंगी तब देंगी। करेले की बेल तो उजाड़ दी गयी। पहले की लगायी थी। कुछ मिर्चें होंगे और कुछ ककड़ी की बतियाँ। कोंहड़ा भी अब नहीं रहा, और इस साल हमने कुछ लगाया नहीं।"

रामशंकर ने कहा, "मसालेदार ककड़ी की जैसी तरकारी दूसरी नहीं होती, वही दे जाना।"

मनोहर ने देखा, यह इनका असली रूप है। कुछ कहा नहीं, पीछे लगा उनके साथ चला गया। रास्ते में उन्होंने कहा, "यह राज है। अब तुम हमारे आदमी हो। रामसिंह के यहाँ खबर भेज दी जायगी। वह हाथ जोड़कर पहले पालागन करेंगे, तुम आशीर्वाद दोगे, फिर वह तुमको लड़ायेंगे। अपना उस्तादवाला राज तुम पर रखेंगे। जब लौटकर आओगे तब रामसिंह का राज हमारे राज में रहेगा। यह बर्ताव है। इसके बिना चलन नहीं चलता। जमींदार राजा है। उसका हिसाब पहले। सरकार के यहाँ उसका कहना। यह नेकमाश को बदमाश करार दे सकता है। सरकार उसकी बात मानेगी। बदमाश की निगरानी वह अपने जिम्मे ले सकता है। सरकार को उस पर विश्वास है। सरकार से समझौता उसी का होता है, इसलिए मुख्यतः तुम्हारे सिर दो हैं, सरकार और जमींदार। इसको कभी न भूलो। यह लकड़ी हाथ से गयी कि दुनिया में कहीं भी थाह न मिलेगी। अब आओ, अपना काम देखो।"

पाँच

रामसिंह बैठे थे। पक्के गोले से कस्बे को गाड़ी ले जाते हुए बरसात में और सहूलियत थी। देहात के लोग घोड़ों पर सामान लादकर आते थे, गाड़ियाँ बन्द रहती थीं। लिहाजा माल बाजार में कम पहुँचता था। रामसिंह गाड़ी ले जाते थे, माल अधिक बिकता था। आजकल लालोलाल हैं। खोये की बर्फियाँ बनवा ली हैं, जल-

पान होता है और ठण्ढाई में पच्चीस बादाम और पड़ने लगे हैं। घी आधा पाव और खाने लगे हैं। सबसे बड़ी सहूलियत यह हुई कि मनोहर-जैसा शागिद ! क्या चढ़े फिरने का घोड़ा मिला है। गाँव में कई जगह गरदन उठाकर गाल बजा चुके हैं। इसी का पानी चढ़ा है। लोग किस-किस मनोवृत्ति के होते हैं, इसका फैसला बड़े-बड़े दार्शनिक नहीं कर पाये। एक पहलू से उसकी अच्छाई साबित होती है तो दूसरे से बुराई। जिस हद तक रामसिंह को भला आदमी कह सकते हैं, उसी तक बुरा भी। गर्ज कथा है। रूह निकालना पाठक या दर्शक का काम है। आखीर तक एक हासिल होगा ही। अगर किसी गुमराह को समझ की कमी के कारण कुछ-का-कुछ सूझ जाय तो वह एक उपन्यास का ही प्रकरण होगा जैसा कि होता जा रहा है।

ठण्ढाई के चढ़ते हरे नशे में रामसिंह आँखें खोल-मूंद रहे थे कि जमींदार का सिपाही लट्ठ का बँधा गूला जमीन पर दे-मारकर रामसिंह के साधारण जमींदार को साथ लिये बोला, "देखिए ठाकुर साहब, राज जमींदार का भतीजा जमींदार का, आपकी मातहत (रामसिंह के जमींदार को इशारे से बताते हुए) आ रहा है, लड़ाइयेगा, भला-बुरा जो कहना हो, आपकी मार्फत कहियेगा। लड़का है, जैसा उनका, वैसा ही आपका। चोट न लगे, ख्याल रखिए। सलाम।"

सिपाही चला गया। रामसिंह ने फिर एक बार आँखें खोलीं और मूंदीं। उनके जमींदार ने ललकारकर पूछा, "ज्यादा चढ़ गयी क्या ?"

रामसिंह ने लापरवाही से फिर आँखें खोलीं और मूंदीं, और तख्त की एक बगल थपकी मारकर बताते हुए कहा, "आओ, बैठ जाओ।"

जमींदार यमुना प्रसाद बैठ गये। बड़े जमींदार की झेंप उतारने के लिए कहा, "ये शान हैं।"

रामसिंह ने भी झेंप उतारी। कहा, "कहो तो हम भी जवाब भेज दें।"

छोटे जमींदार के बाजी हाथ आयी। कहा, "बस हमारे दरबाजे चले चलो, बात हम यहाँ न लेंगे, नहीं, कहो; यह जमींदार की चौपाल है।"

रामसिंह की फिर घिग्घी बँधी। दबकर मंजूर कर लिया। सोचा, यहाँ से वहाँ तक चलकर व्यर्थ मिहनत करनी है। हम मानेंगे तो यह जी न छोड़ेगा।

जमकर जमींदार ने कहा, "कहो, सिपाही तो हमारे हैं नहीं, दो सौ बीघे के पट्टीदार हैं। मगर गुल खिलेगा। कुछ हमारी भी नजर ?"

रामसिंह कुछ और बैठे, यह जमींदार महाशय भी ब्राह्मण थे। रूढ़ि ऐसी कि घूम-फिरकर उसी पर आना था। सोचा, वह भी कौन, काम आये, न आये, दूर का रिश्ता, फिर भी ठाकुर हैं, पानी गहरे का आया तो देख लिया जायगा, जिले का भी राजसी ठाट हमारा ही है। बोले, "क्या हम इनके घर इनको बुलाने गये ?"

जमींदार ने कहा, "यह तो हम पूछेंगे, यह तो जमींदाराना है, अपने ढंग से चलो, जैसे रिपोर्ट कर रहे हो। यही तो बिगाड़ की बुनियाद है।"

रामसिंह ने कांखकर कहा, "अब और तो हमसे नहीं उतारा जाता।"

जमींदार ने कहा, "तुम अपनी तरफ से कैसे दूसरे आदमी को बिना जमींदार की सलाह रात के वक्त लड़ने के लिए बुला लाओगे ?"

रामसिंह ने कहा, "जब इतनी-सी बात तुम्हारी समझ में नहीं आती तब हम और क्या समझावें ? अगर इससे काम चल जाय तो अच्छी बात, नहीं तो जैसे गांव दूसरे जमींदार का राज लिया है, वैसे ही यह लो (हाथ उठाकर खाली मुट्ठी खोलते हुए), यह भी वैसा ही राज है।"

जमींदार ने कहा, "तुम किसी जमींदार का राज यों नहीं दे सकते। यह राज जितैला है। अगर ऐसा ही करना है तो उस जमींदार को बुला लाओ। तुमसे अदा करते नहीं बनता।"

रामसिंह तैश में आ गये। कहा, "अच्छा तो जाओ।"

जमींदार भी गर्म पड़ा। पूछा, "जगह किसकी है ?"

रामसिंह को जवाब देते पहाड़ जान पड़ा। खुद उठकर चलने को हुए।

जमींदार ने कहा, "हमारी बैठक ही से जा रहे हो न ?"

रामसिंह को ताव आ गया। जमीदार को पकड़कर उठा लिया, और पास ही के उनके मकान के पास लाकर चौपाल के पास पड़ी चारपाई पर डाल दिया और कहा, "अब तो हो न अपनी चारपाई पर !"

जमींदार को बहुत ही बुरा लगा कि पूछता ही जा रहा है, चड्ढी ही गाँठे हुए है। रुख फेरकर कहा, "इसका जवाब ही मिलेगा।"

रामसिंह नशे में थे ही, ठपाक से आल्हा की लड़ियाँ गाने लगे—

जिनकी माता ना हरजाई, उनकी बार-बार बलि जाय।
जिनकी माता कायर जन्मे, उनको रोते रात सिराया।
जनम हुआ है छत्री घर तो ज्वानी जूझे खेत अघाया।
जनम हुआ है कायर घर तो बैठे घर अमरौती खाय।

मनोहर समय पर जोर करने के लिए गया। उसको मालूम हुआ, अखाड़ा नहीं लगेगा। वह लौट आया। मन्दिर के चबूतरे पर कसरत करके दूध पीकर आराम करने लगा। दस-ग्यारह बजे बियारी के वक्त तक जमींदार से बातचीत होती रही। उसकी जबानी यह मालूम करके कि अखाड़ा नहीं लगा, जमींदार चौंके। उनको यह हाल मिल चुका था कि बाजार में मनराखन की मार्फत मनोहर की रामसिंह से भेंट हुई थी। उन्होंने कमर से पच्चीस रुपये निकालकर मनोहर को दिये और कहा, "सवेरे रेल से तुम अपने बाप के पास चले जाओ, मकान में हम खबर भिजवा देंगे, देख-रेख किये रहेंगे, यह मामला तूल पकड़ेगा।" मनोहर ने मंजूर कर लिया। कहा, "किसी कारण मेरी कहीं की गैरहाजिरी किसी को खटके तो भी आप समझा दीजियेगा, कोई चिन्ता न करें, मैं अम्मा की बात भी पूरी करने के प्रयत्न में हूँ।"

जमींदार ने इसका सम्बन्ध भी अपने अनुकूल लगाया।

छह

रामसिंह के पास कोई आदमी न था। वह मील-भर के फासले के गाँव राजपुर पैदल चले गये। आल्हे की कड़ी खत्म होने के बाद उनका जी डरा कि कहीं नीचा न देख जाना पड़े। घर में कह गये थे कि अखाड़ा नहीं लगेगा।

गाँव में पूछने पर मालूम हुआ, मनराखन तीतर को दीमक चुगवा रहे हैं। पूछते-पूछते वह बागों के उस पारवाले किनारे की बाड़ियों में मिलते हुए दीमक के ठिकाने पर गये। मनराखन से बातचीत हुई। जमींदार की आदत जैसी, मनराखन बंदगी-सलाम के बाद खामोश रहा। रामसिंह ने ठकुराई चाल से प्रश्न किया, "कहो, मनोहर के क्या हाल हैं?"

मनराखन ने खानदानी मित्रता के नाते जवाब दिया, "वह तो गुण्डा जान पड़ता है।"

रामसिंह—"हमको कुछ खास बातें मनोहर की बतला दो।"

मनराखन—"उस्ताद, हमारा ऐसे ही आदमियों से काम रहता है। टेढ़ी लकड़ी ही हम सीधा किया करते हैं। राज हम और कुछ नहीं देते। क्योंकि गाँव के भलेमानुस हैं, टेढ़े पड़े, घुमाये-फिराये गये, फिर सीधे हो गये। जमींदार की यह रोज की कवायद है।"

रामसिंह—"हम इसलिए भी आये थे कि तुम्हारा राज है, तो चले चलो, बुला लो, अभी गया न होगा, हम तुमको तुम्हारा राज दे दें। फिर किसी दूसरे जरिये हमारे यहाँ आवेंगे तो यह सबूत काफी है कि तुम्हारी मार्फत वह आये थे।"

मनराखन ने समझने की कोशिश की, क्योंकि दुपहर में मनोहर ने उससे कहा था, 'गाँव के बाहर का राज हमारे रिश्तेदारों का है।' रामसिंह के आने का कारण भी उसकी समझ में आ गया कि वहाँ के जमींदारों में खटपट हो गयी है। वह खामोश रहा। रामसिंह को उससे कुछ झिझक हुई। कहा, "व्यवहार वह जो न छूटे। दाँव वह जो वक्त पर काम दे। इतने दिनों से हम उसको लड़ा रहे हैं इसके लिए भरोसा तुम्हारा था।"

मनराखन—"चलो, सिपाही भेजकर बुलवा लेते हैं, और कह देते हैं कि तुमको इनके यहाँ लड़ने के लिए जाना है तो इनकी मर्जी के मुआफिक ही रहना होगा, नहीं तो अपना रास्ता नापो।"

मेंड़ के किनारे उकड़ूँ बैठे तीतर चराते हुए मनराखन ने पिंजड़े में तीतर को ले लिया और झूमता हुआ गाँव को चला, साथ में रामसिंह।

मनराखन के दरवाजे, बैठक जमी। अभी सूरज डूबा न था। सिपाही को हेचखाया समझकर मनराखन ने एक किसान को बुला लाने के लिए भेजा। तब तक व्यवहार की इधर-उधर की बातें होती रहीं जो कोरी बातें हैं। किसान ने लौटकर खबर दी, मनोहर घर में नहीं है।

रामसिंह चलने को हुए। कहा, "जमींदार का मामला है, भाई पीठ बचाये रहना। हमारी पीठ लगी तो तुम्हारी भी लगी।"

मनराखन ने बढ़ावा देकर कहा, "इस मामले में उस्ताद को छूनेवाला कोई नहीं। कोई ऊँची-नीची बात गुजरी तो साले को बँधवाकर भिजवा दूँगा, खातिर जमा रहे।"

रामसिंह को प्रबोध हुआ। कहा, "अब सूर्य अस्त होने को है, चलना चाहिए। बड़ा बुरा हाल हो रहा है, और इसी बात को लेकर। बैठे-ठाले एक बला गले लगी।"

मनराखन ने फिर ढाढ़स बँधाया, "एक चड्ढी गँठवाते हैं बहुत जल्द। जब उन्होंने हमारा राज नहीं माना, तो हमारा अपमान कर चुके। यह है कि अब आगे से होशियार रहना चाहिए कि इस आदमी की पैठ न हो।"

मेहमानदारी बढ़ाने की गरज से मनराखन ने एक पासी को बुलाया और गाँव के किनारे तक छोड़ आने की आज्ञा दी। रामसिंह ने इसको राजसी सम्मान समझा। उनको यह न मालूम था कि यह पासी बदमाश है। सीना ताने चले चले।

ठण्ढाई छानकर यमुना दो-तीन और आदमियों के साथ उसी सीधे जंगल में गये। निवट चुके थे कि रामसिंह को बागों के भीतर से एक आदमी के साथ आते हुए देखा। पड़ोस के गाँव का पासी वहीं खड़ा हो गया। रामसिंह से दबंग गले से कहा, "अब चले जाओ ठाकुर।" लोगों ने यह भी सुना। रामसिंह अपने रास्ते चले गये। घर पहुँचकर दरवाजा बन्द कर लिया और लड़कों को समझा दिया कि कोई आवे तो कह दें कि अखाड़ा न लगेगा।

सात

मनोहर से मिलकर बातचीत करने से पहले जमींदार रामराखन का एक और निश्चय हुआ, जब चौपाल में वह बैठे थे, दिया-बत्ती को घण्टे-भर हो चुका था, यमुनाप्रसाद आये, कहा, "पहलवान ने जमींदार को मानते हुए भी नहीं माना, खास तौर से आपके बारे में।" रामराखन ने कहा, "हम-तुम एक ही हैं।" यमुनाप्रसाद ने जवाब दिया, "हम अकेले पड़ते हैं और गाँव के मामले में तुमको बड़ा मानते ही हैं, और तुम्हारी मदद भी हमको दरकार होगी। तुम बात दो तो कुछ खा-पी लिया जाय, और इस सिर चढ़े को जमीन भी दिखा दी जाय मगर अकेले हैं।"

रामराखन ने आहिस्ते-से पूछा, "वह पेंच भी बता दो जिस पर चढ़ा है।"

यमुनाप्रसाद ने कहा, "जब तुम्हारी पुकार होगी, तुम खुद कुल समाचार सुन लोगे।"

यमुनाप्रसाद ने फिर बड़े जमींदार को समझाते हुए कहा, "भाई देखो, आये तुम हो, हमारा आदमी अब भी हमारा आदमी है। वह तुम्हारा आदमी है, लेकिन

इस मामले में तुमसे कट चुका है। उसके खिलाफ कोई कार्रवाई करो तो हमसे जरूर पूछ लो। साथ तभी पूरा। नहीं, तो दाँव खाली जायगा। गाँव के और दस आदमियों का दबाव होगा, तुम कुछ कहोगे, हम कुछ कहेंगे।"

यमुनाप्रसाद ने फिर दबकर कहा, "हमारी कोई शान जमींदारवाली न रही ?"

रामराखन ने ढाढ़स बँधाते हुए कहा, "जो हाल तुम्हारा है, वही हमारा भी। जिले के दूसरे बड़े ज़मींदार के सामने हमारी भी कोई हकीकत नहीं गोकि हमारे सीधे तअल्लुक हैं। ऐसी बात पड़ी तो वह हमसे बातें लेगा। जमींदारी के मामले में सवालों का जवाब देने के लिए जब जिले से दो ही एक आदमी खडे होंगे तब कई मानों में हम नहीं आ सकते। लिहाजा बात हमसे कर लो तो बल न पड़ेगा, बल्कि बल बढ़ेगा।"

यमुनाप्रसाद ने कहा, "आज मार्के का गठना गठा है। हम देवीप्रसाद और शिवकुमार जंगल गये थे, उस वक्त पहलवान राजपुर के बदमाश बहादुर के साथ चले आ रहे थे। हमसे बातचीत होने के बाद ही जान पड़ता है वह राजपुर गये थे। वहाँ के जमींदारों से कुछ भला-बुरा कहा होगा। उनका बदमाश पासी साथ लेकर आये। दोनों साथियों ने पासी को देखा है। इतने से कोई मामला गाँठ दिया जायगा तो गठ जायगा।"

रामराखन की लार टपकी। कहा, "इधर दो-चार हजार इकट्ठे कर लिये होंगे। चलता है तो जैसे धरती धमकती है।"

यमुनाप्रसाद ने कहा, "हाँ, पाँचों घी में हैं। आजकल दूनी खुराक है। कड़खे ही बोलता है।"

रामराखन ने कहा, "तो मौका न चूकना चाहिए। तुम्हारा कोई आदमी भी है ?"

यमुनाप्रसाद ने कहा, "शिवकुमार को तैयार कर लिया जाय, इसने देखा भी है, मुद्दई हो जाय। हम दोनों गवाही में रहेंगे। एक गवाह को वह जानता है। एक तैयार कर लिया जा सकता है अगर हम गवाही न देना चाहेंगे।"

रामराखन ने कहा, "शिवकुमार कमजोर है। वादी कुछ मालदार होना चाहिए। अच्छा सुनो, तुम्हारे हलक़े में मिश्रजी रहते हैं। हमारे मान्य हैं और लक्ष्मी की कृपा भी है। तुम चले जाओ, उनको बुला लाओ। तब तक हम मनोहर को समझा लेंगे, क्योंकि पेशबन्दी जरूरी है।"

यमुनाप्रसाद माधव मिश्र को बुलाने के लिए गये। रामराखन मकान के अन्दर अपने घर में गये और चबूतरे पर कसरत करते हुए मनोहर को बुला भेजा। पिछले अंक में लिखी हुई बातें मनोहर से करके अपने पलँग पर आ गये। आधे घण्टे के अन्दर यमुनाप्रसाद मिश्रजी को लेकर जमींदार साहब कमरे में दाखिल हुए। इन तीनों के सिवा वहाँ और कोई न था।

रामराखन ने आदर से मिश्रजी को बैठाया। सम्मान से उभरते हुए भी, जमींदार-श्रेणी को मिश्रजी काल जैसा देखते हैं। दुनियावी कामकाज में उनकी मान्यता काम नहीं करती और अगर जमींदार के इशारे पर न चलें तो गाँव में

महीने-भर भी गुजर न हो, ताजीरात हिन्द के किसी दफे के शिकार हों और जेल की हवा खायें। कई दफे इसी मान्यता के कारण जाते-जाते बचे। ऊँचे दर्जे के ब्राह्मणत्व का ख्याल नहीं किया। किसी भी मामले में नहीं लड़ता। उसका हकदार मिश्र घराना भगवान तो क्या शैतान के सामने भी झूठ नहीं कह सकता, यह भावना उठ गयी है, जैसे एक गाड़ी लीक-लीक चली जा रही हो, यह हाल है। मरजाद के कारण उनको कोई फायदा नहीं पहुँचता। जमींदार दबाने के काम में उनसे हर तरह की मदद लिया करते हैं। बुलावे के साथ उनके होश हिरन हो गये, मगर चीं-चिपड़ न की। रामराखन के नाम से कुछ हिम्मत हुई; साथ चले आये।

रामराखन पहले यमुनाप्रसाद को एकान्त में ले गये। कहा, "आधी रात लोगों की आँख बचाकर अपनी सीढ़ी इनको दे देना, बाहर दीवार में लगी छोड़ देंगे और तीन-चार बजे के करीब चोरों का हल्ला मचा देंगे।"

लौटकर उन्होंने मिश्रजी से कहा, "मिश्रजी, जमींदार के कार्य ही टेढ़े हैं। लेकिन मण्डप के नीचे थानेदार और डिप्टी क्या, कमिश्नर के बाप भी पैर नहीं रख सकते और यह मान नहीं पा सकते जो आपको मिलता है। आप खातिर जमा रखिए। जमींदार का साथ करनेवाला, जमींदार का आदमी, सरकार के खास आदमियों में है; उसका बाल-बाँका भी नहीं हो सकता; कहने के मुआफिक पाँच सौ कम-से-कम बताइयेगा, बल्कि और ज्यादा। सन्दूक के ताले-वाले तोड़ रखियेगा।"

मिश्रजी अनुभवी आदमी, मुस्कराये। पूछा, "किसी की शक्ल का बयान तो नहीं देना?"

रामराखन हँसे। कहा, "मिश्रजी जमींदार पर भी एक हाथ रखते हैं।"

स्नेह से कहा, "जाँघें दोनों अपनी हैं; यह उघर गयी तो लाज गयी, वह उघर गयी तो भी लाज गयी। आप तो जानते हैं बदमाश फँसाना और उसकी निगरानी रखना हमारा काम है; लिहाजा कहिएगा कि हट्टा-कट्टा आदमी था। कुछ और भी थे। अँधेरा पाख है; कुछ साफ नहीं दिखा।"

आठ

लौटते-लौटते माधव मिश्र ने अन्दाजा लगा लिया कि इशारा किसकी तरफ हो सकता है। यमुनाप्रसाद ने बनावटी स्वरों को सहज बनाकर कहा, "सरकार का काम सरकार ही जाने।"

माधव मिश्र मन मसोसकर रह गये। जानते थे कि गाँव के चौकीदार सधे हैं, इन्हीं के जोतदार हैं। सिपाही, थानेदार भी इनके दरवाजे उतरते हैं।

जब घर के पास आये, यमुनाप्रसाद ने कहा, "रात बारह बजे आकर हमारी सीढ़ी उठा ले जाना, हम इसी जगह डाल देंगे। कह देंगे कि घर चू रहा था, मिट्टी लगाने के लिए सीढ़ी निकाली थी। दिन-भर मिट्टी दबायी गयी थी। तुम यह न कहना कि सीढ़ी तुम ले गये हो। सिर्फ शोर मचाना।"

कहकर राम-राम करने लगे और दुबककर घर घुसते हुए भक्तिपूर्वक सुना गये, सरकार का काम सरकार ही जाने। मिश्रजी भलमनसाहत के कारण मंजूर करते हुए दुबककर सोलह आने में एक आने रह गये। अपना जी लिये हुए घर गये और औरतों को समझाया, "कहीं दीवार न सुन ले, सरकारी काम है, पिछली रात चिल्लाना है। आधी रात को हम बाहर जायेंगे और लौट आयेंगे। नहीं तो मरजाद न रहेगी। और बहुत कुछ करना होगा; लो, समझाये देते हैं।"

एक कोठरी का ताला खोल दिया। बक्सों के ताले तोड़ डाले। भीतर का सामान उठाकर दूसरी जगह हिफाजत से रख दिया।

लौटकर औरतों से कहा, "ए बातें हैं। नहीं तो मरजाद न रहेगी। कैद भुगतना होगा, और भी बेइज्जती हो वह थोड़ी।"

घर में त्रास का वातावरण फैला। सिसकते हुए भी सबके मुँह बँधे रहे। इस परिवार में रोटियाँ शाम को ही खा ली जाती हैं, जिससे चिराग का तेल बचे। साधारण मजे में हैं। प्रतिष्ठा झूठी पड़ जाने पर भी बचाये रहने की सूरत में रहते हैं।

लड़के सो चुके थे। औरतें मसान-सी जगती रहीं। दस बजा, ग्यारह बजा, बारह बजा।

माधव मिश्र दबे-पैर उठे और आवाज न हो, आहट न मिले, ऐसी सावधानी से दरवाजा खोला और बाहर निकले। जमींदार की दीवार की बगल रखी हुई सीढ़ी उठा ली और उसी कोठरी के सीधे पिछवाड़े लगा दी। फिर वैसे ही दबे पैर लौटकर लेटे। सारी रात साँसत में पार हुई। चार बजे के करीब जोर का रोना-पीटना शुरू हुआ। पड़ोसियों ने सुना मगर चुपकी साध ली। सबेरा न हुआ था इसलिए उन्होंने निकलना नामुनासिब समझा, डरे कि चोरों में शुमार होगी।

धीरे-धीरे पौ फटी। लोग जंगल को निकले। ढोर छुटे। रास्ते पर इक्के-दुक्के आदमी का निकलना जारी हुआ। माधव मिश्र सिर लटकाकर दरवाजे आ बैठे। भीतर रह-रहकर चीख लगती रही। बाहर के लोगों को अभी तक अच्छी तरह न मालूम हुआ था कि मामला क्या है। माधव मिश्र जाहिरा तौर से कहते न थे सिवा सिर पीटने के और यह कहने के कि हाय रे, लुट गये, करमदण्ड है, मरजाद धूल में मिल गयी, गाँव छोड़कर कहाँ जायें, हे भगवान्, बुरे का सत्यानाश कर, कहाँ सोया है, कन्हैया, गौ-ब्राह्मण बेकसूर सताये जाते हैं, कंस का राज बढ़ा है, हे राम, फिर राक्षस छा गये, डूब रहे हैं भगवान् इस भवसागर में, उबारो, आदि-आदि।

इससे किसी की समझ में कुछ न आया सिवा इसके कि माधव मिश्र बहुत दुखी हो रहे हैं। भेद खुलेगा, इस डर से लोग मुँह छिपाये इधर-उधर घूमते रहे। औरतों में कानाफूसी होती रही। आदमी मक्कार है, यह सब लोग जानते हैं, गाँव में यह खबर फैल गयी कि माधव मिश्र के यहाँ कुछ हुआ है।

सूरज निकलने को हुआ, माधव जमींदार यमुनाप्रसाद के मकान चले । खबर ले जानेवाले वहाँ दो-एक आदमी और थे । जमींदार ने माधव को देखते ही पूछा, "क्या माजरा है, मिश्रजी ?"

माधव मिश्र ने कहा, "मालिक । कहीं के न रहे ।"

जमींदार ने लोगों से कहा, "भाई, बड़े आदमी का मामला है, इसको देखना-भालना है । हाल मालूम हो जाने पर आप लोगों से राज खोलें ।"

यह कहकर तुरन्त बढ़े और रास्ते पर ही माधव मिश्र को लिया । और 'आओ, आओ,' कहते हुए मकान की ओर न आकर गलियारे की ओर बढ़े ।

लोग चौकन्ने थे कि न-जाने कौन-सा पहाड़ टूटे, आपस में बन लेंगे तब बना-कर कहेंगे ।

चौपाल की चारपाई से लोग-बाग उठकर अपने घरों की ओर चले । यमुना-प्रसाद माधव मिश्र को लिये हुए गलियारे-गलियारे रामराखन के मकान आये ।

रात-भर पं. रामराखन को नींद नहीं आयी, कुकुर-निंदिया की तरह दो-एक झपकियाँ लीं, बाकी सारी रात इसको फाँसने और उसको खोलने में बीती ।

धनी वर्ग की आमदनी का उपाय देहात में यही है । कौन परदेशी है, कितना कमा लाया, कौन किसान आलू या गन्ने की खेती से दो-चार सौ रुपये जोड़ चुका, कौन दूकानदार अपने व्यवसाय में फायदा उठा रहा है, ये लोग पूरी जानकारी रखते हैं । उनके घरों के जवान बेटी, बेटों, पतोहू और दामादों को फँसाकर रिश्वत ले-लिवाकर, या मुकदमे लड़वाकर या गवाहियाँ दिलवाकर अपनी जेब भरते हैं ।

रामराखन दातौन-कुल्ला कर चुके थे । दरवाजे पर पानी सोखने का दाग बना था । यमुनाप्रसाद और माधव मिश्र को सामने की दूसरी चारपाई पर बैठाला । यमुनाप्रसाद ने कहा, "काम हो गया ।"

नौ

मनोहर को रात तीन बजे रामराखन ने जगा दिया । समझा दिया, गाँव के स्टेशन पर न चढ़कर अगले स्टेशन पर चढ़े । चार कोस के फासले पर है । सबेरे पहुँच जायगा । आठ बजे गाड़ी वहाँ पहुँचती है, उसी से रवाना हो जाय और छः महीने तक कम-से-कम गाँव में मुँह न दिखाये ।

मनोहर आग-बबूला था ही । उठकर मुस्तैदी से चल दिया । सरायन के किनारे से कच्ची सड़क गयी है, उसी को पकड़े हुए चला । बरसात में उसकी हालत अच्छी न थी. जगह-जगह गड्ढे पानी से भरे थे, मगर रास्ता चलनेवाले के लिए राह निकल आती है । मनोहर पैर बढ़ाता गया । पौ फटते-फटते आधा रास्ता तै कर डाला ।

उसको मालूम था, इस प्रान्त में बड़े जंगली जानवर का डर नहीं, फिर भी भेड़िये कहीं-कहीं बरसाती नदी और नालों के किनारे माँदों में रहते हैं। एक डण्डा लिये सजग राही, क़िस्मत का मारा हुआ चबता गया। कसरती जवान के लिए चार कोस का फासला कोई दूर नहीं। ऐसे बदजातों से रिश्ता छूटा, इसकी खुशी भी उमड़ पड़ती थी।

उसको पछाँहवाली गाड़ी से जाना था बम्बई के लिए। वह गाड़ी तीन घण्टे पूरबवाली गाड़ी के बाद आती थी। पूरबवाली का समय उसके स्टेशन पहुँचते हो गया। उसने देखा, सुबह की सुर्खी के साथ छोटे-से सुर्ख स्टेशन के मुसाफिरखाने में पूरब जानेवालों की भीड़ लगी है। वहीं तीन-चार खोंचेवाले भी बैठे हैं, किसी के पान और बीड़ी, किसी के पेड़े और बर्फी, किसी के तेल के सेव और चने भुने हुए लगे हैं। बाहर स्टेशन की तरफ नीले फूल की लता चढ़ायी हुई सारे स्टेशन की दीवार पर छतर रही है। कई कुत्ते परम परिचितों की तरह बैठे देख रहे हैं। सामने फैला हुआ ऊसर ! दूर तक निगाह चली जाती है। बीच में ऊसर का छोटा मगर पुराना बरगद का पेड़ देख पड़ता है, जिसके एक बगल एक बारहदरी है और दूसरी बगल एक पक्का कुआँ, सामने तालाब। आते हुए यात्रियों का ताँता और गाड़ियाँ देख पड़ती हैं।

घण्टी हुई। सिगनल गिरा। टिकटवाला दरवाजा खुला। टिकट लेनेवाले मुसाफिर एक-दूसरे पर चढ़ गये। मनोहर खड़ा देखता रहा। उसको पछाँह जाना है। कुछ देर बाद मंसूबा पलटा। बम्बई के कारनामे याद आये। जलालत से नसों में खून दौड़ने लगा। सोचा, क्या बम्बई में मुँह दिखाये, बाप की आँख का काँटा हो या धनिकों के जाल में फँसे ?

इरादा पलटा। खून की तेजी धीमी नहीं पड़ी। अपने आप पैर उठे। यात्रियों के पीछे एक तरफ खड़ा हो गया। वे टिकट लेकर बाहर निकले। एक ने टिकट दिखाकर कहा, "नम्बरदार, देखो तो, टिकट कहाँ का है।" मनोहर के जले पर नमक पड़ा। मगर उसने यह न कहा कि वह नम्बरदार नहीं, न यही कि वह टिकट न देखेगा। नम्बरदार के लिए चढ़ी चिढ़ को दबाकर धुँधले प्रकाश में पढ़कर टिकट दे दिया। यात्रियों के बढ़ने के साथ बढ़ता गया। झरोखे के पास पहुँचकर बिना कुछ सोचे कहा, "बनारस के लिए एक टिकट।" एक नोट पाँच रुपये का दिया। टिकट के साथ कुछ पैसे वापस मिले; लेकर बाहर निकला। पान खाये, स्टेशन पर टहलता रहा, गाड़ी डिस्ट्रिक्ट सिगनल पार कर आयी। यात्रियों की भीड़ बढ़ी। बैठे लोग खड़े हो गये। गाड़ी प्लेटफार्म पर आ गयी। मनोहर बिना कपड़े-लत्ते के, बिना लोटे-थाली के एक जादू का मारा जैसे, खिड़की खोलकर एक डब्बे में बैठ गया।

दस

बातचीत तय हो गयी कि पहलवान रामसिंह से पाँच सौ रुपये लिये जायँ। यमुनाप्रसाद बुलाकर आपस में तय कर लें। अगर पहलवान रामसिंह राजी न हों तो रिपोर्ट कर दी जाय।

अभी तक चौकीदार के कान में बात न पड़ी थी। वह इस मामले से नावाकिफ था।

यमुनाप्रसाद गाँव के भीतर गये और धीमे गले से पहलवान को आवाज दी। पहलवान भीतर थे। जमींदार का गला समझकर बाहर निकल आये। यमुनाप्रसाद उनको बुलाकर गाँव के बाहर एक पेड़ के नीचे ले चले। छाँह में दोनों बैठे। यमुनाप्रसाद ने कहा, "पहलवान, जमींदार का मामला है। सरकार भी जमींदार है, आपका पक्ष लेने के लिए आपका रिश्तेदार राजा रईस कोई गाँव में खड़ा न होगा। मामलेदारों में उसकी कोई गवाही काम न देगी।"

पहलवान चले। जी से घबराये। कहा, "मामला तो हमको कुछ मालूम नहीं। राय हम इस पर क्या दें?"

"राय नहीं। रुपये चाहिए। पुलिस के हाथ अब जाने ही वाला है। तब दूने से ज्यादा पर कहीं छूटियेगा।"

"देखिए, बिना कुसूर के अगर सजा भी हो जायगी तो काट लेंगे। और क्या कहें?"

"तो पहलवान, सज़ा ही होगी। जिन्दगी-भर के लिए दागी बन जाइयेगा। फिर जमींदारी ही का सहारा ढूंढ़ना होगा और गाँव में।"

"इतने दबकर तो कभी नहीं रहे। अब मालूम भी नहीं कि माजरा क्या है, तब क्या हाँ करें और क्या नहीं? आप माजरा बतला दीजिए। हम आपको सही जवाब देंगे।"

"भाई बात हमारी हो तो कहें। दुनिया-भर जुत गयी, अभी मौसम का रंग ही नहीं मालूम। कहीं भी जाइयेगा, राज ही मिलेगा, अपने घर में तो पक्की बात ले लीजिए।"

"तो हमारे घर हरसिंगार के फूलों की तरह रुपये नहीं बिछ जाते। हम बिछा कहाँ से दें? अगर पुलिस के पेंच में आ गये और अपने को बेकसूर पाया तो आगे दुश्मन से बदला निकाल लेंगे। ठाकुर होकर और कौन-सी सचाईवाली बात कहें?"

"तो, कहो तो हम चलें। देर हो रही है।"

पहलवान बहुत विकल हुए। जमीनो-आसमान के कुलाबे मिलाने लगे मगर जोड़ नहीं बैठा, जैसे जंगल में भटकते फिर रहे हों। पहलवान के आँसू बड़ी करुणा से निकलते हैं। रामसिंह के दोनों गालों से बड़े-बड़े आँसू टपकते रहे। उन्होंने कहा, "कहीं इतनी भी लकड़ी पकड़ायी होती! रपोट करनेवाला व्यक्ति कौन है? हमने कौन-सी खता की?"

"पहलवान, यह अपने-आपसे पूछिए। मगर हमारी मार्फत यह रुपये आप दे देंगे, तो मामला ले-देकर दबा दिया जायगा, नहीं तो आप फँसेंगे, गाँव में आपका मददगार न खड़ा होगा। हमको यह दुःख है कि आपकी भलमनसी में बट्टा लगते देखकर भी हम किनारा किये रहेंगे क्योंकि पानी में रहकर मगर से बैर हम न करेंगे। इसीलिए कहते हैं कि जब फाँसी गले लग चुकी है, बुरा फेल तैयार हो गया है, मामला सही हो या गलत, तो पुलिस के हाथ जाने के पहले उसकी पायेदारी मार दी जानी चाहिए, नहीं तो इस फाँसी से छुटकारा न होगा। आपको किन्होंने फँसाया, किन्होंने नहीं, यह पुलिस से आप मालूम कर लीजियेगा, क्योंकि वहाँ वादी पहले रपोट करने के लिए जायगा।"

रामसिंह ढाढ़ें मारकर रोने लगे। यमुनाप्रसाद के पैर पकड़ लिये। कहा, "मालिक, हमसे खता हुई, हमने आपके सामने सिर उठाया। हमारी इज्जत बचाइए। यह ताब हममें नहीं कि सैकड़ों का झोंका सह जायँ। हम मिठाई खाने के लिए दो-चार रुपये की चपेट सह लेंगे।"

यमुनाप्रसाद ने आँखें ढोरीं। कहा, "पहलवान, मामला हमारा नहीं और अब बिल्कुल वक्त नहीं रहा। अगर चार रुपये पर आ जाइए तो हम बातचीत करें।"

पहलवान का फिर पैर मजबूत हुआ। कहा, "जबकि आप किसी के भेजे हुए आये तो इतना बता दीजिए कि वह कौन है!"

यमुनाप्रसाद ने कहा, "यह हमको नहीं मालूम, क्योंकि मारफत···।"

पहलवान ने कहा, "तो या तो थानेदार ही ले जायँगे या बरी होंगे या काट लेंगे, मगर यमुनाप्रसाद, इस मामले को समझकर ही हम जवाब देंगे जो ठाकुर का असली जवाब होगा। हमारी आँखों से दोस्त और दुश्मन भी गुजर जायँगे। निगाह साफ हो जायगी। तब कहाँ वार करना चाहिए कहाँ नहीं, हमारी समझ में आ जायगा।"

यह कहकर घृणा से पहलवान चल दिये। यमुनाप्रसाद भी दूसरे रास्ते से रामराखन के दरवाजे की तरफ चले।

ग्यारह

ताल पड़ गयी कि माधव मिश्र से रपोट करा दी जाय। गाँव का चौकीदार मातादीन साथ कर दिया गया।

माधव मिश्र सत्तू बाँधे रहनेवाले आदमी रपोट करने चले। आगे-आगे बँधाई लाठी लिये चौकीदार मातादीन मारे खुशी के फूला नहीं समा रहा। जानता है, आजकल में सैकड़ों के वारे-न्यारे होंगे; गाँव और पड़ोस के कितने ही

भले-बुरे आदमी फँसेंगे; मिलने बिछुड़ने की कितनी बातचीत होगी, कितने दाँव-पेंच खिलेंगे-खुलेंगे। जमींदार और महाजन भी इस रुपये में शरीक होंगे, कहते हैं, रिश्वत का रुपया लाखों और करोड़ों तक पहुँचता है और बड़े-से-बड़ा इसका साझीदार है; इस काम में पुलिस के मददगार जितने आदमी हों, वे सरकार के आदमी कहे जाते हैं, उनसे इसी तरह के काम लिये जाते हैं, जब कमजोर पड़े तब वे नेकमाश धीरे-धीरे बदमाश करार दिये जाते हैं और बाँधकर भेज दिये जाते हैं, आमदनी का जरिया जेल में भी है, मजे में कालीन बिनते रहें, दस पैसा खाये और दो रुपया उगले, क्या चरखा है ! मातादीन मन-ही-मन मुस्कराया।

मिश्रजी भी चलते-चलते अपनी ढाई चावलों की खिचड़ी पकाते रहे। वह सरकार के आदमी हैं, इस पर उनको फख्र भी है। उनकी मरजाद का एक बाल भी नहीं टूट सकता। यह सरकार हिन्दुस्तान में इसीलिए है और इसी ढर्रे से चलाकर बाघ और बकरी को एक घाट पानी पिलाती है। रपोट के दो रुपये जो लिये हुए थे, वे जमींदार रामराखन के दिये हुए थे। उनकी याद आते ही उन्होंने कहा, "देखो मातादीन, रपोट में दो रुपये लगेंगे। यहीं से श्रीगणेश है। यह दो-दो सौ पर सत्य होता है या दो-हजार पर, इस गाँव में और गुंजाइश तो है नहीं, नहीं तो दो लाख भी कहते, दो करोड़ भी; यह आँख के सामने आयेगा।"

मातादीन ने तम्बाकू ठोककर खायी और कहा, "हमको तो बीस से ज्यादा की गिनती ही नहीं आती, करोड़ के आगे और क्या है ?"

माधो मिश्र ने कहा, "और आगे का हिसाब नहीं लिखा जाता। यों तो शंख-महाशंख तक है।"

मातादीन ने कहा, "जैसे गाँव का रहनेवाला शहर का हिसाब नहीं जानता, वैसे ही थाने का हिसाब थाने ही के आदमियों को मालूम है। जहाँ तक तुम गिनती गिनते हो, उससे और आगे तक हिसाब पहुँचता है।" यह कहकर मातादीन गम्भीर हो गया। फिर तम्बाकू की एक पीक थूकी। मिश्रजी ने सोचा, यह इस वक्त लाठी और साफे के साथ है, कौन इसके मुँह लगे ?

दोनों पगडण्डी पकड़े हुए बढ़ते गये। एक बगल बागों की कतार, दूसरी बगल खेत। बागों से चिड़ियों की चहक सुन पड़ती हुई। गलारें, तोते, बुलबुलें, पिड़कियाँ, रुकमिनें, सतभैये, कौवे, पपीहे और कोयलें अपनी-अपनी डाल से अपनी-अपनी बोली सुनाती हुई। खेतों पर कहीं-कहीं हिरनों के झुण्ड भगते हुए। कहीं ढोर चरते हुए। कहीं नाले, कहीं बरसाती नदी। किनारों में बबूलों के बेशुमार पेड़। काँटों से कहीं-कहीं रुँधी हुई। थूहड़ के पेड़ बागों की खाई के चारों तरफ लगे शोभा बढ़ाते हुए।

दिन डेढ़ पहर चढ़ आया। सामने पक्का तालाब दिखा। एक तरफ विशाल शिवालय जिसकी दूसरी तरफ पक्का कुआँ। मिश्रजी ने मातादीन से कहा, "या तो तुम चले चलो, थाना नजदीक ही है, चलकर आराम करो, हम हाथ-मुँहधोकर थोड़ा-सा पानी पी लें, वहाँ फिर लिखाने के झंझट में पड़ेंगे, चित ठिकाने नहीं, कुछ का कुछ न कह जायँ, हाकिम का सामना ठहरा या ठहरो।"

मातादीन ने कहा, "बड़े आदमी होकर बदल रहे हो। हम तो साथ ही हैं।

जो खाओ हमको भी खिलाओ। हम तुमको छोड़कर कहा जायँ ?"

मिश्रजी ने हाथ-मुँह धोये और मिली पाँच भेलियों में बड़ी-बड़ी दो भेलियाँ गुड़ की निकालीं। एक अपने लिये रखी, एक मातादीन को दी। मातादीन हराम का माल लापरवाही से गले के नीचे उतारने लगा। मिश्रजी भी निःसंकोच होकर गुड़ की भेली खाने लगे। दोनों ने खाकर पानी पिया, फिर थाने के लिए रवाना हुए।

थाने की लाल दीवार दिखने लगी। सड़क के किनारे के पेड़ों की आड़ थी, मगर पेड़ियों की दरार से निगाह पहुँच जाती है। मातादीन का वीरत्व थाने के दिखने के साथ-साथ बढ़ गया। मिश्रजी अभ्यासी मनुष्य की चाल से चलते गये।

थाना आया। दोनों अहाते के अन्दर गये। चौकीदार ने मुंशी को सलाम किया।

मुंशी ने पूछा, "किस मौजे के हो ?"

चौकीदार ने कहा, "हुजूर, सरायन का।"

मुंशी ने पूछा, "और यह कौन है ?"

चौकीदार ने जवाब दिया, "वहीं के ब्राह्मण, रपोट कराने आये हैं।"

मुंशी जमे। कैंची निगाह से एक दफे मिश्रजी को देख लिया, फिर कहा, "इधर आओ।" मिश्रजी बढ़े और झुककर सलाम किया।

मुंशी ने कहा, "लाओ, यह पहली सरकार का है।"

मिश्रजी ने कहा, "अभी दिया क्या ?"

डाँटकर मुंशीजी ने माँ की गाली दी।

मिश्रजी ने कहा, "यह एक दूसरी रपोट होगी।"

मुंशी पहले घबराये, फिर उठकर चले गये। सोचा था, 'बैठा रहेगा, झक मारेगा, रपोट लिखायेगा।'

उठकर अपने डेरे की तरफ चले तो चौकीदार ने बढ़कर एकान्त में कहा, "आप पुलिस का राज बिगाड़ते हैं, हम उसी गाँव में रहते हैं या और कहीं ?" मुंशी झेंप सँभालकर सिर गड़ाये हुए चले ही गये।

चौकीदार थानेदार के पास गया। थानेदार ने मिश्रजी को बुलाया और पूछ-ताछ की। मिश्रजी ने कहा, "अब पहला मामला तो यही है कि थाने आने पर गालियाँ मिलती हैं या यह मुंशीजी किसी फेर में हैं ?"

थानेदार ने कहा, "खैर, कल हम आपके गाँव आयेंगे और तहकीकात कर जायेंगे जब चौकीदार को आप लाये तो रपोट हो चुकी।"

चौकीदार का नाम लेकर पूछा, "क्या रपोटवाले रुपये ले लिये ?"

मिश्रजी ने कहा, "गाँव में आप लीजियेगा।"

थानेदार के चेहरे पर शिकनें पड़ीं, मगर चुपचाप बैठे रहे।

मिश्रजी थाने से बाहर निकल आये और गाँव का रास्ता पकड़ा।

बारह

गाँव लौटते मिश्रजी का चौकीदार से साथ छूट गया। थाने में चौकीदार ने तरह-तरह की सच-झूठ बातों का थानेदार से राज खोला, जिसमें गाँव के बाशिन्दों की शिकायत ज्यादा थी। सरकारी पक्ष को प्रबल किये हुए था। मुसलमान के प्रति, उसके बड़प्पन के हक के कारण ईर्ष्या भी थी, साथ ही वह यह भी समझता था, सरकार मुसलमान के खिलाफ बातचीत कराना चाहती है और जब कि एक मामला आँख का देखा गठ चुका है, तब इसको छोड़ना बेवकूफ का काम होगा। ईश्वर की कृपा से थानेदार भी मुसलमान थे, छोटे थानेदार हिन्दू थे, ठाकुर। इन्सपेक्टर हिन्दू थे। मातादीन इन्हीं कड़ियों से चढ़ता था। जी खोलकर उसने मुंशी हकीकत अली खाँ की शिकायत की। मारे गरमी के वह रपोट न लिखकर गालियाँ देते हुए कुर्सी छोड़कर चल दिये, कहा। यह भी कहा कि वह ब्राह्मण पानीदार हैं, तअज्जुब नहीं कि दरख्वास्त कर दे। और भी बहुत तरह से डरवाया। थानेदार ने कहा, "राज रख दो।"

चौकीदार ने कहा, "राज मुंशीजी को दे चुके हैं। आप मुंशीजी से हमारा राज दिलवाइये।"

थानेदार ने कहा, "मैं थानेदार हूँ तो दूसरा ही चौकीदार आवेगा।"

मातादीन ने जवाब दिया, "मैं ढाई रुपये की नौकरी के मत्थे नहीं हूँ, दुहाई इन्स्पेक्टर साहब की, और आपसे कहता हूँ कि अगर उस मौजे में अपनी बल्ली गाड़ लें इस मामले में बिना मेरी मदद के, तो मैं अपने बाप का पैदा किया हुआ मातादीन नहीं।"

इस तरह थाने में खासी बमचख रही।

मिश्रजी गाँव लौटकर किसी के यहाँ न गये, ठण्ढे होकर थोड़ा-सा पानी पिया और पहलवान के दरवाजे की तरफ चले। हथेली के इशारे से पहलवान को बुलाया। वह चौपाल में चुपचाप बैठे सोच-विचार में थे। इशारा देखकर मिश्रजी के पास उठ आये। मिश्रजी उनको लेकर नजदीक के बाग की तरफ गये। एक महुवे की छाँह में बातचीत करने लगे। कहा, "पहलवान, हम-तुम एक ही गाँव में रहते हैं, एक-दूसरे की मदद के लिए हैं, दुश्मनी के लिए नहीं। दुश्मनी करायी जाती है, नहीं तो बेइज्जती होती है। और हम कुछ कह नहीं सकते, मगर जो कार्रवाई खिलाफ हो, आप उसी की समझें जो बड़ा है।"

पहलवान के आँसू आ गये। कहा, "भैया, एक जगह रहने का यह हाल है! कुछ हमको भी नहीं मालूम, नहीं जानते, कौन-सी लकड़ी फेरी जानेवाली है। जितने लोग आते हैं सब बात लेनेवाले, इज्जत लेनेवाले।"

मिश्रजी ने कहा, "जाल-ही-जाल में हम-तुम जितनी मछलियाँ हैं, फँसायी और निकाली जाती हैं। जितना बैर बढ़ता रहेगा, जमींदार और सरकार को उतना ही फायदा है। बात की जड़ बेबात-की-बात में पड़ती है। इसके बाद बातों का ही जाल फैलता है। क्या आपसे किसी से लाग-डाँट थी?"

पहलवान पशोपेश में पड़े। देखा, यहाँ भी राज देना है। कहा, "उस गाँव का एक लड़का लड़ने आता था, या तो वह दुश्मनी की गरज से भेजा गया, या उसके आने पर उसके लोगों को बुरा लगा, और हमारी समझ में कुछ नहीं आता।"

मिश्रजी ने कहा, "आप हमको मानते हैं, सारा गाँव हमको मानता है। मान्य का काम यह नहीं होता कि वह अपने बन्धुओं को फँसाये। हम आपसे इतना कहे देते हैं कि हमारे जितने बयान होंगे उनमें आप अपने को न समझें और यहाँ आप हमारे साथ आये, यह किसी दूसरे से न कहें दूसरों को ही कहने दें। हम आपके दुश्मन नहीं, यहीं से जाहिर है। गाँव के दो-एक हमको-आपको देख भी चुके होंगे। उन्हीं को कहने दीजिए। अगर हमको कहियेगा कि बुला ले गये थे तो इससे आपका न भला होगा और न इस पंजे से छुटकारा, क्योंकि यह पंजा ही ऐसा है जो कभी किसी को छोड़ता नहीं। जाइए, हम जंगल जा रहे हैं, इस तरह दूसरों को भी हमको खुश करना पड़ता है, उनका रुख देखना पड़ता है और उनकी बात भी माननी पड़ती है।"

पहलवान को दिल में बल मिला। मिश्रजी भीटों के आगेवाली तलइया के किनारे मुँह-अँधेरे निपटने के लिए गये।

रात को भोजन-भाव करके मिश्रजी रिश्तेदार जमींदार के यहाँ भी हो आये। कोई बातचीत न की, कोई राज न दिया, सिवा इसके कि कल थानेदार आयेंगे। रामराखन को इतने से पूरा हाल जैसे मिल गया। गम्भीर मुद्रा से विचार करने लगे। मिश्रजी से कहा, "हम बहुत थके हैं, अब हमको आराम करना है।"

जमींदार ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया, मिश्रजी ने आशीर्वाद देकर रास्ता नापा। घर पहुँचकर दो रपोटें लिखीं, एक इंस्पेक्टर के नाम, दूसरी कप्तान पुलिस के नाम। कागज, कलम-दावात घर में तैयार थे, रपोटें पूरी करके सिरनामे लिखकर रात ही को पास के लेटर-बाक्स में छोड़ आये। ब्राह्मण का ताव, सोचा कहीं सबेरे तक ठण्डा न हो जाय, जहाँ सत्यनाश वहाँ साढ़े सत्यनाश। मिश्रजी मुंशी का नाम जानते थे। उनका काम ही इस हलक़े का परिचय रखना था।

तेरह

दूसरे दिन आठ बजे दो सिपाहियों के साथ थानेदार आये। धर्मशाले में उतरे। गाँव के जमींदारों को बुलाया। चारों ओर हलचल मच गयी। सबको निश्चय था कि रपोट हो चुकी है। मातादीन थानेदार से सहमत होकर भी न हुआ। गाँव-भर में उसने भी अपनी दो-रंगी उड़ायी थी। मजदूरों से अच्छे-अच्छे पलँग दो-तीन उठवाकर जमींदार रामराखन ने भिजवा दिये, साथ कालीन। घर में पूड़ी और साग का नाश्ता बनाने के लिए कह गये। थानेदार को यह पसन्द नहीं, मगर

हिन्दुओं के गाँव में मुसलमान पकानेवाले के न होने पर यह खाना स्वीकार कर लेते हैं, साथ में कह भी देते हैं, 'हमारा खाना तो आप लोगों को मालूम है, वगैर उसके मजा नहीं आता, न पेट भरता है।'

तीन-चार पीपल, पाकर और महुए के पेड़ धर्मशाला के आस-पास हैं। कुछ ही दूर एक पक्का तालाब, पक्का कुआँ, स्वच्छ जलवाला धर्मशाला के साथ लगा हुआ है। बगल में लड़कों ने एक अखाड़ा गोड़ रखा है कूदने के लिए। पीपल के नीचे चबूतरा है जिस पर पीपल की जड़ के साथ शिवजी रखे हुए हैं। गाँव का यह एक सबसे अधिक मनोहर स्थान है। यहाँ से तीन-चार लीकें दूसरे-दूसरे गाँवों को कटकर गयी हैं। अगल-बगल खेत और बागात हैं। दिन का दृश्य बड़ा ही सुहावना हो रहा है। खरीफ की हरियाली मन को मोहे ले रही है। पुरवाई के झोंके मत-वाले किये जा रहे हैं। कुछ ही फासले से गाँव शुरू है। पेड़ों पर बुलबुल, तोते, रुकमिनें, गलारें, कबूतर आदि चहकते और गटरगूँ करते हैं। आम की कुञ्जों से पपीहे और कोयल की होड़ सुनायी पड़ रही है।

थानेदार ने यहाँ डेरा इसलिए जमाया कि अपना दल यहाँ तैयार कर लें, तब मामले में हाथ लगायें। चौकीदार से जो कुछ उनको मालूम हुआ था वह बहुत पायेदार बात न थी, दूसरे मुंशी के जरा चले जाने पर रपोट लिखानेवाले मिश्र का थाना छोड़कर चला जाना शक पैदा कर रहा था। फिर भी पुलिस पर कोई आक्षेप न हो, इसीलिए उन्होंने तहकीकात करनी चाही मगर छिपे तौर से। चौकीदार के कहने के अनुसार सिपाहियों ने मुख्य-मुख्य आदमियों को बुलाया। सधे लोग कौवे की तरह एक-दूसरे को देखते हुए आगे-पीछे चले।

चौकीदार एकान्त समझकर मिश्रजी के पास गया और दोनों हाथों से बिल दिखाकर थाने की मनोभावना समझायी और हिम्मत बाँधते हुए कहा, ढीले न पड़ना। कहकर चला गया।

मिश्रजी एकान्त देखकर पहलवान के यहाँ गये और बाहर से आवाज दी।

बुलाये जाने पर सिपाही की पगड़ी देखकर पहलवान को जूड़ी चढ़ आयी थी। जब मिश्रजी ने आवाज दी, उन्होंने डरभूते स्वर से रजाई के भीतर से कहा, "अरे, जूड़ी चढ़ी है, क्या काम है? घर में कोई नहीं है।"

मिश्रजी ने कहा, "ओढ़े-ओढ़े चले चलो। नहीं तो मामला समझ में न आयेगा, दोस्त और दुश्मन की पहचान जाती रहेगी। हम आगे-आगे चलते हैं। हमारे तरफदार रहना।"

पहलवान ने आवाज दी, "जब तुम कहते हो तब चलेंगे। रजाई की जगह चदरा ओढ़ लेंगे।" कहकर जोर बाँधा कि मददगार है।

रामराखन अपने पूरे सहायकों के साथ मामले को साधकर आगे-पीछे चले। रामराखन, लीलाराम, रामशंकर, यमुनाप्रसाद, देवीप्रसाद, शिवकुमार तथा गाँव के और-और जमींदार और महाजन। एक-एक करके पलँग पर बैठे हुए थानेदार के पास पहुँचे और कमर-भर झुककर सलाम करते गये, फिर दूसरी चारपाइयों पर अदब के साथ बैठते रहे। गोड़इत लोगों को तम्बाकू खिलाता और हुक्का पिलाता रहा। थानेदार के कहने के माफिक, अभी यह सरकारी काम नहीं, गाँव

के लोगों से थानेदार की आपसी बातचीत है।

इसी बीच मिश्रजी आये और साधारण रूप से थानेदार को सलाम किया।

यहाँ मिश्रजी का बड़प्पन रामराखन की नजर में आनेवाला नहीं और जब कि वह मुद्दई है। उन्होंने मिश्रजी को बुलाकर नहीं बैठाला, यह बात मिश्रजी को खटकी। मगर कुछ बोले नहीं। संसारवाली नस दबाये हुए, होश दुरुस्त किये हुए, धर्मशाला के चबूतरे पर सबकी तरफ मुँह करके बैठे। उनके बड़प्पन की तरह यह चबूतरा भी चारपाइयों से ऊँचा था। तेल लगाने के सहज स्वभाव से रामराखन ने हाथ उठाकर कहा, "सरकार के सामने इस आसन से ऊँची जगह ऐसी हालत में मिश्रजी आपको न बैठना चाहिए।"

मिश्रजी ने कहा, "अगर आप इस चारपाई को उठाकर धर्मशाले में डाल दें, और थानेदार साहब बैठें तो और शोभित हो जायँ।" थानेदार को मुसलमान समझकर मिश्रजी ने जमींदार पर धार्मिकता का एक हाथ रखा।

जमींदार खामोश रह गये। उन्होंने सोचा, मुसलमान को हिन्दू धर्मशाला में घुसेड़कर लोगों की निगाह में हमको गिराना चाहता है। कुछ नजर बदली, मगर अन्दर से डरे कि मामला उन्हीं का गठाया हुआ है कहीं यह उल्टा खुदाई न गले डाल दे। दबकर ढाढ़स बँधाते हुए कहा, "बैठे रहिए, जैसे चारपाई वैसे चबूतरा।"

थानेदार बातचीत तोलते रहे। इसी समय चदरा ओढ़े कोट पहने काँखते हुए पहलवान धीरे-धीरे आये, और जहाँ मिश्रजी बैठे थे उसी जगह, एक किनारे से थानेदार को दूर का सलाम करके, बैठे। उनको निश्चय था, यह गठना उन्हीं पर है।

एक चारपाई पर सिपाही बैठे थे। गाँव के तीन चौकीदार लाठी लिये हुए अगल-बगल खड़े थे। इक्के-दुक्के लोग जो राही थे या जिनका मामले से तअल्लुक न था, आते-जाते रहे।

थोड़ी देर में जमींदारोंवाली चारपाई के एक-एक पाये के पास पान-दोहरा खायों की तम्बाकू की पीक से बित्ते-बित्ते-भर जमीन रँग गयी। गाँव में भीट, गाँव के तमोली, कई रोज की तैयारी, सैकड़ों की संख्या में लगे पान लौंगदार ले आये। इलायची दोहरा और जरदावाली तश्तरियाँ भी दो-तीन। सिपाहियों ने पत्ते चबानेवाले बकरों को मात किया। झूठ के मामले में जमींदारों की चौगुनी फुरती थी।

चौदह

थानेदार देखते हुए जातीय सभ्यता के अनुसार ऊबकर, लोभ के ढंग से चले, सरकारी आज्ञा की हथेली से सिपाहियों को बुलाकर, एक किनारे आपसी बातचीत

करने के लिए। यहाँ ऐसे मामलों की तहकीकात में जमींदारों और मुद्दई-मुद्दालों से सिपाही बातचीत करते हैं, लेन-देन करते हैं। कुछ दूर चलकर कान में बतलाकर, थानेदार लौट आये और बैठे। एक सिपाही ने यमुनाप्रसाद को और दूसरे ने रामराखन को बुलाया। अलग-अलग दोनों की बातचीत लेकर अलग-अलग थानेदार से कहेंगे। उनके सिवा दूसरे को एक-दूसरे की बातचीत मालूम न होगी। सिपाहियों ने तदनुसार दोनों को बुलाया, दो भिन्न दिशाओं में ले चले और पूछने लगे।

उत्तर तरफ यमुनाप्रसादवाला सिपाही और दक्षिण तरफ रामराखनवाला था।

यमुनाप्रसादवाले ने एक दफे मूछों पर ताव देकर यमुनाप्रसाद से पूछा, "आपको क्या मालूम है ?"

यमुनाप्रसाद ने कहा, "हमारी सीढ़ी दूसरे के घर से काम के लिए आयी हुई दीवार से लगी थी। रात को वह माधो मिश्र की दीवार से लगी दिखी। माधो मिश्र उस रात बिना सेंध के अपने यहाँ से कुछ रुपये सामान और बरतन उठ जाने का बयान करते थे। आखिर चोरी या डाके के वक्त उनकी आँख खुल गयी थी, मगर मारे डर के उन्होंने मुँह नहीं खोला और हिले भी नहीं; पड़े-पड़े देखते रहे। जो सूरत कम-वेश उनकी पहचान में आयी उसका बयान यह है कि जवान खासा हट्टा-कट्टा था।"

रामराखनवाले ने पूछा, "आपको इस मामले का क्या हाल मालूम है ?"

रामराखन ने कहा, "मिश्र माधवप्रसादजी गाँव के भलेमानुसों के अगुआ अपने जमींदार यमुनाप्रसाद के साथ हमारे यहाँ तड़के आये और हाल बयान किया कि रात को ताला तोड़कर उनके घर चोरी हुई है। पिछली रात को पैर की आहट से या सामान की खनक से उनकी आँख खुल गयी, वह मारे डर के चारपाई से उठे नहीं, पड़े-पड़े ताकते रहे। जो सूरत उन्होंने बयान की वह यह है कि एक गठा जवान अँधेरे में लगी सीढ़ी से चढ़ता नजर आया। चढ़कर उसने सीढ़ी चढ़ा ली। सुनकर हमने थाने में रपोट कर आने के लिए कहा और शक में किसी का या किन्हीं के नाम लेना चाहें तो लिखा दें, यह सलाह दी। अब सरकार की तहकीकात है।"

दोनों सिपाही अलग-अलग खड़े रहे। थानेदार ने दोनों से अलग-अलग मिलकर बातें कीं और कार्रवाई समझायी। सिपाहियों ने फिर दोनों जमींदारों को बुलाया और रामराखन से उसी तरह यमुनाप्रसाद के पीछे लगकर जाने और क्या बातचीत होती है कहने के लिए कहा। यही आज्ञा यमुनाप्रसाद को हुई। दोनों ने पहलवान को बुलाया।

पहलवान रामसिंह ने काँपते गले से कुछ कहा, आये और मजबूरन काँपते हुए पैर रखते हुए एक बगल खड़े दोनों जमींदारों से मिलने गये।

यमुनाप्रसाद ने पहले की तरह पहलवान से कहा, "हम कहते थे कि सर आयेगा। वही होकर रहा। इल्लत लग जाती है, तो ऐसे नहीं छूटती, कुछ खर्च दीजिए या अपनी जान पर खेलिए। अब सामने आया।"

जमींदार रामराखन की ओर उँगली उठाकर पहलवान से उन्होंने कहा, "हमारी आपकी बातचीत के यह गवाह हैं। इकार जाइयेगा तो भुगतना होगा।"

पहलवान के होश फाख्ता हो गये। झूठी जूड़ी चौगुनी बढ़ी। थानेदार निर्विकार चित्त से देखते रहे। सिपाही अपनी-अपनी जगह तम्बाकू और पान थूकते रहे।

पहलवान ने कई दफे अपने निश्चल हृदय का परिचय देना चाहा मगर हुमस-हुमसकर रह गये। सरकारी मजबूरी छाती पर तिपाये की तरह बराबर जमीं पर जैस जमकर बैठी थी, धार्मिक प्रतिक्रिया छाती के निचले हिस्से में। हाथ मला किये, काँपा किये, हुमस-हुमसकर रहा किये, आँसू लाने की कोशिश करती आँखों को देखा किये।

"कुछ कहो, नहीं तो जाते हैं।" यमुनाप्रसाद ने आवाज ऊँची करके कहा।

पहलवान डगमगाकर रह गये।

रामराखन ने हिम्मत बँधायी। यमुनाप्रसाद से कहा, "आओ, उधर के लोगों से बातचीत कर लें।"

अपने साथ रामराखन कई और मझोले नये आदमियों को ले आये थे अपने दबाव से। थानेदार की तरफदारी के बिना उनसे रुपये वसूल न होंगे, इस ख्याल से उनके पास चले। साथ यमुना गवाह की तरह गये। रामराखन की तरफ से यह सबूत है कि वह अपनी तरफ से मित्र ग्रामवासियों से रुपये नहीं वसूल कर रहे हैं, ग्रामवासियों की बचत के लिए ही ये रुपये लिये जा रहे हैं, नहीं तो थानेदार खुश नहीं होते, उनसे बैर होता है, जिसका झोंका पहले जमींदार के घर आता है। इनमें रामसुख, शिवलाल दो मुख्य हैं। अलग-अलग हर एक से जमींदार ने यह कहा कि चोरी की शिनाख्त में वे पुलिस की निगाह में आते हैं, उनका क्या कहना है। गिड़गिड़ाकर, समझाये जाने पर, हरएक ने अपनी इज्जत के बचाव के लिए दस-दस रुपये देना मंजूर किया। रामराखन के लिए यह तारीफवाली बात हुई कि उनके आदमियों से थानेदार को बीस रुपये की आमदनी हुई, जिसमें दो रुपये कम-से-कम उनके हैं।

दोनों ने चलकर अपनी-अपनी बातें कहीं। सिपाहियों से थानेदार ने सुना, शनाख्तवाले असली आदमी के अलावा गैर-आदमियों से बीस रुपये रामराखन की मार्फत मिले।

यमुनाप्रसाद ढीले हुए भी, सरकार की फर्माबरदारी के बल से कड़े रहे।

मिश्रजी का अभी समय न आया था। थानेदार ने समझाने के लिए कहा, "पहलवान की निगरानी खुलवाई जायगी इसलिए बदमाशी लगायी जानेवाली है; पुलिस मुद्दई होने पर मदद न पहुँचेगी, सजा हो जायगी।"

यमुनाप्रसाद सिपाही से सुनकर पहलवान के पास फिर गये।

एक दफा ठण्ढे होने, सोचने-समझने का मौका पाकर पहलवान ने दूसरे दफे भी आवाज लगायी।

मिश्रजी से पूछने का हुक्म हुआ। मिश्रजी ने रपोट के रुपये दे दिये थे। दिल कड़ा था। बहुत नीचा न देखने की हिम्मत बाँधे हुए थे, व्यक्ति के विचार से मंशी

के खिलाफ भी हो चुके थे। चौकीदार पर भरोसा था कि गाँव का विचार रखेगा। इज्जत के ख्याल से बयान बदल दिये। कहा, "एक लम्बा-लम्बा दुबला-पतला आदमी था, भीतर सीढ़ी लगाकर उतरा। मुँडेरी पर एक आदमी खड़ा था उसको सामान उठाकर देता रहा होगा, जब हमारी आँख खुली और हम हिले, चढ़कर मुँडेरी पर हो रहा और सीढ़ी चढ़ाकर बाहरी तरफ लगा ली, फिर एक रहे, दो या और उतर गये। हम अलसाये हुए, कुछ न समझे हुए, आहट से उठे और दिया जलाने को हुए, तब तक यह सब हो गया। दिया जलाकर हमने देखा तो कोठरी का ताला टूटा था और चार पेटियाँ और कुछ बासन गायब थे। दरवाजा खोलकर आवाज लगायी और बाहर देखा तो सीढ़ी लगी थी। रात साढ़े तीन का वक्त रहा होगा।"

थानेदार ने उसी तरह सुना। निगरानी-शुदह पासी के साथ पहलवान के आने की गवाहियाँ उसी तरह ली गयीं और पहलवान से फिर उसी तरह पूछने के लिए कहा गया।

यमुनाप्रसाद को इतना ही बल था कि गवाहियों की व्यवस्था कर रखी थी।

पहलवान के पास फिर गये और पूछा और खुलकर कहा भी कि अगर पुलिस को खुश नहीं करते तो बँधते हैं यानी बदमाशी लगायी जाती है, सज़ा की भी नौबत आ सकती है। कहीं माल बरामद हुआ, जबकि पुलिस जहाँ चाहेगी तलाशी लेगी, तो ईश्वर के बचाये भी नहीं बचते। पहलवान ने एक दफे मिश्रजी की तरफ देखा। मिश्रजी को भी मददगार चाहिए था, एक पानी दिखा चुके थे, यहाँ अपने बयान में पहलवान की पीठ भी बचायी थी, गर्दन कड़ी करके उनकी तरफ देखकर इशारा किया।

पहलवान ने जूड़ी में जैसे काँपकर कहा, "भई, जब पीछे पड़ गये तब दस रुपये तक कहो तो बाज आयें; नहीं तो सेंत-मेंत की बला है, आप गाँव के जमींदार हैं, जानते हैं कि बेकसूर की मदद होनी चाहिए, बिना कारण गला फँस रहा है।"

यमुनाप्रसाद ने कहा, "दस रुपये से काम न चलेगा। जब मामला लड़ गया है बचाव कठिन है। देर करना ठीक नहीं है। काफी सोच-विचार चुके। कबूलो या अखीर है कह दें।"

पहलवान ने कहा, "दस और दे सकते हैं, बस!"

यमुनाप्रसाद का चार सौ का अन्दाजा बीस में आया। चढ़ी पैंग घट गयी।

सिपाही से चलकर कहा कि बीस रुपया देना चाहता है।

सिपाही ने थानेदार से जाकर कहा।

थानेदार ने कहा, "बेलज्जत है।"

सिपाही ने कहा, "माल बरामद नहीं। कुछ रोज तक तहकीकात कर लीजिए, फिर बाँधिए, फिर जैसी हुजूर की मर्जी।"

थानेदार ने कहा, "बदमाश की तरफ के भी गवाह होने चाहिए।"

नाश्ते का हिसाब था। उस रोज थानेदार चले गये।

पन्द्रह

मनोहर बम्बई न जाकर काशी आया। गाड़ी से उतरकर स्टेशन पर एक पुस्तिका खरीदी जो काशी पर थी। टिकट देकर स्टेशन से बाहर निकला और पुल के नीचे राजघाट पर चलकर बैठा। गंगा और किनारे की उजड़ी हुई पुरानी बस्ती देखता रहा। इक्के-दुक्के लोग आते-जाते रहे। पूछने पर उसको मालूम हुआ, पुरानी काशी वरुणा की तरफ और थी। किसी-किसी ने कहा, वरुणा के किनारे तक थी और वरुणा के किनारे-किनारे इस तरफ बीच में गंगा के किनारे कुछ आगे किला पड़ता है। अस्सी की तरफ जहाँ आबादी है, वन था। मुगलकालीन काशी अस्सी नाले तक थी। तुलसीदासजी का स्थान उसी जगह है। राजघाट के नीचे का हिस्सा हिन्दूकालीन पुराना है। बहुत-सी चीजें खोदने पर मिलती हैं। मनोहर डेढ़ घण्टे तक बैठा रहा। काशीवाली किताब पढ़ डाली। लोगों से भी जानकारी प्राप्त की। सभी के पते लगाये। संस्कृत की पढ़ाई के बारे में भी पूछा कि क्या-क्या प्रबन्ध है। फिर स्नान करके धोती सुखायी। फिर जलपान किया और शहर की तरफ चला।

दो-तीन रोज तक घूमता-पूछता सुविधाएँ देखाता रहा। धनिकजनों और राजों-महाराजों के दिये दान और विद्या के प्रबन्ध की जाँच करता रहा। स्वभाव में जो जलन थी, उसकी लपटों में जलाने का अन्वेषण प्रबल था। संस्कृत वह इतनी जानता था कि काशी में सम्मान की सर्वत्र उसको सुविधा हो। मगर जिस परिस्थिति का वह मुकाबिला कर रहा था उसका मित्र उसको कहीं नहीं मिला। द्विजों के शूद्रत्व से उसका रोआँ-रोआँ लपट की जीभ हो रहा था। उनको जलाने था जाति में नयी जान फूंकने की सहूलियत उसको उन सभों और पाठशालाओं से नहीं हुई। इतर-जनों में भी प्राचीन भावना थी। अगर कहीं अंग्रेजी राज के कारण हुमसते थे, तो उनका हाथ पकड़कर रास्ते पर ले चलनेवाला न था। जाति का कोई व्यक्ति संस्कार करनेवाला चाहिए, वह समझा। स्कूली विद्या और सरकारी नौकरों से अपने पाये नहीं पुख्ता होते। वही रास्ता चालू रहता है जो गुलामीवाला है। उनसे छिपकर काम करने की ठानी। उसका विश्वास था कि संस्कार के साथ शास्त्री तक वह बीस आदमियों को ले चल सकता है, जो ब्राह्मणेतर कहे जाते हैं। अपनी जातीय मर्यादा शास्त्रानुकूल द्विजत्ववाली वे आप ले लेंगे, उसको विश्वास था। वहीं वह जम गया और भूमि की खोज करने लगा। उसके पास बम्बई तक के लिए जितना खर्च था, उससे वह एक मास तक सादगी से काशी में रह सकता था। घर की चिन्ता अविवाहित युवक को न थी। घर का मुँह वह मर्यादित होकर ही देखेगा।

उसने देखा काशी सभी प्रकार के मनुष्यों की आबादी है। मन्दिरों, मठों और राजभवनों के अलावा उसके चार-पाँच मुख्य विभाग किये जा सकते हैं। उसी भू-भाग के रहनेवाले लोग मुख्य हैं। ईसाइयों के अलावा मुसलमान, बंगाली, गुजराती, मराठे अपने-अपने निवास बनाये हुए हैं। काम स्थानीय जनों में ही

सम्भव है। उसका विरोध द्विजों द्वारा अवश्य होगा। मगर स्थानीय जिन वैश्यों तक संस्कृत की प्रथा थी उनके दायरे से कुछ उतरकर नीचे उसने हिसाब बाँधा। जो जातियाँ प्रजा के रूप में शूद्र कही जाती थीं उनको उसने वैश्य के रूप में समझा, दिल से ब्राह्मण से भी उच्च। जिस प्रचलन के घाव उसको लगे थे, उससे बचाव का यही रूप निकाला। एक जगह जमकर घूर-घूरकर हाल मालूम करता रहा। धनिक शूद्र काशी में बहुत थे।

एक हफ्ते के अन्दर उसने उनमें नयी जान डाल दी। संस्कृत की पढ़ाई से उनका सामाजिक क्रम ऊँचा उठेगा, उनकी समझ में आया। जो लड़के स्कूल नहीं जाते थे उनको उसने अपनी पाठशाला में लिया। जो स्कूल और कालेज में संस्कृत लिये हुए थे उनको वेतन लेकर पढ़ाने का प्रबन्ध किया। फायदा यह सुझाया कि एक पठित ब्राह्मण उनके सामाजिक क्रम को उठाने का सहायक है, उनके घर की पकी साग-पूड़ी खुल्लम-खुल्ला खायेगा, इस सुविधा को वह गाँठ बाँधे रहेंगे और आवश्यकता पड़ने पर प्रमाण के रूप में पेश करेंगे, मगर जब तक खासी तैयारी न हो जाय तब तक यह भेद न खोलें, क्योंकि वह अकेला बहु-संख्यक ब्राह्मणों से अकारण विरोध न करेगा। लोग उसकी बात से बहुत प्रसन्न हुए। वह तुल गया था, उनके इम्तहान में कटा नहीं। काम शुरू हो गया।

सोलह

मनोहर उषाकाल उठकर निवृत्त होकर दशाश्वमेध में गंगा स्नान करके विश्वनाथ-जी के दर्शन करता था, फिर लौटकर लड़कों को पढ़ाता था। दुपहर को भोजन-पान के पश्चात् दो घण्टे विश्राम करता था, फिर आखीर आचार्य-परीक्षा की पढ़ाई में लगता था। रात को स्कूल-कालेज के लड़कों को उनके घर चलकर पढ़ा आता था। दुपहर का बनाया भोजन रखा रहता था, दस-ग्यारह बजे रात को फुरसत पाकर करता और सो जाता था। इस प्रकार कई महीने पार कर दिये। लोग उसकी तल्लीनता और परिश्रम से प्रसन्न थे। प्रायः उसकी पूड़ियों की दावत करते थे। इस प्रकार जीवन का पौधा लहलहाने लगेगा। लोगों में काना-फूसी शुरू हो गयी, मगर अभी तक चढ़ाई न हुई थी। ब्राह्मण सुनकर कसमसाकर रह जाते थे। उनके समर्थक क्षत्रिय और वैश्य सुन लेते थे, पराधीनता की दोहाई देकर रह जाते थे। इस प्रकार छः महीने और पूरे हुए। मनोहर आचार्य-परीक्षा के इम्तहान में बैठा और प्रथम होकर पास हुआ। इससे उसके सहकारियों में आनन्द का दूसरा तूफान उठा। वे उसके पीछे जानोमाल खपाने को तैयार हो गये। उसकी तारीफ अब बनारस के इतर-जनों के घर-घर थी। ब्राह्मण के नाम से वही माना जाने लगा। वहाँ के लोग, खासतौर से ब्राह्मण और जगे; परन्तु दान-दक्षिणा के खाते

में उसका नाम न होने के कारण, उसकी तारीफ सुनकर अवज्ञता से मुँह फेर लेते थे, कहते भी थे—हमारे यहाँ उसकी कोई मान्यता नहीं, न उसकी पाठशाला कोई पाठशाला समझी जाती है।

बनारस में मनोहर इस प्रकार छिप गया कि घरवालों को डेढ़ साल हो जाने पर भी कोई पता न चला। उसने एक भी पत्र नहीं लिखा। जीकर भी जैसे मर गया हो। संस्कृत का आचार्य होकर वह दूसरे विषयों की तरफ मुड़ा। अंग्रेजी भी सीखने लगा। स्वस्थ था, परिश्रम सफल हो चला। उसके छात्र टूटी-फूटी संस्कृत में बातचीत करने लगे। घरवालों का कौतूहल बढ़ चला। इस समय काशी में जोरों से लोग क्रिश्चियन बन रहे थे। इसकी पाठशाला की इसी डाट के कारण ज्यादा मुखालिफत नहीं हुई। वह खुद अपना काट सोचे और लिये रहता था, लोगों को समझाया भी करता था। काशी के धनिक वैश्य जो ब्राह्मणत्व के हकदार थे, भीतर से शूद्रों के संस्कृत पठन के समर्थक थे। मनोहर अब तक इतनी तैयारी कर चुका था कि इन लोगों को शूद्रत्व के आवरण से पृथक कर देने में प्रमाण-प्रयोगों द्वारा समर्थ हो जाय। लोग उसकी इज्जत करने लगे कि उसको देखकर खड़े हो जाते थे और हाथ जोड़कर नमस्कार करते थे। कुछ प्रथाएँ भी उन लोगों ने अपने बीच में चला ली थीं। उनकी प्राचीन प्रथा द्विजों से मिलते वक्त दूसरी थी। मनोहर को इन सबका ज्ञान हो गया।

काशी में बहुत तरह के लोग रहते हैं। सभी का उद्देश्य पुण्य-सञ्चय है। पुण्य के प्रकार बहुत से हैं। रानी विमला का नाम उनमें एक वैसा ही है जैसा मनोहर का। रानी साहिबा अब तक भारत की काफी खाक छान चुकी हैं। अभी उम्र सिर्फ पचीस साल की है, मगर विधवा हैं, पति शराब-खोरी से नष्ट-स्वास्थ्य होकर गुजर चुके हैं। सरकारी बन्धुत्व का रानी साहिबा पर अत्यधिक आक्रमण हो चुका है। वैधव्य की बाधा स्वल्पकाल के लिए भी नहीं मानी गयी। उन्होंने अपने कहार से सुना कि एक पण्डित इस प्रकार का काम कर रहे हैं। इससे उनका मन ऊँचा उठा। प्राचीन प्रथा से उनकी रक्षा नहीं हुई, इस नवीनता के जागरण में काम करने के लिए गुप्त रूप से उन्होंने हाथ बढ़ाया, अर्थात् एक दिन मनोहर से मिलने के लिए कहा। खबर पाकर मनोहर ने मिलने का अपना रास्ता निकाला; कहा—नहाते वक्त दशाश्वमेध घाट पर बातचीत हो सकती है, अभी खुलकर मिलने में बहुत तरह की आपत्तियाँ हो सकती हैं, जिनका प्रतिरोध किसी पक्ष के द्वारा नहीं हो सकता है। संवाद सुनकर रानी साहिबा सहमत हुईं और रात चार बजे जब इक्के-दुक्के आदमी ही नहाने के लिए जाते हैं, साधारण वेश से स्नानार्थिनी की तरह उससे मिलने के लिए कहा। दिन निश्चित हो गया। कहार रानी साहिबा को लेकर आया। मनोहर रास्ते पर मिला।

रानी साहिबा ने हाथ जोड़कर नमस्कार किया। मनोहर ने भी किया। बत्ती के प्रकाश में रानी साहिबा ने देखा, दिव्य युवक है। कहा, "हम आपकी तारीफ सुन चुके हैं। यह लीजिए," कहकर रूमाल में बँधी हुई एक रकम मनोहर को दी। हाथ बढ़ाकर मनोहर ने ले लिया। रानी साहिबा ने कहा, "अपने काम के लिए, अपनी सहायता के लिए खर्च कीजियेगा। हमारा पता आपको मालूम है। इसी

माध्यम से सहायता के लिए कहियेगा। हम अपने हाथ आपको अर्थ देते रहेंगे। देश के युवक, अब हम वह नहीं हैं, मगर देश की भलाई के लिए तुम्हारे साथ हैं। हमारी जो तौहीन होती है, उसके निराकरण के लिए कम-से-कम हजार युवक तैयार कर दो।"

मनोहर को जैसे साक्षात् अन्नपूर्णा मिलीं। उसने हाथ जोड़कर नमस्कार किया। कहा, "मुझको आज तक ऐसा दान नहीं मिला, ऐसी दात्री मैंने आज तक नहीं देखी।"

सत्रह

मिश्रजी मुंशीजी के खिलाफ दरख्वास्त दे चुके थे। गाँव में दल बाँधना शुरू किया। पहलवान के खिलाफ उनकी गवाही नहीं थी। यह जमींदारों को बुरा लगा। रिश्ते-दारी और मान्यता के कारण सिर उठाकर वे उनके खिलाफ कुछ कह नहीं सकते थे, लिहाजा आमदनी में जो रिश्वत से होनेवाली थी फर्क आया। चौकीदार भी मिश्रजी के साथ था। कुछ लोग और बँधे। रामसिंह ने अपने लोगों में पैरवी करने की दौड़ लगायी। मनोहर के गाँव भी गये। थाने में चारों तरफ से सिफारिशें सच हालात के साथ पहुँचने लगीं। थानेदार सुनते और लिखते गये। बिना सेंध की चोरी थी, इसलिए बड़ा महत्त्व उसको नहीं दिया; उलटे मिश्रजी पर निगाह डटायी। तब तक मुंशी के खिलाफ कप्तान के यहाँ से तहकीकात हो गयी। मामले को सच समझा हो या झूठ, मुंशी का बहरहाल तबादला हो गया। बरखास्त होते-होते बचे, यह उन्होंने अपना सौभाग्य समझा। बड़ा बदमाश हलका है कहकर बोरिया-बधना समेटकर विदा हुए। मिश्रजी को खबर हुई कि मुंशी बदल गये। थाने का हाल अदालतवाले लोग बाजार आते-जाते लेते रहते हैं। मिश्रजी ने निश्चय किया कि अब फन्दा मजबूत डाला जायगा, बचाव किये रहना चाहिए। जिले में उन्होंने वकील को डायरी लिखा दी कि यह-यह हुआ। गाँव में बातचीत बढ़ी कि अब मिश्रजी के हाथ गाँव के लोगों की बागडोर है। सामाजिक फैसले आदि के वह मुखिया माने जाने लगे। आमदनी भी बढ़ी। जमींदारों से कम लगान पर चार बीघे खेत और मिले। वह समझते थे, दिन-दूने रात-चौगुने बढ़ते पाप का पर्दा यह फाश करेगा, तो बाप-दादों की जोड़ी माया महीने-भर में बह जायगी। इन खेतों से भी अगर जमींदारोंवाली इज्जत बरकरार रहे, तो भली। थानेदार तब तक माल की जाँच करते रहे। गये हुए सामान की फिहरिस्त उनके पास थी। उन्होंने चौकीदार से ले ली थी।

जिस तरह चोरी का न होना एक सरकार का धर्म है, उसी तरह चोरी का होना भी उसका धर्म कहा जा सकता है, जबकि लोगों की माली हालत के सुधार

का तरीका ही उल्टा है, जमींदारों के बड़प्पन की साख चलती है, विलायत की नोबिलिटी का देश पर सिक्का है। इस तरह, एक थाने में हर रात चोरियाँ होती रहती हैं, कुछ लिखी जाती हैं, कुछ नहीं। इस चोरी के बारे में जो पहलवान से तअल्लुक रखती है, थानेदार को बहुत विश्वास न था, मगर मिश्रजी की पार्टी को वह फँसाना चाहते थे। उन्होंने शिकायत के जवाब में जो रपोट दी थी वह मुंशी के माफिक थी और मिश्रजी के खिलाफ। गाँव के जमींदारों को भी उन्होंने समझाया कि मुंशी का तबादला हुआ, इसके माने यह नहीं कि वह बरखास्त हो गये या सरकार की नजर में गिर गये। अगर रैयत में इतनी गर्मी होगी तो सरकार के मुलाजिम में कितनी हो सकती है। इसका उलटा सबने समझा कि मिश्रजी एक दिन बाँधे जा सकते हैं। जमींदारों को भीतर एक खुशी हुई, मगर दाँव पर चढ़ा नहीं पाते थे। जमीन देने का कारण भलमनसी का बचाव भी रखा था कि उनको अपना तरफदार बनाये रहें कि कलई न खोल दें।

इस प्रकार एक अरसा गुजर गया। पहलवान पहले की तरह बाजार आते-जाते रहे, आमदनी बढ़ती रही। उठक-बैठक मिश्रजी के यहाँ बढ़ी और मान्यता भी गाँव में उन्हीं की रही। चौकीदार भी आता-जाता रहा और लोग भी आने-जाने लगे। जिनके दरवाजे बैठने-बिठाने के लिए चारपाई न पड़ती थी, उनके वहाँ पड़ने लगी। यदा-कदा जमींदारों का भी शुभागमन होने लगा। किसी को पता नहीं चला कि मिश्रजी ने क्या किया कि मुंशी यहाँ से वहाँ हो गये। एक ही हाथ से मिश्रजी ने अपना मैदान साफ कर लिया। लोगों के यहाँ से दूध-घी, सब्जी आदि गाँव की चीजें मिश्रजी के यहाँ व्यवहार में अधिक आने लगीं। जमींदारों से इस तरह की शिकायतें थानेदार सुनते रहे, मगर अब तक काँपा न लगा था। चोरियों के सामान में जो चीजें बरामद हुईं, उनको अभी तक निश्चयपूर्वक थानेदार मिश्र-जी की चीजें नहीं कह सके थे। इस ताक में थे कि एक अरसे के बाद उनको पहचनवायेंगे।

अट्ठारह

इस प्रकार एक साल से अधिक बीत गया। मिश्रजी तथा लोगों ने निश्चय किया कि शिकायत रफा हो गयी। थाने का हिसाब मिश्रजी को मालूम था। वह जानते थे, दूब की जड़ बारह साल तक सूखकर मिट्टी और पानी के लगते जिस तरह हरी हो उठती है उसी तरह सरकार की निगाह पर चढ़ा आदमी जिन्दगी के आखीर दम तक याद किया जाता है। सरकार और जमींदार का जो साथ है उसके बीच में आ गये हैं। इसका कारण ब्राह्मणत्व का एक-दूसरा बड़प्पन है। इसको छोड़कर भी वह साँस नहीं ले सकते। इतनी मान्यताओं के बाद आदमी का जीना मुहाल

हो जाता है। तैयारी किये रहना चाहिए, जो कुछ होगा, भोग लिया जायगा। इस बल पर मिश्रजी बढ़ते गये।

हलके में थानेदार की निगाह गवर्नर की निगाह से बड़ी मान्यता रखती है। थानेदार बदले मगर इस मामले की याद दिला गये। दूसरे थानेदार हसन खाँ ने मामले को समझ लिया, सरकारी लोगों की गवाहियाँ ले लीं, चार्ज लगाने की पेशबन्दी की। जमींदारों से इच्छानुसार रपोटें लेते रहे। चार्जशीट तैयार करते रहे। एक रोज चौकीदार ने मिश्रजी से कहा, "माल की पहचान करनी है। जो माल बरामद हुआ है उसमें आपकी लिखायी चीजें भी हैं। चलिए थाने में पहचान-कर बताइए।" मिश्रजी ने कहा, "हाँ, चलेंगे।" स्नान-भोजन करके दो-तीन मित्रों को लेकर देवीजी की जय करते हुए चले। जानते थे, जाल है। अपना सामान गया ही नहीं, पहचान किसकी ? घबराये कि अब फँसाये जायेंगे। गवर्नमेण्ट को मानते ही थे, व्यक्तिगत राग-द्वेष था। थाने चलकर कमर तक झुककर थानेदार को सलाम किया। थानेदार से चौकीदार ने परिचय दिया। थानेदार कुछ न बोले। मिश्रजी आँखें और मनोभाव पढ़ते रहे। बहुत माफिक नहीं देखा। बरामद शुदा चीजें न थीं, दूसरी जगह से लायी गयी थीं। सामने लाकर रखी गयीं। तीन का समय था। मिश्रजी एक-एक देखते रहे। चीजें ऐसी न थीं, जो शिनाख्त में न आयें जैसे रुपये-पैसे, सोने-चाँदी की ईंटें या कच्ची चाँदी। जेवर और कपड़े वह देखते फिरे। दिल में सोचा, अगर नहीं कहते हैं तो बात नहीं बनती। गोल-गोल कहते हैं तो बचाव की जगह रहती है, मगर दूसरे गाहक आ सकते हैं या तैयार किये जा सकते हैं। अगर कहते हैं कि चीजें वही हैं तो मामला लड़ जायगा। खुद-ब-खुद थानेदार को जिन्सें जिले की अदालत में भेजनी पड़ेंगी। अभी अगर कोई झोल या कोई पोल है तो वहाँ खुलेगी, थानेदार के हाथ से यह मामला निकल जायगा। अदालत में हाकिम के यहाँ होगा। यह भी सोचा कि जो सरकार वहाँ है वह वहाँ भी है; हमको थोड़ी-सी जगह वहीं से मिल सकती है।

मिश्रजी ने कहा, "जेवर वगैरह वैसे ही जान पड़ते हैं। इनकी पहननेवालियाँ भी हैं। पहचान उन्हीं की पक्की होगी, इसलिए मामला जिले में ही फैसला पा सकता है। वहाँ उन लोगों को हम पहचानने के लिए ले जा सकते हैं।"

थानेदार ने कहा, "मगर कोई चीज आपकी है, यह कहने ही से आपकी नहीं हो जायगी। इसकी भी जाँच-पड़ताल है। सरकार दूध का दूध और पानी का पानी निकालकर छोड़ेगी।"

मिश्रजी ने कहा, "क्या यह देख नहीं रहे, सरकार बाघ और बकरी को एक ही घाट पानी पिलाती है।"

थानेदार ने कहा, "इनमें जो-जो चीजें आपकी हों, उठाकर लिखा दीजिए।"

मिश्रजी ने जेब से फिहरिस्त की नकल निकाली और देखते हुए पाँच अददें थानेदार के पास ले गये। कहा, "यह अददें हमारी फिहरिस्त में दर्ज हैं।"

उन्नीस

थानेदार को फसाना था, इसलिए जमींदार से लिया माल जिले चालान कर दिया। हाकिम से मिलकर कुल बात समझा दीं कि जिस तरह की कार्रवाई हो रही है इससे गाँव बिगड़ रहा है; सरकार का पाया उखड़ जाता है; लोग जमींदार और सरकार के मातहत नहीं रह जाते; वे मामले को व्यक्तिवादी बना देते हैं। चोरी से लेकर अब तक की तहकीकात का हाल थानेदार ने समझाया। शहादत के लिए कहा। प्रार्थना की कि मिश्र बदमाश आदमी है; इसने सरकार के मुलाजिम के खिलाफ दरखास्तें दी हैं और लोगों को फँसाये रहता है. जिससे पुलिस को कार्रवाई में अड़चन पड़ती है। माल असली चोरी का नहीं, जमींदार से लिया गया है। कुछ चीजों को यह अपना बताता है। यहाँ मकुनी अदालत में हाकिम को इनके रवैइये का अन्दाजा हो जायगा; फिर हुक्म के मुताबिक कार्रवाई की जायगी। शहादत की तारीख लेकर थानेदार चले गये। माल थाने में जमा रहा।

तारीख के रोज मामला समझाने के लिए गाँव के जमींदारों और गवाहों को लेकर गये। मनोहर के गाँव के भी जमींदार और पासी थे। पड़ोस के प्रतिष्ठित कहे जानेवाले प्रायः सभी लोग। इस तरह फाँसा कि थाने के हलक़े में कहीं भी मदद न मिले। बाहिरी लोगों को समझा दिया, सरकार के बागी लोगों की किसी तरह की मदद न की जाय। पहले मामला शुरू हुआ, फिर गवाहियाँ गुजरीं। हाकिम ने सुन लिया, फिर असामियों की तारीख ली।

अपने लोगों को समझा दिया कि किसी के कान यह बात न पड़े। सब लोग सरकार के दुश्मन को समझे रहें।

थाने से मिश्रजी को उनके परिवार के साथ शनाख्त के लिए तारीख बता दी। पहलवान को भी बुलाया।

मिश्रजी को बुलानेवाला एक सिपाही था। चौकीदार का नाम न था। मिश्र-जी को इतना ही खटका। उन्होंने चौकीदार से आरजू-मिन्नत की। वह चलने के लिए तैयार हो गया। ऊँचे ब्राह्मणों से वह विनम्रता ही चाहता था।

जिले में वकील की मार्फत मिश्रजी मिले। पहले से रिपोट लिखाये हुए थे। दरख्वास्तों का जिक्र वकील के यहाँ था। चौकीदार की व्यक्तिगत गवाही वकील से ले ली। और-और लोगों से भी पूछ-ताछ की। मामला जोरदार था, वकील को हिम्मत हुई। माल की पहचान के लिए मिश्रजी की औरतें सिखायी-पढ़ायी ही थीं। उन्होंने उन्हीं जेवरों को उठाया और कहा हमारी-जैसी हैं।

हाकिम ने अलग वकील को समझा दिया कि यह आदमी सरकार के खिलाफ चलता है और लोगों को उभाड़ता है। जो सरकारी तरीका है उसको बदल रहा है। चालाक है, इसमें शक नहीं। इसके घर की औरतें भी चालाक हैं। मगर सरकार का काम अपने ही रास्ते पर होगा। आप अदालत के सिर न हों, नहीं तो वकालतनामा जब्त किया जायगा। इतनी आजादी एक मामूली रियाया को नहीं दी जा सकती। आप अपने तौर से समझा दीजिए बाजू बचाकर।

वकील ने वैसा ही किया। कहा, "हम अपनी ताकत-भर लड़े लेकिन हाकिम थानेदार का तरफदार है। अगर वह चीजें आप ही की हैं तो आप जोर देकर कहिए। दुफसली बातें न कीजिए। अदालत को शक होता है। वकील भी कमजोर पड़ता है।"

मिश्रजी ने कहा कि हम जोर देकर नहीं कह सकते। थानेदार की जो मर्जी हो करे। सरकार को मानते हैं, मगर सरकार के मुलाजिम की गैरकानूनी कार्रवाइयों को भी मानना पड़ेगा, यह हमसे न होगा।

बीस

कई रोज बीत गये। गाँव में तहलका मचा हुआ था। लोग कानों में बतला रहे थे। मिश्रजी के यहाँ आने-जानेवाले लोगों की हिम्मत पस्त थी। सारा वायुमण्डल दहशत खाये हुए था। किसी को कुछ मालूम न था कि क्या होनेवाला है, सब अपना-अपना अन्दाजा लड़ा रहे थे। कोई कह रहा था, बगावत की जगह, जमींदार और थानेदार से कुछ कह देने के सबब, मिश्रजी को सजा होनेवाली है। उनके दरवाजे, कहा जाता है कि बदमाशों की बैठक लगती है, जो रैयत को जमींदार के खिलाफ भड़काते हैं। बाग, पनघट, घर, गली, कूचा, खेत-खलिहान सब जगह ऐसी ही बातों का तूमार बँध रहा था।

रात पार हो चुकी थी, सूरज की किरणें नहीं फूटी थीं। चिड़ियाँ डालों पर प्रभाती गा रही थीं। इक्की-दुक्की औरतें बाहर निकलने लगी थीं। तीन सिपाहियों के साथ थानेदार आये और पहलवान के दरवाजे आवाज लगवायी। पहलवान निकले। सिपाहियों ने बाँध लिया और उनका चालान कर दिया। गाँव-भर में सनसनी फैल गयी। घर में रोना-पीटना पड़ गया। सिपाही पहलवान को लेकर चल दिये। कुछ दूर तक जमींदार भी साथ गये। फिर लौट आये। बड़ी हमदर्दी से पहलवान से कहा, "हम कहते थे—पहलवान, सरकार की आँख गड़ी है, अभी दो का खर्च है, फिर चार का होगा, इस पर भी बचाव न होगा। घूम-फिरकर जमींदार की ही शरण लेनी पड़ेगी।"

पहलवान ने कहा, "जब तक रोग गले नहीं लगता तब तक वैद्य की बात याद नहीं आती। हम दो-सौ रुपये देने को तैयार हैं।"

जमींदार ने कहा, "चलिए थाने में देखें, अगर थानेदार मान जायँ।" पहलवान को ढाढ़स हुआ।

जमींदार ने थानेदार से कहा, "अगर बन्द कर दीजिएगा तो रुपये से हाथ धोना होगा, नहीं तो दो सौ रुपये देने को कहता है। खोल दीजिए, घर से ले आकर दे जाय।"

पहलवान को सिपाही ने खोल दिया। कहा, "इन्हीं के रहना!"

पहलवान सिर लटकाये हुए घर गये, दो सौ रुपये ले आये और जमींदार के हाथ में रख दिये।

हिसाब से बँटवारा हो गया। पहलवान अपनी चौपाल में आकर बैठे।

इक्कीस

मनोहर के घर के लोग हताश हो गये थे। पहले दो-एक दिन घर न जाने पर घरवालों ने रिश्तेदार जमींदार के यहाँ पूछ-ताछ की। जमींदार ने ढाढ़स बँधाया। चुपचाप बैठे रहो, कहीं काम से गये होंगे, अपने-आप खबर मिल जायेगी कि खैरियत है। इतने से घरवालों को प्रबोध हो गया। महीने-भर इसी भरोसे पर बीता। मनोहर न आया। बम्बई की चिट्ठी आयी, उसमें मनोहर का जिक्र न था। चिट्ठी के जवाब में घरवालों ने लिखा कि मनोहर एक महीने से लापता है, जमींदारों के यहाँ गया था, वे लोग कहते हैं कि किसी काम से गया होगा, अभी तक कोई चिट्ठी नहीं आयी। मनोहर के पिता की चिट्ठी मिली। पता लगाने के लिए दस रोज के अन्दर वह भी गाँव दाखिल हुए। घर में रोना-पीटना पड़ा। और जब पूरी खबर नहीं मिली कि मनोहर इस संसार से विदा हो गया है, तब मिलने की आशा फिर बँधी। दूसरे रोज मनोहर के पिता अपनी बहन के यहाँ गये! वहाँ पूछने पर मालूम हुआ कि मनोहर उन्हीं के पास से गया है और पचीस रुपये कर्ज लेकर। दो महीने के ब्याज के साथ वह रुपया अदा कर देना चाहिए। मनोहर के बाप ने स्वीकार कर लिया, मगर पेट ऐंठने लगा कि लड़के-का-लड़का गायब हुआ और ऊपर से रुपये देने पड़े, ब्याज के साथ। जमींदारों ने समझाया, जवान आदमी है, कहीं नौकरी तजवीज करता होगा, धीरज रखिए। अपने-आप सँभलकर आ जायगा। यहाँ जोर करने के लिए आया था, मगर दुनिया का रवैया कुछ और है, उसके आने के बाद से पुलिस से कई मामले लड़ गये, इसीलिए भाग गया, नहीं तो बँध गया होता। आप खामोशी से घर बैठिए या अपने काम पर जाइए। मनोहर के पिता घर चले गये। घर में जैसा सुना, कहा। गाँव के जमींदार से मिले, आरजू-मिन्नत की। जमींदारों ने भी शिकायत की कि मनोहर का मिजाज कुछ चढ़ा-चढ़ा रहता था, दो-एक जगह गये वहाँ बिगाड़ हो गयी।

सारे गाँव में कानाफूसी होने लगी कि मनोहर चला गया लेकिन किसानों में किसी ने उसकी निन्दा न की। मनोहर के पिता जिधर से निकलते थे उधर की वाहवाही होती थी, तुम्हारी मूँछें रख लीं, तुम्हारा सिर ऊँचा किया, वह हमारा अपना भैया है, उसको कोई डर नहीं, हम जानते हैं कि लोगों ने उसको रहने न दिया, लेकिन वह वज्र है जो सिर फोड़कर टूटे, वह हमारी पुकार है, हमारे आँसू

से टपककर भाप बनकर उड़ गया है, कभी खुशी की बारिश लायेगा।

तालाब में सिंघाड़े भरे हुए थे। कहार ताक रहे थे। किनारे एक जगह कुटिया डालकर रहते थे। एक दीवार हाथ-भर की उठाकर चूल्हा बना रखा था, वहाँ रोटी पकाते थे। मनोहर के पिता को देखकर बच्चू कहार बहुत खुश हुआ, सेर-भर के करीब कच्चे सिंघाड़े ले आया और देकर कहा, "आपके बेटे की तारीफ में हैं, जो हम लोगों को ऊँचा उठाता है, ब्राह्मणों की तरह हमारा सिर नहीं फोड़ता।"

हरे-भरे बागों की कतार के किनारे से रास्ता था। रन फूली नहीं समा रही थी। इतनी खुशबू किसी इत्र की दूकान में भी नहीं मिलती और ऐसी अच्छी। उसके नीचे से एक चौगड़ा कूदता हुआ दूसरी झाड़ी की तरफ चला गया। चिड़ियाँ बसेरे को लौट रही थीं। डालों पर चहक रही थीं। सूरज सामने अस्त होने को था। मनोहर के पिता घर लौटे।

०००

चमेली

एक

उतरता बैसाख। खलिहान में गेहूँ, जव, चना, सरसों-मटर और अरहर की रासें लगी हुई हैं। गाँव के लोग मड़नी कर रहे हैं। कोई-कोई किसान, चमार-चमारिन की मदद से, माड़ी हुई रास ओसा रहे हैं। धीमे-धीमे पछियाव चल रहा है। शाम पाँच का वक्त। सूरज इस दुनिया से मुँह फेरने को है। एक जगह, घने आम के पेड़ के नीचे, सब जगहों से ज्यादा लाँक रक्खी है,—एक रास भी माड़ी लगी हुई,—एक अच्छा पलँग और एक चारपाई पर लट्ठ रक्खे सिपाही बख्तावरसिंह थैली से तैयार किया रक्खा दोहरा निकाल रहा है। पलँग पर पटवारी लाला शहनाईलाल श्रीवास्तव, खेतों की पैदावार लिख रहे हैं, बहुत कुछ अन्दाजन। देखने पर मालूम देता है, यह जमींदार का खलिहान है। जमींदार के खलिहान की बगल में पटवारी के खेत की लाँक लगी है। जमींदार ने तीन बीघे का एक खेत पटवारी को दिया है। गाँववाले जानते हैं—क्यों दिया है। फिर भी लाला शहनाई-लाल सौ से ज्यादा दफे, जब गाँव आते हैं, रास्ता चलते गाँववालों को बुलाकर कहते हैं—किसानों के अच्छे खेत से बीघा पीछे दो रुपये ज्यादा लगान उनके खेत पर लगाया गया है—पुलिस और जमींदार अपने बाप को भी नहीं छोड़ते। लाला शहनाईलाल पैदावार लिखते हुए रह-रहकर अपने खेत की लाँक देख लेते हैं, सन्तोष की साँस छोड़कर फिर लिखने लगते हैं। सुखलाल अपने गधे से समझौते की बातचीत करता हुआ बगल के गलियारे से निकल गया। पुरवा की अदालत से लौटनेवाले लोग कन्धे पर अधारी डाले, एक के बाद दूसरे, चले गये, गम्भीर भाव से कुछ मनन करते हुए। लाँक की तरफ, लपकते हुए भैंसे को भीखू चमार का नाती खेद ले गया। सूरज डूबने को है। किरनें ठण्डी हो आयी हैं। आम की डाल पर कोयल बोली। उठकर चमेली ने उस तरफ देखा। कोयल न देख पड़ी। लदे आमों की कतार दिखी। देखकर, जैसे बड़े प्यार की चीज हो, कुछ देर तक अनमनी-सी होकर, औंगी उठाकर फिर बैल हाँकने लगी। शरमाकर सिर झुका लिया, जैसे सिर उठाते वक्त सीना कुछ ज्यादा उठ गया हो। बख्तावरसिंह देख रहा था, आँखों में जैसे मजबूत इरादा लिये हुए। पास के मड़नीवाले कोई-कोई चले गये हैं, दूसरे कामों से, पटवारी शहनाईलाल भी चलनेवाले हैं। जमींदार के गोड़इत से घोड़िया कसवा रहे हैं। गाँव डेढ़ मील दूर है। रात को नदी-नाले से होकर गुजरते डरते हैं। सिपाही खलिहान के अहाते के बाहर तक छोड़ आने के

लिए लट्ठ सँभालकर बैठा। इसी समय लाला बनिया कन्धे पर दोहर रक्खे खलिहान में आये और चमेली की रास देखकर मुस्कराते हुए पूछा, "यह रास कब ओसाई जायगी?" फिर आप ही उसके ओसाये जाने का दिन सोचकर दूसरी रास की ओर बढ़े। पटवारी को देखकर राम-राम किया। पटवारी घोड़िया पर जा रहे थे, साथ जमींदार का सिपाही। चमेली उसी तरह गर्दन झुकाये औंगी लिये बैलों को चलाती गयी। सिपाही पटवारी को छोड़कर लौटा। सूरज डूब चुका है। दूर गाँव के दूसरी तरफ आसमान पर ढोरों की खुरों की धूल दिखायी दी। खलिहान कुछ सुनसान है। कुछ दूर एक मड़नी चल रही है, पर किसी की धीमी आवाज वहाँ तक नहीं पहुँच सकती। चमेली के नजदीक के लोग दिन रहते-रहते बैलों को बाँधकर चारा-पानी कर आने के इरादे से गाँव गये हुए हैं—मुँह अँधेरे तक आ जायँगे ताकने के लिए—तब तक दूसरी मड़नीवाले लाँक और रास देखे रहेंगे—वे सब अकेले आदमी हैं। कोई लड़का या लड़की किसी के घर है तो वह ढोर चराने गयी है। घरवाली शाम तक भोजन पका रखती है, और सबेरे का पकाया हुआ रक्खा है तो गृहस्थी का दूसरा काम करती है, जैसे कभी सीला बीनती रही या बगीचे के आम ताकती रही जो कुछ रुपये-धेली का हिस्सा लिया गया है, या बैलों के चारा-पानी का इन्तजाम करती रही कि दिन-भर के चले थके बैल आयेंगे, उनके आगे रक्खेगी।

बख़्तावरसिंह चमेली के पास आकर खड़ा हुआ और एक दफा इधर-उधर देखा जैसे सबकी रक्षा कर रहा हो। फिर लाठी का गूला रास की बगल में दे मारा, और खँखारकर पूछा, "तेरा बाप कहाँ है, चमेली?"

हाथ की औंगी धीरे-से बैल की पीठ पर मारकर निगाह बैलों में गड़ाये हुए चमेली ने कहा, "लकड़ी काटने गया है।"

"लकड़ी काटने?" बख्तावर ने हमदर्दी में तअज्जुब करते हुए कहा।

"हाँ।" बेमन चमेली ने जवाब दिया।

"लादता है क्या?"

"नहीं।"

"फिर?"

"मजूरी करता है।"

"मजूरी करता है और इतना चलकर? हम कई मर्तबे कह चुके कि तू हमें दूसरा न समझ, हमसे जहाँ तक होगा, हम तैयार हैं। वह खरीदे तो तू उसे समझा, गाँव के दस-पाँच बबूल हम दिलवा दें आसामियों के, नहीं तो रुपया हम अपनी गाँठ से देंगे, और वह चाहे तो लौटकर, माल बेचकर रुपया चुका सकता है; यह मजूरी छूट जायगी। हाँ, गाड़ी का किराया न देना होगा—हम सरकारी गाड़ी दे देंगे।" बख्तावरसिंह धन्नासेठी निगाह से चमेली को देखकर मुस्कराया।

इस कहने का कोई जवाब हो सकता है, चमेली की समझ में न आया। वह चुपचाप बैल हाँकती गयी। एक-एक दफे गलियारे की तरफ देखती थी कि उसका बाप आ रहा है या नहीं।

बख्तावरसिंह ने इधर-उधर फिर देखा और अपनी लाठी का गूला रास पर

रक्खा। बैलों के साथ चमेली के घूमकर आते ही कहा, "चमेली, तीसरी दफे कह रहा हूँ।"

चमेली कुछ न बोली। बैलों के साथ चक्कर घूमती हुई चली गयी। बख्तावर वैसे ही खड़ा रहा। चमेली का मौन उसे बड़ा सुहावना मालूम दिया।

चमेली वैसी ही शान्त, बैलों के साथ फिर आयी। अबके ठाकुर से न रहा गया। बढ़कर चमेली का हाथ पकड़ लिया।

"महादेव भैया रे,—ओ महादेव भैया!" चमेली ने आवाज दी। पहले देख चुकी थी कि महादेव मड़नी कर रहा है। कुछ दूर था।

"क्या है?" महादेव ने मदद के गले से पूछा।

"जल्दी आ," चमेली जैसे अपनी जबान पर ही उसे ले आयी।

महादेव जल्दी से बढ़ा। चमेली की पुकार पर ही ठाकुर भगे।

महादेव जब चमेली के पास आया, तब ठाकुर चिल्लाने लगे, "दौड़ो गाँव-वालो, महादेवना चमेली की रास में क्या कर रहा है।"

ठाकुर की आवाज बुलन्द थी। गाँव की दीवारों से टकरायी। गाँव और बाहर के लोगों ने सुना। कुछ दौड़े भी। महादेव को ठाकुर की आवाज से ही चमेली के साथवाली हरकत मालूम हो गयी।

"घबरा न," चमेली से कहकर महादेव ठाकुर की तरफ बढ़ा।

ठाकुर लाठी लिये तैयार थे ही। महादेव के हाथ में सिर्फ औंगी थी। लेकिन यह पट्ठा था और लड़ता था। ठाकुर की देह में सिर्फ दाढ़ी और मूछों के बाल थे और हाथ में एक तेलवाई लाठी।

महादेव के आते ही ठाकुर ने वार किया। महादेव वार के साथ भीतर घुसा और कमर पकड़कर उठाकर ठाकुर को दे मारा। इसके बाद ठाकुर की बुरी हालत थी। कई जगह चोट आयी।

अब तक गाँव के लोग पहुँच गये। मनराखन ने ठाकुर पर महादेव को देखते हुए पूछा, "क्या हुआ?"

सीतलदीन मनराखन के बाद पहुँचे और महादेव और ठाकुर को देखकर ताअज्जुब में आ मनराखन से पूछने लगे, "क्या है?"

माधो सुकुल पहुँचानेवाले तीसरे थे। देखकर सीतलदीन और मनराखन से कहा, "इन्हें छुड़ाना चाहिए।"

बदलू कुम्हार पहुँचे। देखकर बोले, "जब मालिकों का यह हाल है तब हमारा कैसा होगा!" और ताअज्जुब में भरे हुए दुःख में वहीं डूबकर रह गये।

महादेव ने अब तक खूब भरकर मार लिया था। रद्दे पर रद्दे और घूंसे पर घूंसे चलाये थे। मारकर गालियाँ देता हुआ, छोड़कर अपनी मड़नी की तरफ चला। गालियों में ही लोगों को समझा दिया कि माजरा क्या था।

चमेली अपनी जगह खड़ी थी। बैलों को खड़ा कर दिया था। वहीं से देख रही थी।

महादेव के चले जाने पर, सिर झुकाये, हमदर्दी से ठाकुर बख्तावरसिंह को पकड़कर गाँववाले अपने-अपने अँगोछे से उनकी गर्द झाड़ते रहे, और जो कुछ

कहा, वह महादेव की तरफदारी में बिलकुल न था, फिर भी ठाकुर नाराज थे कि वक्त पर नहीं छुड़ाया। बैठे हुए फटी निगाह से इधर-उधर देखते रहे। गर्द झाड़कर लोग अँगोछे से हवा करने लगे। ठाकुर कुछ होश में आये, होश आने पर जोश आया; बोले, "हम बचाते थे, सोचते थे कि कौन हाथ छोड़े—कौन हाथ छोड़े, लेकिन साले सूद्र ने अपमान कर ही तो दिया। अच्छा, देख लिया जायगा, ठकुराइन ने दूध पिलाया है, तो—"

"तुम्हारी उसकी कोई जोड़ है, मालिक ?" सीतल ने ठाकुर को ठण्डा करते हुए कहा, "सेर और स्यार की बरनी !"

ठाकुर कुछ और जोश में आये। बोले, "अब तुम्हीं लोग देखोगे। और यह जो छोलहट चमेलिया है,···खैर, देखा जायगा।"

लोग चमेली के नाम से सन्न हो गये। ठाकुर की ही बात सही मालूम दी। सब लोग एक-दूसरे को देखते रहे।

बात अब तक गाँव के चारों ओर फैल गयी। चमेली का बाप दुखिया लकड़ी काटकर गाँव के किनारे आया कि सुना, 'खलिहान में आफत मची है चमेली के बारे में; ठाकुर बख्तावरसिंह को मारा है महादेव ने; ठाकुर पहले चिल्लाये थे कि रास में महादेव और चमेलिया—'

एक दूसरे ने कहा, "मुँह अँधेरा था, अरे हाँ, कौन कहे, उतनी बड़ी बिटिया।"

दुखिया सूख गया। सीधे खलिहान पहुँचा। मालिकों के खलिहान के पास लोग इकट्ठे थे। वहीं गया। लोगों को जमींदार की तरफदारी करते देखा, गाँव में भी जैसा सुना था, वह चमेली के खिलाफ था, मारे डर के काँपते हुए दुखिया ने, सिर पर बँधा अँगोछा उतारकर टोपी जैसे ठाकुर के पैरों पर रख दिया, और हाथ जोड़कर बोला, "मालिक, मेरा कोई कसूर नहीं है, दुखी रियाया हूँ, किसी तरह जीता हूँ तुम्हारी जूठी रोटी तोड़कर, मुझ पर नेक निगाह रक्खो, मर जाऊँगा नहीं तो, कहीं का न रहूँगा।"

गर्म साँस छोड़कर बख्तावर बोले, "तेरी वह जुवंटा बिटिया भी समझती है, देस के धिंगरों को बुलाने के लिए रख छोड़ा है उसे घर में ? भर्तार को तो चबा गयी ब्याह होते ही, इससे नहीं समझ में आया कि कैसी है ? बैठा क्यों नहीं दिया किसी के नीचे अब तक ?"

लोगों ने दुखी को पकड़कर कहा, "तुम अभी जाओ। ठाकुर की तबियत ठीक नहीं है। बोलते हैं तो दम फूलता है।"

दुखी अपने खलिहान गया। चमेली बैलों को खड़ा किये चुपचाप खड़ी थी। यह पहला मौका था कि दुनिया अपनी असली सूरत में उसकी निगाह के सामने आयी थी। इस दुनिया को वह सच समझती थी, इसके लोगों को सही भावों से उसने काका, दादा, भैया कहना सीखा था, बदले में वैसे ही भाव जैसे पाती आ रही थी; पर आज कैसा छल है। महादेव को वह भैया कहती थी, पर कोई आज मानने के लिए तैयार नहीं !

चमेली को देखते ही दुखी ने कहा, "क्यों री, नाक काट ली न तूने ?"

"अँधेरे में तुझे अपनी नाक न देख पड़े तो मेरा क्या कसूर है ?" चमेली ने बाप को जवाब दिया।

दुखी हैरान हो गया। कहा, "अरी, जमीन पर पैर रखकर चल !"

"तो तू क्या देखता है, किसी के सिर पर पैर रखकर चलती हूँ जमींदार के सिपाही की तरह ?"

दुखी डरा। फिर जमींदार के प्रताप का सहारा लेकर बोला, "अरी, आँख में माड़ा न छाये—कुछ देख।"

"मैं खूब देखती हूँ। माड़ा छाया है लोगों की आँखों में और तेरी भी।" चमेली बदलकर खड़ी हुई, दूसरी तरफ मुँह करके।

दुखी उस सचाई के सामने अपने आप दबा। फिर उसने गिरते सुर में पूछा, "फिर बात क्या हुई, बता। लोग क्या कहते हैं।"

"लोग कहते हैं अपना सिर। लोग उसी ठकुरवा की ठकुरसुहाती कहते हैं। बात यह हुई कि ठाकुर मुझसे कहता था कि तेरा बाप मजूरी क्यों करता है, हम बबूल दिला देंगे, दाम नहीं तो अपने पास से देंगे, मालिकों की गाड़ी देंगे, काटकर कम्पू से बेच लाये, दाम फिर लकड़ी बेचकर दे।"

"तो फिर ? मालिक और कैसे रियाया पर दया करें ?"

"तेरा सिर करें," चमेली की माँ ने पीछे से कहा।

चमेली की माँ पास के दूसरे गाँव न्योते गयी थी। महादेव को सूझा, ठाकुर को मारकर उस गाँव सीधे पहुँचा। महादेव की माँ भी वहीं थी। चमेली की माँ कहते ही वहाँ से चल दी, और ठाकुर की सरासर शरारत है समझी, क्योंकि चमेली ठाकुर की पहले की दो दफे की छेड़ माँ से कह चुकी थी।

ताव में भरी चमेली की माँ चमेली को 'आ, री' कहकर साथ लेकर, घर चली गयी। दुखी दीन-भाव से अपने बैलों के मुस्के खोलकर वहीं बैलों को बाँधने लगा।

ठाकुर के पास गाँव की करारी भीड़ जमा हुई। चौकीदार पसटू पासी रपोट कर देने के लिए कई मर्तबे कह चुका, और समझा दिया कि गाँव के सब लोग जानते हैं, गवाही देंगे, थानेदार साहब के आने-भर की देर है, मारे जूतों के महादेव के सिर के बाल उड़ा दिये जायँगे, सजा तो बाद को होगी ही। गाँव के लोग पूरे उत्साह से साथ देने को कहने लगे, कसमें खा-खाकर कि 'जैसा देखा है वैसा न कहें तो अपने बाप के नहीं, नास हो जाय, खाट सीधे गंगाजी जाय।'

कुछ देर में जमींदार साहब आये। ठाकुर जमींदार साहब के भैयाचार थे। सूद्र ने पीट लिया, सबसे बड़ी चिन्ता उन्हें यह थी। रिपोर्ट कर आने के लिए चौकीदार से कहकर ठाकुर को चारपाई पर गाँव उठवा लाये, और रातों-रात कुल बातें मालूम कर मामले को मजबूत करने की तरकीबें सोचने लगे।

दो

इसी गाँव में एक पण्डितजी रहते हैं। नाम शिवदत्तराम त्रिपाठी। उम्र पचपन के उधर। पेशा अदालत-झूठ, तमस्सुख लिखना-लिखवाना, मुकद्दमा लड़ना-लड़वाना, किसानों को अधिक सूद पर रुपया कर्ज देकर ब्याज में खाना-रहना। गाँव के समाज के एक मुखिया (सरकारी नहीं)। अपनी भी काफी जमीन कर ली है, दूसरे-दूसरे गाँवों में हिस्सा लेकर। लड़का लखनऊ में पढ़ता है। घर के तीन भाई हैं। ये सबसे बड़े हैं। इनसे छोटे नहीं रहे। ननकी बेवा हैं, लावारिस। यही मकान की मालकिन हैं। पं. शिवदत्तराम की धर्मपत्नी नहीं हैं। बेवा भैहू मकान में थी, उसे दोबारा ब्याह करने की जरूरत नहीं हुई। लड़का समझदार है, इसलिए चचा से और बाप से कम पटती है। पण्डितजी के छोटे भाई अपनी स्त्री और बच्चों को लेकर कानपुर रहते हैं। घर में एक बेवा बहन भी है। दो लड़कियाँ थीं जो ससुराल हैं।

पं. शिवदत्तराम का कहना है, सुबह सोकर उठने के बाद जब तक कुछ कमा न लो, पानी न पियो। गाँववाले जानते हैं। फिर भी शिवदत्तराम की आमदनी में रुकावट नहीं पड़ी। कोई-न-कोई हाजिर हो जाता है।

सुबह का वक्त है। शिवदत्तराम नहाकर पूजा कर रहे हैं। कुशासनी पर बैठे हैं रामनामी ओढ़े। मस्तक पर चन्दन, चोटी सँवारकर बाँधी हुई। गम्भीर मुद्रा, सामने ठाकुरजी। चन्दन और फूल चढ़ाये हुए, ताँबे के बर्तन में पानी दायीं ओर रक्खा। संपटी से कभी-कभी मुँह में छोड़ लेते हैं। माला लिये हुए जप रहे हैं।

जगह, उन्हीं की चौपाल, काठ के नक्काशीदार खम्भों की, पुरानी चालवाली। तिसाही दरवाजा वैसा ही नक्काशीदार। बाहर से देखने पर एक दफा निगाह रुक जाती है। पक्का मकान, बड़ा सहन, तीन-चार नीम के पेड़, पक्का कुआँ।

लतखोरे के एक बगल चौपाल में पं. शिवदत्तरामजी जप रहे हैं, दूसरी बगल लड़का मनोहर बैठा उन्हें देख रहा है। इसी समय दुखिया आया। चौपाल पर चढ़कर भक्तिभाव से माथा टेककर पण्डितजी को प्रणाम किया। फिर उकड़ूँ बैठकर हाथ जोड़े हुए दीनता की चितवन से देखता रहा। पं. शिवदत्तरामजी और गम्भीर हो गये।

कुछ देर बाद, संपटी से पानी चखकर बहुत ही ठण्ढे सुरों में पूछा, "कैसे आये, दुखी ?"

पूछने के साथ हाथ की माला चलती गयी। फिर होंठ भी हिलने लगे।

दुखी ने कुछ कहने से पहले रीढ़ सीधी की, फिर एक तरफ गर्दन टेढ़ी करके टेंट से कई पर्तों में लपेटा एक रुपया निकाला और कुछ गम्भीरता से सामने रखकर वैसा ही दीन होकर बोला, "तिवारी भय्या, मैं तो मरा अब।"

प्रसन्नता को दबाते हुए, दुखी से हमदर्दी दिखाने के विचार से कुएँ के भीतर से जैसे तिवारीजी ने पूछा, "क्या हुआ, दुखी ?"

"बड़ी आफत है, भैया !"

मदद-सी करते हुए तिवारीजी ने पूछा, "बात तो बताओ, महतो ! तुम ता बस···"

"पुलिस में रपोट हुई है।"

"किस बात की ?"

"अब क्या कहूँ, भैया !"

"पुलिस के आगे तो कहोगे ?"

"हाँ, पुलिस के आगे तो कहना ही होगा। तभी तो आया हूँ।"

"तो बताओ, क्या रपोट हुई है, और माजरा क्या है, और तुम्हारा क्या कहना है।"

"मेरा क्या कहना है, मालिक, मैं तो किसान आदमी, कहना तुम्हें है जो कुछ है।" दुखी ने गर्दन उठाकर अपने मुख्तार-आम को जैसे देखा।

फटके से दरवाजा खोलकर मालकिन ने डाँटा, "इन्हें कुछ नहीं कहना। चल यहाँ से, बड़ा आया।" फिर जेठ की तरफ मुँह करके पर्दे के विचार से कान के पास की धोती में हाथ लगाती हुई अपनाव से बोलीं, "तुम्हें नहीं जाना वहाँ, जिमींदार का मामला है। इसकी बेटी चमेलिया को महादेवना के साथ दोख लगा है। सिपाही बख्तावरसिंह ने देखा था, महादेवना ने मारा है, जिमींदार ने रपोट लिखवायी है; कल थानेदार की अवाती है।" कहकर, बाहरी आदमी कोई देखता न हो, इस विचार से सहन के इधर-उधर झाँकने लगीं, फिर देहरी पर पैर चढ़ाकर खड़ी हो गयीं।

पं. शिवदत्तरामजी ने हाथ बढ़ाकर रुपया उठाया, और टेंट में करके पुजापा समेटने लगे। पुत्र गम्भीर भाव से देखता रहा।

"अच्छा, दुखी, अभी जाओ, अभी हमें काम है। दुपहर को बाग में मिलो, हमारे खलिहान में; ये सब एकान्त की बातें हैं।" कहकर, पुजापा उठाकर पण्डितजी घर के भीतर चले। चलते समय हिम्मत बँधाते हुए कहा, "घबराओ मत।"

घर के भीतर साथ-साथ उनकी भैहू भी गयीं। आँगन में जाकर पण्डितजी ने स्नेह की दृष्टि से भैहू को देखते हुए कहा, "औरत का कलेजा बेबात की बात में दहलता है। अरे, वहाँ जैसा मौका देखेंगे, कहेंगे। सूद्र है, घबराया है। इनसे ऐसे ही मौके पर रुपया मिलता है। आती लच्छिमी को कोई लात मारता है ? वहाँ दो बातों में तो इसे समझायेंगे। थानेदार आये हैं, तो एक रुपये से पार है ? जितना दूध होगा, निकलेगा। रुपये थानेदार को काटते नहीं ? नहीं तो मामला कौन है; कोई घावपट्टी चढ़ गयी ? हाथापाई के मामले में थानेदार का कौन-सा काम ?—सीधे अदालत खुली है। इस लोध को भरोसा है कि हमारी तरफ से चार कहेंगे, और हमारा भी काम निकल रहा है। थानेदार से कुछ खुल्लमखुल्ला बातें होती हैं ? यह अदालत थोड़े ही कि जिमींदार के खिलाफ चढ़कर गवाही देनी पड़ेगी ? रुख देखेंगे, लोध को समझा देंगे कि ऐसा हो। मुमकिन, लोध के भी अच्छे गवाह हों। मामला लड़ जायेगा तो बाहर से लड़ा देंगे। लेकिन यह कमजोर है।" पण्डितजी ने फिर स्नेह की दृष्टि से भैहू को देखा।

भैहू अपनी बेवकूफी के खयाल से लजाकर बोलीं, "ऐ, इतना कौन जानता

था ? हमने कहा, कहीं बैठे-बैठाये एक बला गले न लगे ! हमारे कोई दूसरा बैठा है ?" फिर कुछ रोनी सूरत बनाकर उसी आवाज में बोलीं, "कोख का लड़का होता तो कोई एक बात न कहता। तुम्हारा भी होता—" फिर गम्भीर होकर बोलीं, "दीदी का सुभाव अच्छा न था, तुमसे आज तक मैंने नहीं कहा, यह मनोहरा तुम्हारा लड़का नहीं है : दीदी मायके से ही बिगड़ी थीं। कभी-कभी वह आता था उस पिछवाड़ेवाले बाग में।" शान्त होकर बोलीं, "एक दिन पहर-भर रात बीते दीदी बाहर निकलीं। मैंने कहा, क्या है कि हफ्ते में एक रात दो रात इस तरह दीदी अकेली बाहिर जाती हैं। वे निकलीं कि पीछे से दबे पाँव मैं भी चली। ऐन वक्त पर पकड़ ही तो लिया। वह तो भगा; दीदी पैरों पड़ने लगीं। आज तक मैंने नहीं कहा। देखो न, तुम्हारा जैसा मुँह थोड़े ही है ? न बाप को पड़ा है, न माँ को; उसी का जैसा मुँह है। उजाली रात थी, मैंने अच्छी तरह देख लिया था उसे।"

इसी समय बहन बाग से आयीं ! मैहू हँसकर दूसरी दालान की तरफ चलीं।

पं. शिवदत्तराम भाव में डूबे हुए बोले, "बाग जल नहीं गया।"

बहन ने सोचा, छींटा उन पर है। उनकी दाल में काला था, बोलीं, "बाग क्यों जले, जले घर, जहाँ रोज आग लगती है।"

मैहू बगुलिन की तरह ननद पर टूटीं। दोनों हाथ फैलाकर बोलीं, "अरी राँड अपना टेंटर नहीं देखती, दूसरे की फूली देखती है ? बहेतू कहीं की, सबेरे से जब देखो धोती उठाये बाहर भगी, कभी बाग, कभी खेत, इनके घर, कभी उनके घर। यह सब बहाने हैं, मैं समझती नहीं ?" जेठ की तरफ कनवाँ घूँघट काढ़कर देखती हुई, "कहे देती हूँ तुमसे, यह अब रहेंगी नहीं घर, खोदोया बिसाते से इसकी आस-नाई है, सीधे तुम्हारे मुख में लगायेंगी कालिख और होंगी मुसलमानिन।" फिर धमाधम एक कोठरी को चलती हुई, "यह इतना बड़ा सीसा खोदैया के यहाँ से आया है—रोज मुँह देखती है।"

"सुनो, सुनो," पं. शिवदत्तराम ने बुलाया।

"क्या ?" बदलकर मैहू बोलीं, देखती हुई कुछ नजर बचाकर।

"घर की बात घर ही में रहने दो।" पं. शिवदत्तराम पूरे विश्वास से बोले, "कोई कुछ करे, दोख नहीं, धर्म न छोड़े।" फिर मैहू से कहा, "जरा यहाँ तो आओ।"

कहकर बाहर की दहलीज की तरफ चले। पीछे से मैहू चलीं गम्भीर भाव से। दहलीज के एक सिरे पर खिड़की है या जनाना रास्ता, बाहर जाने को वहीं गये। वहाँ, दरवाजा कुछ खोलकर, खड़े हो गये। मैहू जेठ से विश्वास की आँखें मिलाकर खड़ी हो गयीं।

"सुनो," पण्डितजी ने आदर से कहा। मैहू एक कदम बढ़कर बिलकुल सटकर जैसे खड़ी हुईं। "वह दवा जो तुम्हें दी थी, इसे भी पिला दो।" पण्डितजी ने शंका और लापरवाही से कहा।

"तुम निरे वह हो," जेठ की छाती पर धक्का मारकर मैहू ने कहा, "बाम्हन ठाकुरों के यहाँ कोई बेवा वह दवा खिलाये बिना रक्खी भी जाती है ? वह गावदी

होगा जो रक्खेगा। एक-आध के हमल रह जाता है, लापरवाही से। यह वह सब कर चुकी है।" कहकर स्वस्ति की साँस छोड़ी।

"तो ठीक है, चलो," पीठ पर हाथ रखकर थपकियाँ देते हुए जेठ ने कहा और लौटकर दरवाजे की तरफ बढ़े। मनोहर न था।

['रूपाभ', मासिक, कालाकाँकर, फरवरी, 1939। असंकलित]

०००

इन्दुलेखा

एक

सूरज की किरन फूटी। धीरे-धीरे प्रभाकर की कुल किरणें खुल गयीं। सामने नहर बहती हुई। प्रातर्भ्रमण के बाद सूरज को पिछौंड़ा कर आते हुए विद्यार्थी युवक स्नातक की आँखें एक सुन्दर तरुणी पर पड़ीं जो प्रतीकता में भूमि की कन्या की तरह सूर्य के कुल रूप थी। कुल किरणों को अपने में मिलाकर, धान के लहराते हुए खेतों को देखती हुई एक नजर युवक स्नातक पर डालकर तरुणी-स्नातिका की मुस्किराहट हँस रही थी। युवक धीरे-धीरे नव्बे डिग्री के कोने को पार कर नहर के बाँध पर चढ़कर अपने अध्ययन-गृह की ओर कुछ और पढ़ लेने के इरादे से और तेज कदम उठाता चला।

तरुणी धान के खेत की मेंड से अपने घर की ओर चली। दक्खिनाव उसकी सूरत लेकर युवक के कमरे की ओर बढ़ा। दूधवाला युवक का कमरा खोलकर आधा सेर दूध रख गया। घर से एक लड़की आयी और पूछा, "दादा! दूध गरम कर दिया जाय या पानी मिलाकर बादाम का शर्बत बनाकर पियोगे?"

युवक ने कहा, "नहीं, दूध-भात खायँगे, ले जाओ।" लड़की दूध लेकर अपनी माँ के पास चली गयी।

घण्टे-भर पढ़ने के बाद युवक उठा और साबुन का डिब्बा लेकर धोती बगल में दबाये नहाने के लिए सीढ़ीवाले तालाब में गया। सुभीते से धोती सीमेण्टदार कुर्सी पर रखकर और सीढ़ी पर साबुन का डिब्बा भी, वह पानी में डुबकी लगाने को उतरा। नहाकर निकला। जीने पर बैठकर हाथ-पाँव, सिर साबुन से मलने लगा। झँझरीदार डिब्बा बन्द करके रख दिया और वह नहाने लगा। उसने निकल-कर धोती बदली। छोड़ी धोती को छाँटने चला कि वहाँ तरुणी बाँस की डलिया में कच्ची मछली के गट्टे लेकर तालाब में धोने आयी। युवक को देखकर अंग्रेजी में पूछा, "तुम मछली तो न खाओगे, समर!" समर ने कहा, "नहीं, इन्दु! मैं आज-कल निरामिष भोजन करता हूँ।"

"अच्छी बात है," इन्दु ने कहा, "आँतों का विकार निकल जाय तो कहना, मेरी बनायी पहिली मछली होगी।"

"हाँ स्वीकार करता हूँ," समर ने कहा, "पढ़ाई आजकल कैसी चल रही है?"

इन्दु ने कहा, "नतीजा निकलने पर हमारी-तुम्हारी मेहनत भी साथ-साथ

साबित होगी।"

"अच्छी बात है मगर हमारे विषय अलग-अलग हैं तो पढ़ाई की शुमार एक कहाँ से हो," समर ने कहा।

इन्दु ने जवाब दिया, "तुम्हारा तो, सुनती हूँ, जद्दबद्द ही पढ़ाई का हिसाब है, हमारा exclusive के बाद of छूट गया तो नाव डूबी।"

युवक ने सुनकर मुस्किरा दिया। नीची नजरों से साबुन का डिब्बा उठाकर अपने कमरे की तरफ बढ़ा। युवती और सँभालकर मल-मलकर मछली धोती रही।

दो

नौ का वक्त होगा। पेशे के कर्मचारी और शिक्षक वगैरह स्कूल-कालिजों के लड़कों के साथ-साथ सरसों का तेल लगाकर देह और बाल मलते हुए घाट की तरफ नहाने चले। विजय ने बंकिम से कहा, "आज सारी रात (उस तरुणी की तरफ इशारा करके) यह पढ़ती रही।"

बंकिम ने जवाब दिया, "अच्छा खान्दान है, तीन घटक दो साल से चारों तरफ चक्कर काट रहे हैं। पचासों फोटो आये। लड़की के बाप को एक भी पसन्द नहीं।"

विजय ने पूछा (बायें हाथ से बाल रगड़ते हुए), "दो-चार जगहों की सुनी हुई पूरी जानकारी कुछ कहो।"

बंकिम ने कहा, "एक तो हमारे महराज कुमार हैं जिनकी पढ़ाई बन्दूक है; कढ़ाई में चिपका रहता है जिसका छुआ लड़की का बाप नहीं खाता। सगाई की बात सुनकर उसने मुंह बनाकर कहा, 'वह ऐसा है जिसको गधे की भी तमीज नहीं।' दूसरी कलकत्तेवाली है जिसकी रसगुल्ले और सन्देश तारीफ में आये थे। लड़की के बाप ने कहा, 'यह क्या उसके घर गूल (भट्टी) खोदेगी।' एक-एक आधे सन्देश और रसगुल्ले मार गया। मैं खड़ा देखता था कि पूछेगा, मगर हरामजादे ने जैसे मुझको देखा न हो, अपनी बोली सुनाता गया और एक-एक टपाटप मारता रहा।" घटक ने कहा, "कुछ बिटिया रानी को···।" पलकें मूंदकर उसने जवाब दिया, "वह फूल सूंघती है।" एक सन्देश और एक रसगुल्ला घटक को दिया और हण्डी उठाके भीतर रख दी। हाथ धोके एक गिलास पानी लेता आया और कहा, "केदार मेरा इससे बीस है। कहाँ इसके खाजे, खुरमे, छाना-मुड़की, सन्देश, रसगुल्ले, मोतीचूर और सिंघाड़े; कहाँ ये रत्ती-भर खुशबू में उल्लू बनाने की हकीकत?" फिर चार आने पैसे घटक को दिये।

बंकिम ने पूछा, "और यह शिवरंजन? यह निगाह पर चढ़ा?"

विजय ने कहा, "कालेज की पढ़ाई का प्रेम कुछ नहीं, लैला-मजनू की नजीर

काफी है।"

दोनों तालाब की पक्की सीढ़ी से नहाने के लिए पानी में उतरे। पालतू बड़ी मछली एक जाँघ में धक्का देकर चली गयी। बंकिम पानी में फैल गया।

"क्या हुआ ?" विजय ने पूछा।

"पानी के भीतर सुअर है या साँप ?" बंकिम ने सँभलते हुए कहा।

तुर्त-फुर्त दो ज़ीने ऊपर चढ़ गया।

दूर आँवले के नीचे खड़े एक बच्चे ने हँसते हुए कहा, "मैं दूर से मना कर रहा हूँ; उस तालाब की मझोली रोहू जाल से निकालकर इस तालाब में छोड़ी गयी है। बीना को भी खुत्था मारा।" बीनाशंकर उसके एक साथी का नाम है।

विजय ने कहा, "यह शुभ लक्षण है या अशुभ ?"

बंकिम को कुछ डर हुआ। मुर्दा आँखों से उसने मदद चाही।

"सहारा दूँ"—पूछकर विजय ने हाथ बढ़ाया और अपने लोटे से पानी उठाकर बंकिम के सिर पर डाला ताकि नहा जाय। टेकाकर घर की तरफ ले चला।

धोती बदलवाकर विजय ने दोस्त को चारपाई पर बैठाया। पास खड़े पण्डित ने माजरा पूछा। विजय ने कहा, "मछली ने खुत्था मारा, जाँघ कुछ जख्मी हो गयी है। पण्डित, यह तो बताओ मछली का खुत्था सगुन में है या नहीं ?"

पण्डित ने कहा, "एक गिनती का नाम लो।"

विजय ने कहा, "इक्कीस।"

रामशलाका-प्रश्न से पण्डित ने जवाब दिया,

'विधिवश सुजन कुसंगत परहीं
फनि मनि इव निज गुन अनुसरहीं।'

तीन

क्लास में घुसने के साथ कागज की एक गोली समर को नीचे पड़ी हुई मिली। उसने उठाकर उसे जेब में रख लिया। लेक्चर का पीरियड समाप्त होने पर बाहर निकला और अकेले में गोली खोलकर पढ़ी। इन्दु का अखीर पीरियड में बुलावा था। संकेत की जगह पार्क की एक बेंच, जो कुंज के भीतर थी। मन लगाकर तीन पीरियड के लेक्चर सुनता रहा। अखीर की उसकी छुट्टी इन्दु को मालूम थी, उसने बुलाया था। समर की शताधिक बैठकें इन्दु के साथ हो चुकी थीं। इन्दु के अखीर के दो पीरियड खाली थे, घण्टे-भर तक बैठी हुई 'गोल्डेन ट्रेजरी' पढ़ती रही। जब समय आया तो शेली का···

Like a poet hidden
In the light of thought,

Whose words are unbidden,
Till the world is wrought

'स्काई लार्क' चल रहा था। घुसकर समर ने कहा, "नमस्कार, इन्दु!"

"नमस्कार," प्रत्युत्तर में इन्दु ने आँखें उठाकर समर की आँखों में रखते हुए कहा और किताब समेटी।

"यह हैण्डराइटिंग तुम्हारी नहीं जान पडती," समर ने कहा।

"हाँ, इसलिए कि बायें हाथ से लिखा है," इन्दु ने कहा, "चारों तरफ मैच मेकर दौड़ रहा है। पिताजी को कोई मैच पसन्द नहीं आया। इसका मतलब बहुत अच्छा, हमारी समझ में नहीं आता।"

"होगा," समर ने कहा, "ये लोग कैसे आदमी हैं, सही-सही मैंने नहीं समझा।"

"हमको दाल में काला नजर आता है," इन्दु बोली, "ये लोग आदमी व्यवसायी जान पड़ते हैं।" समर इन्दु की बात से सहमत हुआ और आँखें झुकाकर उसने कहा, "कोई मददगार न होगा तो कैसे दुनिया में गुजर होगी, यह समझ से बाहर है।"

इन्दु ने आँखें बड़ी-बड़ी निकालकर विश्वास के स्वर में कहा, "उधर का इनका अपना हिसाब समझना है तो भी पक्के साथी और पूरे साथ की आवश्यकता है। हमको लेडी-प्रोफेसर ने भी थोड़ी-सी चेतावनी दी थी और जान पड़ता है कि समझ से काम न लिया गया तो जिन्दगी बर्बाद हो जायगी।"

"जिस तरह होती जा रही है," समर काँपती आवाज में बोली, "इससे थोड़ी ख्वारी नहीं हुई। बात सही होने पर भी इसलिए गलत है कि उसका चूल पढ़ाई से नहीं बैठता। जो कारगुजार है, उनमें किसी को साहित्य या गणित में पारंगत मैंने नहीं देखा।"

"और बिना पूरी रखवाली के किसी के साथ हमारी जिन्दगी बेकार हो जा सकती है, इनकी रखवाली किस रूप में कहाँ कैसी है, इसका भी पक्का-पक्का ज्ञान आवश्यक हो रहा है।"

"तो तुम तैयार रहो, हम भी पढ़ाई बने या बिगड़े, इधर ही के लिए कमर कसते हैं।"

इन्दुलेखा कुछ क्षण के लिए पलकें नीची किये खड़ी रही, फिर वैसे ही बड़ी-बड़ी आँखें उठाकर समर की निश्छल आँखों पर रखते हुए कहा, "यह शापमय है ऐसे आदमियों की छाँह में जीना। यह बल्कि खून के ठण्डे होते-होते जान से हाथ धोना है बनिस्वत गर्म खून के बहाव में जीने के।"

समर ने कहा, "सही है कि यह बुजदिली की वजह स्नातक की पुकार नहीं, बल्कि प्रियजन से जबरदस्ती अलग होना और एक मुर्ग की मौत मरना।"

['ज्योत्स्ना', मासिक, पटना, दीपावली अंक, 1960 ई.। असंकलित]

०००

कहानियां

प्रेमपूर्ण तरंग

बाबू प्रेमपूर्ण मेरे अभिन्न हृदय मित्र हैं। मेरे बी. ए. क्लास के छात्रों में आप ही सबसे वयोज्येष्ठ हैं। आपकी बुद्धि की नापतौल इस वाक्य से पाठक स्वयं कर लें कि, जब मैं कालेज में भर्ती हुआ, तभी से आप कालेज की चौथे साल की पढ़ाई रट रहे हैं—गोया मेरे देखते-देखते बी. ए. की परीक्षा में तीन बार फेल हो चुके। किन्तु फिर भी आप प्रतिभा से प्रवंचित नहीं हैं। यदि किसी को उनकी प्रखरता की परीक्षा लेनी हो तो उनसे वाद-विवाद और चाहे वितण्डावाद तक करके देख ले। उनके वाग्बाणों के अव्यर्थ सन्धान से प्रोफेसरों के भी हाथ से पुस्तक छूट पड़ती है,—मारे भय के या मारे क्रोध के,—यह बतावें तो वही बता सकते हैं। प्रेमपूर्ण को ऐसे और भी अनेक गुणों से आप पूर्ण पाइयेगा। इन्हीं कारणों से हम लोगों ने आप ही के सिर पर लीडरी का सेहरा बाँधा है। किसी भी पराक्रमी तर्क-शिरोमणि की क्या मजाल जो हमारे प्रेमपूर्ण जैसे वाक्‌सिद्ध धुरन्धर विद्या-लवणार्णव के रहते छात्रालय के सरस्वती के सपूतों को नीचा दिखावे। अगर कोई बुरी लत उनमें है तो वह है रोमेंस की तलाश। जब देखिए, आप रोमेंस के भूखे ही रहे! फेल होने का यह भी एक मुख्य कारण है। बिना 'रोमैंटिक' नावेल की कुछ पंक्तियों की आवृत्ति किये रात को आपकी आँख नहीं लगती। संक्षेप में, आप कई विचित्र भावों के आधार, नहीं पूर्णाधार हैं। सबसे उल्लेखनीय कौतुक तो यह है कि प्राचीन काल के नामों की तरह ज्योतिर्विदों ने आपका नाम गुणानुसार ही रखा है। बिहारी सतसई के हरएक दोहे को अपने छात्र-जीवन में ही सार्थकता की चरम सीमा तक पहुँचा दिया है। कदाचित आप हिन्दी लिखना जानते होते तो बिहारी सतसई तथा अपर श्रृंगारी कवियों की कृति पर सजीव भाष्य लिख देते। फिर तो आपकी अनुदार मूर्ति से हिन्दी साहित्य का पिण्ड छुड़ाने के लिए लोग हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति के आसन पर आपको प्रतिष्ठित करके सविनय कहते ही,—खुलकर न सही, मन-ही-मन सही, कि "प्रभो, अब 'दूरमपसर', साहित्य का सत्यानास खूब किया आपने, बस अब कृपा कीजिए!"

हम लोग प्रेमपूर्ण की प्रेम-कथा सुनते-सुनते ऊब गये थे। बंकिम बाबू ने अपने उपन्यासों में किसी नायक को एक से अधिक नायिका नहीं दी, हाँ, कहीं-कहीं अशुद्ध प्रेम को विशुद्ध या विशुद्ध को अशुद्ध करने के विचार से उन्होंने एक नायक के पीछे दो-दो नायिकाओं को प्रेम के कँटीले मार्ग पर चलाया है। (कदाचित एक नायिका

के पीछे दो-दो नायकों को भी भिड़ाया है; हम इसकी कसम नहीं खाते। अस्तु।) यही हाल शेक्सपीयर का भी है। परन्तु यहाँ तो एकमात्र नायक प्रेमपूर्ण के पीछे एक नहीं, दो नहीं, तीन नहीं, अगणित नायिकाएँ! प्रेमपूर्ण के पास प्रतिदिन एक नयी नायिका की चिट्ठी आती है। ताज्जुब तो यह कि इनकी सभी नायिकाएँ पढ़ी-लिखी होती हैं। किसी के पत्र में लिखा है, आपको देखकर जी व्याकुल है; किसी के पत्र में है, रात को नींद नहीं आती—करवटें बदलते-बदलते रात पार हो गयी; किसी के पत्र में है, बिन देखे नहिं चैन। प्रेमपूर्ण से जब पूछिए, कहाँ चले यार मेरे? तब यही एक उत्तर सुनिए कि, इससे मिलने जा रहा हूँ,—उससे मिलना है,—पत्र आया है। प्रमाणस्वरूप पत्र खोलकर दिखा देते। वे कोई ऐसे-वैसे प्रेमी नहीं हैं कि मुँह छिपाते, दिल के बड़े पाक-साफ हैं। उनका अधिकांश समय इस प्रकार प्रेमिकाओं से मिलने में ही व्यतीत होता है। उनके फेल होने का यह एक गौरवपूर्ण कारण है।

आज सुबह को मैं 'माधुरी' में प्रकाशित द्विवेदीजी का एक लेख पढ़ रहा था कि प्रेमपूर्ण हाथ में चिट्ठी लिये आ पहुँचे। झुककर लेख का शीर्षक देखते ही कहा, "उँः, क्या पढ़ते हो! इस नीरस लेख में क्या रखा है। ज़रा इधर देखो यह पत्र; पढ़ो तो, वह सरस शैली है कि पढ़ते ही मुग्ध हो जाओगे।" फौरन मेरी समझ में आ गया कि यह वही नित्य की क्रिया है। मैंने झुँझलाकर कहा, "जब तक मैं इस लेख को समाप्त न कर लूँगा, तब तक तुम्हारी चिट्ठी नहीं पढ़ सकता; यह विद्वान का लेख छोड़ दूँ और तुम्हारे पत्र में 'किसके कलेजे में कटार भोंका' देखूँ, क्यों न?"

लेख समाप्त करके प्रेमपूर्ण की चिट्ठी पढ़ने लगा था। लिखा था—

जब से आपको देखा तब से जी वेहाल है। यही आशा लगी है कि आप कब मिलेंगे। लिखने को तो बहुत जी चाहता है, परन्तु ज्यादा लिखूँगी तो आप भी क्या समझेंगे। लज्जावश हृदय के भाव प्रकट न कर सकी, और प्रकट करना असम्भव भी है; आप सहृदय हैं, समझने में देर न होगी कि मैं किस हालत में हूँ। रथयात्रा के दिन बड़ा-बाजार में मिलिए। अवश्य मिलिए, नहीं तो मैं जान पर खेल जाऊँगी। तरस-तरसकर मरने से एकदम कूच कर जाना कहीं अच्छा है।

सोमवार, आषाढ़ बदी एकादशी,
1979;
29, डीयर लेन, कलकत्ता।

मैं आपकी
"तरंग"

पत्र को मैंने ध्यान से पढ़ा। मेरी दृष्टि अन्त की चार पंक्तियों में अटकी। देखकर प्रेमपूर्ण बोले, "यह सब इस देव-दुर्लभ सौन्दर्य की करामात है बच्चू, समझे?"

मैंने पूछा—और संग का असर बड़े-बड़े पर पड़ जाता है—कि, "क्योंजी, तुमने कहीं वशीकरण तो नहीं सिद्ध कर लिया! क्या बात है जो तुम्हारे पीछे स्त्रियाँ इस तरह हाथ धोकर पड़ जाती हैं? कुछ हमें भी सिखाओ,—तुम्हारा बड़ा जस मानूँगा, सच कहता हूँ।"

प्रेमपूर्ण—"क्या सिखावें! तुम्हारे चेहरे पर कहीं लावण्य का नाम भी तो हो?

तुम्हें तो देखते ही 'शुष्कं काष्ठं तिष्ठत्यग्रे' की याद आ जाती है। अगर मेरी तरह इस असार संसार में स्वच्छन्द विहार करना चाहो तो भरते जाओ रोमेंस के भाव; जब सिद्ध हो जाओगे तब तुम्हारा हृदय ही प्रेम का केन्द्र बन जायगा। फिर तो चुम्बक पत्थर लोहे को—वह कहीं भी हो—आप खींच लेगा।"

मैं—"ठीक है, तो सिद्ध कब तक हो सकूँगा ?"

प्रेमपूर्ण—"इसकी कोई मियाद नहीं। मिहनत जितनी ही करोगे मजा भी उतना ही चखोगे।"

आज रथयात्रा का दिन है। काटन स्ट्रीट की कौन कहे, सेन्ट्रल एविन्यू में भी गाड़ियों का ताँता ही ताँता देख पड़ता है। फुटपाथ न होते तो आदमियों का चलना मुश्किल था। कितने ही लोग तो केवल इसी सुभीते के कारण भीड़ की जाँच-पड़ताल और अखबारों के लिए समाचार-संग्रह करना छोड़ सरकार की भर-मुँह तारीफ करने लगे। अनेकों ने अनेकों को यह कहते सुना, 'सर्कार दयालु दानी देता है दया से दान।' इस उच्छ्वासमयी कविता को सुनते ही किसी समालोचक महोदय से न रहा गया; वे बोल उठे—'सर्कार' की जगह यदि 'सर्कर' होता तो छन्द शुद्ध उतरता,—'सर्कार' शब्द कानों को कोंचता है।

इधर प्रेमपूर्ण का और ही हाल था। पास तो उनके छदाम न था, लेकिन रोब-दाब देखिए तो लखपती की भी शान को मात करते थे। वह ट्रेंगल्कट् फैशनेबुल् वालों की बहार ! वह इलाहाबादी सिर पर लखनवी ठाटबाट से बनारसी टोपी ! आधुनिक सभ्यता के अदब से वह बैसाखी मुस्कुराहट ! नुकीली नाक पर वह चश्मा ! हरे-हरे ! हाथ में रिस्टवाच, पैरों में दिल्ली का कामदार जोड़ा ! कहाँ तक लिखें, गोया आपके चेहरे पर प्राच्य और पाश्चात्य भाव एक-दूसरे से सप्रेम आलिंगन कर रहे थे। पीछे चोटी और आगे इंगलिश फैशन ! उधर कानों के दोनों बगल के बाल नदारद और इधर मूछें हवा में हिलोरें ले रही थीं।

बेचारे ने तमाम मेला छान डाला पर कहीं कोई नहीं। किसी की मोटर निकलती,—बग्घी आती, तो आपके प्रेम-पिपासु नेत्र स्वागत के लिए बढ़ जाते। किसी महिला की मोटर किले के मैदान की ओर जाती तो आपकी मुरझायी हुई आशा की कली पर वासन्ती मलय का एक मधुर झोंका-सा लग जाता। हृदय में ध्वनि गूँज उठती—"वह आयी !" उच्छ्वास का झोंका खाकर खिला हुआ प्रेम-कुसुम प्रेमिका की सेवा में स्वीकृत होने के लिए जाता, परन्तु बदले में मिलती थी —घृणा, तिरस्कार और प्रत्याख्यान। इस तरह बेअदबी का नतीजा हाथोंहाथ मिल जाता था। परन्तु आदत तो बुरी बला होती है। दूसरे आशा इतने सहज ही क्यों छूटने लगी ? एक न हुई तो दूसरी अवश्य होगी, बस इसी विश्वास से एक दूसरी मोटर पर नजर डालते। वहाँ से भी चोट खाकर वापस आना पड़ता। यदि कलि-महाराज समय के सम्राट् न होते तो उस दिन आप पर जैसी मूसलाधार अग्निवर्षा हुई, उसे देखकर तो यही अनुमान होता है कि आप भस्म हुए बिना हरगिज न बचते। आपके बाप-दादों के बड़े भाग्य थे जो सहीसलामत घर पहुँच गये।

घर पहुँचते ही प्रेमपूर्ण मुझसे सारी विपत्तियों का बयान करने लगे। इतने में डाकिया चिट्ठी लेकर आया। एक पत्र प्रेमपूर्ण का भी था। लिफाफे के हस्ताक्षरों पर नजर पड़ते ही उनके चेहरे पर दूनी रोशनी आ गयी। मैंने पूछा, क्यों भई, क्या है जो मन-ही-मन खुश हो रहे हो ? वे वही रोमेंस की हँसी हँसकर बोले, "उसी का पत्र है, क्या लिखा है, सुनो।"

हमारे प्यारे,

मेरे भाग्य ही खोटे थे जो रथयात्रा के दिन मैं आपसे नहीं मिल सकी। क्षमा कीजियेगा। आपकी सेवा में मैंने जो पत्र भेजा था उसमें यह लिखना भूल गयी थी कि अमुक स्थान पर आपसे मैं मिलूंगी। यह मुझे तब मालूम हुआ जब मैंने आपके पत्र की दूसरी कापी देखी जो मेरे पास ही थी। अब आप मुझसे अलफ्रेड थिएटर में, फर्स्ट क्लास में, कल अवश्य मिलिए।

सोमवार, आषाढ़ सुदी तीज, 1979; आप ही की
29 डीयर लेन, कलकत्ता। "तरंग"

शाम हो गयी थी। प्रेमपूर्ण बातचीत करना भूल गये। मुझसे कहा, "अब देर न करनी चाहिए। आज 'पत्नी-प्रताप' का खेल होगा। बड़ी भीड़ होती है। जल्दी न जायँगे तो टिकट नहीं मिल सकता। आज भेंट अवश्य हो जायगी, क्यों न ?"

इन इतने प्रश्नों का एक ही उत्तर था। सो मैंने 'न' में 'हाँ' मिलाकर बेमेल का मेल पूरा कर दिया।

रात के दो बज चुके हैं। दर्वाजे की खड़खड़ाहट से मेरी नींद उचट गयी। जब किसी की सुख की नींद में बाधा पड़ती है तब विघ्नकारी चाहे परम मित्र ही हो, परन्तु इस हरकत से नवाबी की याद आती और दुश्मन का सिर काट लेने को जी चाहता है। नामर्द जमाने से तंग आकर, किसी बेगुनाह को कोसते हुए, उठा और दर्वाजे के पास जाकर पुकारा, कौन है ?

"अरे यार, मैं हूँ प्रेमपूर्ण।" आवाज बेजान थी। बस इतनी भूमिका से प्रेमपूर्ण के वियोगान्त नाटक का बहुत कुछ पता मिल गया। आखिर दर्वाजा बन्द करके मैं उन्हें अपने कमरे में ले गया। फिर तो इस विशुद्ध प्रेम के कौतूहल के आगे 'नैनन को छोड़ नींद बैरन बिदा भई'; और लगा मैं पूछने कि, आज अपनी 'तरंग' में कितने गोते लगाये ? —बहे—डूबे या सदेह बच आये ? प्रेमपूर्ण के सचिन्त मौन से यह सूचित हो रहा था कि उनकी 'तरंग' ही नहीं आयी। फिर कौन गोते लगाता ? विरक्ति के भय से मुझे ज्यादा छेड़छाड़ करने का साहस नहीं हुआ। न जाने वे अपनी उदास आशा को किन वाक्यों से और कब तक समझाते रहे।

सुबह होते ही प्रेमपूर्ण का एक पत्र और आया। पत्र किसने लिखा, इसकी बिना ढूढ़-तलाश किये ही मेरे मुँह से निकल गया, 'हो तो यार चुम्बक पत्थर, पर, लो खींच, या कि खिच आओ, लो बुला या कि खुद जाओ।' मेरी कवित्व कला में दूसरों के लिए भले ही सरसता की मात्रा न हो और वे आँखों से पढ़कर कानों से उसे बाहर निकाल दें, पर प्रेमपूर्ण तो उसे सुनते ही खिल उठे। मुझे रोमेंस की नजर से देखते

हुए उन्होंने लिफाफ का बन्द खोला। रात-भर की परेशानी और सुबह की खुमारी एक ही सिकण्ड में गायब ! प्रेम का भी अजब हाल होता है ! पत्र पर प्रेमपूर्ण की प्रीति की जो दृष्टि पड़ी उसका बयान, मैं तो तुच्छ हूँ, मेरे विचार में, चतुरानन तो क्या—हजार मुँहवाले शेषजी भी, न कर सकेंगे। पत्र में लिखा था—

प्रिय,

कल मेरे साथ मेरे बड़े भाई भी थिएटर देखने गये थे। लाचार होकर मुझे जनाना सीट में रहना पड़ा। यही कारण है कि आपसे मैं नहीं मिल सकी। क्षमा कीजियेगा। कल जगन्नाथघाट में मिलिए। मैं गंगा नहाने जाऊँगी। वहाँ मुझे कौन रोक सकता है ? दर्शन अवश्य होंगे। वहीं यह हृदयहार उपहारस्वरूप अर्पित होगा। श्री गंगाजी से बढ़कर साक्षी और कौन है ? इति शम्।

बुध, आषाढ़ सुदी 5, आपकी अनुराग-भरी
1979; "तरंग"
29, डीयर लेन, कलकत्ता।

बस फिर क्या था ! प्रेमपूर्ण के रोम-रोम से आनन्द छलक पड़ा। घाट की तैयारी होने लगी। आज उन्होंने मेरी कोई सलाह नहीं ली। चुपचाप उठकर चले गये।

लौटे तो चेहरे पर उदासी की काली घटा उमड़ रही थी। कुछ पूछने से पहले ही मालूम हो गया कि इस बार भी वार खाली गया। इस एक हफ्ते के अन्दर प्रेमपूर्ण का प्रेमकलस वियोग की विकट ज्वाला से सूखकर ठनक रहा था। शरीर सूखकर काँटा तो नहीं हुआ, पर आधा जरूर रह गया था। मौसिमे बरसात थी, वरना इस वियोगी की आह क्या न कर डालती, यह कोई महाकवि शंकरजी से पूछ ले।

डाकिया फिर चिट्ठी लेकर हाजिर हुआ। इस बार प्रेमपूर्ण का हौसला इतना पस्त हो गया था कि जान पड़ा मानो पत्र के लिए हाथ बढ़ाते हुए उन्हें शक्ति से बाहर काम लेना पड़ा। पत्र में लिखा था—

मूर्खचन्द,

जाह्नवीजी की असंख्य तरंगें देखने पर भी तुम्हें 'तरंग' की याद नहीं आयी तो न सही; पर क्या वहाँ तुम्हें चुल्लू-भर पानी भी नहीं मिला ?

आषाढ़ सुदी 6, बृहस्पति, 1979; मैं हूँ—
29, डीयर लेन, कलकत्ता। एक 'तरंग'

मैंने कहा, एक उपाय अब और करके देखो। 29, डीयर लेन, में कौन रहता है, इसका भी पता लेना चाहिए।

मेरी बात मानकर बेचारे प्रेमपूर्ण 29, डीयर लेन तक गये। वह प्रेमिकागार के बदले छात्रागार निकला जिसमें उन्हीं के सहपाठी छात्र रहते थे। सबके-सब उन्हें देखते ही हँस पड़े।

['मारवाड़ी-सुधार', मासिक, कलकत्ता, वैशाख, संवत् 1980 वि. (मई, 1929)। असंकलित]

क्या देखा

प्रेस की बगल में थाना है जहाँ शान्ति के ठेकेदार रहते हैं। हिन्दू-मुसलमानों की एकता के दृश्य कोई आँखें खोलकर देखना चाहे तो जब चाहे, हमारे पच्छिमवाले झरोखे से झाँककर देख ले। यह अनन्य प्रेम हम सुबह-शाम हमेशा देखा करते हैं। तारीफ तो यह कि वह प्रेम केवल मनुष्यों में नहीं, वहाँ के पशु-पक्षियों में भी है हिन्दुओं के पालतू कुत्ते और मुसलमानों की मुर्गियाँ भी प्रेम करती हैं। उनका द्वेषभाव बिल्कुल दूर हो गया है। वहीं पीपल के पेड़ के नीचे एक छोटे-से चबूतरे पर भगवान भूतनाथजी स्थापित हैं। चार चावल चढ़ाकर चक्रवर्ती बनने के अभिलाषी शिवजी के अनन्य भक्त हिन्दुओं में से हरएक चार-चार चवालिस तो जरूर चढ़ाता है, और श्रद्धेय शिवजी को अपने पंजों में फाँसकर––जैसे नीचेवाले पर ऊपरवाला साथ हफ्ते के सवारी कसता है, मुर्गियाँ शिवजी पर चढ़ाये चावल चुगा करती हैं और मारे आनन्द के सिर उठाकर 'कुकड़ूँकूँ' की हर्षध्वनि से हिन्दुओं को चक्रवर्ती (चक्की में पिसनेवाला) बना देने के लिए खुदा से दुआ माँगती हैं।

मुझे रात को नींद नहीं आयी। सुबह को बिस्तर पर से उठकर चारपाई की बगल में मेज के सहारे बैठा हुआ आपबीती नयी घटना पर बड़े गौर से विचार कर रहा था। वह घटना बड़ी लम्बी-चौड़ी थी, और शृंगार से वीभत्स तक प्रायः सभी रस उसमें आ गये थे। सोचने लगा—

"उसका प्रेम सच्चा है या झूठा ? उसने कहीं प्रेम की नकल तो नहीं की ? परन्तु क्यों फिर उसने अपने पीछे मर मिटनेवाले—पसीने की जगह खून की नदियाँ बहानेवाले बड़े-बड़े करोड़पतियों को उस दिन टके-सा जवाब दे दिया ? वे बेचारे अपना-सा मुँह लेकर लौट गये। अगर वह वेश्या है तो वह उसी की क्यों न हुई जिसके पास धन है ? परन्तु—यह किसी दुश्मन की कारस्तानी भी हो सकती है कि मुझे फँसाने के लिए उसने सधकर यह जाल रचा हो ? लेकिन उसकी भरी हुई आवाज में बनावट नहीं थी—त्रियाचरित्र का स्वर नहीं बज रहा था। कुछ हो, मैंने जिस शान पर स्त्री का मुँह देखने से इन्कार कर दिया है, उसे अन्त तक जरूर निभाऊँगा। बुरा हो इस साहित्य-सौन्दर्य का जिसके फेर में पड़कर कवि सुन्दर-लालजी के साथ मुझे वेश्यालय जाना पड़ा और सौन्दर्योपासना की प्रथम पूजा मैंने एक वेश्या के चरणों पर अर्पित की !"

इतने में 'कुकड़ूँकूँ' के कर्कश नाद ने कान ऐंठ-से दिये। चौंक पड़ा, विचार का सिलसिला टूट गया।

दस बजते-बजते सुन्दरलालजी की भेजी हुई एक चिट्ठी मिली। चिट्ठी उनका नौकर मेज पर रख गया था। मालूम हुआ कि चिट्ठी मेरी नहीं, उनकी है; कारण से मेरे पास भेजी गयी है। पत्र की इबारत इस तरह है—

13, न्यू स्ट्रीट, कलकत्ता
3.9.'23

प्रिय सुन्दरजी,

आज शाम को आप अपने मित्र को लेकर जरूर आइए; आपके मित्र वही जो उस दिन, बुध को, आये थे। जियादा और क्या लिखूं—

आपकी
हीरा

बस इतने ही से, पत्र के बाहरी समाचार के सिवा उसका अन्दरूनी मतलब समझ में नहीं आया। सिर पर सन्देह का भूत सवार था ही, लगा विचार की सीधी-टेढ़ी गलियाँ झाँकने। मैंने लाख प्रयत्न किये, पर इस बागी से मेरी एक न चली; और चलती भी कैसे? सवार तो वही था न? मैं तो उस वक्त किराये का टट्टू ही बन रहा था। अगर सौन्दर्योपासना की शरण लेता और उस देवी की भेंट—घड़ी-भर का मुजरा सुनना कबूल करता तो पहरों की उधेड़-बुन में पड़ा अब तक हैरान न होता; पर इज्जत का खयाल अंगद की तरह पैर जमाये रास्ता रोके हुए था। हठी मन बार-बार कह उठता था—'असम्भव क्यों है? सौन्दर्योपासना और ब्रह्मचर्य-पालन दोनों एक साथ क्यों नहीं निभ सकते?' विरोधाभास कहता था—'तो फिर चलो, सुनो मोजरा, डरते क्यों हो?—अनबूडे बूड़े तिरे जे बूड़े सब अंग।' दुश्मनों की शिकायत का खयाल और महिलाओं की मर्यादा रखने की आदत पीछे हटाते थे तो साहित्य, संगीत, कला-कौशल, रूप-लावण्य, अंगों की चारुता और मनोभावों की विशदता, सौन्दर्य का सारा परिवार लालच में फँसाकर लगाम ढीली कर देता था और बढ़ने का इशारा करता था। इस मौके पर रामायण की अच्छी-अच्छी जितनी चौपाइयाँ याद थीं, घोख डालीं, पर असर उनका कुछ न हुआ। संस्कार महाराज मन के चर्खे पर सूत-जैसा कात रहे थे, गुनगुनाहट की तरफ ध्यान नहीं दिया। अन्त को यही सूझा कि चलकर सुन्दरलालजी का सहारा माँगूं, हाथ लगा देंगे बेड़ा पार हो जायगा, नहीं तो डोंगी करवट है ही।

नंगे सिर क्वार की कड़ी धूप बरदाश्त करते हुए किसी तरह मैंने मील-भर रास्ता तै कर डाला। सुन्दरलालजी पुस्तकालय में बैठे हुए कुछ लिख रहे थे। मुझे देखते ही कलम रख दिया और मुस्कराते हुए कहा, "इतनी जल्दबाजी? अभी तो पूरे छः घण्टे और इन्तजार करना है।"

"बात क्या है सुन्दरलालजी, मेरी कुछ समझ में नहीं आता," मैं एक साँस में कह गया, "इससे मेरी ऐसी कोई जान-पहचान नहीं, क्यों वह इतना मेरे पीछे पड़ रही है। मुझे बचाइए।"

"अजी, वह बाघ है जो खा जायगी? बुलाया है तो ज़रा देर मोजरा सुन लो। इससे चरित्र में धब्बा न लग जायगा। यहाँ सभी ऐसा करते हैं और साहित्य-सेवा के लिए यह आवश्यक विषय है।"

"नहीं, आप मुझे उसके पंजे से बचाइए।"

"ढोंग न करो। न जाओ, बस। यों कालिदास से लेकर अब तक जितने अच्छे कवि हुए सबके लिए, कहते हैं, जब साहित्य की बीमारी बढ़ी दवा एक यही रही

जिससे कुछ फायदा पहुँचा। कल के छोकरे हो, साहित्य का परिणाम बाद को समझोगे।"

कुछ उत्तर देना घाव को ताजा करना था। मैं लौट गया।

ठीक समय पर सुन्दरलाल हीरा के मकान पहुँच गये। बैठक में कई कुर्सियाँ रक्खी थीं, एक पर बैठ गये। बाँदी हीरा को खबर देने के लिए लचकती हुई दूसरे कमरे में गयी। दीवार पर कई चित्र टँगे थे, प्राय: सभी हीरा के नाचते-गाते समय के। एक चित्र मर्दाने वेश का भी। सुन्दरलाल नजर गड़ाये हुए उसे देखते और अपने नोट-बुक से कुछ नोट करते रहे। जान पड़ा, कविता के लिए सामग्री संग्रह कर रहे हैं।

बाँदी से आवश्यक बातें पूछकर हीरा बाहर बैठक में आयी। सुन्दरलाल का आग्रह आँखों के रास्ते निकलकर हीरा के मुँह पर छा गया। लेकिन उसके वैमनस्य से टकराकर अलग हो गया। सुन्दरलाल के मन की कमनीय कल्पनाएँ अपनी-अपनी बारी से हीरा के स्वागत के लिए गयी, परन्तु जेठ के आगे अचानक पड़ी हुई बहू की भाँति लाज घूंघट में मुँह मूंदकर चली आयी। सुन्दरलाल पतिंगे की तरह उस आग में जलना चाहते थे, पर शीशा लगा था, घुस न सकते थे।

हीरा तीन मिनट तक चुपचाप खड़ी रही, जैसे उनके वार झेलने के लिए पहले से तैयार होकर गयी थी। समुद्र को इतना शान्त देखकर मल्लाह समझ गये कि जल्द तूफान उठनेवाला है। मेघों का गरजना बन्द हुआ, हवा धीमी पड़ी, सटे बादलों में पहले आसमान देखने का ज़रा-सा छेद नहीं रहा; लोग समझ गये, वर्षा जोरों की होगी।

"सुन्दरलालजी," इतना कहकर हीरा सँभल गयी। भीतर का भाव शब्दों से बाहर हुआ चाहता था। उसे भाव पर अधिकार रखने की आदत थी। कितने मूर्खों को सहाने के नाम से सोहनी सुनायी और इनाम लिया। सहज स्वर से पूछा, "आपके मित्र नहीं आये ?" आग्रह प्रकट हुआ, न लापरवाही। उसने सुन्दरलाल को जाँच करने का मौका भी नहीं दिया, झट पानदान से पान निकालकर पहले की तरह बनावटी भाव दिखलाते हुए, उनकी तरफ हाथ बढ़ाया। पान लेकर सुन्दरलाल अपने श्रेष्ठताभिमान में फूलकर बोले, "कहते थे, 'हम बदनामी से डरते हैं।' हम ऐसे मनुष्य को मनुष्य नहीं समझते,—मामूली पढ़ा आदमी !"

हीरा की दृष्टि का सुन्दरलाल के अंगों में कड़ा पहरा था, जैसे झूठ में सच की तलाश करना चाहती थी। उसने 'बदनामी' को ध्यान से सुना। फिर अनमनी हो गयी, थोड़ी देर के लिए।

सुन्दरलाल—"गाना कब से होगा ? अभी तो साजिन्दे भी नहीं आये।"

हीरा—"शायद आज गाना न होगा। साजिन्दे पुखराज के घर गये हैं। मेरी तबियत अच्छी नहीं। आपके मित्र ऐसे हैं, मैं जानती तो हरगिज उन्हें न बुलाती। उस दिन कहीं से भटककर आ गये थे जान पड़ता है। कहाँ रहते हैं ?"

सुन्दरलाल—"यहीं, कलकत्ते में।"

हीरा—"तो वहीं रहते होंगे जहाँ कूड़ा फेंका जाता है।" कहकर हीरा

मुस्करायी।

सुन्दरलाल—"नहीं, रहते तो बड़ी अच्छी जगह हैं, 3 ग्रे स्ट्रीट में। उनका स्वभाव ही ऐसा है।"

हीरा—"कह तो नहीं सकती, पर मेरी तबियत आज अच्छी नहीं; लेटी थी, आपके आने से उठकर चली आयी।"

सुन्दरलाल—"अच्छा-अच्छा, आप आराम कीजिए।"

सुन्दरलाल को विदा करने में हीरा की तरफ से कोई त्रुटि नहीं हो पायी। जब तक वे आँख की ओट नहीं हो गये, हीरा खिड़की के पास खड़ी रही। उनके चले जाने पर, 3 ग्रे स्ट्रीट लिख दिया।

एक अरसा गुजरा। सुन्दरलाल के मित्र बीमार पड़े थे। दो दिन से अच्छे हैं। पलँग पर बैठे विचार में गोते लगा रहे हैं—

'बीमारी के वक्त बुलाने पर भी सुन्दरलाल नहीं आये। नौकर जाता था तो बहाना बनाकर टाल देते थे। अगर नाराज हों तो वजह नहीं समझ में आती। टेढ़े पड़ने का कोई और कारण हो तो अच्छा हो लूं, फिर पूछ लूंगा। अभिन्न-हृदय मित्र, दुःख के दिनों में मुंह फेर लें, चिन्ता की बात है। परन्तु मेरी बीमारी के समय से रोज शाम को जो नौजवान सिक्ख अमरसिंह आता है, इरादे का पक्का और सच्चा मित्र जान पड़ता है। शाम को रोज डाक्टर बुला लाता था, नुस्खा लेकर बाजार से दवा ले आता था, ठीक समय पर पिलाने के लिए नौकर को कितना समझाता था और बातचीत से मेरा दिल बहलाये रहता था—कितनी खबरें सुनाता था। जान पड़ता है, संवाद-पत्र बहुत पढ़ता है। शाम हो गयी, आता होगा।'

मालिक की गम्भीर मुद्रा देखकर भजना को खबर देने की हिम्मत नहीं पड़ती थी। एक कदम बढ़ता था तो दस कदम बढ़ जाने के समय तक उसी जगह खड़ा मालिक का मुंह ताकता रहता था। दिल मजबूत करके कुछ बढ़ता था तो फिर ठिठककर ठहर जाता था। बाहर अमरसिंह आज्ञा की इतनी प्रतीक्षा नहीं कर सके। बारीक आवाज से जवांमर्दी का नारा बुलन्द करते हुए बोले, "क्यों भजना, बाबूजी सोते हैं क्या? सोते हों तो खींच ले पकड़कर चद्दर। अभी आज पथ्य दिया गया और ज़रा देर नहीं बैठे कि हाजमा न बिगड़े, लेट गये।"

इस आवाज ने चिन्ता के द्वार की जंजीर इस जोर से खटखटायी कि चिन्ता देवी को कान के सूराख से बाहर निकलना पड़ा। चौंककर मालिक ने भजना की गजेन्द्रगति देखी, बिना पूछे नहीं रहा गया—"क्यों रे, पैर रखता है या जमीन नापता है, यह अगवानी की चाल कब से सीखी?" भजना के मन में आया कहे—'जब से आपको खयाली पुलाव पकाने का शौक हुआ,' लेकिन सभ्य समाज के शिष्टाचार-पालन का उसे कुछ अभ्यास पड़ गया था, इसलिए उजड्ड आजादी के अल्फाज थूक के घूंट के साथ उसे गले के नीचे उतारने पड़े।

उसने कहा, "अमरसिंहजी देर से खड़े हैं।"

"देर से? उन्हें अब रोकना नहीं।"

अमरसिंह सिक्ख तो हैं,पर कद के उतने लम्बे नहीं । इन्हें हिन्दुस्तान के दूसरे लोग तो नहीं, पर सिक्ख जरूर बौना कहेंगे । इनके कद की लम्बाई बालों ने ले ली है । अगर सिक्ख इनसे बालिस्त-भर ऊँचे निकलेंगे, तो इनके बाल अपनी बिरादरी में सानी नहीं रखते, कम-से-कम पूरे दो हाथ ज्यादा निकलेंगे । बहादुर नौजवान के बालों के बोझ से तकलीफ मिलती है या नहीं, इसकी मैंने तहकीकात नहीं की पर यह जरूर है कि बालों पर डटे रेशमी साफे के नीचे चाँद का टुकड़ा गोरा-गोरा मुखड़ा दबता नजर आता है । साफा क्या, पूरा थान लपेट लिया है । आते ही उन्होंने पूछा, "क्यों साहब, आप कैसे हैं ?"

"अच्छा हूँ; आपको किन शब्दों में धन्यवाद दूँ ? ऐसा शब्द नहीं मिलता जिससे कृतज्ञता प्रकट करूँ; आपने मुझे सदा के लिए मोल ले लिया ।"

"रखिए तहकर । चार दिन में भूल जाइयेगा । फिर ऐसे मुँह फेर लीजियेगा जैसे कभी की पहचान न रही हो । सच कहता हूँ, अपनी इतनी उम्र में दुनिया के बहुत रंग देख चुका । आप परमात्मा के कृतज्ञ हूजिए जिनकी कृपा से खड़े हुए ।"

"परमात्मा के कृतज्ञ सभी हैं—भलाई में भी और बुराई में भी । सच पूछिए तो परमात्मा की दोहाई देना एक चाल हो गयी है, जैसे तकियाकलाम होता है । परमात्मा को किसी ने देखा नहीं, सिर्फ सुना है; सुनते-सुनते लोग संस्कार की रस्सी में बँध गये हैं और बात-बात में परमात्मा की रट बाँधते हैं । मैं इसे ऐब समझता हूँ । यों, निर्विकार ईश्वर मानना पड़ता है, पर उसे किसी की बधाई की क्या अपेक्षा और गलतियों की क्या परवा ? जहाँ भले-बुरे का प्रसंग है वहाँ परमात्मा को घसीटना अन्याय है; भले और बुरे में किसी का हाथ है तो मनुष्य का, निन्दा और प्रशंसा का पात्र मनुष्य ही बनाया जा सकता है ।"

"आप बड़े विद्वान जान पड़ते हैं । परमात्मा की बातचीत में दखल देना मेरे लिए मूर्खता का परदा-फाश करना है; पर इसमें सन्देह नहीं कि आदमी आज जो कुछ कहता है, कल उससे बदल जाता है । क्या इस विषय को लेकर आपके दर्शनकारों ने बाल की खाल नहीं निकाली ? लेकिन रहने दीजिए, आप बोलने लगते हैं तो घण्टों दम नहीं लेते । अभी आप कमजोर हैं, दिमाग में गर्मी छा जायगी । हाँ, उस दिन आपने क्या नाम बतलाया था ?—भूल गया ।"

"एक नाम भी आप बार-बार भूल जाते हैं ।"

"नाम है या संस्कृत शब्दों की पँचलड़ी ! इसलिए मैं अपने दिये नाम से आपको पुकारा करता हूँ !"

"आपका पँचलड़ी शब्द भी अच्छा रहा ! ज़रा कुछ जनानापन आ गया है !"

"आप में मर्दानापन भी है ? जनानापन की गवाही तो आपकी शक्ल देती है । आपके नाम में जितना मर्दानापन है या कहिए जैसा भारी-भरकम नाम है, वैसा ही जनानापन आपके चेहरे में लोगों को मिलता है ।"

"आप नहीं समझे, इसे लावण्य कहते हैं ।"

"लेकिन इसकी जरूरत तो स्त्रियों को होती है, मर्दों को तो जवाँमर्दी चाहिए ।"

"जवाँमर्दी से आपका मतलब कसाइयों की-सी सूरत बना लेने से तो नहीं ?

अगर ऐसा है तो आप मतलब नहीं समझे। जिसके मन में जैसी भावनाएँ होती हैं, उसका रूप वैसा ही बन जाता है। अगर मेरे चेहरे पर कठोरता के चिह्न नहीं नजर आते तो समझना चाहिए, मैं मनुष्यता के बाधक विचार नहीं किया करता, वल्कि ऐसे विचार किया करता हूँ जिसका प्रकाश मेरे चेहरे पर रहता है।''

''अच्छा, अपना नाम बताने के साथ यह भी बताने की कृपा कीजिए कि वे कैसी कमनीय कल्पनाएँ हैं जिनकी उधेड़-बुन में आपने अपनी जनानी सूरत बना डाली।''

''मेरे पिता संस्कृत के भारी पण्डित थे। उन्होंने मेरा नाम जानकीबल्लभ-शरण-बिहारी रक्खा। पर लोग मुझे बिहारी ही कहते हैं।''

''आप हैं भी बिहारी।''

''हाँ, मुझे बिहारी होने का गर्व है जैसे बंगालियों को बंगाली होने का, मद्रासियों को मद्रासी होने का,—''

''अर्थात् विशेषता कुछ नहीं रही, जैसे किसी को कुछ होने का।''

''खैर, मैं देखता हूँ, हर मनुष्य में बल्कि हर जीव में प्रेम की धारा बहती है।''

''सो तो बहती है। आप देखते हैं, इतनी ज्यादती है या कहना चाहिए, आप बिहारी हैं इसलिए खासतौर से देखते हैं।''

''गम्भीर विषय में मजाक अच्छा नहीं। मैं उसी धारा में, उसी आनन्द में डूबा रहता हूँ।''

''मुझे विश्वास नहीं। मुझे जान पड़ता है, आप झूठ कह रहे हैं। आप उस सिद्धान्त की बात करते हैं जिसका प्रमाण आप नहीं दे सके।''

''क्यों, प्रमाण पर ही तो बहस छिड़ी; प्रमाण मुँह है।''

अमरसिंह ने मुस्कराकर आँखें फेर लीं। कहा, ''इसका प्रमाण अपना मुँह नहीं हो सकता, दूसरे का हो सकता है।''

दोनों की मुस्कराती हुई आँखें एक हो गयीं।

अमरसिंह ने कहा, ''मैं आपको प्यारेलाल कहा करूँगा। बिहारी कहूँगा तो दूसरे फबतियाँ कसेंगे।''

उसी समय मेज पर निगाह गयी। एक नयी पत्रिका दिखी। उठा ली। माधुरी थी। अमरसिंह पन्ने उलटने लगे।

प्यारेलाल ने पूछा, ''माधुरी आपके यहाँ नहीं आती?''

''आती है।''

''फिर क्यों पन्ने उलट रहे हैं?''

''एक कविता निकली है, आपको दिखाने के लिए।''

''कौन-सी।''

''यह, यही तो एक कविता इस बार छपी है।''

''हाँ, बड़ी अच्छी है। मैं पढ़ चुका हूँ।'' प्यारेलाल ने अमरसिंह की खोली कविता पर निगाह डालते हुए कहा।

''कविता वियोग-श्रृंगार पद है।'' अमरसिंह ने सीधे तौर से कहा।

"नहीं, मेरा खयाल है, कवयित्री के हृदय के भाव हैं, तभी इतनी चोट करते हैं।"

"मेरी तो ऐसे रोने-धोने से सहानुभूति नहीं होती।"

"पर चीज बहुत बढ़िया बन पड़ी है। भाव बहुत सही उतरा है। शब्द की कहीं कोई फाँस नहीं। मैं एक आलोचना की दृष्टि से कहता हूँ।"

"इस मामले में मेरे आलोचक की दृष्टि आप नहीं समझते।"

"आपको व्यंग्य पसन्द है?"

"पसन्द मुझे अस्ल में सबकुछ है या कुछ नहीं। व्यंग्य पकड़ में आता भी है?"

"क्यों नहीं?"

"मैं तो देखता हूँ, नहीं आता।"

"यानी मैं व्यंग्य नहीं समझता?"

"यानी मुझे साफ-साफ कहना चाहिए कि आप सर्वज्ञ हैं।"

"नहीं सर्वज्ञता की बात नहीं, पर भले-बुरे की पहचान हो जाती है। यह रचना प्रथम श्रेणी की है।"

"अच्छा, पत्रिका मुझे दीजिए, मैं अपने एक प्रोफेसर से पूछूँगा।"

"अभी तो आपने कहा था कि आपके पास पत्रिका आती है!"

"पर मैं साथ तो नहीं ले आया? यहाँ से चलते समय प्रोफेसर साहब से मिलता जाऊँगा।"

"अर्थात् मेरी बात पर आपको विश्वास नहीं? आप क्या मालूम करना चाहते हैं—छन्द, रस, अलंकार, ध्वनि?"

"यानी आप खुद सबकुछ बतलायेंगे, पर पत्रिका नहीं देंगे।"

"अभी मैंने पूरी पढ़ी नहीं।"

"अच्छा, इसकी लेखिका हीरा कौन हैं?"

प्यारेलाल कसमसाये। अमरसिंह निगाह गड़ाये देखते रहे। कुछ देर बाद कहा, "अच्छा, पढ़ लीजिए, फिर ले जाऊँगा।"

प्यारेलाल अनमने थे। अमरसिंह विदा हुए।

कई दिनों से प्यारेलाल अच्छे हैं। शाम को अमरसिंह आते हैं, गपशप करते हैं, चले जाते हैं। प्यारेलाल अमरसिंह की सेवा की जितनी तारीफ करते थे, आजकल उनकी भोली सूरत पर उतने ही ललच पड़े हैं। अमरसिंह का चेहरा उनके दिल की तस्वीर से मिलता-जुलता है। पहले वे अमरसिंह की सेवा को जिस पवित्रता से देखते थे, अब चेहरे को उसी पवित्रता के विचार से देखते रहते हैं। उन्हें बड़ी तृप्ति मिलती है, एक प्रकार की शक्ति भी ऊपर को उठती हुई उन्हें ऊँचा उठा देती है। उन्हें यह मालूम नहीं हुआ कि इस तरह पवित्रता-दर्शन से कामना के चेहरे पर पड़ा नकाब उठता गया। वह कामना भयंकर न होकर भी भयंकर थी। उससे खतरे में पड़ने की सम्भावना थी। वह जान-बूझकर आसक्ति से मित्रता थी। उससे ब्रह्मचर्य की जड़ भी कटती थी। पर प्यारेलाल यह नहीं समझ सके। वे रूप की लालसा, सौन्दर्य के मोह को साहित्य समझे, जिससे एक दुर्बल हृदय बाहर

खिंचा आ रहा था, आँखों की राह से निकलकर एक अतृप्त अभिलाषा बाहर की वस्तु पर सिर पटक रही थी। जब दृष्टि सुन्दर से लिपटती है, तब कुत्सित से हट जाती है उसे अवज्ञा का धक्का मारती हुई। यही भ्रम है। प्यारेलाल यह नहीं समझे। वे अमरसिंह को जितनी देर के लिए पाते थे; उतनी देर तक चाह-भरी दृष्टि से उन्हें देखते रहते थे; कभी आँखों की, कभी होंठों की, कभी हृदय में अमृत घोल देनेवाली बातचीत की, और कभी प्रकृति के कोमल हाथों से सजाये उनके हर अंग से निकलते लावण्य की मन-ही-मन प्रशंसा करते थे।

कल शाम को अमरसिंह नहीं गये। न जाने का कोई कारण नहीं था। मित्रता गहरी थी। प्यारेलाल बैठे इन्तजार करते सोचते रहे, कहीं अटक गये होंगे, आते होंगे। पर दस बजे रात तक अमरसिंह नहीं गये। हताश होकर भोजन-पान करके प्यारेलाल लेटे। देर तक नींद नहीं आयी।

सुबह को अखबारवाला दैनिक स्वतन्त्र दे गया। शुरूवाले पृष्ठ पर बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा था—

"ईडन गार्डन में हत्याकाण्ड"

"एक साथ दो खून।"

"मिस्टर हाग के कलेजे में छुरी भोंकी गयी और हीरा के सिर में गोली लगी।"

हीरा नाम पढ़ते ही प्यारेलाल चौंक पड़े। बड़ी उत्सुकता मजमून पढ़ने की हुई। पढ़ने लगे। मजमून थोड़ा था। लिखा था, "मिस्टर हाग ब्रौन एण्ड कम्पनी के मैनेजर थे और हीरा 13, न्यू स्ट्रीट कलकत्ता, की प्रसिद्ध बाई। अब तक इतना ही पता चला है। खून क्यों हुआ, पुलिस इसकी तहकीकात कर रही है। स्त्री-पुरुष के खून में दोनों के चरित्र का अनुमान किया जाता है। अनुमान से बलात्कार की गवाही मिलती है, क्योंकि हीरा के हाथ में छुरी थी। विपत्ति में पड़कर, जान पड़ता है उसने छुरी चलायी। घायल होने पर, मरने से पहले, साहब ने फायर किया। तमंचा सात गोलियों का है। एक गोली छूटी, छः भरी हुई मिलीं।"

पढ़ने के साथ प्यारेलाल के सिर से पैर तक नस-नस में बिजली दौड़ने लगी। सँभलने की लाख कोशिशें कीं, पर एक न चली। समाचार की नींव पर मनगढ़न्त की तरह-तरह की दीवारें उठाते-ढहाते रहे। मुख पर भिन्न-भिन्न भाव की रेखा खिंचती रही पर कोई निश्चय नहीं होता था। उनके अपने एक भाव में मन बालक की तरह मचल रहा था। अन्तस्तल की व्यक्त और अव्यक्त, सुप्त और जाग्रत सभी प्रकार की वृत्तियाँ हीरा की मृत्यु का विरोध कर रही थीं। उभड़ते उच्छ्वास में कोई उत्तर नहीं मिल रहा था। साहब के अत्याचार पर प्यारेलाल को विश्वास हो गया। उन्होंने निश्चय किया, हीरा निर्दोष थी। रह-रहकर हीरा के आचरण से उन्हें गौरव का अनुभव होता था।

इसी समय नौकर एक खत लेकर आया। प्यारेलाल पढ़ने लगे, लिखा था—

"पत्र पाते ही मिलो। कैसा ही काम हो, छोड़कर पत्रवाहक के साथ चले आओ। अधिक और क्या ?—

तुम्हारा
अमरसिंह"

घोर घटाओं से घिरी अँधेरी रात में राह चलने के लिए चिट्ठी बिजली का काम कर गयी। लेकिन उसका कौंधना बन्द होते ही पहले से चौगुना अँधेरा आँखों के आगे छा गया।

प्यारेलाल जिस सादे पहनावे से मकान में थे उसी से चल पड़े। आगे-आगे पत्रवाहक, पीछे-पीछे प्यारेलाल। सड़कें और गलियाँ पार करते हुए न्यू स्ट्रीट पर पहुँचे! मोड़ पर न्यू स्ट्रीट पढ़कर प्यारेलाल एक दफा सन्नाटे में आ गये। फ़िर सँभलकर आगे बढ़े। फिर पत्रवाहक को हीरा के मकान के अन्दर जाते देखकर प्यारेलाल बड़े तआज्जुब में आये। कुछ समझ में नहीं आ रहा था। यन्त्र की तरह पैर रखते गये। एक दासी ऊपर से नीचे उतरी और प्यारेलाल को साथ ले गयी।

चारों ओर सन्नाटा है। कमरे में उदासी की स्याही-सी फिरी हुई है। कुल खिड़कियाँ बन्द हैं। सारी सजावट पर काली चादर का एक गिलाफ़-सा पड़ा हुआ है। कौच पर एक युवक बैठा कुछ सोच रहा है।

प्यारेलाल कमरे में गये। सन्नाटे में प्यारेलाल की पिण्डलियों में कँपकँपी छुट गयी। देह में ऐसी जड़ता समायी कि चेहरा उतर गया। प्यारेलाल को युवक ने एक दूसरे कौच पर बैठाया, फिर खुद भी बैठ गया।

प्यारेलाल—"अमरसिंह ?"

अमरसिंह– "हाँ।"

रोते हुए अमरसिंह का गला बैठ गया था। आवाज भारी थी। इसी से शोक की सूचना मिलती थी। उनके दुःख से प्यारेलाल के हृदय में सहानुभूति नहीं आयी। उन्हें सन्देह हुआ। हीरा की याद आयी। कुछ देर सोचते रहे। साँस छोड़ते समय उनके विचार की समाप्ति हो गयी, या लड़ी टूट गयी, हम नहीं कह सकते।

प्यारेलाल ने पूछा, "क्यों अमरसिंह, आज अखबार में पढ़ा, हीरा का खून कैसे हुआ ? और तुम भी यहाँ कैसे आये ? क्या हीरा से पहले की कोई जान-पहचान थी ?"

प्रश्नों में भाव-परीक्षा की तीव्र गति थी, पागल की नसों में बहती रक्तधारा की तरह प्रबल। तट पर सिर पटकती तरंगों की तरह, श्रोता के मन में सन्देह के धक्के लगते थे। अमरसिंह को समझते देर नहीं लगी। वे बोले, "प्यारेलाल! (शोक की स्याही पर थोड़ी देर के लिए आँखों के एक कोने से दूसरे तक लज्जा की लाल रेखा खिंच गयी)—ऐसे प्रश्न से तुम्हारा मतलब ?"

प्यारेलाल (सन्देह की दृष्टि से देखते हुए)—"मतलब कुछ नहीं, यों ही पूछा। क्या तुम्हें बताने में एतराज है ?"

अमरसिंह—"अब जब वह है ही नहीं तब अकारण क्यों उसका प्रसंग उठाते हो ?"

प्यारेलाल कुछ उत्तेजित हो गये। कहा, "कैसी मित्रता कि मैं तुमसे एक बात पूछूँ और तुम टालते जाओ।"

अमरसिंह—"अच्छे समय मित्रता की आड़ लेते हो। तुम्हारी मेरी मित्रता से हीरा से सम्बन्ध ? तुम्हारी मित्रता मुझसे है या हीरा से थी ?"

प्यारेलाल से कोई जवाब न दे आया।

अमरसिंह—"मैंने सिर्फ एक दृश्य दिखाने के लिए तुम्हें बुलाया था।"

प्यारेलाल—"तुम तो ऐसे बदले—"

अमरसिंह—"मैं ज़माने से अलग नहीं। ज़माना बदलता जाता है।"

प्यारेलाल—"अमरसिंह, तो क्या इस तरह मेरा अपमान करने के लिए मुझे बुलवाया था ?"

अमरसिंह—"मेरी समझ में नहीं आता कि तुम्हारा अपमान कौन-सा हो गया।"

कहकर अमरसिंह मुस्कराये। प्यारेलाल के सिर से पैरों तक आग लग गयी। झुँझलाकर बोले, "किसका कहना आँख के सामने आया—विश्वस्तं नाति विश्वसेत्।"

अमरसिंह—"यह सहजोक्ति तुम मुझ पर क्यों लाद रहे हो ? अच्छी तरह देखोगे तो अपने को इसका प्रमाण पाओगे।"

अमरसिंह मुस्कराये। मारे क्रोध के प्यारेलाल का चेहरा फिर लाल पड़ गया। गुस्से में आकर उठ पड़े और कहा, "अब मैं जाता हूँ। एक की जान गयी, और तुम्हें शर्म तो है नहीं, उसके घर पर बैठकर हँसी उड़ाते हो। तुम्हारी मित्रता का मुझे अब पता चला।"

अमरसिंह—"मैं तुम्हें धन्यवाद देता हूँ कि तुम बात के एक ही धनी निकले। क्यों साहब उस दिन मैंने कहा था कि ये बातें भूल जायँगी। मतलब निकलने के बाद लोग मुँह फेर लेते हैं।"

प्यारेलाल लज्जित हो गये। अमरसिंह ने हाथ पकड़कर उन्हें फिर बैठाला। आग्रह की कोमल दृष्टि मुख पर फेर दी। कुछ देर कमरे में सन्नाटा रहा। प्यारेलाल के हृदय में अमरसिंह और हीरा के नाम उठ-उठकर फिर खलबली मचाने लगे। एकाएक उत्तेजना बढ़ गयी। प्यारेलाल ने अमरसिंह की कलाई पकड़ ली, परन्तु फिर न जाने क्या सोचकर छोड़ दी। आज ही प्यारेलाल को आग्रह की आन्तरिक पीड़ा का अनुभव हुआ था। पूछा, "अमरसिंह, तुम यहाँ कैसे आये ? हीरा से क्या कोई पहले की जान-पहचान थी ?"

अमरसिंह—"हाँ, थी।"

किसी ने प्यारेलाल का कलेजा पकड़कर मसल दिया।

प्यारेलाल—"कैसे हुई ?"

अमरसिंह—"उस समय वह कानपुर में रहती थी।"

प्यारेलाल—"कानपुर में कहाँ ?"

अमरसिंह—"मूलगंज में।"

प्यारेलाल—"क्या करती थी ?"

प्यारेलाल की हालत ऐसी हो गयी जैसे कोई भूली बात याद कर रहे हों।

अमरसिंह—"करती क्या थी, पढ़ती-लिखती थी। इसकी एक छोटी बहन थी शान्ता। पिता मालदार थे। कलकत्ते में भी कारोबार था। कुछ दिनों बाद पिता का देहान्त हो गया। माँ लड़कियों को कलकत्ते ले आयीं। दोनों को गाना-

बजाना भी सिखाने लगीं। रूप और सम्पत्ति दोनों के लोभ में लोग इन्हें बरबाद करने की सोचने लगे। ये बड़े लोग ही थे, समाज में जिनकी इज्जत है। छोटे लोग इनके आज्ञाकारी थे। यहाँ का इतिहास संक्षेप में समाप्त करता हूँ। इनकी माँ की भी अकाल मृत्यु हुई। सम्पत्ति नष्ट हो गयी। हीरा के लिए धनिकों के जाल बिछने लगे। मुसीबत-पर-मुसीबत का सामना उसे करना पड़ा। उसने अपनी इज्जत बचायी। पर रोटियों के सवाल से बचाव नहीं हुआ। उसने परवा नहीं की। गाना-बजाना जानती थी। नेक लड़की की तरह गाना गाकर रोटियाँ कमाने लगी। उसके बूढ़े उस्ताद उसके चरित्र के गवाह हैं और उसे मुसीबत से दिनों में राह दिखाते और बचाते भी रहे हैं। शान्ता की पढ़ाई जारी रही। वह बेथून कालेज की छात्रा थी।"

अमरसिंह का गला भर आया। आँखों से आँसू टपकने लगे। प्यारेलाल कुछ समझ नहीं सके कि शान्ता के प्रसंग से अमरसिंह रोने क्यों लगे। पूछा, "छात्रा थी तो क्या अब पढ़ना छोड़ दिया है? बहन की इस घटना में उसे बड़ी चोट पहुँची होगी। क्या उसे मैं देख सकता हूँ?"

"नहीं।" आँसू पोंछते हुए अमरसिंह ने कहा, "आपको कुछ देर बाद सही हाल मालूम हो जायँगे। मैंने एक पत्र आपके लिए लिख रक्खा है। अपने डेरे चलकर पढ़ियेगा और मेरी आज की अस्वाभाविकता के लिए क्षमा कीजियेगा।"

यह कहकर अमरसिंह ने एक पत्र प्यारेलाल को दिया। पत्र पढ़ने की उत्सुकता से प्यारेलाल जल्द-जल्द विदा हुए। अपने डेरे पहुँचने से पहले ही खोलकर पढ़ने लगे। लिखा था—

"प्यारेलाल,

मैं अपने को कृतार्थ समझती हूँ कि तुम मुझे चाहते हो। यहाँ तुम जिस अमरसिंह से मिले वह मैं हूँ। वहाँ तुमसे जो अमरसिंह मिलते थे वह शान्ता थी। दम निकलते समय शान्ता ने घर के पते के साथ मेरा नाम कहा था। मतलब वह मेरे मकान में रहता है। आगे अपना नाम और बाकी बातें कह नहीं सकी। बोल बन्द हो गया। संवाद-पत्र की खबर के बाद मुझें देखकर तुम चौंकोगे, सन्देह करोगे, इसलिए दुःख से मुझे अमरसिंह के कपड़े पहनने पड़े। कल संवाद-पत्र में सही खबर छप जायगी।

तुम्हारी हीरा"

['मतवाला', साप्ताहिक, कलकत्ता, के 20 अक्तूबर, 27 अक्तूबर, 1 दिसम्बर, 8 दिसम्बर और 15 दिसम्बर, 1923 के अंकों में पाँच किस्तों में प्रकाशित। **सुकुल की बीवी** में संकलित]

पद्मा और लिली

पद्मा के चन्द्र-मुख पर षोडश कला की शुभ्र चन्द्रिका अम्लान खिल रही है। एकान्त कुंज की कली-सी प्रणय के वासन्ती मलयस्पर्श से हिल उठती, विकास के लिए व्याकुल हो रही है।

पद्मा की प्रतिभा की प्रशंसा सुनकर उसके पिता ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट पण्डित रामेश्वरजी शुक्ल उसके उज्ज्वल भविष्य पर अनेक प्रकार की कल्पनाएँ किया करते हैं। योग्य वर के अभाव से उसका विवाह अब तक रोक रक्खा है। मैट्रिक परीक्षा में पद्मा का सूबे में पहला स्थान आया था। उसे वृत्ति मिली थी। पत्नी को, योग्य वर न मिलने के कारण विवाह रुका हुआ है, शुक्लजी समझा देते हैं। साल-भर से कन्या को देखकर माता भविष्य-शंका से काँप उठती हैं।

पद्मा काशी-विश्वविद्यालय के कला-विभाग में दूसरे साल की छात्रा है। गर्मियों की छुट्टी है, इलाहाबाद घर आयी हुई है। अबके पद्मा का उभार, उसका रूप-रंग, उसकी चितवन-चलन-कौशल-वार्तालाप पहले से सभी बदल गये हैं। उसके हृदय में अपनी कल्पना से कोमल सौन्दर्य की भावना, मस्तिष्क में लोकाचार से स्वतन्त्र अपने उच्छृंखल आनुकूल्य के विचार पैदा हो गये हैं। उसे निस्संकोच चलती-फिरती, उठती-बैठती, हँसती-बोलती देखकर माता हृदय के बोलवाले तार से कुछ और ढीली तथा बेसुरी पड़ गयी हैं।

एक दिन सन्ध्या के डूबते सूर्य के सुनहले प्रकाश में, निरभ्र नील आकाश के नीचे, छत पर, दो कुर्सियाँ डलवा माता और कन्या गंगा का रजत-सौन्दर्य एकटक देख रही थीं। माता पद्मा की पढ़ाई, कॉलेज की छात्राओं की संख्या, बालिकाओं के होस्टल का प्रबन्ध आदि बातें पूछती हैं, पद्मा कहती है, हाथ में हाल की निकली स्ट्रैंड मैगजीन की एक प्रति। तस्वीरें देखती जाती है। हवा का एक हलका झोंका आया, खुले रेशमी बाल, सिर से साड़ी को उड़ाकर, गुदगुदाकर, चला गया।

"सिर ढक लिया करो, तुम बेहया हुई जाती हो।" माता ने रुखाई से कहा।

पद्मा ने सिर पर साड़ी की जरीदार किनारी चढ़ा ली, आँखें नीची कर किताब के पन्ने उलटने लगी।

"पद्मा!" गम्भीर होकर माता ने कहा।

"जी!" चलते हुए उपन्यास की एक तस्वीर देखती हुई नम्रता से बोली।

मन से अपराध की छाप मिट गयी, माता की वात्सल्य-सरिता में कुछ देर के लिए बाढ़-सी आ गयी, उठते उच्छ्वास से बोली, "कानपुर में एक नामी वकील महेशप्रसाद त्रिपाठी हैं।"

"हूँ"···एक दूसरी तस्वीर देखती हुई।

"उनका लड़का आगरा-युनिवर्सिटी से एम. ए. में इस साल फर्स्ट क्लास फर्स्ट आया है।"

"हूँ," पद्मा ने सिर उठाया। आँखें प्रतिभा से चमक उठीं।

"तेरे पिताजी को मैंने भेजा था, वह परसों देखकर लौटे हैं। कहते थे, लड़का

हीरे का टुकड़ा, गुलाब का फूल है। बातचीत दस हजार में पक्की हो गयी है।"

"हूँ," मोटरकी आवाज पा पद्मा उठकर छत के नीचे देखने लगी। हर्ष से हृदय में तरंगें उठने लगीं। मुस्किराहट दबाकर आप ही में हँसती हुई चुपचाप बैठ गयी।

माता ने सोचा, लड़की बड़ी हो गयी है, विवाह के प्रसंग से प्रसन्न हुई है। खुलकर कहा, "मैं बहुत पहले से तेरे पिताजी से कह रही थी, वह तेरी पढ़ाई के विचार में पड़े थे।"

नौकर ने आकर कहा, "राजेन बाबू मिलने आये हैं।"

पद्मा की माता ने एक कुर्सी डाल देने के लिए कहा। कुर्सी डालकर नौकर राजेन बाबू को बुलाने नीचे उतर गया। तब तक दूसरा नौकर रामेश्वरजी का भेजा हुआ पद्मा की माता के पास आया। कहा, "जरूरी काम से कुछ देर के लिए पण्डितजी जल्द बुलाते हैं।"

ज़ीने से पद्मा की माता उतर रही थीं, रास्ते में राजेन्द्र से भेंट हुई। राजेन्द्र ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया। पद्मा की माता ने कन्धे पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया और कहा, "चलो, पद्मा छत पर है, बैठो, मैं अभी आती हूँ।"

राजेन्द्र जज का लड़का है, पद्मा से तीन साल बड़ा, पढ़ाई में भी।

पद्मा अपराजिता बड़ी-बड़ी आँखों की उत्सुकता से प्रतीक्षा में थी, जब से छत से उसने देखा था।

"आइए, राजेन बाबू कुशल तो है?" पद्मा ने राजेन्द्र का उठकर स्वागत किया। एक कुर्सी की तरफ बैठने के लिए हाथ से इंगित कर खड़ी रही। राजेन्द्र बैठ गया, पद्मा भी बैठ गयी।

"राजेन, तुम उदास हो!"

"तुम्हारा विवाह हो रहा है?" राजेन्द्र ने पूछा।

पद्मा उठकर खड़ी हो गयी। बढ़कर राजेन्द्र का हाथ पकड़कर बोली, "राजेन, तुम्हें मुझ पर विश्वास नहीं? जो प्रतिज्ञा मैंने की है, हिमालय की तरह उस पर अटल रहूँगी।"

पद्मा अपनी कुर्सी पर बैठ गयी। मैगज़ीन खोल उसी तरह पन्नों में नजर गड़ा दी। ज़ीने से आहट मालूम दी।

माता निगरानी की निगाह से देखती हुई आ रही थीं। प्रकृति स्तब्ध थी। मन में वैसी ही अन्वेषक चपलता।

"क्यों बेटा, तुम इस साल बी. ए. हो गये?" हँसकर पूछा।

"जी हाँ।" सिर झुकाये हुए राजेन्द्र ने उत्तर दिया।

"तुम्हारा विवाह कब तक करेंगे तुम्हारे पिताजी, जानते हो?"

"जी नहीं।"

"तुम्हारा विचार क्या है?"

"आप लोगों से आज्ञा लेकर विदा होने के लिए आया हूँ, विलायत भेज रहे हैं पिताजी।" नम्रता से राजेन्द्र ने कहा।

"क्या बैरिस्टर होने की इच्छा है?" पद्मा की माता ने पूछा।

"जी हाँ।"

"तुम साहब बनकर विलायत से आना और साथ एक मेम भी लाना, मैं उसकी शुद्धि कर लूँगी।" पद्मा हँसकर बोली।

आँखें नीची किये राजेन्द्र भी मुस्किराने लगा।

नौकर ने एक तश्तरी पर दो प्यालों में चाय दी—दो रक़ाबियों पर कुछ बिस्कुट और केक। दूसरा एक मेज उठा लाया। राजेन्द्र और पद्मा की कुर्सी के बीच रख दी, एक धुली तौलिया ऊपर से बिछा दी। सासर पर प्याले तथा रकाबियों पर बिस्कुट और केक रखकर नौकर पानी लेने गया, दूसरा आज्ञा की प्रतीक्षा में खड़ा रहा।

"मैं निश्चय कर चुका हूँ, जबान भी दे चुका हूँ। अबके तुम्हारी शादी कर दूँगा।" पण्डित रामेश्वरजी ने कन्या से कहा।

"लेकिन मैंने भी निश्चय कर लिया है, डिग्री प्राप्त करने से पहले विवाह न करूँगी।" सिर झुकाकर पद्मा ने जवाब दिया।

"मैं मैजिस्ट्रेट हूँ बेटी, अब तक अक्ल की ही पहचान करता रहा हूँ, शायद इससे ज्यादा सुनने की तुम्हें इच्छा न होगी।" गर्व से रामेश्वरजी टहलने लगे।

पद्मा के हृदय के खिले गुलाब की कुल पंखड़ियाँ हवा के एक पुरजोर झोंके से काँप उठीं। मुक्ताओं-सी चमकती हुई दो बूंदें पलकों के पत्रों से झड़ पड़ीं। यही उसका उत्तर था।

"राजेन जब आया, तुम्हारी माता को बुलाकर मैंने ज़ीने पर नौकर भेज दिया था, एकान्त में तुम्हारी बातें सुनने के लिए।···तुम हिमालय की तरह अटल हो, मैं भी वर्तमान की तरह सत्य और दृढ़।" रामेश्वरजी ने कहा, "तुम्हें इसलिए मैंने नहीं पढ़ाया कि तुम कुल-कलंक बनो।"

"आप यह सब क्या कह रहे हैं?"

"चुप रहो। तुम्हें नहीं मालूम? तुम ब्राह्मण-कुल की कन्या हो, वह क्षत्रिय-घराने का लड़का है—ऐसा विवाह नहीं हो सकता।" रामेश्वरजी की साँस तेज चलने लगी, आँखें भौंहों से मिल गयीं।

"आप नहीं समझे मेरे कहने का मतलब।" पद्मा की निगाह कुछ उठ गयी।

"मैं बातों का बनाना आज दस साल से देख रहा हूँ। तू मुझे चराती है? वह बदमाश···!"

"इतना बहुत है। आप अदालत के अफसर हैं! अभी-अभी आपने कहा था, अब तक अक्ल की पहचान करते रहे हैं, यह आपकी अक्ल की पहचान है! आप इतनी बड़ी बात राजेन्द्र को उसके सामने कह सकते हैं? बतलाइए, हिमालय की तरह अटल सुन लिया, तो इससे आपने क्या सोचा?"

आग लग गयी, जो बहुत दिनों से पद्मा की माता के हृदय में सुलग रही थी।

"हट जा मेरी नजरों से बाहर, मैं समझ गया।" रामेश्वरजी क्रोध से काँपने लगे।

"आप गलती कर रहे हैं, आप मेरा मतलब नहीं समझे, मैं भी बिना पूछे हुए बतलाकर कमजोर नहीं बनना चाहती।"

पद्मा जेठ की लू में झुलस रही थी, स्थल पद्म-सा लाल चेहरा तमतमा रहा था। आँखों की दो सीपियाँ पुरस्कार की दो मुक्ताएँ लिये सगर्व चमक रही थीं।

रामेश्वरजी भ्रम में पड़ गये। चक्कर आ गया। पास की कुर्सी पर बैठ गये। सिर हथेली से टेककर सोचने लगे। पद्मा उसी तरह खड़ी दीपक की निष्कम्प शिखा-सी अपने प्रकाश में जल रही थी।

"क्या अर्थ है, मुझे बता।" माता ने बढ़कर पूछा।

"मतलब यह, राजेन को सन्देह हुआ था, मैं विवाह कर लूंगी—यह जो पिताजी पक्का कर आये हैं, इसके लिए मैंने कहा था कि मैं हिमालय की तरह अटल हूँ, न कि यह कि मैं राजेन के साथ विवाह करूँगी। हम लोग कह चुके थे कि पढ़ाई का अन्त होने पर दूसरी चिन्ता करेंगे।" पद्मा उसी तरह खड़ी सीधे ताकती रही।

"तू राजेन को प्यार नहीं करती ?" आँख उठाकर रामेश्वरजी ने पूछा।

"प्यार ? करती हूँ।"

"करती है ?"

"हाँ, करती हूँ।"

"बस, और क्या ?"

"पिता···!"

पद्मा की आबदार आँखों से आँसुओं के मोती टूटने लगे, जो उसके हृदय की कीमत थे, जिनका मूल्य समझनेवाला वहाँ कोई न था।

माता ने ठोड़ी पर एक उँगली रख रामेश्वरजी की तरफ देखकर कहा, "प्यार भी करती है, मानती भी नहीं, अजीब लड़की है।"

"चुप रहो।" पद्मा की सजल आँखें भौंहों से सट गयीं, "विवाह और प्यार एक बात है ? विवाह करने से होता है, प्यार आप होता है। कोई किसी को प्यार करता है, तो वह उससे विवाह भी करता है ? पिताजी जज साहब को प्यार करते हैं, तो क्या इन्होंने उनसे विवाह भी कर लिया है ?"

रामेश्वरजी हँस पड़े।

रामेश्वरजी ने शंका की दृष्टि से डॉक्टर से पूछा, "क्या देखा आपने डॉक्टर साहब ?"

"बुखार बड़े जोर का है, अभी तो कुछ कहा नहीं जा सकता। जिस्म की हालत अच्छी नहीं, पूछने से कोई जवाब भी नहीं देती। कल तक अच्छी थी, आज एकाएक इतने जोर का बुखार, क्या सबब है ?" डॉक्टर ने प्रश्न की दृष्टि से रामेश्वरजी की तरफ देखा।

रामेश्वरजी पत्नी की तरफ देखने लगे।

डॉक्टर ने कहा, "अच्छा, मैं एक नुस्खा लिखे देता हूँ, इससे जिस्म की हालत अच्छी रहेगी। थोड़ी-सी बर्फ मँगा लीजियेगा। आइस-बैग तो क्यों होगा आपके यहाँ ? एक नौकर मेरे साथ भेज दीजिए, मैं दे दूंगा। इस वक्त एक सौ चार डिग्री

बुखार है। बर्फ डालकर सिर पर रखियेगा। एक सौ एक तक आ जाय, तब जरूरत नहीं।"

डॉक्टर चले गये। रामेश्वरजी ने अपनी पत्नी से कहा, "यह एक दूसरा फसाद खड़ा हुआ। न तो कुछ कहते बनता है, न करते। मैं कौम की भलाई चाहता था, अब खुद ही नकटों का सिरताज हो रहा हूँ। हम लोगों में अभी तक यह बात न थी कि ब्राह्मण की लड़की का किसी क्षत्रिय-लड़के से विवाह होता। हाँ, ऊँचे कुल की लड़कियाँ ब्राह्मणों के नीचे कुलों में गयी हैं। लेकिन, यह सब आखिर कौम ही में हुआ है।"

"तो क्या किया जाय ?" स्फारित, स्फुरित आँखें, पत्नी ने पूछा।

"जज साहब से ही इसकी बचत पूछूँगा। मेरी अक्ल अब और नहीं पहुँचती। ···अरे छीटा !"

"जी !" छीटा चिलम रखकर दौड़ा।

"जज साहब से मेरा नाम लेकर कहना, जल्द बुलाया है।"

"और भैया बाबू को भी बुला लाऊँ ?"

"नहीं-नहीं।" रामेश्वरजी की पत्नी ने डाँट दिया।

जज साहब पुत्र के साथ बैठे हुए वार्तालाप कर रहे थे। इंग्लैण्ड के मार्ग, रहन-सहन, भोजन-पान, अदब-क़ायदे का बयान कर रहे थे। इसी समय छीटा बँगले पर हाजिर हुआ, और झुककर सलाम किया। जब साहब ने आँख उठाकर पूछा, "कैसे आये छीटाराम ?"

"हुजूर को सरकार ने बुलाया है, और कहा है, बहुत जल्द आने के लिए कहना।"

"क्यों ?"

"बीबी रानी बीमार हैं, डॉक्टर साहब आये थे, और हुजूर···" बाकी छीटा ने कह ही डाला था।

"और क्या ?"

"हुजूर···" छीटा ने हाथ जोड़ लिये। उसकी आँखें डबडबा आयीं।

जज साहब बीमारी कड़ी समझकर घबरा गये ! ड्राइवर को बुलाया। छीटा चल दिया। ड्राइवर नहीं था। जज साहब ने राजेन्द्र से कहा, "जाओ, मोटर ले आओ। चलें, देखें, क्या बात है।"

राजेन्द्र को देखकर रामेश्वरजी सूख गये। टालने की कोई बात न सूझी। कहा, "बेटा, पद्मा को बुखार आ गया है, चलो, देखो, तब तक मैं जज साहब से कुछ बातें करता हूँ।"

राजेन्द्र उठ आया। पद्मा के कमरे में एक नौकर सिर पर आइस-बैग रक्खे खड़ा था। राजेन्द्र को देखकर एक कुर्सी उसने पलँग के नजदीक रख दी।

"पद्मा !"

"राजेन !"

पद्मा की आँखों से टप-टप गर्म आँसू गिरने लगे। पद्मा को एकटक प्रश्न की दृष्टि से देखते हुए राजेन्द्र ने रूमाल से उसके आँसू पोंछ दिये।

सिर पर हाथ रक्खा, सिर जल रहा था। पूछा, "सिर-दर्द है?"

"हाँ, जैसे कोई कलेजा मसल रहा हो।"

दुलाई के भीतर से छाती पर हाथ रक्खा, बड़े जोर से धड़क रही थी।

पद्मा ने पलकें मूँद लीं, नौकर ने फिर सिर पर आइस-बैग रख दिया।

सिरहाने थरमामीटर रक्खा था। झाड़कर, बॉडी के बटन खोल राजेन्द्र ने आहिस्ते से बगल में लगा दिया। उसका हाथ बगल से सटाकर पकड़े रहा। नजर कमरे की घड़ी की तरफ थी।

निकालकर देखा, बुखार एक सौ तीन डिग्री था।

अपलक चिन्ता की दृष्टि से देखते हुए राजेन्द्र ने पूछा, "पद्मा, तुम कल तो अच्छी थीं, आज एकाएक बुखार कैसे आ गया?"

पद्मा ने राजेन्द्र की तरफ करवट ली, कुछ न कहा।

"पद्मा, मैं अब जाता हूँ।"

ज्वर से उभरी हुई बड़ी-बड़ी आँखों ने एक बार देखा, और फिर पलकों के पर्दे में मौन हो गयीं।

अब जज साहब और रामेश्वरजी भी कमरे में आ गये।

जज साहब ने पद्मा के सिर पर हाथ रखकर देखा, फिर लड़के की तरफ निगाह फेरकर पूछा, "क्या तुमने बुखार देखा है?"

"जी हाँ, देखा है।"

"कितना है?"

"एक सौ तीन डिग्री।"

"मैंने रामेश्वरजी से कह दिया है, तुम आज यहीं रहोगे। तुम्हें यहाँ से कब जाना है?—परसों न?"

"जी।"

"कल सुबह बतलाना घर आकर, पद्मा की हालत कैसी रहती है। और रामेश्वरजी, डॉक्टर की दवा करने की मेरे खयाल से कोई जरूरत नहीं।"

"जैसा आप कहें।" सम्प्रदान-स्वर से रामेश्वरजी बोले।

जज साहब चलने लगे। दरवाजे तक रामेश्वरजी भी गये। राजेन्द्र वहीं रह गया। जज साहब ने पीछे फिरकर कहा, "आप घबराइए मत. आप पर समाज का भूत सवार है।" मन-ही-मन कहा, 'कैसा बाप और कैसी लड़की!'

तीन साल बीत गये। पद्मा के जीवन में वैसा ही प्रभात, वैसा ही आलोक भरा हुआ है। वह रूप, गुण, विद्या और ऐश्वर्य की भरी नदी, वैसी ही अपनी पूर्णता से अदृश्य की ओर, वेग से बहती जा रही है। सौन्दर्य की वह ज्योति-राशि स्नेह-शिखाओं से वैसी ही अम्लान स्थिर है। अब पद्मा एम. ए. क्लास में पढ़ती है।

वह सभी कुछ है, पर वह रामेश्वरजी नहीं हैं। मृत्यु के कुछ समय पहले उन्होंने पद्मा को एक पत्र लिखा था, "मैंने तुम्हारी सभी इच्छाएँ पूरी की हैं, पर

अभी तक मेरी एक भी इच्छा तुमने पूरी नहीं की। शायद मेरा शरीर न रहे, तुम मेरी सिर्फ एक बात मानकर चलो—राजेन्द्र या किसी अपर जाति के लड़के से विवाह न करना। बस।"

इसके बाद से पद्मा के जीवन में आश्चर्यकर परिवर्तन हो गया। जीवन की धारा ही पलट गयी। एक अद्भुत स्थिरता उसमें आ गयी। जिस जाति के विचार ने उसके पिता को इतना दुर्बल कर दिया था, उसी जाति की बालिकाओं को अपने ढंग पर शिक्षित कर, अपने आदर्श पर लाकर पिता की दुर्बलता से प्रतिशोध लेने का उसने निश्चय कर लिया।

राजेन्द्र बैरिस्टर होकर विलायत से आ गया। पिता ने कहा, "बेटा, अब अपना काम देखो।" राजेन्द्र ने कहा, "ज़रा और सोच लूं, देश की परिस्थिति ठीक नहीं।"

"पद्मा!" राजेन्द्र ने पद्मा को पकड़कर कहा।

पद्मा हँस दी। "तुम यहाँ कैसे राजेन?" पूछा।

"बैरिस्टरी में जी नहीं लगता पद्मा, बड़ा नीरस व्यवसाय है, बड़ा बेदर्द। मैंने देश की सेवा का व्रत ग्रहण कर लिया है, और तुम?"

"मैं भी लड़कियाँ पढ़ाती हूँ—तुमने विवाह तो किया होगा?"

"हाँ, किया तो है।" हँसकर राजेन्द्र ने कहा।

पद्मा के हृदय पर जैसे बिजली टूट पड़ी, जैसे तुषार की प्रहत पद्मिनी क्षण-भर में स्याह पड़ गयी। होश में आ, अपने को सँभालकर कृत्रिम हँसी रँगकर पूछा, "किसके साथ किया?"

"लिली के साथ।" उसी तरह हँसकर राजेन्द्र बोला।

"लिली के साथ।" पद्मा स्वर में काँप गयी।

"तुम्हीं ने तो कहा था—विलायत जाना और मेम लाना।"

पद्मा की आँखें भर आयीं।

हँसकर राजेन्द्र ने कहा, "यही तुम अँगरेजी की एम. ए. हो? लिली के मानी?"

[‘सुधा’, मासिक, लखनऊ, फरवरी, 1930। लिली में संकलित]

ज्योतिर्मयी

"मानती रहें, चूंकि आप ही लोगों ने, आप ही के बनाये हुए शास्त्रों ने, जो हमारे प्रतिकूल हैं, हमें जबरन् गुलाम बना रक्खा है; कोई चारा भी तो नहीं-—कैसी बात है !" कमल की पंखड़ियों-सी उज्ज्वल बड़ी-बड़ी आँखों से देखती हुई, एक सत्रह साल की, रूप की चन्द्रिका, भरी हुई युवती ने कहा।

"नहीं, पतिव्रता पत्नी तमाम जीवन तपस्या करने के पश्चात् परलोक में अपने पति से मिलती है।" सहज स्वर से कहकर युवक निरीक्षक की दृष्टि से युवती को देखने लगा।

युवती मुस्किरायी—तमाम चेहरे पर सुर्खी दौड़ गयी। सुकुमार गुलाब के दलों-से लाल-लाल होंठ ज़रा बढ़े, मर्मरोज्जवल मुख पर प्रसन्न-कौतुकपूर्ण एक ज्योतिश्चक्र खोलकर यथास्थान आ गये।

"वाक्ये का दरिद्रता !" युवती मुस्किराती हुई बोली, "अच्छा बतलाइए तो, यदि पहले ब्याही स्त्री इसी तरह स्वर्ग में अपने पूज्यपाद पति-देवता की प्रतीक्षा करती हो, और पतिदेव क्रमशः दूसरी, तीसरी, चौथी पत्नियों को मार-मारकर प्रतीक्षार्थ स्वर्ग भेजते रहें, तो खुद मरकर किसके पास पहुँचेंगे ?" युवती खिल-खिला दी।

युवक का चेहरा उतर गया।

"आपने इस साल एम. ए. पास किया है, और अँगरेजी में। वहाँ पतिव्रता स्त्रियों की शायद पत्नीव्रत पुरुषों से ज्यादा जीवनियाँ आपने याद कीं !" युवती ने वार किया।

युवक बड़े भाई की ससुराल गया था। युवती उसी की विधवा छोटी साली है।

"आपने कहाँ तक पढ़ा है ?" युवक ने जानना चाहा।

"सिर्फ हिन्दी और थोड़ी-सी संस्कृत जानती हूँ।" डब्बे को नजदीक लेकर युवती पान लगाने लगी।

"मैं इतना ही कहता हूँ, आपके विचार समाज के तिनके के लिए आग हैं।" ताज्जुब की निगाह देखते हुए युवक ने कहा।

"लेकिन मेरे भी हृदय के मोम के पुतले को गलाकर बहा देने, मुझसे जुदा कर देने के लिए समाज आग है, साथ-साथ यह भी कहिए।" उँगली चूनादानी में, बड़ी-बड़ी आँखों की तेज निगाह युवक की तरफ फेरकर युवती ने कहा, "मैं बारह साल की थी, ससुराल नहीं गयी, जानती भी नहीं, पति कैसे थे, और विधवा हो गयी !" कई बूंद आँसू कपोलों से बहकर युवती की जाँघ पर गिरे। आँचल से आँखें पोंछ लीं, पान लगाने लगी।

"तम्बाकू खाते हैं आप ?" युवती ने पूछा।

"नहीं।" युवक के दिल में सन्नाटा था। इतनी बड़ी, इतने आश्चर्य की, इतनी खतरनाक बात आज तक किसी विधवा युवती की ज़बान से उसने नहीं सुनी। वह

जानता था, यह सब अखबारों का आन्दोलन है। इस तरह की कल्पना भी उसने कभी नहीं की। कारण, वह कान्यकुब्जों के एक श्रेष्ठ कुल में पैदा हुआ था। युवती की बातों से घबरा गया।

"लीजिए।" युवती ने कई बीड़े दिये।

"आप बुरा मत मानियेगा, मैं आपको देख रही थी कि आप कितने दर्दमन्द हैं!" युवती ने साधारण आवाज में कहा।

युवक ने पान ले लिये, पर लिये ही बैठा रहा। "खाइए", युवती ने कहा, "आपसे एक बात पूछूं?"

"पूछिए।"

"अगर आपसे कोई विधवा-विवाह करने के लिए कहे?" युवती मुस्किरायी।

"मैं नहीं जानता, यह तो पिताजी के हाथ की बात है।" युवक झेंप गया।

"अगर पिताजी की जगह आप ही अपने मुख्तार आप होते?"

संकुचित होकर, फिर हिम्मत बाँधकर युवक ने कहा, "मुझे विधवा-विवाह करते हुए लाज लगती है।"

युवती, मनोभावों को दबाकर, छलछलायी आँखों चुप रही। एक बार उसी तरह युवक को देखा, फिर मस्तक झुका लिया।

दूसरे दिन युवक घर चलने लगा। मकान की जेठी स्त्रियों के पैर छुए। इधर-उधर आँखें युवती की तलाश करती रहीं। वह न मिली। युवक दोमंजिले से नीचे उतरा। देखा, दरवाजे के पास खड़ी वह उसी की राह देख रही है। युवक ने कहा, "आज्ञा दीजिए, अब जा रहा हूँ।" हाथ जोड़कर युवती ने प्रणाम किया। एक पत्र युवक को देकर कहा, "जल्द दर्शन दीजिएगा।" युवक के हृदय में एक अज्ञात प्रसन्नता की लहर उठी। उसने देखा, नील पलकों के पंखों से युवती की आँखें अप्सराओं-सी आकाश की ओर उड़ जाना चाहती हैं, जहाँ स्नेह के कल्प-वसन्त में मदन और रति नित्य मिले हैं, जहाँ किसी भी प्रकार की निष्ठुर श्रृंखला नवोन्मेष को झुका नहीं सकती, जहाँ प्रेम ही आँखों में मनोहर चित्र, कण्ठ में मधुर संगीत, हृदय में सत्यनिष्ठ भावना और रूप में खूबसूरत आग है।

युवक ने स्नेह के मधुर कण्ठ से, सहानुभूति की ध्वनि में कहा, "ज्योती!"

युवती निस्संकोच कुछ कदम आगे बढ़ गयी। युवक के बिल्कुल नजदीक, एक तरह सटकर, खड़ी हो गयी। सिर युवक की ठोढ़ी के पास, आँखें आँखों में मिली हुई। वस्त्र के स्पर्श से शिराओं में एक ऐसी तरंग बह चली, जिसका अनुभव आज तक उनमें किसी को न हुआ था। अंगों से आनन्द के परमाण निकलते रहे। आँखों में नशा छा गया।

"फिर कहूँगा।" युवक लजाकर चल दिया।

"याद रखिएगा—आपसे इतनी ही कर-बद्ध प्रार्थना···" युवक दृष्टि से ओझल हो गया।

"पिघलकर पत्थर भी उस पत्र को पढ़ने पर बह जाता है वीरेन!" विजय ने सहानुभूति के शब्दों में वीरेन्द्र से कहा।

"दिल के तुम इतने कमजोर हो। नष्ट होते हुए एक समाजक्लिष्ट जीवन का उद्धार तुम नहीं कर सकते विजय ? तुम्हारी शिक्षा क्या तुम्हें पुरानी राह का सीधा-साधा एक लद्दू बैल करने के लिए हुई है ?" वीरेन्द्र ने चित्य भर्त्सना के शब्दों में कहा।

"पिताजी से कुछ बस नहीं वीरेन, उनके प्रतिकूल कोई आचरण मैं न कर सकूँगा। पर आजीवन—आजीवन मैं सोचूँगा कि दुर्बल समाज की सरिता से एक बहते हुए निष्पाप पुष्प का मैं उद्धार नहीं कर सका, खास तौर से इसलिए कि मुझे उसने तैरना नहीं सिखलाया।"

"तुम्हें एक दूसरी सामाजिक शिक्षा से तैरना मालूम हो चुका है।"

"हाँ, हो चुका है, पर केवल तैरते रहना, फिर किनारे पर लगना नहीं; सब घाट हमारे समाज द्वारा अधिकृत हैं, और केवल तैरते रहना मनुष्य के लिए असम्भव है।"

"तुम कूल पर आ सकते हो।"

"पर उस फूल को लेकर नहीं, तब समाज के किसी भी घाट पर नहीं जा सकता, और केवल कूल इतना बीहड़ है कि मेरे थके हुए पैर वहाँ जम नहीं सकते, वहाँ दृष्टियों का ताप इतना प्रखर है कि वह फूल मुरझा जायगा, मैं भी झुलस जाऊँगा।"

"तो सारांश यह कि तुम उस पावन-मूर्ति अबला का, जिसने तुम्हें बढ़कर प्यार किया—मित्र समझकर गुप्त हृदय की व्यथा प्रकट कर दी, उस देवी का समाज के पंक से उद्धार नहीं कर सकते ?"

"देखो, मेरा हृदय अवश्य उसने छीन लिया है, पर शरीर पिताजी का है, वीरेन, मैं यहाँ दुर्बल हूँ।"

"कैसी वाहियात बात ! कितनी बड़ी आत्मप्रवंचना है यह ! विजय, हृदय शरीर से अलग भी है ? जिसने तुम पर क्षण-मात्र में विजय प्राप्त कर ली, उसने तुम्हारे शरीर को भी जीत लिया है। अब उसका तिरस्कार परोक्ष अपना ही है। समाज का धर्म तो उसके लिए भी था---क्या फूटे हुए बरतन की तरह वह भी समाज में एक तरफ निकालकर न रख दी जाती ? क्या उसने यह सब नहीं सोच लिया ?"

"उसमें और-और तरह की भी भावनाएँ होंगी।"

"और-और तरह की भावनाएँ उसमें होतीं, तो वह तुम्हारे भाई की ससुराल-वालों के सगर्व मुखों पर अच्छी तरह स्याही पोतकर अब तक कहीं चली गयी होती, समझे ? वह समझदार है। और, तुम्हारे सामने जो इतना खुली है, इसका कारण काम नहीं, यथार्थ ही तुम्हें उसने प्यार किया है। अच्छा, उसका पता तो बताओ।"

वीरेन्द्र ने नोट-बुक निकालकर पता लिख लिया। फिर विजय से कहा, "तुम मेरे मित्र हो, वह मेरे मित्र की प्रेयसी है !"

दोनों एक दूसरे को देखकर हँसने लगे।

इस घटना को कई महीने बीत चुके। अब भाई की ससुराल जाने की कल्पना-मात्र

से विजय का कलेजा काँप उठता, संकोच की सर्दी तमाम अंगों को जकड़ लेती, संकल्प से उसे निरस्त हो जाना पड़ता है। उसकी यह हालत देख-देखकर वीरेन्द्र मन-ही-मन पश्चात्ताप करता, पर तब से फिर किसी प्रकार की इच्छा-दबाव उस पर उसने नहीं डाला। विजय इलाहाबाद-युनिवर्सिटी में रिसर्च-स्कॉलर है। वीरेन्द्र बी. ए. पास कर लेने के पश्चात् वहीं अपना कारोबार देखने में रहता है। वह इटावे के प्रसिद्ध रईस नागरमल-भीखमदास-फर्म के मालिक मंसाराम अग्रवाल का इकलौता लड़का है।

महीने के लगभग हुआ, वीरेन्द्र इटावे चला गया है, चलते समय विजय से बिदा होकर गया था।

इधर भी, तीन-चार दिन हुए, घर से पत्र द्वारा विजय को बुलावा आया है। जिला उन्नाव, मौजा बीघापुर विजय की जन्म-भूमि है।

उसके पिता अच्छी साधारण स्थिति के मनुष्य हैं, माँझगाँव के मिश्र, कुलीन कान्यकुब्ज। विवाह अधिक दहेज के लोभ से उन्होंने रोक रक्खा था। अब तक जितने सम्बन्ध आये थे, तीन हजार से अधिक कोई नहीं दे रहा था। अब के एक सम्बन्ध आया हुआ है, उसकी तरफ विजय के पिता का विशेष झुकाव है। ये लोग मुरादाबाद के बाशिंदे हैं। पन्द्रह दिन पहले ही विजय की जन्म-पत्रिका ले गये थे। विवाह बनता है, इसलिए दुबारा पक्का कर लेने को कन्या-पक्ष से कोई आया हुआ है। विजय के पिता और चचा मकान के भीतर आपस में सलाह करते हैं।

"दादा, लेकिन एक पै तो है, ये सनाढ्य ब्राह्मण हैं, ऐसा फिर न हो कि कहीं के भी न रहें।"

"तुम भी; मारो गोली; हमको रुपये से मतलब; हमारे पास रुपया है, तो भाई-बन्द, जात-बिरादरीवाले सब साले आवेंगे; नहीं तो कोई लोटे-भर पानी को न पूछेगा।"

"तो क्या राय है ?"

"विवाह करो, और क्या ?"

"सात हजार से आगे नहीं बढ़ता।"

"घर घेरे बैठा है, देखते नहीं ? धीरे-धीरे दुहो; लेकिन शिकार न निकल जाय।"

"अब फँसा है, तो क्या निकलेगा।"

"डर कौन—बारात में घर के चार जन चले चलेंगे। कहेंगे, दूर है, खर्चा नहीं मिला।"

"वही खर्चा यहाँ करके खिला दिया जाय—है न ?"

"ठीक है।"

"बस, यही ठीक है।"

विजय के पिता पं. गंगाधर मिश्र और चचा पं. कृष्णशंकर रक्त-चन्दन का टीका लगाये, रुद्राक्ष की माला पहने, खड़ाऊँ खटपटाते दरवाजे-चौपाल में, नेवाड़ के पलँग पर, धीर-गम्भीर मुद्रा से, सिर झुकाये हुए, आकर बैठ गये। एक मूँज की

चारपाई पर कन्या-पक्ष के पं. सत्यनारायण शर्मा मिर्ज़ई पहने, पगड़ी बाँधे बैठे हुए थे। मिश्रजी को देखकर पूछा, "तो क्या आज्ञा देते हैं मिश्रजी ?"

पण्डित गंगाधर ने पं. कृष्णशंकर की ओर इशारा करके कहा, "बातचीत इनसे कीजिए। मकान-मालिक तो यह हैं।"

पं. सत्यनारायण ने पं. कृष्णशंकर की ओर देखा।

"बात यह है पण्डितजी कि दहेज बहुत कम मिल रहा है। आप सोचें कि अब तक सात-आठ हजार रुपया तो लड़के की पढ़ाई में ही लग चुका है। लखनऊ के वाजपेयी आये थे, हमारा-उनका सम्बन्ध भी है, छ हजार देते थे, पर हमने इनकार कर दिया। अब हमको खर्च भी पूरा न मिला, तो लड़के को पढ़ाकर हमने फायदा क्या उठाया ? इस सम्बन्ध में (इधर-उधर झाँककर) हमें कुछ मिला भी नहीं, तो इतना गिरकर···"

"अच्छा, तो कहिए, क्या चाहते हैं आप ?"

"पन्द्रह हजार।"

"तब तो हमारे यहाँ बरतन भी साबित न रहेंगे।"

"अच्छा, तो आप कहिए।"

"नौ हजार लीजिए।"

"अच्छा, बारह हजार में पक्का।"

पं. सत्यनारायण अपनी अधारी सँभालने लगे।

"ग्यारह हजार देते हैं आप ?" पं. कृष्णशंकर ने उभरकर पूछा।

"दस हजार सही, बताइए।"

"अच्छा, पक्का; मगर पाँच हजार पेशगी।"

पं. सत्यनारायण ने कागज, स्टाम्प और हजार-हजार के पाँच नोट निकालकर कहा, "लीजिए, आप दोनों इसमें दस्तखत कीजिए। पहले लिखिए, पं. सत्यनारायण, मुरादाबाद की कन्या से श्रीयुत विजयकुमार मिश्र एम्. ए. के विवाह-सम्बन्ध में, जो दस हजार में मय गवहीं और गौने के खर्च के पक्का हुआ है, कन्या के पिता से पाँच हजार पेशगी नकद वसूल पाया, फिर स्टाम्प पर वल्दियत के साथ दस्तखत कीजिए।"

पण्डित गंगाधर गद्गद हो गये। लिखा-पढ़ी हो गयी। विवाह का दिन स्थिर हो गया।

तिलक चढ़ गया। तिलक के पहले समय तक विजय को ज्योतिर्मयी की याद आती रही। पर नवीन विवाह के प्रसंग से मन बँट गया। फिर धीरे-धीरे, जैसा हुआ करता है, वह स्मृति भी चित्त के अतल-स्पर्श को चली गयी। अब विजय को उसके चरित्र पर रह-रहकर शंका होने लगी है। सोचता है, बुरा फँस गया था, बच गया। सच कहा है, 'स्त्रियश्चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं दैवो न जानाति कुतो मनुष्यः ?'

अब नयी कल्पनाएँ उसके मस्तिष्क में उठने लगी हैं। एक अज्ञात, अपरिचित मुख को जैसे केवल कल्पना के बल से प्रत्यक्ष कर लेना चाहता है, और इस चेष्टा में सुख भी कितना ! इतना कभी उसे नहीं मिला। इस अज्ञात रहस्य में वह ज्योतिर्मयी की अम्लान छवि एक प्रकार भूल ही गया।

विजय ने विवाह के उत्सव में मिलने के लिए वीरेन्द्र को लिखा था, पर उसने उत्तर दिया कि 'मैं तो विजय का ही मित्र हूँ, किसी पराजय का नहीं; इस विवाह में मैं शरीक न हो सकूंगा।'

जैसा पहले से निश्चय था, जल्दबाजी का बहाना कर पं. गंगाधर ने जाने-जाने रिश्तेदारों को छोड़कर और किसी को न बुलाया। इसी कारण ज्योतिर्मयी के यहाँ निमन्त्रण न पहुँच सका। इधर भी जहाँ कहीं न्योता गया, वहाँ से कुछ ही लोग आये। कारण, सन्देह की हवा बह चुकी थी।

बारात चली। लखनऊ में वीरेन्द्र से विजय की मुलाकात हुई। वीरेन्द्र ने पूछा, "यार, तुम तो ज्योतिर्मयी को भूल ही गये, इतने गल गये इस विवाह में!"

"बात यह है कि इस तरह की स्त्रियाँ समाज के काम की नहीं होतीं।"

"अरे, तुमने तो स्वर भी बदल दिया!"

"क्या किया जाय?"

"और जहाँ विवाह करने जा रहे हो, यही बड़ी सती-सावित्री निकलेगी, इसका क्या प्रमाण मिला है?"

"क्वारी और विधवा में फर्क है भाई!"

"यह मानता हूँ।"

"कुछ संस्कृति का भी खयाल रखना चाहिए। संस्कृति से ही सन्तति अच्छी होती है।"

"अरे, तुम तो पूरे पण्डित हो गये!"

"अपने कुल का सबको खयाल रहता है--केतहु काल कराल परै, पै मराल न ताकहिं तुच्छ तलैया।"

"अच्छा!"

"जी हाँ।"

"तब तो, जी चाहता है, तुम्हारे साथ मैं भी चलूं।"

"चलो, मैंने तो तुम्हें लिखा भी था, पर तुम दुनिया की वास्तविकता का विचार तो करते नहीं, विचारों की दीवारें उठाया-गिराया करते हो।"

"अच्छा भई, अब वास्तविकता का आनन्द भी ले लें। कहो, कितने गिनाये?"

"दस हजार।"

"दस हजार! उसके मकान में लोटा तो मजबूत न छोड़ा होगा?"

"कान्यकुब्ज कुलीन हैं।"

"वे कोई मामूली कान्यकुब्ज होंगे?"

"बहुत मामूली नहीं, 17 बिस्वे मर्यादवाले हैं।"

"हूँ।" वीरेन्द्र सोचने लगा। 'तुमसे घृणा हो गयी है। जाओ, अब नहीं जाऊँगा। तुम इतने नीच हो!'

वीरेन्द्र शहर की ओर चला गया। बारात मुरादाबाद चली।

विवाह हो गया। पं. सत्यनारायण शर्मा ने वर-यात्रियों का हृदय से स्वागत-सम्मान किया। खोरे में पाँच हजार नकद दिये और कन्या को पाँच हजार का जेवर ऊपर

से बनवा दिया। विजय को सोने की चेन, जेब-घड़ी, रिस्ट-वाच, साइकिल, अँगूठी और कुछ और सामान देकर खुश किया।

बड़ा-छोटा 'बड़हार' हो गया। चतुर्थी के बाद कन्या के साथ बारात बिदा हुई।

वर-कन्या के लिए पं. सत्यनारायणजी ने एक सेकण्ड-क्लास-कम्पार्टमेण्ट पहले से रिजर्व्ड करा रक्खा था, और लोगों के लिए इण्टर-क्लास अलग।

पं. सत्यनारायण हाथ जोड़कर पं. गंगाधर और कृष्णशंकर आदि से बिदा हुए। कन्या से कहा, "बेटी, वहाँ पहुँचकर अपने समाचार जल्द देना।" गाड़ी छूट गयी।

प्रणय से विजय का चित्त चपल हो उठा। अब तक जिस अदेख मुख पर असंख्यों कल्पनाएँ उसने की हैं, उसे देखने को यह कितना शुभ, सुन्दर अवसर मिला। उसने पिता को, ससुर को, समाज को भरे आनन्द के छलकते हृदय से बार-बार धन्यवाद दिया। साथ युवती बहू का घूंघट उठा चन्द्रमुख को देखने की चकोर-लालसा प्रबल हो उठी। डाकगाड़ी पूरी रफ्तार से जा रही है।

विजय उठकर बहू के पास चलकर बैठा। सर्वांग काँप उठा। घूँघट हटाने के लिए हाथ उठाया। कलाई काँपने लगी। उस कम्पन में कितना आनन्द है। रोएँ-रोएँ के भीतर से आनन्द की गंगा बह चली।

विजय ने बहू का घूंघट उठाया, त्रस्त होकर चीख उठा, "ऐं! तुम हो?"

"विवाह का यही सुख है!" ज्योतिर्मयी की आँखों से घृणा मध्याह्न की ज्वाला की तरह निकल रही थी। 'छिः! मैंने यह क्या किया! यह वही विजय—संयत, शान्त, वही विजय है? ओह! कैसा परिवर्तन! इसके साथ अब अपराधी की तरह, सिकुड़कर घर के एक कोने में मुझे सम्पूर्ण जीवन पार करना होगा। इससे मेरा वैधव्य शतगुण, सहस्र-गुण अच्छा था! वहाँ कितनी मधुर-मधुर कल्पनाओं में पल रही थी! वीरेन्द्र, तुम्हारे-जैसा सिंह पुरुष ऐसे स्यार का भी साथ करता है? तुमने इधर डेढ़ महीने से मेरे लिए कितना दुःख, कितना कष्ट, मुझे और अपने इस अधम मित्र को सुखी करने के विचार से, स्वीकार किया! 18 हजार खर्च किये! तुम्हारे मैनेजर—सत्यनारायण—मेरे कल्पित पिता—वह देवताओं का निर्मल परिवार।' ज्योतिर्मयी मन-ही-मन और कितना न-जाने क्या-क्या, सोच रही थी।

विजय ने पूछा, "तुम वहाँ कैसे गयीं?"

"वीरेन्द्र से पूछना।" ज्योतिर्मयी ने कहा।

ज्योतिर्मयी मिश्र-खानदान में मिल गयी है, पर वीरेन्द्र फिर विजय से नहीं मिला।

['सुधा', मासिक, लखनऊ, मार्च, 1930। **लिली में संकलित**]

कमला

कमला सोलहवें साल की अधखुली धुली कलिका है। हृदय का रस अमृत-स्नेह से भरा हुआ, खुली नावों-सी आँखें चपल लहरों पर अदृश्य प्रिय की ओर परा और अपरा की तरह बही जा रही हैं।

गत वर्ष कमला का पाणि-ग्रहण-संस्कार हो चुका है। पर मकान की प्रथा के अनुसार बारात के साथ वह विदा नहीं हुई। अभी पति केवल ध्यान का विषय है, ज्ञान का नहीं। अभी सिर्फ सुन्ती, सोचती और मन-ही-मन प्यार करती है।

कमला के पति पण्डित रमाशंकर वाजपेयी आज दोपहर के समय आये हुए हैं। टेढ़ा के रहनेवाले, भाई के जनेऊ में कुछ दिनों के लिए बिदा करा ले जायेंगे। पिता ने भेजा है।

पण्डित रमाशंकर के आने की खबर गाँव-भर की युवतियों में तेजी से फैल गयी। कमला की सहेलियाँ उसके घर महफिल के विचार से चलीं। माता बहाने से दूसरे के घर चली गयी। हँसी-मजाक, दिल्लगी गूँजने यगी। वाजपेयी जनान-खाने में ही आराम कर रहे हैं। दिन का पिछला पहर, तीन का समय है। सखियाँ पान लगाकर देतीं, बुझौवल-कहानियों के लटके कहतीं, अर्थ पूछती हैं। वाजपेयी-जी अर्थ जानते हैं या नहीं, नहीं मालूम; जवाब नहीं देते; न झेंपकर झेंपते हैं। "कहाँ तक पढ़े हैं आप ?" "कुछ तिरिया-चरित्तर भी सीखा है ?" "आपकी बहन का नाम ?" उत्तर की प्रतीक्षा के बिना प्रश्न होते रहे। वाजपेयीजी के क्षुद्र घट में एक साथ इतना आदि-रस नहीं अट सका। जी उकताने लगा। उधर, वाजपेयी-जी का वैसा भरा-पूरा मुँह देखकर रस का सागर उमड़ता गया। छिपने के इरादे उठकर वह बाहर की तरफ चले, तो कमला से कुछ छोटी रिश्ते की उसकी एक बहन ने फुर्ती से हाथ पकड़कर कहा, "लो, मेरे पान तो अभी आपने खाये ही नहीं; मैं आपकी बहन लगती हूँ (खुलकर हँसी)। देखिए, दीदी और आप एक हैं। दीदी की मा आपकी मा हैं, तो दीदी की बहन ?"···"आपकी बहन हुई।" तीन-चार सहेलियाँ हँसती हुई एक साथ कह उठीं। वाजपेयीजी ने पान ले लिये, लजाये हुए बाहर चले गये।

कमला रामपुर रहती है, छोटा भाई उन्नाव अँगरेजी-स्कूल में पढ़ता है। पिता का देहान्त हो गया है। पिता पण्डित रामेश्वरजी त्रिपाठी, अहमदाबाद में कपड़े की दूकान करते थे। इसी से कुछ धन एकत्र कर लिया था। कमला कभी-कभी माता के साथ अहमदाबाद जाया करती थी। शिक्षा हिन्दी की मिलती थी। पर मराठी और गुजराती बालिकाओं में रहने के कारण उन भाषाओं पर भी कुछ दखल पा गयी है। तीनों भाषाएँ पढ़ लेती, तीनों में पत्र लिख लेती है। पिता की मृत्यु के बाद उसका विवाह हुआ। माता ने अच्छा घर, पढ़ा-लिखा वर देखकर विवाह किया। दहेज में तीन हजार रुपये दिये। कमला के पति पण्डित रमाशंकर अँगरेजी के एम. ए. हैं। इसी साल परीक्षा दी है, अभी फल नहीं निकला।

कमला के पड़ोस में कई घर उनके खानदान के हैं। मकान के मालिक पण्डित शिवरामजी से कमला के पिता की न बनती थी। इसका एक कारण था। कमला की माता गरीब कान्यकुब्ज की लड़की थी। बीस साल तक अविवाहित बैठी रही। पिता का देहान्त हो चुका था। माता के पास इतना धन न था कि लड़की की शादी बराबरवाले घर में कर देतीं। कमला के पिता कल्याण-भार्य थे। विना दहेज लिये उन्होंने कन्या की माता को ऋण-मुक्त किया। यह बात उनके खानदान के आदमियों को अच्छी न लगी। इसका एक दूसरा कारण था। कमला के ननिहालवाले भैया-चार कमला की नानी को गरीबी के कारण छोड़े हुए थे कि खान-पान रखने से लड़की की शादी करानी पड़ेगी। अलग होने के कारण भी उन लोगों ने गढ़ लिये थे, जिनमें कमला की नानी और कुमारी माता के चाल-चलन में फर्क मुख्य था। यह सुनकर कमला के पिता-पक्ष के भैयाचार विवाह के समय से अब तक कमला की माता से कोई तअल्लुक नहीं रखते। कमला के विवाह के समय भी नहीं गये। विवाह हो जाने पर वाजपेयीजी से शिकायत करने की ताक लगाये बैठे। सोचा था, कमला का जीवन बरबाद कर देंगे।

रात एक पहर बीत चुकी। पण्डित रमाशंकर भोजन कर चुके। ऊपर के कोठे पर पलँग बिछा दिया गया था, वहीं लेटे हुए हैं। कमला की माता और कमला का भी भोजन हो चुका।

कमला को अनेक प्रकार की सीख दे, पान और पानी लेकर पति की पद-सेवा के लिए भेजकर, ईश्वर-स्मरण करती हुई माता नीचे अपनी चारपाई पर लेट रहीं।

कमला के मन में माता की शिक्षा, मस्तिष्क में पति-सेवा, आँखों में एकनिष्ठ अचल ज्योति, होंठों पर लाज से मधुर मन्द मुसकान—कपोलों तक चक्राकृति फैलती हुई, आत्मा में मृदु प्रणय-भय, पदों में भूषणों की विजय-शिंजन। ज़ीने की एक-एक कली पर पैर रखती, रति की मधुर झंकृति रमाशंकर के भीतर एक-एक कमल खिला देती है।

आकाश के चाँद का फूल पृथ्वी पर ज्योतिर्मय परिमल भर रहा है। कोठे के झरोखों से किरणें, अदृश्य अप्सराओं-सी, दो सुहृदयों को प्राथमिक प्रणय के दृढ़ पाश में बँधते हुए देखकर हँसती हुई चली जाती हैं। हवा नीम के फूलों की भीनी महक से दोनो को मौन-स्नेह में ढककर बह रही है। हृदय के रत्नाकर ने आज ही विष्णु को लक्ष्मी दी, लक्ष्मी को विष्णु।

कमला ने जल-भरा ढक्कनदार लोटा और गिलास रख दिया। डिब्बे से निकालकर रमाशंकर को पान दिये। पलकें झुकाये पलँग के एक ओर खड़ी रही। जहाँ कमला का यथार्थ स्थान था—रमाशंकर का स्नेहमय प्रदेश—वहाँ से उस प्रान्त में जहाँ रमाशंकर कमला की स्मृति में चमक रहा था, प्रतिध्वनि हुई, "बैठो।" स्वप्न-संचलित कमला पैरों की तरफ बैठ गयी, दबाने के लिए अपनी तरफवाला दाहना पैर पकड़ लिया, दबाने लगी। झरोखे से चाँद सीधे मुख पर पड़ रहा था, तमाम पलँग चाँदनी से जगमग।

कमला पैर दबा रही है, रमाशंकर एकाएक उस अर्द्धस्फुट कली की नवल

मुख-कान्ति पान कर रहा है। प्रति शिरा एक नये जीवन से मजबूत, उसे अपनी ही दृढ़ता से स्खलित कर दूर, बहुत दूर, सौन्दर्य के उस अपरिचित लोक में पतंग की तरह उड़ा ले गयी। आज तक के बन्द अनेक रहस्य-द्वार उस किरणमयी के सौन्दर्य के जादू से गुलशब्बो की तरह खुल-खुल गये। उसी के प्रकाश से पथ देखता हुआ वह कहाँ-कहाँ हो आया।

कमला को थकी हुई जान यथासमय रमाशंकर उठकर बैठ गया। बड़े स्नेह से हाथ पकड़ चाँद की तरफ बैठा लिया। पैर लटकाये मुक्त-ज्योत्स्ना कलित अकल आकाश देखते हुए, एक दूसरे का हाथ लिये दोनों चुपचाप बैठे रहे। खुले हुए हृदय ने कमला का संकोच दूर कर दिया। प्रणय का मौन स्पर्श दोनो के हृदय को पुलकित करता रहा। भाषा आप बन्द हो गयी, जैसे शक्ति की चंचलता हो।

मौन स्थिति में रहने की अनिच्छा या परिवर्तन ने दोनो को सृष्टि की चपलता —वाक्य-कलाप, कलियों में उभाड़ दिया।

अनेक बातें हुईं, अनेक विशृंखल परिणय-प्रसंग छिड़े, रमाशंकर की उतनी बड़ी विद्वत्ता ने कमला को वार्तालाप की बराबर जगह दी, और निस्संकोच कमला उसके सामने ही वाक्पटु रही।

वह रात दोनो को जागते, तरह-तरह गपशप लड़ाते हुए कटी। वह जागरण की रात्रि भविष्य के जीवन की चिर-स्मरण रात्रि बन गयी। चिड़ियों की चहक सुनकर दोनो ने देखा, रात पार हो रही है।

कमला के हृदय में रमाशंकर का कहा हुआ एक वाक्य हमेशा के लिए रह गया, "तुम्हारे विना मेरे जीवन का अर्थ ही क्या ?"

उसी रोज दिन में करीब ग्यारह बजे एक नाई रमाशंकर के पास खबर लेकर पहुँचा। एकान्त में बुलाकर कहा, "चुपचाप चले चलिए। मालिक ने कहा है, बिदा कराने की जरूरत नहीं, और इसी दम बुला भेजा है !"

रमाशंकर के होश उड़ गये, कुछ देर सोचकर पूछा, "इसका कोई कारण भी है ?"

"हाँ, बिदा कराने पर भैयाचार और नातेदार छोड़ देंगे। बहुत बड़ी बात है। घर चलकर मालूम कीजिए।"

रमाशंकर एक पेड़ की तरफ कुछ कदम बढ़ गया। कहा, "तुमको जो कुछ मालूम हो कहो।"

नाई ने मुँह बनाकर कहा, "भैया, अब घर में सब समझ लीजिएगा। बड़े घरों की बात कौन कहे ?"

रमाशंकर का दिल बैठ गया, फिर अदम्य आग्रह से भर गया। उसने कहा, "हम कहते हैं, संकोच छोड़कर कहो।"

नाई लाचार, जमीन पर नजर गड़ाये कहने लगा, "कल यहाँ के कुछ लोग, इन्हीं के भैयाचार, गाँव गये थे। जगनू बापू, रामकिशोर चाचा, भगवानदीन दादा वगैरा (ये सब रमाशंकर के भैयाचार हैं, जो जुदा रहते हैं) को अलग बुलाकर कहा है कि लड़की काम की नहीं है। कानपुर में किसी मुसलमान···"

रमाशंकर क्षोभ से काँपने लगा। कमला पर क्रोध आ गया।

नाई कहता गया, "अब भैयाचार, नातेदार, सबको मालूम हो गया है। सबकी राय है कि आप चले चलें, फिर जैसा होगा, किया जायगा। आपकी सास का चाल-चलन अच्छा नहीं, न मायके में अच्छा रहा। सब भैयाचार छोड़े हुए हैं।"

रमाशंकर सोचता रहा। विषय कोई न था, केवल चिन्ता और क्रोध था, जिसका अर्थ था कि स्त्री-जाति कैसी छल से भरी होती है!

प्यार रमाशंकर को बहुत दूर ले गया था। अब हृदय के टुकड़े-टुकड़े हुए जा रहे थे, पर प्रमाण की उसे जरूरत न थी। प्यार प्रमाण नहीं चाहता।

रमाशंकर मकान गया, चुपचाप अपना छोटा सन्दूक उठाकर चल दिया। उसकी सास उस समय कार्य से बाहर थीं।

कमला खड़ी थी। भोली दृष्टि से देखती रही। रमाशंकर सिर झुकाये हुए चला गया।

विना बिदा कराये रमाशंकर का चला जाना सखियों तथा गाँव के लोगों में कमला तथा उसकी माता का बहुत बड़ा अपमान हुआ। सखियाँ कमला के आँसू पोंछतीं, उसे ढाढ़स देती थीं। कुछ दिनों में उसके भैयाचारों की स्त्रियों से उन्हें हाल मालूम हो गया, और उसकी माता भी समाचार पा गयी।

कमला कारण सुनकर सूख गयी। यह बात बिलकुल झूठी थी। कानपुर में वह अपनी मौसी के यहाँ थी, उसी समय एक रात वहाँ चोरी हुई थी, जिसका अर्थ भैयाचारों ने अपनी तरफ से इतना बढ़ा लिया था, और विवाह हो जाने के बाद यह जौहर खेलने का इरादा किये बैठे थे। कमला की माता की दशा थोड़े ही दिनों में शोचनीय हो गयी; कमला भी हवा में डोलने-सी लगी।

गर्मी की छुट्टी हुई। कमला का भाई राजकिशोर घर आया। बालक घर की दशा देखकर बहुत घबराया। गाँव के लोग उसे साथ ले वाजपेयीजी के यहाँ चलने लगे। कमला ने रोक दिया। माता को सोचते-सोचते और फाके करते-करते कमजोरी से बुखार आ गया। क्रमशः कफ से फेफड़े जकड़ गये, हालत चिन्ताजनक हो गयी।

एक दिन बालक राजकिशोर ने गाँव में चर्चा सुनी, और उदास होकर, माता के पास जाकर कहा, "अम्मा, वाजपेयी जीजा का दूसरा विवाह हो रहा है। रामअधीन चाचा आज बातचीत करते थे। कोई डिप्टी-कलक्टर फतेहपुर के हैं, उनकी लड़की के साथ।" कमला खड़ी थी।

माता ने सुना, आँखों में आँसुओं की धारा बँध गयी। बोलने की रही-सही क्षीण शक्ति भी जाती रही। उसी सजल दृष्टि से कमला को पड़ी हुई देखती रही।

कमला भी इस ग्रीष्म में मरु-निर्झरी-सी अल्प जल हो रही है! माता की दशा देखकर, सिरहाने बैठकर सिर पर हाथ फेरने लगी, बरबस आँखों से आँसू टपकने लगे।

यह कष्ट माता से न सहा गया, उसी रात उनका देहान्त हो गया। गाँव के अपर लोगों की मदद से लाश गंगा पहुँचायी गयी। राजकिशोर ने दाह किया।

विवाह के लिए रमाशंकर की इच्छा न थी। उसकी चोट ताजी थी। हृदय बैठ गया था। कमला को वह इतना प्यार कर चुका था कि अब विवाह की तरफ से बिलकुल वीतराग हो रहा था। मन उड़ा फिरता था। हृदय में जगह न थी, था दर्द, जहाँ उसे केवल कष्ट मिलता था। गाँव में कोई और उसका साथी भी न था, सिर्फ बगीचे थे।

डिप्टी-कलक्टर के छोटे भाई वर की तलाश में आये थे। लड़का बहुत पसन्द आया। विवाह पक्का कर गये। रमाशंकर ने पिता की आज्ञा स्वीकार कर ली।

एक रात की बात है। रमाशंकर सो रहा था। स्वप्न में देखा कमला बगल में खड़ी है, आँखों से आँसू जारी हैं। उठकर बैठ गया। वह मूर्ति उसकी दृष्टि में लीन हो गयी।

कमला की मौसी खबर पाकर आयी, उसे अपने पास कानपुर ले गयी। कुल क्रिया हो चुकी थी। राजकिशोर उन्नाव से सार्टीफिकेट लेकर कानपुर में भर्ती हो गया।

दिन, सप्ताह, मास, क्रम-क्रम से, जीवन की पूर्ति के रूप से, एकमात्र भाई के स्नेह में, बीतने लगे। कमला का चित्त भी पूर्व-स्थिति के विस्तार को संकुचित करता हुआ अपनी ही हद में आ गया! दुख का वह रूप नैराश्य के तम में लीन हो अब केवल सुप्ति की तरह जीवन की शान्ति में परिवर्तित हो गया है। अब उसे कोई इच्छा नहीं, उसके प्राणों में कोई रंग नहीं; है केवल तपस्या, जिस पर एक हिन्दू-महिला विश्वास की डोर पकड़े हुए अपना कुल जीवन निछावर कर देती है।

पति के प्रति कमला का काम ही क्रोध उभाड़ सकता था, मोह में बदलकर जीवन को कलंकित कर सकता था, पर अब उसका निशान तक न रहा। वह अपनी कुल-प्रथा के अनुसार एक सौभाग्यवती की तरह व्रत-उपवास आदि तथा देवताओं को प्रणाम कर पति तथा भाई की कल्याण-कामना किया करती है। श्रृंगार में केवल सेंदुर उसे तृप्त कर रखने के लिए है।

एक सीने की मशीन उसने खरीद ली है। रूमाल, कमीज, कुर्ते आदि सीती, कभी कपड़ों पर छापे लगाकर बेल-बूटे काढ़ती है। इसी तरह उसके अवकाश का समय पार होता है। उसकी मौसी माल बाजार में बेचवा देती। दूकानदार बिक जाने पर दाम दे देते हैं।

कमला जहाँ रहती है, वहीं एक बगल में आर्य-समाज के मन्त्रीजी रहते हैं, और एक तरफ 'महिला'-पत्रिका की सम्पादिका।

एक रोज मन्त्रीजी की कुमारी कन्या उससे आकर मिली, अपनी घरेलू सभ्यता के अनुसार थोड़े सामान और भरे-पूरे हृदय से कमला ने उसका स्वागत किया। बातचीत होने लगी।

"तुम बहुत दिनों से यहाँ रहती हो, कल मैंने सुना।" मन्त्रीजी की लड़की वेदवती ने कहा।

"हाँ, मौसीजी के साथ, कुछ महीने हुए, आयी हूँ।" कमला ने नम्र स्वर से कहा।

"तुम्हारा विवाह तो हो गया है ?" माँग का सेंदुर देखती हुई वेदवती ने पूछा।

"हाँ।" कमला ने सरल चितवन नीची कर कहा।

"तुम अपने पतिदेव के यहाँ कितने दिनों से नहीं गयीं ?"

"जब से विवाह हुआ।" उसी सरलता से कमला ने कहा।

"क्यों, क्या अभी तुम्हारा गौना नहीं हुआ ?"

"न।" कमला चुपचाप बैठी रही।

तब तक कमला की मौसी भी आ गयी, और पड़ोस की उसे प्रतिष्ठित घर की कन्या जानकर एक साँस में कमला के प्रति हुए पाशविक अत्याचार का वर्णन कर गयी।

सुनकर गुस्से से वेदवती का चेहरा लाल पड़ गया, "तुम लोग कमजोर हो। किस्मत को कोसती हो। मैं होती तो, चपत का जवाब दूने कस की चपत कसकर देती—उन्हीं की तरह अपना भी दूसरा विवाह साथ-साथ करती, ऊपर से न्योता भेजती कि आइए जनाबमन्, मेरे शौहर से मुलाकात कर जाइए। तुम्हीं लोगों ने अपने सिर स्त्रियों का अपमान उठा रक्खा है।"

कमला अपलक ताकती रही। वेदवती उठकर बाहर की ओर "अभी आती हूँ" कहकर चली गयी। 'महिला' की सम्पादिका कुमारी सुशीलादेवी को साथ लिवा लायी, "यह हैं। देखो, पतिदेव के पिताजी ने विना अपराध परित्याग कर दिया। चिरंजीव पुत्र की दूसरी शादी कर दी।" परिचय दिया।

सुशीला बैठ गयी। वेदवती खड़ी रही।

"तुम्हारी बातें एक नोट के रूप में 'महिला' में दे दूँ ?" सुशीला ने राय ली।

"नहीं।"

"ये सब बुरे संस्कार हैं बहन, इन्हें दूर करने की कोशिश ही हमारा धर्म होना चाहिए।"

"पर ये मेरी तरफ के बुरे संस्कार नहीं, लिखने के लिए कहने पर साक्षी बनकर मेरी तरफ के ठहरेंगे। मैं ऐसा नहीं चाहती।"

"पर मेरा धर्म भी एक है।"

"उसके लिए मुझसे आप राय क्यों लेती हैं। अगर आप लिखेंगी, तो आपसे मेरा विनय-स्नेह उठ जायगा। क्योंकि आप मेरे सम्बन्ध में मेरी मर्जी के खिलाफ कार्रवाई करेंगी।"

सुशीला एकटक देखती रही। वेदवती भी स्थिर खडी सुनती रही। कमला अपने ही विचारों की लय में मौन बैठी और दृढ़ होती रही।

"अच्छा, फिर मिलूँगी, मुझे पाठशाला जाना है।" कहकर वेदवती चली, साथ-साथ सुशीला भी गौर करती हुई चली गयी।

दो साल और पार हो गये। कमला के स्वास्थ्य में पुनः भादों की बाढ़ है। भरी-पूरी परन्तु समय की तमिस्र तिथि के भीतर, सधी हुई चाल से, ठीक अपने ही समुद्र की ओर बहती जा रही है।

राजकिशोर के स्नेह की कमला महिलाओं में सर्वत्र चरित्रबल, आदर्श-प्रीति

के कारण सम्मान तथा प्यार की पात्री बन रही है। स्त्रियाँ उसे देवी के भाव से, मन-ही-मन अपना आदर्श मानकर, पूजती हैं।

राजकिशोर अब सोलहवें साल का तरुण, प्रवेशिका-परीक्षा का कुशाग्र-बुद्धि विद्यार्थी है। सोलहवें साल में ही वह फूटकर जवान हो गया है। रोज कसरत करता, जोर करने के लिए अखाड़े जाया करता है। कमला का बाहरी लक्ष्य है भाई और भीतरी पति-धर्म।

प्रातः स्नान करती है, कुछ देर रामायण-पाठ, फिर अपने कार्य में लगती है। रमाशंकर अब उसके लिए कोई बाहर का मनुष्य नहीं, वह अब उसकी आत्मा में अर्थमय बनकर है। इसलिए अब कामना-जन्य प्रेम का खिचाव उसके चित्त को हिला नहीं सकता। वह अब सब समय अकाम तपस्या-सी जीवन के कूल पर खड़ी अपने ही रमा-रूप के शंकर-शुभंकर निस्सीम सुन्दर को तन्मय देख रही है।

इसी समय कानपुर में हिन्दू-मुसलमानों में दंगे की बुनियाद पड़ी। एक रोज बड़ा हंगामा भी हुआ। दोनों तरफ के अनेक घर लुटे, फुंके और ढहा दिये गये। हजारों आदमी काम आये। जो हिन्दू-मुसलमानों की बस्ती में थे, उनके घर फूंककर, माल लूटकर, आदमियों को मारकर या जख्मी कर मुसलमानों ने उनकी स्त्रियों को अपने घरों में डाल लिया। ऐसा ही हिन्दुओं ने भी किया। अपने मसरफ में न आने लायक जानकर उन्होंने मुसलमानों की महिलाओं का भी वध कर डाला।

दोनों जातियों के लोग अपने-अपने दलों के भूले-भटके, गायब-शुदा लोगों की तलाश में लग गये। उसी समय एक मुसलमान के घर से दो हिन्दू-युवतियाँ बरामद हुईं। राजकिशोर हिन्दू-दल में था। निस्सहाय जान अपने घर में जांच होने तक जगह देने को राजी हो गया, और कमला के पास लिवा लाया।

उन्हें नहला, वस्त्र दे, जलपान करा कमला ने परिचय पूछा। दोनों भले घर की स्त्रियाँ जान पड़ती हैं, बहुत ही दहशत खायी हुई। एक ब्याही हुई घर की बहू-सी है; दूसरी क्वारी। युवती सत्रह साल की, बालिका पन्द्रह साल की है।

बालिका बोली, "यह मेरी बहूजी हैं। मेरे भाई रमाशंकर वाजपेयी यहीं काटन-मिल के बाबू हैं। मेरे पिता का नाम रामचन्द्र वाजपेयी है। भैया का पता नहीं है। पिताजी घर में थे, पर हम लोगों से नहीं मिले। कुछ मुसलमान घर लूट-कर हमें अपने साथ ले गये थे।"

कमला चकित हो गयी। बड़ी देर तक सोचती रही। फिर राजकिशोर को अलग बुला, सब हाल समझाकर अस्पतालों में पता लगाने के लिए कहा। फिर युवतियों के भोजन पकाने का इन्तजाम करने लगी। मौसी गाँव गयी थीं।

पण्डित रामचन्द्र और रमाशंकर अस्पतालों में मिले। दोनों के सिर पर चोटें थीं। रमाशंकर डेरे जाते समय घायल हुए थे। 4-5 दिन बाद अच्छे हो गये। राजकिशोर स्वयंसेवक की हैसियत से देख आता था, पर अपना परिचय नहीं दिया। युवतियाँ कमला के यहाँ प्रसन्न रहती रहीं। उनका पूरा परिचय तो कमला ने प्राप्त कर लिया, पर अपना पूर्णतः छिपा रक्खा।

पिता-पुत्रों के लिए 4-5 दिनों तक भोजन कमला घर से ही भेज देती थी। उन्हें हाल मिल चुका था कि उनकी बहू और कन्या सुरक्षित हैं। पाँचवें दिन अच्छे

होकर वे कमला के घर आये। साथ राजकिशोर भी था।

रमाशंकर तथा उनके पिता से वह सब हाल जिस तरह उनकी महिलाएँ एक मुसलमान के घर से निकाली गयी थीं, राजकिशोर ने कहा। वाजपेयीजी ने प्रत्युत्तर में उसका निवास-स्थल पूछा। राजकिशोर ने रायबरेली-जिले के धई मुक़ाम के पास बतलाया।

मकान आ, अपनी महिलाओं को लेकर बिदा होते हुए पण्डित रामचन्द्रजी बार-बार हाथ जोड़कर बालक राजकिशोर से प्रार्थना करने लगे, "आपने हमारा पूरा-पूरा उद्धार किया है। अब इतनी कृपा और कीजिए कि इस मामले का भेद कहीं खुलने न पावे, नहीं तो हम किसी तरफ के न रहेंगे।" रमाशंकर की भी पिता के शब्दों से सहानुभूति थी।

राजकिशोर पृथ्वी की तरफ देख रहा था। आँखों से आँसुओं की बड़ी-बड़ी बूंदें टपक रही थीं। कुछ सँभलकर कहा, "नहीं वाजपेयीजी, आप निश्चिन्त रहिए। जैसी हमारी इज्जत, वैसी ही आपकी है।"

पं. रामचन्द्रजी घर गये, तो देखते हैं, उनके जाने से पहले गाँव-भर में उनकी बहू और बेटी की मुसलमान के घर रहनेवाली खबर फैल चुकी है। घर में उन्हीं के सगे भाई ने कहा कि घर में अभी आपका रहना नहीं हो सकता, क्योंकि आपके पीछे हम बे-धरम तो हो नहीं सकते, हमारे भी छोटे-छोटे बच्चे हैं, उनके भी जनेऊ और ब्याह हमें करने हैं, सब लोग हमें छोड़ देंगे, तो हम सिर्फ आपको लेकर करेंगे क्या ?…आप तब तक ढोरवाले घर में रहिए, हम भैयाचारों को बुला लाते हैं।

पं. रामचन्द्र और रमाशंकर बड़े घबराये, पर उपाय न था। ढोरवाले घर में गये। शाम को भैयाचारों का जमाव हुआ। सबने राय दी कि "तुम लोग गधे बन गये हो, अब लाख धोने पर घोड़े नहीं बन सकते। इसलिए अब अपना परिवार लेकर अलग रहो।"

लाचार होकर पं. रामचन्द्रजी को अलग होना पड़ा। गाँव में जहाँ उनके प्रबल प्रताप से सभी वर्ण काँपते थे; जिसके मकान में वह पानी पी लेते थे, वह अपने को कृतार्थ, इन्द्र-तुल्य समझता था, उन्हीं वाजपेयीजी के लिए किसी शूद्र का पानी छू लेना दुश्वार हो गया।

इतने अपमान से वे गाँव में न रह सके। अपने पुत्र तथा परिवार के साथ पुनः कानपुर चले गये। दंगे के कारण बहुत दिनों तक व्यवसाय बन्द रहा।

लडकी जवान हो चुकी थी, और भैयाचार छोड़ चुके थे। पता लगाकर विवाह करनेवाले कनवजिए फँस नहीं सकते, इस विचार से एक दिन राजकिशोर के यहाँ गये। बातचीत से मालूम हुआ, वह अभी कुँआरा है, और गोपाल का तिवारी, उनसे कुछ ही हेठा पड़ता है। पर ऐसे विवाह दोषवाले नहीं कहलाते। यह सोचकर वाजपेयीजी ने राजकिशोर से उसके अभिभावक को पूछा। राजकिशोर ने पूछने का कारण पूछा। वाजपेयीजी ने कहा, "तुम्हारा विवाह अपनी लड़की से करना चाहते हैं, रमा कहता है कि बहन को उन्होंने बचाया है, अब उन्हीं से उनका विवाह कर देना ठीक होगा।"

राजकिशोर ने कहा, "विवाह की बातचीत मेरे अभिभावक पक्की कर लेंगे, आपको दिक्कत न होगी, पर आप रमाशंकरजी को लेकर कल आइए, मैं अपने अभिभावक से भी कह रक्खूंगा।"

दूसरे दिन पं. रामचन्द्र तथा रमाशंकर आये। कमला अनावृत-मुख मन्द-पद सामने आकर खड़ी हो गयी।

रमाशंकर ने पिता से कहा, "यह तो पं. शिवरामजी की लड़की है!"

कमला ने कहा, "आपकी इच्छा होगी, तो ऐसी स्थिति में मैं विवाह करने को तैयार हूँ, क्योंकि आपको उठा लेना मेरा धर्म है।"

['सरस्वती', मासिक, प्रयाग, मार्च, 1932। **लिली** में संकलित]

श्यामा

पण्डित रामप्रसादजी पहलेपहल सरकारी अँगरेजी स्कूल में हिन्दी के शिक्षक थे, अब स्थानीय सरकारी कर्मचारी भक्तों के यहाँ रामायण पढ़ते हैं। थोड़ी वैद्यक भी इन्हीं की सिफारिश से जमींदार और तअल्लुकेदारों में चला ली है। जब इस तरह आमदनी ज्यादा हो चली, सम्मान बढ़ गया, और अवकाश उठती धूप से पेड़ की छाँह की तरह घटने लगा, तब एक दिन शिक्षकवाले सापेक्ष पद के डण्ठल को पके फल की तरह परित्याग कर दिया।

जिन दिनों स्कूल में पढ़ाते थे, बंगला-उपन्यासों के अनुवाद हिन्दी की पड़ती जमीन पर, ढाक के झाड़ों की तरह, अविश्राम उग-उगकर छा रहे थे। पति-भक्ति से ओत-प्रोत इन उपन्यासों के प्रति समुदाय का आज से सौ गुण अधिक समादर था। ऐसे-ऐसे उपन्यास खासतौर से वंकिमचन्द्र के, पं. रामप्रसादजी पुस्तकालयों से इसलिए लाते थे कि उन्हीं दिनों आठ सौ रुपये में एक अट्ठारह साल की युवती कन्या मोल लेकर उन्होंने नया विवाह किया था—उसे सुनाते थे।

उन्हीं दिनों बंगला-उपन्यासों की बाढ़ से हिन्दी की नयी सन्तानों के नामकरण में भी युगान्तर आ गया था। रामदास, शिवप्रसाद, कालीचरण आदि नामों की पौराणिक पराधीनता बल खाते हुए बंगालियों के वासंतिक बालों से दबकर दम तोड़ रही थी, और 'शिशिर', 'विनोद', 'प्रदीप', 'प्रमोद' आदि स्वतन्त्र-पत्रों की तरह वास्तव-साहित्य की डालों पर, घर-घर उग चले थे। बालिकाएँ लक्ष्मी, सरस्वती, गंगा और यमुना आदि की मन्द रूढ़ियों से छुट-छुटकर आशा और लता आदि से ललित, लचीली होकर, साहित्य के विटप से लिपट रही थीं। यह लालच भगवान् ही जाने क्यों, पं. रामप्रसादजी भी नहीं छोड़ सके। विवाह के साल ही

भर में उत्पन्न हुए लड़के का नाम वंकिमचन्द्र रक्खा। पर, बड़ा होकर, गाँव जाकर, गाँववालों के स्वाधीन उच्चारण में, एक ही रोज में, वंकिम बाँके बन गया।

पं. रामप्रसादजी बाकायदा कर्मचारी भक्त-वृन्दों के यहाँ रामायण पाठ करते हैं, कभी यहाँ, कभी वहाँ। अपने उदात्त व्याख्यानों द्वारा यह विश्वास उन्होंने उनमें जमा दिया है कि रामायण के वर्णन में आया हुआ विह्वावलपुर ही आजकल की वलायत है। वहाँ जानेवालों के राक्षसभाव, भोजन-पान तथा संग-संसर्ग आदि दोषों के कारण, चूँकि प्रबल हो जाते हैं, इसलिए करुणा-निधान महाराज श्रीरघुनाथजी उन्हें अपने चरणारविन्दों में स्थान नहीं देते। ऐसे कई और भी महत्त्वपूर्ण अन्वेषण उन्होंने रामायण से किये हैं। वे भक्तगण व्यर्थ के लिए रामायण न सुनते थे। वे पाप करनेवाले थे, तरने की आशा रखते थे। वे सब सरकारी नौकर थे, तनख्वाह सौ से सिर्फ तीन-चार सौ तक पानेवाले, पर रिश्वत से, धर्म की आम सड़क से उतरकर, अदालत या अपने ऑफिम की गली और कूचे में, महीने में हजारों के वारे-न्यारे कर देते थे। अधिकांश ऐसे थे, जो पाप पूरा कर चुके थे, अब पेंशन लेकर, प्रायश्चित्त कर रहे। उन्हीं में से किन्हीं-किन्हीं के सुपुत्र वलायत भी गये थे; पर चूँकि वलायत न जाने पर ही पिता ने पापों के हिसाबवाला काफी मोटा खाता तैयार कर लिया था, इसलिए पुत्र के वर्तमान और भविष्य पापों के निश्चय पर उन्हें रत्ती-भर शंका न होती थी, पुनश्च उन्होंने किसी निष्काम साधना के लिए पुत्र को वलायत तो भेजा न था। अत: पण्डितजी को कसौटी पर खरा पाकर, नाराज होने के बदले सभय प्रसन्न होते थे।

उधर ऐसी व्याख्या करनेवाले पं. रामप्रसादजी, इधर, पुत्र को, बड़ा होने पर, अँगरेजी स्कूल पढ़ने के लिए भेजने लगे। वंकिम ने भी दसवें तक पहुँचकर, नाम के अनुसार, वाममार्ग ग्रहण किया। अर्थात सिगरेट से शुरू कर अण्डे-कबाव के प्रवेशिका-द्वार पर पैर रक्खा। उधर फेल हुआ, इधर पास। माता एक साल पहले ही स्वर्ग सिधार चुकी थीं। एक बहन थी सरला, पिता ने नवें साल उसे भी ससुराल भेज दिया था। यदि उच्च कुल होता, तो अब तक वंकिम भी एक बच्चे का बाप हो चुका होता।

वंकिम के आचरणों का पहले पिता को पता न था। जब हुआ, तब बदनामी से डरकर उसे घर भेज दिया।

घर में ताला लगा रहता था। बरसात में कुछ पहले जाकर पं. रामप्रसादजी मरम्मत करवा आते थे। बगल ही एक दूर के भैयाचार रहते हैं। वंकिम को रोटी खिला दिया करते हैं। पं. रामप्रसादजी का एक बाग गाँव में है, कभी-कभी उसका चारा इन्हें मिल जाता है। हिसाब से फायदा रहता है।

आम पकने लगे हैं। शीघ्र पं. रामप्रसादजी भी आम खाने के लिए आनेवाले हैं।

गाँव की हँसती हुई बाहरी प्रकृति से तो वंकिम को बड़ा प्रेम है, पर रूढ़ियों पर चलती हुई लोगों की भीतरी प्रकृति के तद्रूप घृणा। वहाँ का जीवन जैसे मशीन के चाकों की तरह दूसरे ताप से चल रहा हो, स्वयं लौह-खण्ड की तरह निर्जीव, निष्पन्द। इसलिए वहाँ उसका हृदय नहीं मिलता, सभी के लिए हृदय से वह विदेशी बन गया है।

अषाढ़ का महीना, एक सप्ताह बीत चुका है। बादलों के टुकड़े आकाश में क्रीड़ा करते हुए इधर से उधर दौड़ रहे हैं। पलकों को हलकी कर, कभी पूरब से पश्चिम कभी पश्चिम से पूरब को, ठण्डी-ठण्डी हवा बह रही है। किसान आमों की अच्छी फस्ल होने से सुखी हैं। सभी के मुरझे कपोलों पर हँसी खेलती है। दो-एक दौंगरे गिर चुके हैं। हल चल रहे हैं, कहीं-कहीं जुवार, अरहर, तिली, बाजरे आदि बोये जा चुके हैं, कहीं बोये जा रहे हैं। छोटे-छोटे कपास के पौधे किसी-किसी खेत में उग रहे हैं। ईख लहरा रही है—उठायी मेड़ें बारिश से कहीं-कहीं छट गयी हैं। देहात बरसात के आगम से प्राणों में सुख-स्पन्द पाकर प्रसन्न है। बागों की हरी-हरी घास के मखमली गलीचों पर गाँव के गरीब बच्चे छुई-छुअल, गुलहड़, गिली-डण्डा खेलते, अखाड़े गोड़कर कूदते, कुश्ती लड़ते हुए अपने-अपने आमों की रख-वाली कर रहे हैं। सुबह से एक पहर दिन तक गाँव के प्रायः सभी बाल-वृद्ध-युवक, किसानों की स्त्रियाँ, आम लेने, पेड़ हिलाने के लिए बागों में ही एकत्र चहल-पहल करते हुए मिलते हैं।

इन्हीं के बीच अपने बाग में, आज वंकिम भी बैठा हुआ है। पिता के शासन से घबराकर, अपने भविष्य-पट पर अपटु चित्रकार की तरह, पूर्णच्छवि को खींचने को काँपती, पराङ्मुख तूलिका मानसिक शक्ति से फेरता जा रहा है। उसे इस काम में बड़ी देर हो गयी, पर कोई पूरी तस्वीर उसके भविष्य-साफल्य-सी सामने न आयी। जैसे तट-ज्ञान से शून्य, बीच समुद्र में पडा हुआ युवक, दिग्यन्त्र के विना नाव को इतस्ततः खेता रहता है, इस प्रकार केवल काल्पनिक श्रम वह कर रहा है। उसके घर के लोग बाग से आम बीनकर घर चले गये, धीरे-धीरे और-और लोग भी रात के गिरे आम बीनकर, पकते पेड़ों को हिलाकर, हिस्से लगाकर अपना हिस्सा लेकर पड़ोसियों, हिस्सेदारों के साथ चले गये, वंकिम बैठा सोचता रहा।

मधुर-मधुर हवा के झोंके से चेतना आने पर पलकें खुलीं, तो देखता है, आकाश और पृथ्वी की सजल श्यामलाभा के भीतर, वर्षा की ही नवयौवना स्वस्थ श्याम प्रतिमा-सी, एक युवती-बालिका, धीरे-धीरे, असंकुचित, मुस्किराती हुई, उसकी तरफ आ रही है। वंकिम प्रतिक्षा करने लगा, मन में खोजकर देखा, वह उसे पहचानता नहीं—आवाज आयी। बालिका वंकिम के बिलकुल पास आ गयी, और निस्संकोच वैसे ही बोली, "तुम कहो, तो इधर के गिरे हुए आम बिन लूं।"

उसके चेहरे की ओर देखकर, उसे गरीब किसान की लड़की जानकर वंकिम ने कहा, "बिन लो।"

बालिका धीरे-धीरे चल दी।

चार कदम चली थी कि 'ए—' पुकारकर वंकिम ने पूछा, "तेरा नाम क्या है?"

वंकिम की इस बेवकूफी पर शहर के अहमकों की हेकड़ीवाली सुनी कुछ बातें एकसाथ उसे याद आ गयीं; मन-ही-मन हँसकर, वंकिम को क्षमा कर बोली, "मेरे घर के सामने से तो रोज आते हो, मेरे बाप को नहीं जानते क्या?" कहकर द्रुत लाज के पग एक पकते पेड़ के नीचे जा आम बीनने लगी।

वंकिम को उसका यह वाक्य पूरा रहस्यवाद जँचा। उसका पिता कौन है,

उसका घर कौन-सा हो सकता है, जो कई घर गली से होकर निकलते हुए पड़ते हैं, उनमें; यह कुछ वंकिम की समझ में न आया। जो कुछ वह समझ सका, वह बालिका की ही खुली बात का मर्म, उसका निर्भय व्यवहार, उसका अनुपमस्वास्थ्य था। शहर में अनेक पढ़ी-लिखी, विचारों में बढ़ी हुई बालिकाएँ उसने देखी थीं। पर इतना आकर्षण उसे उनमें नहीं मिला। इसके चपल लावण्य में वह न समझ सका कि लुभानेवाला, मन को बलात् वशीभूत कर लेनेवाला कौन-सा जादू था। बैठा एकटक उसे देखने लगा। बालिका घूम-घूमकर अच्छे-अच्छे पेड़ों के आम उठाती रही, गति में वह बिलकुल नहीं भटकती, जैसे अच्छे आमवाले पेड़ पहले से पहचानती हो।

देखते हुए वंकिम को स्वभावतः उसके पिता को जानने के बहाने बातचीत करने का कौतूहल हुआ। वह उठकर उसकी ओर चला। बालिका का आँचल आमों से भर चुका था।

"तुम्हारे बाप का क्या नाम है ?" पास जाकर अज्ञ की तरह तअज्जुब से पूछा।

बेवकूफ समझकर वह फिर मुस्किरायी। "क्यों ?" खिलकर बोली, "मेरे बाप का नाम सुधुआ है।" कहकर चलने को हुई, तो वंकिम ने सहृदय अज्ञ की तरह फिर पूछा "तुम्हारा नाम क्या है ?" हँसकर, आप ही अपने में हवा की तरह लिपटकर बालिका बोली, "मैं अपना नाम नहीं कहती।" द्रुत फिर खाई की ओर चल दी। वंकिम खड़ा देखता रहा, वह खाई पार कर गाँव को चली गयी।

सुबह को दूसरे दिन बाग जाते समय द्वार पर ही सुधुआ वंकिम को मिला। पालागन कर आमों के लिए बार-बार विनयपूर्ण प्रशंसा करने लगा कि बड़े मीठे आम कल उसके बाग के उसने खाये, ईश्वर करे जल्द उसका विवाह हो, घर बहू आये। सिलसिले में यह भी उसने कहा कि अबके तंगदस्त रहने के कारण वह आम मोल नहीं ले सका, नहीं तो वंकिम के बाग की बगल में ही शुक्लों के 'हजारे' में वह कई साल तक एक रुपये का हिस्सा लेता रहा है।

इतनी बात के बाद उससे कुछ बातचीत करना वंकिम का फर्ज हो गया। उसने पूछा कि इस साल वह तंगदस्त क्यों हो गया, और उससे छुटकारा पाने को वह कुछ कर रहा है या नहीं ?

किसान अपने दुःख की बात बड़े करुण साहित्यिक ढंग से कहते हैं, यदि कोई सहृदय श्रोता मिल जाय। सुधुआ खड़ा था। वंकिम को बैठने के लिए चारपाई डालकर एक बगल जमीन पर बैठ गया।

हथेली से अपना सिर पकड़कर, कुछ खाँसकर, सँभलकर बोला, "महाराज, आठ रुपये बीघे के हिसाब से जिमीदार दयाराम महाराज ने तीन बीघे खेत दिये थे। मैंने कई साल तक खेतों को खूब बनाया, खाद छोड़ी, जब खेत कुछ देने लगे, तब परसाल इन्होंने बेदखल कर दिया, पहले इज़ाफ़ा लगान बीघा पीछे पाँच रुपये माँगते थे। अपने पास इतना दम न था। खेत छोड़ दिये। पर किसान जाय कहाँ, क्या खाय ? फिर उन्हीं जिमीदार दयाराम महाराज के पैरों नाक रगड़नी पड़ी।

उन्होंने पाँच रुपये बीघे पर ढाई बीघे का एक खेत दिया। खेत बिलकुल ऊसर है। मैं जानता था। पर लेना पड़ा। खेती न करें, तो महाजन उधार नहीं देता। भूखों मरा नहीं जाता। खेती में साढ़े बारह का पूरोपूर डाँड़ पड़ गया। कुछ न हुआ। एक बैल था, साझ में जोत लेते थे, वह भी मरा, इधर श्यामा की अम्मा थी, वह भी भगवान् के यहाँ गयी। परमात्मा ने सब तरफ से बैठा दिया। अफसोस-अफसोस मुझको भी दमा हो गया है। काम होता नहीं। उस किस्त का किसी तरह पाँच रुपया चुकाया था। अबके कुछ भी डौल नहीं। बरखा आ गयी। छप्पर वैसा ही रक्खा है। कहाँ से पैसे आवें, जो छाया जाय! मिहनत-मजूरी का बल नहीं है। श्यामा दूसरे की पिसौनी करती है, तब दो रोटी तीसरे पहर तक मिलती हैं।"

बूढ़े सुधुआ को जोर की खाँसी आ गयी। घर के भीतर चक्की चल रही थी। जब सुधुआ सँभला, तब वंकिम उठकर खड़ा हो गया। ऐसी स्थिति में वह क्या कर सकता है, उसकी समझ में न आया। सुधुआ भी केवल करुणा प्राप्त करने के सिवा उससे दूसरी मदद न चाहता था। वह भी जानता था, यह अभी खुद अपने मुख्तार नहीं हैं। इसी समझ और सहानुभूति के भीतर वंकिम ने आज भी आम ले जाने के लिए श्यामा को भेज देने को सुधुआ से कहा। विनयपूर्वक सुधुआ ने स्वीकार कर लिया। कहा, "अभी पीसती है; उठेगी, तो भेज दूँगा।"

वंकिम बाग चला गया। वहाँ से दूसरे-दूसरे बागों में टहलता हुआ लड़कों से पूछ-पूछकर अच्छे-अच्छे पेड़ों के आम खाने लगा। निगाह अपने बाग की तरफ रक्खी।

बड़ी देर हो गयी। दूसरे बागों से वह अपने बाग में आ गया। उसके भैयाचार घर के लड़के आम बीनकर बाग से चले गये। और-और लोग भी धीरे-धीरे जाने लगे। क्रमशः बाग खाली हो गये। वंकिम बैठा श्यामा की राह देखता रहा। पर वह न आयी।

एक-एक बार गाँव के रास्ते की तरफ देखकर, अन्त में हताश होकर वंकिम खुद अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने को चला। तुख्मी सुफेदे का एक पेड़ खूब पक रहा था। चढ़कर एक डाल हिलायी। उतरकर आम बीन लिये। एक डाल तुख्मी दसहरी की हिलायी। कुछ शरबती के आम गिराये, कुछ शाहाबादी के। धोती का छोर फैलाकर सब बाँध लिये। उसके ले जाने-भर को हलका खासा बोझ हो गया! धोती चोपी से भर गयी। कुर्ते में भी दाग लगे। पर इसकी चिन्ता न की। कन्धे पर रखकर ले चला। एक साधारण किसान को इस तरह एक ब्राह्मण का आम ले जाकर देना कहाँ तक ठीक है, उसने कभी नहीं सोचा। उसे इस तरह ढोकर आम देते हुए देखकर लोग क्या सोचेंगे, उसे अनुभव न था। जब द्वार पर आम ले जाकर पहुँचा, तो देखता है, जमींदार के दो सिपाही दोनो तरफ से सुधुआ के कान पकड़े हुए डेरे की ओर लिये जा रहे हैं, श्यामा सजल आँखों से एकटक पिता को देख रही है।

आम क्या करे, वंकिम कुछ सोच न सका, जैसा पहले सोच रक्खा था, उसी के अनुसार, जैसे नियन्त्रित यन्त्र हो, श्यामा के सामने गाँठ खोलकर कुर दिया। इस समय एक सिपाही ने फिरकर देखा।

एक सहृदय मनुष्य को देख दुखी श्यामा ने कहा, "मेरे बापू को पकड़े ले जा रहे हैं, मारेंगे, तुम बचा लो !"

सुधुआ की वैसी दशा देखकर सिपाहियों पर वंकिम को गुस्सा आ गया था। कपड़ेपन से पूछा, "क्यों मारेंगे ?"

"साढ़े सात रुपये लगान के बाकी हैं।" कहकर आँचल से श्यामा ने आँसू पोंछ लिये।

वंकिम झपटता हुआ चला गया।

वंकिम के पास रुपये न थे। हाथ में एक अँगूठी सोने की थी। उस पर कुछ कीमती एक नग था। पिता से उसने सुना था, अँगूठी दो सौ रुपये की है। भैयाचार के घर रुपये देने के सिवा पाने की आशा न थी। निकट ही दूसरे गाँव में एक अच्छे महाजन थे, उनका नाम उसने गाँव में सुना था कि मालदार आदमी हैं। सीधे उन्हीं के यहाँ गया। उन्होंने बड़ी देखभाल के बाद कहा, "आप हमारे मित्र पं. रामप्रसादजी के लड़के हैं, आपको जरूरत पड़ गयी है, इसलिए हम तीस रुपये आपको देते हैं, यों हमारी निगाह इसमें दस रुपये से ज्यादा का सोना नहीं, और नग के लिए चार-पाँच जोड़ लेते हैं।" नग के हीरे से एक शीशे को खरोचकर, हीरे की पूरी परीक्षा कर उन्होंने कहा। वंकिम को लगा तो बहुत बुरा, पर उपाय न था। वह उस अँगूठी की कीमत से सुधुआ का दारिद्र्य भी दूर कर देने का हौसला लेकर गया था। सोचा था, बेचकर, लगान चुकाकर, गाँव से भगने का सिर्फ रास्ता-खर्च लेगा, बाकी सब सुधुआ को देकर गाँव के कसाई जमींदार को समझा दिया जायगा कि गरीब किसानों को किस तरह प्यार करना धनी कहलानेवालों का धर्म होता है। पर आशा की वहाँ जड़ ही कट गयी। अँगूठी रेहन कर, सिर्फ तीस रुपये लेकर वह तेज कदम सीधे डेरे को गया।

तब तक वहाँ सुधुआ की सब दशा हो चुकी थी। बेंत की मार से उसकी पीठ फट चुकी थी। नीम के पेड़ के नीचे बेहोश मुँह के बल पड़ा था। मुश्कें बँधी थीं।

सामने गलीचा-बिछे तख्त पर जमींदार दयाराम दोहरे के बाद तम्बाकू खाने का उपक्रम कर रहे थे। गाँव के भले आदमी कहलानेवाले प्रायः सभी लोग चारपाइयों पर बैठे बलि के बकरे की निगाह से मालिक दयाराम की ओर देख रहे थे। दोनों सिपाही तख्त के सामने लट्ठ लिये हुए खड़े थे।

सुधुआ को देखकर वंकिम को कुछ क्षण काठ-सा मार गया। निश्चल देखता रहा। फिर आगे जमींदार की ओर बढ़ा। जमींदार लोग व्यवहार-कुशल होते ही हैं, फिर दयाराम पर विद्या ने भी ठेंठ-जमींदारों पर की-सी दया नहीं की—अपना काम और अदालत के कागजात यह आप देख लेते हैं। आदर से बुलाकर, बैठाकर, आने का कारण पूछा।

"आपने इसे मारा क्यों ?" वंकिम ने पूछा।

"भाई मेरे, तहसील-वसूल का तो यह क़ायदा ही है। ये मारे न जायँ, तो न इनके रुपयेवाले गढ़े से मिट्टी हटे, न लगान दें।" दयाराम हँसने लगे।

"आप जानते हैं। इसने इस साल आम भी नहीं लिये, इसके पास एक रुपया भी न था।" तेज गले से वंकिम ने कहा।

"ये सब चकमे हैं। बाहरी ऐसा रूपक न बाँधें, तो भीतर की बात खुल जाय।" दयाराम ने जनता की तरफ रुख करके कनखियों से राय ली।

एक ही अर्थ की भिन्न-भिन्न अनेक ध्वनियाँ हुईं, "मालिक को सब मालूम है।" "जैसे पेट की बात ताड़ लेते हैं।" "तभी तो भगवान ने भागवान बनाया है।" आदि-आदि।

प्रसन्न होकर उन्हीं लोगों से दयाराम फिर कहने लगे, "अभी यह लड़के हैं, दुनियादारी का हाल तो कुछ मालूम है नहीं, स्कूल में पढ़ते हैं, बस, भड़क गये।"

वंकिम को असह्य हो गया। बोला, "आप लोग मजाक करते हैं, उधर उसके मुँह में चुल्लू-भर पानी छोड़ना भी रोक रक्खा है, वह मर रहा है, आप लोग दुनियादारी समझा रहे हैं।"

"आपकी इच्छा हो, तो घड़ों पानी उसके मुँह में छोड़िए, पर रुपया भी आप देंगे, या सिर्फ पानी छोड़ने के लिए आये हैं?" कुछ गर्म पड़कर कुछ मजाक के स्वर से दयाराम ने कहा।

साथ ही गाँव के और-और उनके भक्त लोग कह उठे, "मालिक की बात, रुपया कौन गाँठ खोलकर देता है?"

वंकिम आग हो गया। उसी तरह गर्म होकर पूछा, "कितने रुपये हैं आपके?"

"साढ़े सात।" हँसकर दयाराम वंकिम की ओर देखकर बोले, "देते हैं आप?"

"हाँ, ये लीजिए।" आठ रुपये वंकिम ने तख्त पर रख दिये, कहा, "अब लिख दीजिए चुकता रसीद सुधुआ के नाम।"

गाँव के लोग एक-दूसरे को खोद-खोदकर मुस्कराने लगे, जिसका मतलब होता है—कैसा बेवकूफ है यह।

एक बार दयाराम को भी आश्चर्य हुआ। पर फिर उन्होंने रुपये बजाकर अठन्नी वापस कर दी, और एक चुकता रसीद लिखा दी।

"यहाँ ये बहुत-से लोध हैं, इनसे कहिए, सुधुआ को इसके घर उठाकर रख आवें।" वंकिम ने कुछ विनयपूर्वक कहा।

दयाराम के दिल में बात बैठ गयी। उन्होंने दो लोधों को रख आने की आज्ञा दे दी।

बेहोश सुधुआ के साथ वंकिम डेरे से चला गया।

"मालिक, अभी तक झमेले में मुझे याद न थी।" एक सिपाही ने कहा।

"क्या?" दयाराम ने हँसती आँखें उठाकर देखा।

"आज यह बाग से गट्ठर-भर आम खुद लादकर सुधुआ के घर लाये थे।"

"अच्छा!"

"हाँ, मालिक।"

"क्यों जी देवीदयाल, (देवीदयाल गाँव के एक गण्य ब्राह्मण हैं।) यह क्या

बात है ?"

"अब क्या कहा जाय मालिक ?" दूर मर्म तक ध्वनि को पहुँचाकर देवीदयाल हँसने लगे।

वे दोनो लोध सुधुआ को छोड़कर लौट आये। इनसे दयाराम ने पूछा, "क्यों रे, बाँके तुम लोगों के साथ गये थे, किधर गये ?"

"वहीं उसकी दवा-दारू का इन्तजाम करने को रह गये हैं।" हाथ जोड़कर एक ने कहा। दूसरे ने 'हाँ मालिक' कहकर गवाही दी।

"क्यों देवीदयाल, तुम लोग तो ब्राह्मणों के सिरमौर हो गाँव में, कुछ समझ में आती है—क्या बात है ?"

"बात ऊपर रक्खी है। महा गँवार भी समझ जाय।" पं. देवीदयाल विशेष रूप अन्तर्मुख हो गये।

"तो समझ ही से सब हो जायगा ? आज समझ गये, कल पानी पिओगे, परसों एक साथ पूड़ी खाओगे, तो ठीक होगा ?" निरीक्षक की दृष्टि से देखकर दयाराम ने पूछा।

देवीदयाल पहले तीन बिस्वेवाले कनवजिए थे, अब तेरह बिस्वेवाले बनकर गाँव के ब्राह्मणों में सिरमौर हैं। कहा, "पहले तो नीचे-नीचे से चलना चाहिए, फिर ऊपर आप बँध जायगा; इन लोधों से पूछिए, हुक्के के लिए क्या कहते हैं—देंगे सुधुआ को हुक्का ?"

"क्यों रे, तुम लोग क्या कहते हो ? बात कुछ आती है समझ में ?" अपनाते हुए दयाराम ने पूछा।

"अब भी कुछ बाकी समझने को रह गया है मालिक ? कल से हुक्का-पानी कोई देगा, तो आप भुगतेगा।" लखुआ ने पूरे आत्मसम्प्रदान के स्वर से कहा। फिर गाँव के झींगुर, बुलाकी, नथुनी आदि लोधों से अपने-अपने टोले में मना कर देने को कह दिया। सब लोध सच्चे डपोरशंख की तरह मुख बाए, समझकर सिर हिलाकर राजी हो गये।

देवीदयाल ने कहा, "इन सूदों का कौन भरोसा, कहो चुल्लू-भर में लुटिया डुबो दें।"

लखुआ तेज आँखों से देवीदयाल को देखकर बोला, "सुनो महाराज, हम बाँभन नहीं हैं, जो कुरमी-काछी, तेली-तमोली, सबकी पूरियों में पहुँचा पेल दें। हम हैं लोध—लोध का बच्चा कभी न कच्चा। अब खरी न कहलाओ। रूका बुआ को लोगों ने पकड़ा, सबने छोड़ दिया, फिर तुम्हीं पिलकर सत्यनारायण की कथा में खा आये।" कहकर सदर्प आँखें फेरकर जमींदार को भक्ति-भाव से देखने लगा।

पं. रामप्रसादजी गाँव आनेवाले थे। आज आ गये। घर पहुँचकर सुना कि वंकिम के सम्बन्ध में कोई मामला डेरे पर चल रहा है। उसी वक्त डेरे चल दिये। . रामप्रसाद को देखते ही देवीदयाल ने धीरे से कहा, "अब गठ गया मामला, यह भी सपूत की करनी अपनी आँखों देख लें।"

सब लोग स्तब्ध हो गये। जमींदार ने आदरसे बैठाला। फिर नमस्कार आदि

के बाद कुशल तथा लखनऊ के हाल पूछने लगे।

पं. रामप्रसादजी अपने सम्मान के विचार से गम्भीर होकर बोले, "सब कुशल है। इधर एक शिष्य के यहाँ विवाह था। न्योते पर जाना ही पड़ा। वह डिप्टी-कमिश्नर है। विवाह के समय भाषण करने के लिए कहा। हमने सोचा, विवाह का समय हो गया, किस विषय पर भाषण करें? फिर ब्रह्मचर्य-विषय पर कहा।"

रामप्रसादजी डब्बे से पान निकालकर जमींदार साहब को देने लगे। उन्होंने सिकुड़कर मुलायम-मुलायम जवाब दिया कि "देवीदयालजी गाँव के मान्य हैं, इन्हें पहले दीजिए।"

पं. रामप्रसादजी ने देवीदयाल की ओर हाथ बढ़ाया। उन्होंने कहा, "अभी स्नान नहीं हुआ। आप मालिक को ही दीजिए।"

रामप्रसादजी ने फिर मालिक की तरफ हाथ बढ़ाया। उन्होंने पान ले तो लिये, पर सामने के एक कागज के टुकड़े में लपेटकर रख दिये।

गाँववालों के ऐसे स्वभाव से पं. रामप्रसादजी का काफी परिचय था। वह कई बार गाँव को ब्रह्मभोजवाली गुनहगारी अकारण दे चुके थे। स्वयं अच्छे ब्राह्मण न थे। प्राय: लोग पैरों पड़ते थे। इसलिए मन-ही-मन घबराये। सोचा, शायद वंकिम की सिगरेटवाली बात खुल गयी। इधर एक आदमी को जमींदार साहब ने एकान्त में बुलाकर सुधुआ का मकान देख आने के लिए चुपचाप भेज दिया। वहाँ बाँके है या नहीं, वह देखकर बतलाये। फिर बैठकर फालतू बातचीत करने लगे।

लौटकर आदमी ने संवाद दिया कि बाँके वहीं पर हैं। तब, अपने लोगों के साथ रामप्रसादजी को एक आवश्यक दृश्य दिखलाने के उत्साह से लेकर, जमींदार साहब सुधुआ के मकान की तरफ चले। रास्ते में कहा, "आज सुधुआ की तरफ से साढ़े-सात रुपये लगान के बाँके ने दिये—गाँव में लेन-देन करने के इरादे पर शायद आपने बाँके को भेजा है?"

पं. रामप्रसादजी सूख गये कि यह माजरा क्या है। प्रकाश्य बोले, "हमने तो ऐसी सम्मति उसे नहीं दी, उसके पास रुपये भी नहीं थे।"

अब तक सुधुआ का घर भी आ गया। भारतीय किसानों के घर में दरवाजे नहीं होते। सिर्फ टट्टर रहता है। रात को भेड़िए से बकरियों को बचाने के लिए एक डण्डे से बाँध दिया जाता है। फिर शूद्र के मकान में प्रवेश के लिए आज्ञा-विशेष आवश्यक नहीं। दरवाजा खुला था। सब लोग जूते समेत भीतर धँस गये। साथ-साथ पं. रामप्रसादजी भी गये।

जब रामप्रसादजी ने वंकिम को देखा, उस समय श्यामा पिता का शीश गोद में लेकर, कुछ उठाये हुए बैठी थी, वंकिम पड़ोस के गाँव से दवा ले आया था, झुककर मुँह में डाल रहा था। कुछ झुकी हुई श्यामा करुणा-दृष्टि से पिता को देख रही थी। श्यामा और वंकिम एक ही लक्ष्य पर एकाग्र थे। कभी-कभी श्यामा के बाल, कभी-कभी कपोल और मुख वंकिम के गालों से छू जाता था। सुधुआ के जबड़े जकड़ गये थे, दोनों खोलकर दवा पिलाने के प्रयत्न में थे। वहाँ ब्राह्मण और

लोध में सामाजिक जितने स्तरों का भेद है, वह न था। लोग खड़े यही देख रहे थे। लोगों की निगाह में श्यामा और वंकिम के सामीप्य का जो अर्थ था, उसके साथ सुधुआ का सहयोग बिलकुल न था। वह मर रहा है, लोग यह नहीं देखते थे, वह क्या कर रहा है, इसका दूरान्वय कर रहे थे। प्रकट सत्य को छोड़कर अप्रकट तत्त्व को पहुँचे हुए थे। आँगन के दूसरी ओरवाले छप्पर के नीचे रोगी की सद्यश्च्युत पतझड़ के पत्र-सी जीर्ण शय्या थी। श्यामा और वंकिम अपना उत्तर-दायित्व पूरा कर रहे थे। लोगों की आहट नहीं सुनी।

जब वंकिम दवा पिला चुका, और साश्चर्य परीक्षक की दृष्टि से देख रहा था कि दवा मुँह से निकली आ रही है, उसी समय पिता की नीतिधर्म से गुरु वज्र-गर्जना सुनी, "क्यों चमार, धर्म को धोकर पी गया ?"

पिता के हितकर उपदेश से ताड़ित अनेकानेक भावनाओं की तड़ित् वंकिम की नसों में तेज बह चली। अपनी स्थिति मनुष्यता की क्षिति पर खड़ा होकर अच्छी तरह समझा दे, यह इच्छा बदलती हुई मानसिक दृश्य को बल पहुँचाकर केवल शक्ति बन गयी —वह कुछ कह न सका, जो कुछ कहने को चला था, उसी ने रोक दिया।

पुत्र को चुपचाप खड़ा हुआ, तब तक भी निकलता न देखकर, रामप्रसादजी विना रोटी के तवे-जैसे, उसी की आग से, तप उठे, और पार्वत्य निर्झर की तरह प्रखर शब्द-गर्जन-स्वर से उस क्षुद्र उपल-खण्ड पर टूट पड़े। जब वह अपनी भाष्य और भाषण उभय प्रकार की शक्तियों से पुत्र के विरुद्ध युद्ध कर रहे थे, उसी समय सुधुआ स्वर्ग सिधार गया—श्यामा पिता को हिला-हिलाकर ऊँचे स्वर से रोने लगी।

पूरी घृणा से पुत्र को सुनाकर कि उनके घर में अब उसके लिए जगह नहीं है, पं. रामप्रसादजी वहाँ से निकल गये। साथ-साथ जमींदार तथा गाँव के और लोग भी 'बड़ा वेहया – नालायक है' कहकर चल दिये। लोध की लाश से ब्राह्मणों को क्या सहानुभूति ? वह तो उनके छूने लायक है नहीं। उसके सम्बन्ध में लोध सोचेंगे।

जो लोध वहाँ थे, वे चलते हुए। सीख दे देने की तर्जना श्यामा को सुना गये। वे जमींदार के किसान हैं। जमींदार खेत-पात देने के उनके काम आ सकता है। सुधुआ की लाश से उन्हें क्या लाभ—? फिर जब मालिक खुद नाराज हैं, और श्यामा अपनी राह पर नहीं।

वंकिम के कहने पर श्यामा गाँव-भर की बिरादरी को पिता का मृत्यु-समाचार दे आयी, देर तक प्रतीक्षा करती रही, पर कोई न आया। तब वंकिम ने कहा, "जान पड़ता है, कोई न आवेगा।"

वंकिम ने जिस काम का श्रीगणेश किया था, सोचा, उसे पूरा किये बिना बाहर न जायगा, आखिर पिताजी ने तो घर से निकाल ही दिया। जब यथार्थ बात के समझदार यहाँ नहीं, तब यहाँ रहकर होगा क्या ? मन साथ-साथ श्यामा के लिए भी सोचता, इसका क्या होगा ? इसे भी तो भैयाचार छोड़ चुके हैं।

"अब शायद कोई न आवेगा बाबू !" श्यामा ने पहलेपहल वंकिम को सम्बोधन किया।

"यही मैं भी सोचता हूँ श्यामा !"

"तो अब क्या होगा ?" निराशा की साक्षात् प्रतिमा ने जैसे कहा।

"अब तो हमीं-तुम हैं।"

"हम-तुम कैसे लहास गंगा ले चलेंगे ?"

"लाश गंगा पहुँचना कठिन है। श्यामा, तुम्हारी शादी हो चुकी है ?"

"हाँ।"

"तुम्हारी ससुराल यहाँ से कितनी दूर है ?"

"वह है जगतपुर में।"

"तो वहाँ से मैं तुम्हारे शौहर और ससुर को बुला लाता हूँ।"

"वहाँ अब कोई नहीं !"

"क्यों, कहाँ हैं ?"

"भगवान् के घर !"

"तुम्हारा शौहर ?"

"वह भी जब सात साल के थे, चले गये। सास है, उसने घर-बैठा कर लिया है।"

"तो तुम कहाँ जाओगी श्यामा ? मेरे पिताजी ने मुझे घर से निकाल दिया है, तुम सुन चुकी हो, अब मेरे लिए घर में जगह नहीं है, आज ही रात आठ बजे-वाली गाड़ी से मैं कानपुर चला जाऊँगा।"

सुनकर, सजल आँखों से बढ़कर, श्यामा ने वंकिम का हाथ पकड़ लिया, "मुझे भी ले चलो बाबू, तुम्हारे बर्तन मलकर दो रोटी खा लूँगी, यहाँ मैं नहीं रहना चाहती।"

वंकिम चुपचाप खड़ा रहा। न-जाने कहाँ से एक शक्ति ने आकर उसे उभाड़ दिया। कहा, "अच्छा। सुनो। फावड़ा ले आओ। अब और जगह नहीं। तुम्हारे पिता को यहीं रक्खेंगे।"

श्यामा ने फावड़ा निकालकर दिया। वंकिम लाश के बराबर लम्बी जगह अन्दर जाकर खोदने लगा। पहले कुछ देर तक श्यामा देखती रही, फिर दुःख में भी मुस्किराकर आकर फावड़ा पकड़ लिया। बोली, "तुमसे नहीं बनता। मुझे दे दो।"

वंकिम हाँफने लगा था। फावड़ा दे दिया। कोंछी का काँछा मारकर श्यामा खोदने लगी।

वंकिम कुछ दम लेकर बोला, "तुम्हें आदत है। तुम खोदो। तब तक मैं कफन खरीद लाऊँ।" कहकर वह पास के गाँव चला गया।

आज इस रास्ते लोधों का निकलना बन्द है। जमींदार डेरे पर यह कहकर गाँव गये हैं कि "जब तक दोनों हमारे पास न आवें, और माफी न माँगें, तब तक कोई इनसे बातचीत न करे।"

जब वंकिम श्यामा के पास आया, तब गढ़ा तैयार हो चुका था। सुन्दर खुदा

था। एक बार खड़े-खड़े वंकिम ने देखा। फिर कहा, "श्यामा, अब तुम दो घड़ा पानी ले आओ। लाश को रखकर एक में तुम नहा लेना, एक में मैं।"

"लोहे का एक ही घड़ा है।" विनम्र स्वर से श्यामा ने कहा।

"मिट्टी, लोहे किसी के भी हों, पानी ले आओ।"

श्यामा एक मिट्टी और एक लोहे का घड़ा लेकर पास के खेतवाले कच्चे कुएँ से पानी लेने चली। तीन-चार स्त्रियाँ खेत में मिलीं, देखकर आपस में बतलाने लगीं, "ऐसा जगुआ गाँव में अब तक तो किसी ने न किया था। एक यही नोखे की जवान हुई है!"

श्यामा के कानों में आवाज पड़ी, पर पलकें झुकाकर चली गयी। मन में कहा, 'ये अपने काम आनेवाली पड़ोसिनें हैं!'

घड़े भरकर लौट आयी। तब वंकिम ने लाश उठाने के लिए बुलाया। पैरों की तरफ श्यामा ने पकड़ा, सिर की तरफ़ वंकिम ने। मौन कपोलों से बह-बहकर श्यामा के आँसू पिता के चरणों को धो रहे थे। दोनों ने लाश को नया कफन पहना, ढककर, गढ़े में रख दिया, फिर मिट्टी छोड़ने लगे।

यह काम पूरा कर वंकिम ने कहा, "श्यामा, अब सूरज डूब रहा है, हमको जल्दी करनी चाहिए। तुम्हारे यहाँ क्या-क्या है?"

"हल है, माची है, सेरावन है, और पुर-बरेत, हँसिया, गड़ासा, कुल्हाड़ी, यही खेती का सामान है, और दो लोटे, दो थाली, तवा-चिमटा, एक कराही, एक कल-छुल, एक घड़ा लोहे का, रस्सी और जाँत।"

"अच्छा, नहा लो, फिर गीली धोती में बरतन बाँध लो। मैं इधर को मुँह किये बैठा हूँ। फिर मैं भी नहा लूं। जल्दी चलें। फिर गाड़ी न मिलेगी।"

वंकिम मुँह फेरकर बैठ गया। श्यामा नहाने लगी। लोहे के घड़ेवाला पानी वंकिम के लिए रख दिया। फिर वंकिम नहाया। श्यामा गीली धोती में बरतन बाँधने लगी। नहाकर, उसी धोती को निचोड़कर वंकिम ने पहना।

अँधेरा हो गया था। स्टेशन करीब ही डेढ़ मील पर था।

बरतनवाला गट्ठर वंकिम उठाने लगा, तो श्यामा ने रोक लिया। कहा, "मुझे तो आदत है, मेरे सिर पर रख दो।" वंकिम ने रख दिया।

बाकी लावारिस सामान जमींदार के लिए छोड़कर उस सन्ध्या में दोनों हमेशा के लिए गाँव से निकल गये।

वंकिम कानपुर आकर एक धर्मशाला में टिका। वहाँ से पता लगाकर आर्य-समाज के मन्त्री सत्यप्रकाशजी से मिला। सत्यप्रकाशजी ऊँचे दरजे के शिक्षित, प्रभाव-शाली मनुष्य हैं, अभी तक विवाह नहीं किया, करने का इरादा भी नहीं। वंकिम की कथा सुनकर हँसे। सामाजिक ऐसी अनेक प्रकार की व्याधियों की वह चिकित्सा करते रहते हैं, इसलिए अविश्वास नहीं किया। बल्कि सुनकर प्रोत्साहन देते हुए सब प्रकार की मदद करने को तैयार हो गये। उन्होंने वंकिम को अपने यहाँ बुला लिया, और एक दिन आर्य-समाज में दोनों का विवाह कर दिया। वंकिम के वीरोचित कार्य से वह इतने प्रसन्न हुए कि अपने वकील और कर्मचारी

मित्रों से कहकर खर्च के लिए प्रतिमास तीस रुपये चन्दा करा दिया, पन्द्रह स्वयं देते रहे, और उसे वहीं स्कूल में भर्ती कर दिया। वंकिम और श्यामा की करीब वराबर उम्र थी। बाप का इकलौता लड़का होने के कारण अच्छी तरह पला था, जल्द तगड़ा, जवान हो गया था। संसार का एक ही प्रहार से पूरा परिचय हो गया था। वह जी तोड़कर पढ़ने में श्रम करने लगा। सत्यप्रकाशजी स्वयं तत्परता से उसे पढ़ाते थे। अपने में मिला लिया। श्यामा के भी पढ़ने और दस्तकारी सीखने का प्रवन्ध हो गया।

कई साल हो गये, वंकिम अपने गाँव नहीं गया। वहाँ कितना परिवर्तन हो गया, पर गाँव के लोग अपने स्वभाव से जहाँ थे, वहीं ठहरे हुए हैं। अत्याचार उसी प्रकार होते हैं, प्रतिकार का मार्ग वैसा ही रुका है। पं. रामप्रसादजी ने फिर वंकिम की कोई ख़बर नहीं ली, मरते-मरते मर गये।

रामप्रसादजी का देहान्त होने पर जमींदार पं. दयाराम ने बाग में अपना कब्जा कर लिया। जो पड़ोसी भैयाचार थे, उन्हें बाहर से उन्होंने भैयाचार स्वीकार ही न किया। गाँववालों को सिखला दिया कि कोई भैयाचार न कहे। घर में भी अपना कब्जा कर लिया। वहाँ अपने बैल बँधवाने लगे। साल-भर से बाग के आम-महुए वही बिनवा रहे हैं। पहले भैयाचार ने जबानी ख़ुशामद की, पर दयाराम न पसीजे, तब दावा कर दिया। उधर रामप्रसादजी की लड़की को भी कई महीने बाद पिता के गुजरने का संवाद मिला। वह दूर दूसरे जिले में ब्याही थी। अब उसके एक लड़का था। सरला पति और पुत्र के साथ जमींदार से मिली, और नाना की सम्पत्ति नाती को देने की बड़ी आरजू-मिन्नत की, पर जमींदार ने कहा, "हम दूसरे गाँव में रहते हैं, हमको कुछ पता नहीं, आप उन्हीं की लड़की हैं, आप अदालत से ले लीजिए।"

फलतः नाबालिग बच्चे के वली ने अदालत में दरख़्वास्त दे दी। भैयाचार को भी इससे अपने हक के लिए लड़ने की हिम्मत हुई। इधर जमींदार दयाराम ने इन सबको उठल्लू और बाग को लावारिस साबित किया। कई महीने तक अदालत चली। जमींदार के गवाह सबसे मजबूत थे। नाती के सबसे कमजोर।

दयाराम चारो ओर से चौकस रहते थे। एक पेशी को गये, तो मालूम हुआ, नाती-पक्षवाले रिश्वत की पूरी तैयारी से डिप्टी-साहब से मिलने गये हैं, क्योंकि अदालत के गवाहों की कमजोरी उधर रुपये से पूरी करेंगे। दयाराम चलते-पुर्जे आदमी थे। शहर से बात-की-बात में सौ रुपये की डाली खरीदकर लगवा ली, और डिप्टी साहब के बँगले पर पहुँचे। देखा, वास्तव में नाती-पक्षवाले डटे थे। डिप्टी साहब बाहर निकलनेवाले थे। दोनों पक्ष एक दूसरे को घूरते हुए स्वागत के लिए प्रतीक्षा कर रहे थे कि डिप्टी साहब अपनी धर्मपत्नी के साथ बाहर निकले। सब लोग खड़े हो गये।

डिप्टी साहब ने दयाराम से पूछा, "इस बाग का हकदार कोई वंकिम है?"

"मैंने तो किसी वंकिम को नहीं देखा हुजूर!"

डिप्टी साहब की धर्मपत्नी श्रीमती श्यामकुमारीदेवी ने जमींदार पं. दयाराम-

जी की ओर उँगली उठाकर अपने अर्दली से कहा, "डालीसमेत इसे कान पकड़कर बाहर निकाल दो।"

सरला को संकुचित एक तरफ खड़ी देखकर डिप्टी साहब ने सस्नेह कहा, "सरला ! तू मुझे भूल गयी !"

बाग पं. रामप्रसादजी के नाती को मिला।

डिप्टी साहब का नाम वेदस्वरूप है।

['रँगीला', साप्ताहिक, कलकत्ता, 4 जून, 1932। पुन: 'सुधा', अर्धमासिक, लखनऊ, के 1 अगस्त, 1933 के अंक में ('आवारा' शीर्षक से) प्रकाशित। **लिली** में संकलित]

प्रेमिका-परिचय

बाबू प्रेमकुमार कैनिंग कॉलेज, लखनऊ में बी. ए. क्लास के विद्यार्थी हैं। मेस्टन होस्टल में रहते हैं। इस समय लखनऊ की बादशाहत अँगरेजी हुकूमत में बदल गयी है, पर उन्हें बादशाह-बाग की हवा लग रही है। चमन, बहार, गुल और बुलबुल के परिस्तान में पैर रखते, सैर करते हैं। उर्दू-शायरी का अज़हद शौक़, इश्क का नाज उठाते हुए चलते, पलकों पर एक सदी पहले का स्वप्न। उदू के खुद भी कुछ अशआर लिखे हैं, कभी-कभी हौज की बगल में बैठकर पढ़ते हैं। होस्टल के मुशायरों में सबसे ज्यादा चन्दा देते, हिन्दी के ज्ञान में अक्षर-परिचय-भर, पत्रिका में शेर खोज-खोजकर पढ़ते हैं। तारीफ उसी पत्रिका की करते हैं, जो हिन्दी-अक्षरों में उर्दू के शेर छापती है। मीर, गालिब, ज़ौक आदि के दीवान-के-दीवान बरज़बान याद, दाग़ को उस्ताद मानते हैं। होस्टल के छात्र उन्हें नव्वाब साहब कहते हैं। यों वहाँ दो-एक को छोड़कर सभी नव्वाब हैं, पर एक दर्जे में पाँच साल फेल होकर शिकस्त न खानेवाले बाबू प्रेमकुमार इज्जत की सल्तनत में बढ़ गये हैं। घर के अमीर हैं, कहते हैं, तहजीब सीखने के लिए लखनऊ आये थे, चौक इसी मतलब से जाया करते हैं, इसीलिए किताबों को तलाक दे दिया है। सर में ऐंगल-कट इंगलिश-फैशन बाल, पैरों में बूट, आज के यही दो चिह्न; बाकी अचकन पाजामा, टोपी, चाल-ढाल और गुलाबी उर्दू हिन्दोस्तानी एकेडेमी की नेशनल ड्रेस और लिंगुआ-इण्डिका चस्पाँ होती हुई। अँगरेजी बन्दरगाहों से दोस्तों को नव्वाबी गुलिस्तानों में लाकर छोड़ते और हर तरह हवा खिलाकर कबूल करा लेते हैं कि सिवा नव्वाबी सभ्यता के चिकारे के विश्व-सभ्यता का कोई भी बाजा मनुष्य के गले से हूबहू नहीं मिल सकता, अँगरेजी कार्नेट तो गधे की धुधकार है। ऐसे गुणों से बाबू प्रेमकुमार छात्रों की आँख-आँख पर रहते, गले-गले से फिरते हैं। खास

बात यह कि क्लास की छात्राओं से, निषेध की ऊँची चारदीवार छायावादी ढंग से अनायास पार कर, प्राय: मौनालाप किया करते हैं, लिहाजा विद्यार्थी प्रतिक्षण इनकी तरफ देखने से विरत नहीं होते। छात्राओं की निश्चल मौन दृष्टि में छात्र-गण अनेक प्रकार की चंचलता सोच लेते हैं, और खुद-ब-खुद बातचीत के कच्चे सूत से बाबू प्रेमकुमार को मजबूत बाँध देते हैं।

होस्टल में प्रेमकुमार की बगल में शंकर का रूम है। शंकर ब्राह्मण का लड़का है, अँगरेजी पढ़ता हुआ भी पीढ़ियों के संस्कारों की पूरी रक्षा करनेवाला। साबुन और सुरती का कारखाना खोलकर पिता ने कई लाख रुपये पैदा किये हैं। पुत्र को धर्म-रक्षा के साथ अँगरेजी-शिक्षा प्राप्त करने को लखनऊ भेजा है। सुयोग्य पुत्र पिता की ही तरह धर्म की रक्षा में जितना पटु, खर्च में उतना ही कटु है। पीछे पूँछ-सी मोटी चोटी, कई पेंच के बाद बाँधने में एक कौशल, खोलने पर बाल बल खाते हुए। कहता है, इलेक्ट्रिसिटी शरीर में प्रिज़र्व करने का सबसे पहले यह आर्यों का निकाला हुआ तरीका है। एक समय वह प्रेमकुमार के साथ था। अब दो साल आगे, फाइनल एम्. ए. में है। तीन साल से बाबू प्रेमकुमार इसे अपने रास्ते पर सभ्य करने का परिश्रम कर रहे हैं, पर यह अब तक सूरदास की काली काँवर सिद्ध हो रहा है। जिस प्रकार बाबू प्रेमकुमार मुसलमान-सभ्यता के ऊँचे फाटक से आदमियों के साथ जानवरों को निकालते रहते हैं, उसी प्रकार शंकर आर्य-सभ्यता के संकीर्ण दरवाजे के भीतर ब्राह्मणों के सिवा दूसरी जाति को नहीं बैठने देता।

इसी विरोधी गुण के कारण प्रेमकुमार प्राय: उससे अपने प्रेम की बातें कहा करते हैं। मतलब, कब उसे पिघलाकर अपने रास्ते वहाँ ले जायें। मौसम बदलने तक प्रेमकुमार की दो-तीन रँगीन प्रेम की घटनाएँ बदल चुकती हैं, तब तक वह बराबर अपना मालकोस गाकर शंकर की शिला में बैजूबावरे के हाथ में मंजीरे छोड़ना चाहते हैं। नैसर्गिक प्रकृति से प्रेमकुमार की भौतिक प्रकृति-चर्चा में शंकर को अधिक रस मिलने लगा, क्योंकि यह और भी शीघ्र बदलनेवाली, और भी आकर्षक, मनुष्य के स्वभाव के और भी निकट है, पर उसकी ओर चलने की शंकर को हिम्मत नहीं होती, क्योंकि धर्म-भीरुता ने उसे वास्तव में भीरु बना दिया है। जब प्रेमकुमार सुनाते हैं, "आज मिस 'सी' ने सिकन्दरबाग में बुलाया था। क्या करूँ, किसी का न्योता टाल तो सकता नहीं, जाना पड़ा, भाई जान देती है। पूछने लगी, कहो, तुम हमेशा के लिए हमारे हो ? कहना पड़ा। अब ऐसा प्यार ठुकराया तो जाता नहीं। फिर क्या कहूँ कि क्या-क्या बातें हुईं। वहाँ से हम लोग कार्लटन होटल गये; खाया-पिया, मौज से बारह बजे तक रहे।" सुनकर शंकर चलते मूसल से ऊखल की दशा को प्राप्त होता है, तत्काल वासना वशीभूत कर लेती है। पर पिता की बात, जात जाने का भय, हृत्कंप पैदा कर बढ़ने से रोक लेते हैं। जब तक वह अपनी बिगड़ी दशा को राम-नाम जपकर सुधारता है, तब तक बाबू प्रेमकुमार अपनी दूसरी घटना उसके सर पटक देते हैं, "कल मिस लीलावती का पत्र मिला था। लखनऊ में उससे खूबसूरत कोई नहीं, यह मैं दावे के साथ कह सकता हूँ। क्या गजब की आँखें हैं ! देखती क्या है, पार कर जाती है। रात आठ बजे विक्टोरिया-पार्क में मिलने के लिए बुलाया था। देखो, यह सब इस चेहरे की करामात है। दुनिया

में कामयाबी हासिल करना चाहते हो, तो पहले चेहरा सुधारो। मैं कहता हूँ, तुम जैसे मनहूस, मुहर्रमी सूरत बनाये फिरते हो, तुम्हारी बीवी भी तुम्हें नहीं प्यार कर सकती। यह चेहरा ही प्यार करनेवाला नहीं। हाँ, फिर लीलावती से बड़ी दूर तक मंजिल तय हुई।" शंकर की नसों का खून फिर तेज बह चलता है। बेचारा पलकें दबाकर, रीढ़ सीधी कर सँभलता और दस-पाँच दिन बिगड़े हुए मन को सुधारता है, तब तक एक फिर नयी खबर आ पहुँचती है। इसी तरह उसने तीन साल पार किये। पतिव्रता स्त्रियों के तीसरे कोठे से चौथे तक उतरने की कभी उसे हिम्मत नहीं हुई। सिर्फ एक दफा आजमाइश की थी।

प्रेमकुमार धीरे-धीरे प्रेमिका-परिचय में सूक्ष्म से स्थूल होने लगे। पहले केवल अपने व्याख्यान के प्रभाव से खींचने के उद्योग में थे, अब अपने नैसर्गिक सुख के लिखे प्रमाण भी पेश करने लगे।

शंकर उनसे सुन चुका था, किस तरह कुमारियों और महिलाओं से आँखें मिलाकर बातचीत की जाती है; आवाज कहाँ तक शिष्ट और अलफाज कैसे-कैसे कौन-कौन से खासतौर से प्रयोगों में आते हैं। एक रोज एकान्त में अपने ही क्लास की एक छात्रा से आजमायश के लिए उतरकर बुरी तरह फेल हुए। इसके एक सम्बोधन-मात्र से जो आग उसकी आँख से निकली, फिर रस्टिकेटेड होने के डर से इसने किसी मिस की तरफ आँख उठाकर नहीं देखा।

आज एक पत्र लेकर फड़कते हुए प्रेमकुमार शंकर से मिले, और लिफाफा-सहित शंकर के पास बिस्तरे पर फेंककर कहा, "देखो, क्या लिखा है।" शंकर उठाकर पढ़ने लगा। अँगरेजी में पत्र यों लिखा है--

'मेरे प्रिय प्रेमकुमार,

आज इतने दिनों से कॉलेज जाती हूँ, तो एक बार तुम्हें अवश्य देखती हूँ। नहीं देखती, तो दिल की आग नहीं बुझती। पर तुम तुम कितने कठोर हो, मेरी तरफ भूलकर भी नहीं देखते! ईश्वर ने तुम्हें यह रूप मुझे जलाने के लिए दिया था। जो चीज अपनी नहीं, मैं उसे चाहती हूँ। तुम हँसोगे। हँसो! यह मेरे भाग्य होंगे, पर क्या मैं आशा करूँ कि मुझे जलानेवाली आग तुम मुझे दोगे? जरूर दो प्यारे, मैं कुछ भी तुमसे इस नश्वर संसार में नहीं चाहती, सिर्फ वही आग, वही जलती हुई मुझे जलानेवाली अपने रूप की आग एक बार मुझे दे दो, और देखो, मैं तुम्हारे सामने ही किस तरह जलकर राख हो जाती हूँ। प्यारे, अब यह हाथ जवाब दे रहा है, आँसुओं का तार बँध रहा है, क्या लिखूं? क्या एक बार, बस एक बार तुम मेरे प्यासे दृगों को तृप्त करने के लिए कल शाम बनारसी-बाग में मुझे मिलोगे? तुम्हारा हमेशा, हमेशा के लिए दिल से आभार मानूँनी—उफ्!

5, हिवेट रोड
लखनऊ
3.4.32

तुम्हें न मिल सकनेवाली
तुम्हारी शान्ति'

पत्र को बड़े गौर से शंकर ने कई बार साद्यन्त पढ़कर कहा, "भई, है तो यह किसी सच्चे दिल की पुकार!"

"है न ?" गर्व-पूर्वक प्रेमकुमार ने सर उठाकर कहा, "तुमसे मैं कई बार कह चुका कि और कुछ नहीं, तो ज़रा अपना चेहरा भले आदमी की तरह सुधार लो, पर तुम पूरे गँवार ही रहे।"

"लेकिन कहाँ इसने तुम्हें देखा होगा ? मुझे तो कभी-कभी बड़ा तअज्जुब-सा लगता है।"

"कहाँ देखा होगा ! मैं जहाँ-जहाँ जाता हूँ, वहीं-वहीं से कहीं देखा होगा, फिर कुछ दूर चलकर खुद ताँगे से उतरकर ताँगेवाले को पता पूछ आने के लिए कह दिया होगा।"

"अच्छा ! ऐसा होता है ?"

"अरे मूर्ख ! लखनऊ है। फिर जब कि लगती है, तब दिल के खुदा रास्ता भी बन्दे को बता देते हैं। मुमकिन, दूसरी तरह पता लगाया हो। किसी गर्ल्स-कॉलेज की लड़की जान पड़ती है। कॉलेज की लड़कियों में मेरी पहचान काफी है।"

"लेकिन हरएक तुम्हीं से स्वयंवरा होती है ?"

"मुझसे नहीं, देखो, इधर देखो, इस रूप से होती है, यह शाही शान लखनऊ में दूसरी जगह न पाओगे।"

बाबू प्रेमकुमार की तरफ एक बार देखकर शंकर खूब प्रसन्न होकर हँसा। प्रेमकुमार कायस्थ है। बाल और चेहरे के रंग में बहुत थोड़ा-सा फर्क है। तेल, साबुन, पाउडर और सेफ्टी-रेजर की दैनिक रगड़ से मुँह का तो मैल छुट गया है, पर चमड़े का स्याह रंग वार्निशशुदा बूट की तरह और चमकीला हो गया है। काले रंग पर पाउडर की सफेदी देखनेवालों की आँखों में गजब ढाती है।

"तुम हँसते क्यों हो ?" नाराज होकर प्रेमकुमार ने पूछा।

"इसलिए कि तुम जो कुछ कह रहे हो, इसमें कहीं तिल रखने की भी जगह नहीं। तो क्या जाओगे ही ?"

"जाना मेरा फर्ज है। प्यारवाले कलेजे मोम से भी मुलायम होते हैं, ज़रा-सी आँच नहीं सह सकते, पिघलकर खत्म हो जाते हैं। तुम्हें इसका कुछ पता तो है ही नहीं।"

"ठीक कहते हो। मुझे कहीं से ऐसा न्योता आ जाये, तो पहले तो जाने की हिम्मत न हो, अगर जी कड़ा करके जाऊँ, तो मिलने के वक्त भगवान् जाने क्या हो। सरस्वतीदेवी शायद ही जीभ तक पहुँच सकें।"

प्रेमकुमार हँसने लगे। बोले, "Face is the index of mind (चेहरा मन का सूचीपत्र है)। तुम्हें कहीं से न्योता मिल भी नहीं सकता। तुम ज़रा यह ब्राह्मणों की पोंगापन्थी छोड़ो, तो कुछ दिनों में तुम्हें आदमियों से मिलने लायक बना दूँ।"

शाम को बनारसी-बाग में, एक तरफ ताँगा खड़ा कर. हिरन, गैंडा, चीते, शेर, चिड़िया, शुतुरमुर्ग, कँगारू, बाघ, भालू, भेडिये और जेब्रा आदि के घेरे-घेरे, पिंजड़े-पिंजड़े प्रेमकुमार चक्कर मारते रहे। प्रिया को वह खुद पहचाननेवाले नहीं, प्रिया द्वारा पहचाने जानेवाले हैं, इसलिए जो भी हसीन, नवीन साड़ी में लिपटी,

लपट-सी उठती, उनकी तरफ आती हुई देख पड़ती है, पूरे ताव से दो-एक कदम उसकी तरफ बढ़ जाते हैं। बस, उसके साथ की सखी या आदमियों की आलोचना पहुँचती है, "कैसा अहमक है, अन्धा कहीं का।" बस, पैर रुक जाते, आशा दूसरी तरफ फेर देती है। पूरे चार घण्टे तक बाग में चक्कर लगाते रहे। दो-तीन बार ताँगेवाला आ-आकर पूछ-पूछकर लौट गया। जहाँ कहीं बैठी महिलाएँ बातचीत करती हुई देख पड़ीं, यह देर तक उनके चारों तरफ कावे लगाते रहे। धीरे-धीरे बाग निर्जन हो गया। यह फिर भी बारह-दरी के चारों ओर टहलते रहे। शान्ति न मिली। शान्ति खोकर शिथिल-देह ताँगे पर आकर बैठे, और होस्टल में आ चुपचाप लेट रहे।

दूसरे दिन शंकर ने खबर लेने की गरज से आकर कमरे में प्रेमकुमार को मुरझाया बैठे हुए देखा। वह प्रेमकुमार के प्रेम का खुमार न हो, ऐसा खयाल कर चेहरे की तरफ तारीफ की निगाह से देखते हुए पूछा, "क्यों भई, कल पहली पहचानवाली शाम अच्छी तो कटी?" पूछकर बगल में बैठ गया।

"हिन्दोस्तानी सबसे पहले इसलिए बदनाम हैं कि वादे के हजार पीछे दो भी पक्के नहीं निकलते। तभी तो गले से गुलामी छूटती नहीं। ऐसी-ऐसी गन्दी आदत-वाले अगर चाहें कि अपना सुधार सामाजिक, राजनीतिक कर लें, तो क्या खाक करेंगे?" झुंझलाये हुए प्रेमकुमार बोले।

"तो कहो, कल वादा-खिलाफी रही। मैं तो पहले से तुम्हें सचेत कर रहा था कि कहीं किसी ने मजाक न किया हो। पर तुम भी ऐरे-गैरे नत्थू-खैरे सबको युधिष्ठिर का अवतार समझ लेते हो।"

"मेरी आदत है, मैं अपनी तरह दूसरे को भी तहजीब-पसन्द भला आदमी मान लेता हूँ। और लखनऊ में, खासकर पढ़ी-लिखी लड़कियों में ऐसी बेहूदा भी रह सकती हैं, मैं क़यास में नहीं ला सकता।"

पूरी गुस्ताखी की निगाह देखते हुए शंकर ने कहा, "तब तो बड़ा धोखा हुआ। सारा मजा किरकिरा कर दिया!"

सामने चिट्ठीरसा आता हुआ देख पड़ा। प्रेमकुमार उसी पर दृष्टि जमाये हुए थे। वह भी उन्हीं की तरफ बढ़ रहा था। पास आ एक लिफाफा दिया। खोलकर, पढ़कर प्रेमकुमार प्रसन्न हो गये। कहा, "देखो, हम लोग गलती में थे। देखो, कितनी अच्छी साफ-दिल की तस्वीर है।"

शंकर चिट्ठी लेकर पढ़ने लगा। लिखा है—

'प्राणेश प्रेम,

तुम मेरे लिए कल कितने परेशान थे। जब जानवरों के घेरे-घेरे घूमते हुए अपनी शान्ति की खोज में व्याकुल हो रहे थे, तब मैं अपनी माँ के साथ बैण्ड-स्टैण्ड के सामनेवाले मैदान में खड़ी उधर से तुम्हें जाते हुए देखकर हँस रही थी। जी चाहता था, दौड़कर तुम्हारी शान्ति का पता दे दूँ, और पहले पता बताने का पुरस्कार तुमसे कुबूल करवा लूँ, पर मेरी माँ साथ थीं, इसलिए तुमसे मिल नहीं सकती थी। पर क्या तुम इतना सोच ले सकोगे कि मैं कितनी बार, कितनी तरह, आँखों से, दिल से, गले से और प्यार से तुमसे मिल चुकी हूँ? मैं वही हूँ, जिसे

देखकर तुम चौंके थे, मेरी मौन पुकार सुनकर, मुझे देखकर खड़े हो गये थे, फिर उदास होकर चले गये थे। तुम समझो कि अपनी चाहनेवाली के दिल में कितनी आग तुम फूँक गये हो। वह अपने प्यारे के असली प्रेम की परीक्षा कर न मिल सकने के कारण कितना तड़प रही है। आह! तुम्हें इतना कष्ट अपनी शान्ति के लिए स्वीकार करना पड़ा! पर शान्ति तुम्हें मिलेगी। वह तुम्हारे ही पास रहती है। तुमसे जुदा हो जाये, तो उसकी हस्ती मिट जाये। तुम्हें अवश्य-अवश्य तुम्हारी शान्ति मिलेगी। कल एलफ़िंस्टन-सिनेमा जरूर-जरूर आने की कृपा करना।

हिवेट रोड, लखनऊ तुम्हारी
4.4.32 शान्ति'

मुस्किराकर शंकर ने कहा, "यार, इनके पत्र में तो पूरी कविता रहती है!"

"हाँ, काफी पढ़ी-लिखी जान पड़ती हैं। अँगरेजी बड़े काट की लिखती हैं।" आत्मगौरव को छिपाने का प्रयत्न करते हुए प्रेमकुमार ने कहा, "जब माँ साथ हों, तब कैसे कोई खुले दिल से बातचीत करे?"

"किसी ऊँचे खानदान की जान पड़ती है।" शंकर ने बढ़ाकर कहा।

"जरूर, यह काट-छाँट किसी फटीचर घर की लड़की की हो ही नहीं सकती। खानदानी घर की लड़की की मिसाल दूब से दी जाती है, जो बारह साल धूप में झुलसती रहने पर भी दिल से गीली रहती है। इसीलिए जान से बची रहती है। किसी ने ज़रा-सा पानी डाला या आसमान से चार बूँदें पड़ीं कि चौगुनी हरियाली से लहरा-लहराकर पानी डालनेवाले की तारीफ करती रहती है। इस तरह उसकी आँख ठण्डी कर फौरन बदला चुका देती है।"

"बहुत दुरुस्त कहते हो। क्या सिनेमा जाने का विचार है?" आग्रह जाहिर करते हुए शंकर ने पूछा।

"न जाने की क्या बात हुई? अगर न्योता और वह भी भले घर का, किसी को मिले, और वह न जाये, तो उससे बड़ी मेरे खयाल से दुनिया में दूसरी बेहूदगी है ही नहीं।" आईने को सामने की मेज पर रखकर सेफ्टीरेजर में नया ब्लेड लगाते हुए प्रेमकुमार ने कहा।

"चाहिए जरूर जाना। तबियत मेरी भी होती है कि जब तुम मिल लो, तब एक बार उनके दर्शन मैं भी करूँ। अँगरेजी में कविता जरूर लिखती होंगी।"

"हाँ, दिल एक सच्चे शायर का है। हर सेंटेंस चोट करता है, है न?"

"करारी; चोट तुम पर है, तड़प मुझे हो चली है!"

"कोई लफ्ज निकाल दो, तो सारा मजमून लँगड़ा।" दाढ़ी में साबुन लगाते हुए, प्रेमकुमार ने कहा, "मैं मिल लूँ, फिर वायदा करता हूँ, तुम्हें जरूर मिला दूँगा। इसी तरह धीरे-धीरे भले आदमी बन जाओ। अब जमाना ब्राह्मणोंवाले खयालत से बहुत दूर बढ़ गया है। तुम बाक़ायदा पढ़े-लिखे आदमी हो, कुछ अपनी तरफ से भी समझो। खैर, मैं तो पहले मिलने-जुलने की आजादी मानता हूँ, फिर और।"

छः का समय है। एलफ़िंस्टन-पिक्चर-पैलेस के सामने लोगों की भीड़ है। 'शैलबाला'

फिल्म जोरों से चल रही है। चवन्नी और अठन्नीवाले झरोखे में लखनऊ के पान-वाले, हिन्दू-मुसलमानों के, आवारागर्द नौजवान लड़के और गरीब बाशिन्दे एक-दूसरे पर चढ़े हुए टिकट के लिए बढ़ते जा रहे हैं। कई प्राइवेट मोटरें आकर लगी हैं। प्रेमकुमार बड़ी देर तक इधर-उधर टहलते रहे। कुछ देर तक तस्वीरें आज-वाली और आगे होनेवाली फिल्मों की, सुलोचना, जुबेदा, माधुरी, कज्जन, मुश्तरी, शीला, कपूर और मुख्तार बेगम आदि की देखते रहे, यद्यपि इन सबके चित्र उनके कमरे में बड़ी हिफाजत से रक्खे हैं, और जुबेदा की एक तस्वीर बड़े खर्च से, सुनहरे बार्डर में, आईने की तरह चेकदार, बँधवाकर मेज पर रख दी है। वहाँ तस्वीरों के पास रहने का खास मतलब यह है कि शान्ति आवेगी, तो जाने के समय मुलाकात हो जायेगी, और मालूम भी हो जायेगा कि वह किस दर्जे में गयी। अभी से टिकट खरीदकर कहीं जाकर बैठना बेवकूफी होगी। कहीं उस दर्जे में शान्ति न मिली, न गयी, तो ? कोई भी प्रवीण नवीन पत्नी का हाथ पकड़े उधर से गुजरता है, तो प्रेमकुमार उन्हें शान्ति और उसका बाप समझकर प्रेम से सिहर उठते हैं, फिर तरुणी की जलती दृष्टि से मौन लांछन पा रह जाते और दूसरे वार की प्रतीक्षा करते हैं।

समय केवल दो मिनट खेल शुरू होने को रह गया, तब बहुत घबराये। निश्चय हुआ कि शान्ति उनके आने से पहले भीतर चली गयी, और अतृप्त आँखों से उनकी राह देखती होगी। बड़े बेचैन हुए। कहाँ, किस दर्जे में जायें, कुछ ठीक नहीं हो रहा। वहाँ वह बैठी उनके नाम की माला जप रही है, कैसे मालूम करें। अन्त में, बाहर रहने से भीतर रहना अच्छा। इस विचार से अपना लाइब्रेरीवाला कार्ड दिखलाकर ऊपर का टिकट कंसेशन से ले लिया। जाते-जाते बत्ती भी बुझ गयी, खेल शुरू हो गया। इच्छा थी, ऊपर और जहाँ तक नजर जायेगी, शान्ति को उजाले में खोजेंगे। दिल बैठ गया।

खेल शुरू हो गया। प्रेमकुमार की घबराहट बढ़ चली। लोग एकाग्र होकर तमाशा देख रहे हैं। प्रेमकुमार चित्त की अपलक आँखों से शून्य शान्ति का ध्यान कर रहे हैं, उसकी बातें सोच रहे हैं, 'उसने लिखा है, मैंने तुम्हें देखा है; तुमने भी मुझे देखा है। सबसे ज्यादा मैं किसकी तरफ खिंचा था ! क्या वही है—वह गोरी-गोरी लड़की ! पर उधर से तो शायद किसी बेहूदे की दी गाली की आवाज आयी थी, किसी कमबख्त ने यों ही छेड़ दिया होगा।"

खेल को एक घण्टा हो गया, पर प्रेमकुमार को मालूम नहीं कि क्या-क्या हो गया। केवल शान्ति के ध्यान में तन्मय हैं।

घण्टी बजी। हाफटाइम हुआ। बत्तियाँ जल गयीं। प्रकाश में ऊपर-नीचे, कई जगह, सुन्दरी-से-सुन्दरी युवतियों को बैठे हुए देखा। पर ऐसी हालत में कहाँ जायें ? किसे शान्ति समझें ? जो सबसे खूबसूरत है ? गौर से देखने लगे। जिससे निगाह लिपट जाती, प्रकाश में उज्ज्वल आँखें, कोट, कट, चिबुक, मुख उसी के अपूर्व सुन्दर लगते हैं। जब जिसे देखते, तब उसे ही शान्ति समझने लगते हैं। कैसी विपत्ति है ! इतनी युवतियों में कौन सबसे सुन्दरी है, निर्णय करने में मन सक्षम नहीं। जितनी हैं, उतने रूप के मुख हैं—गोल, लम्बे, चकले, सम, सभी सुन्दर

हैं, सभी निर्दोष। इनमें शान्ति कौन हो सकती है ?

मेहनत करते-करते मन थक गया। रूपों को देखते रहने के लिए वह राजी है, पर शान्ति के निर्णय के लिए पूर्ण श्रान्त। उसने युक्ति दी—'इन्हीं में शान्ति होगी। हर स्त्री अपने रूप को सबसे सुन्दर समझती है। वह वास्तव में रूपवती है भी; इसलिए खेल समाप्त होने पर रास्ते पर हरएक को देख लेना।'

खेल समाप्त हुआ। रास्ते पर आ प्रेमकुमार ठाट से टहलने लगे। उन्हें शान्ति न मिली। जितनी शान्तियाँ अपने पति को हाथ से पकड़े हँसती हुई शैलबाला की आलोचना में मुखर उधर से निकलीं, सभी बाबू प्रेमकुमार को जला-जलाकर चली गयीं।

हताश होकर भी आशा के क्षीण-क्षणिक आश्वासन से हृदय को बाँधकर प्रेमकुमार एक ताँगे पर आ बैठे, और बादशाह-बाग चलने के लिए कहा।

प्राणों की प्रेयसी प्रतिमा को पुनः-पुनः दैत्यों के वीर भाव से अणुओं में चूर्ण करने लगे, और वह उन्हीं के प्राणों से शक्ति ग्रहण कर-कर परमाणुओं से सुन्दर रूप-बन्ध में गठित हो-हो—आज की उन्हीं रूपसियों के चेहरे-चेहरे से, जिन्हें वे अच्छी तरह कुछ देर पहले देख चुके हैं, जो कुछ देर पहले उन्हें आँखों की दृष्टि में लांछित कर चुकी हैं—माया-मरीचिका में आँखों की दृष्टि हर-हर, शान्ति के रूप में उठ-उठकर लुभाने लगी।

निरुपाय प्रेमकुमार होस्टल आ, किराया चुकाकर चुपचाप अपने कमरे में चले गये। शंकर पढ़ रहा था, पर अभी चलकर बातचीत करना उसने ठीक न समझा।

सुबह भी शंकर समय बरबाद होने के विचार से प्रेमकुमार से नहीं मिला। उधर प्रेमकुमार भी चिन्ताजनक मानसिक स्थिति के कारण सुबह शंकर से आकर नहीं मिल सके।

कॉलेज से लौटकर बाहर से शंकर ने आहट ली। प्रेमकुमार प्रसन्न थे। एक गजल मन-ही-मन गुनगुना रहे थे। इस गजल को कैनिंग कॉलेज के विद्यार्थी लखनऊ का नेशनल सांग (जातीय गीत) कहते हैं। गजल है—

"अगर क़िस्मत से लैला के गले का हार हो जाता,
ज़माने-भर की नज़रों में खटकता, खार हो जाता।"

आदि, आदि।

शंकर को मालूम हो गया कि या तो कल इनकी किस्मत दरअस्ल लड़ गयी, या आज अब फिर चिट्ठी में कल कहीं मिलने की आज्ञा पहुँची है। मुस्किराता हुआ भीतर गया, और बड़ी उत्सुकता से पूछा, "क्या भई, कल मुलाकात तो हो गयी ?"

"किसी ने ठीक कहा है।" प्रेमकुमार बोले, "जो मजा इन्तजार में पाया, वह वस्ल में न पाया।"

"तो क्या अभी इन्तजार ही चल रहा है ?" कुछ तअज्जुब से शंकर ने पूछा।

"बात यह हुई कि कल मैं पहले शो में गया, वह दूसरे में आयी। इसीलिए

मुलाकात न हो सकी। बड़ा ताना देकर चिट्ठी लिखी है। देखो।"

प्रेमकुमार ने चिट्ठी बढ़ा दी, शंकर पढ़ने लगा। लिखा है—

'प्यारे प्रेम,

कल दूसरे शो में मैं गयी, पर तुम नहीं थे। यह कैसी बात! क्या तुम मुझसे नाराज हो गये? मुझे क्षमा करना। तुम्हीं सोचो, मेरा क्या कसूर था? अगर तुम पहले शो में आये, तो गलती की। भला, पहले शो में भी कहीं दिल मिलानेवाले मिल सकते हैं? जब तक सिनेमा होता, हम लोग गोमती के किनारे बातचीत करते, फिर सिनेमा खत्म होने पर मैं घर चली जाती। पहले शो में यह मौक़ा शहर की भीड़ में कहाँ मिलता है? अगर पहले शो में तुम गये, तो जरूर चुड़ैलों को देखकर मेरा अन्दाजा लगाया होगा, इस तरह तुमने मेरा कितना अपमान किया! अब कल का वादा पूरा होना ही चाहिए। कल गोमती के किनारे, छोटे-लाल के पुल पर, छत्री में रहना। मैं नहाने जाऊँगी। तब तुम मुझे दिन को देख कर फिर रात को न भूल सकोगे। फिर हम लोग किसी दिन कहीं मिल जायेंगे। कल जरूर जरूर तुम्हें तुम्हारी शान्ति मिलेगी। ठीक आठ बजे दिन को मैं जनाने घाट पर रहूँगी।

5, ह्विवेट रोड

लखनऊ

5-4-32

रात एक बजे

तुम्हारी कब से खोयी हुई,

शान्ति'

पढ़कर शंकर की तबियत फड़क उठी। कहा, "अब क्या, अब तो कल जरूर किस्मत खुल जायेगी।"

"एक-न-एक ऐसा अड़ंगा लग जाता है कि बना-बनाया काम बिगड़ जाता है।" सहज प्रसन्न स्वर से प्रेमकुमार बोले।

"पहले की अड़चन अच्छी होती है। पीछे की सफलता तब बड़ी स्वाददार जान पड़ती है। प्रेम के लिए तो यह खास बात होगी। मुझे कल्पना से इसका ठोस आनन्द कुछ-कुछ मिल रहा है।" शंकर ने चिट्ठी की तरफ देखकर कहा।

"कल्पना नहीं, खरबूजे-सा अपना हाल समझो। रोज साथ किसका होता है? यह उसी का रंग चढ़ रहा है, जो तजवीज इतनी चोखी उतर रही है।" प्रेमकुमार ने आत्मप्रसाद के उदात्त भावों से कहा।

"पके खरबूजे को स्यारों से बड़ा डर है।"

दूसरे दिन पाँच बजे प्रातः नहाकर, पूरा शृंगार कर, प्रेमकुमार छड़ी लेकर छोटेलाल के पुल की ओर, ठीक छः बजे चल दिये। आठ बजे तक घाट की ओर टहलते, छत्री पर उठते-बैठते रहे। आठ बज गये, नौ बज गये, दस बज गये, किसी ने भी उनसे आकर न कहा, प्यारे, तुम इतने परेशान हो मेरे लिए, मैं ही तुम्हारी शान्ति हूँ। बल्कि एक अज्ञात मनुष्य ने पूरी उद्दण्डता से पेश आकर कहा, "आप बड़ी देर से यहाँ टहल रहे हैं, और मैं देखता हूँ, जो भी औरत आती है, आप बुरी तरह घूरते हैं, क्या आपको इस तरह नजर लड़ाते वक्त अपनी माँ-बहनों की

बिलकुल याद नहीं आती ?"

पाप बड़ा डरपोक होता है। कुछ जवाब दें, प्रेमकुमार को ऐसी हिम्मत न हुई। चेहरा उतर गया। चुपचाप सीढ़ियों पर चढ़कर बादशाह-बाग की राह ली। होस्टल में जाकर लेट रहे। उस रोज खाना न खाया।

वक्त पर चिट्ठीरसा फिर चिट्ठी लेकर पहुँचा। प्रेमकुमार मन-ही-मन शान्ति को शान्ति देने की दृढ़ प्रतिज्ञा कर रहे थे, उसी समय उसने एक चिट्ठी इन्हें दी। लेकर पढ़ने लगे। लिखा है—

'मूर्खाधिराज,

तुम्हें गोमती में भी चुल्लू-भर पानी नहीं मिला !

5, ह्विवेट रोड तुम्हारी
लखनऊ शान्ति'

पढ़कर प्रेमकुमार के छक्के छूट गये। कुछ देर बाद शंकर भी आया। पत्र वैसा ही खुला मेज पर पड़ा था, पढ़ लिया। फिर हँसी को पीकर बोला, "यार, यह तो अच्छा मजाक किसी ने किया। अब 5, ह्विवेट रोड पर चलकर देखो तो, कौन रहता है।"

ह्विवेट रोड पर इन्हीं की नयी ब्याह कर आयी साली अपने अकेले पति के साथ रहती है, जो इन्हीं के कॉलेज में पहले इन्हीं के साथ रहकर अब रिसर्च-स्कॉलर है। इन्हें देखकर क्षमा हँसने लगी। कहा, "आप बड़े बेवकूफ हैं, शान्ति तो दीदी का ही राशि का नाम है।"

['सुधा', मासिक, लखनऊ, जुलाई, 1933। **लिली में संकलित**]

हिरनी

कृष्णा की बाढ़ बह चुकी है; सुतीक्ष्ण, रक्त-लिप्त, अदृश्य दाँतों का लाल-जिह्व योजनों तक, क्रूर, भीषण मुख फैलाकर प्राण-सुरा पीती हुई मृत्यु ताण्डव कर रही है। सहस्रों गृह-शून्य, क्षुधा-क्लिष्ट, निःस्व, जीवित कंकाल साक्षात् प्रेतों-से इधर-उधर घूम रहे हैं। आर्तनाद, चीत्कार, करुणानुरोधों में सेनापति अकाल की पुनः-पुनः शंख-ध्वनि हो रही है। इसी समय सजीव शान्ति की प्रतिमा-सी एक निर्वास-बालिका शून्यमना दो शवों के बीच खड़ी हुई चिदम्बर को देख पड़ी।

"ये तुम्हारे कौन हैं ?" शवों की ओर इंगित कर वहाँ की भाषा में चिदम्बर ने पूछा।

बालिका आश्चर्य की तन्मय दृष्टि से शवों को कुछ देर देखती रहकर शून्य भाव से अज्ञात मनुष्य की ओर देखने लगी।

चिदम्बर ने अपनी तरफ से पूछा, "ये तुम्हारे माँ-बाप हैं ?"

बालिका की आँखें सजल हो आयीं।

चिदम्बर ने सस्नेह कहा, "बेटी, हमारे साथ डेरे चलो, तुमको अच्छा-अच्छा खाना देंगे।"

बालिका साथ हो ली। उसकी अन्तरात्मा उसे समझा चुकी थी कि उसके माता-पिता उस नींद से न जगेंगे। उसे माता-पिता को सचेत करने का इतना उद्यम पहले कभी नहीं करना पड़ा—यही उसके प्राणों में उनके सदा अचेत रहने का अटल विश्वास हुआ।

पहले चिदम्बर ने अच्छी तरह उसे अपना दुपट्टा पहना दिया, फिर उँगली पकडकर धीरे-धीरे डेरे की ओर चला, जो वहाँ से कुछ ही फासले पर था। अकाल-पीड़ितों की समुचित सेवा के लिए मद्रास के 'पतित-पावन संघ' के प्रधान निरीक्षक की हैसियत से संघ को साथ लेकर चिदम्बर वहाँ गया था।

कुछ दिनों बाद धन-संग्रह के लिए चिदम्बर को मद्रास जाना पड़ा। शिक्षण-पोषण के लिए अनाथ-आश्रम में भर्ती कर देने के उद्देश से बालिका को भी साथ ले गया। वहाँ जाने पर मालूम हुआ कि राजा रामनाथसिंह रामेश्वरजी के दर्शन कर कुछ दिनों से ठहरे हुए हैं, उसे मिल आने के लिए बुलावा भेजा था। चिदम्बर के पिता जज के पद से पेंशन लेकर कुछ दिनों तक राजा साहब के यहाँ दीवान रह चुके थे; उन दिनों चिदम्बर को पिता के पास युक्तप्रान्त में रहकर प्रयाग-विश्व-विद्यालय में अध्ययन करना पड़ा था। अब उसके पिता नहीं हैं।

संवाद पा राजा साहब से मिलने के लिए चिदम्बर उनके वासस्थल को गया। बाढ़ की बातचीत में बालिका का प्रसंग भी आया। चिदम्बर उसे अनाथ-आश्रम में परवरिश के लिए छोड़ रहा है, यह सुनकर कारुण्य-वश राजा साहब ने ही उसे अपने साथ सिंहपुर ले जाने के लिए कहा। चिदम्बर इनकार करे, ऐसा कारण न था; बालिका रानी साहिबा की देख-रेख में, उन्हीं के साथ, उनकी राजधानी गयी।

आठ साल की लड़की रानी साहिबा की दासियों से स्नेह तथा निरादर प्राप्त करती हुई, उन्हीं में रहकर उन्हीं के संस्कारों से ढलती हुई धीरे-धीरे परिणत हो चली। वहाँ जो धर्म दासियों का, जो भगवान् रानी से सेविकाओं तक के थे, वही उसके भी हो गये। झूठ अपराध लगने पर दासियों की तरह वह भी कसम खाकर कहने लगी, "अगर मैंने ऐसा किया हो, तो सरकार, सीतला भवानी मेरी आँख ले लें।" वहाँ सभी हिन्दी बोलती थीं, पर जो मधुरता उसके गले में थी, वह दूसरे में न थी; जैसे हारमोनियम के तीसरे सप्तक पर बोलती हो। रानी साहिबा उससे प्रसन्न थीं, क्योंकि दूसरी दासियोंसे वह काम करने में तेज और सरल थी। उसका नाम हिरनी रक्खा था। वह जिस रोज रनवास में आयी थी, तब से आज तक, उसी तरह, अरण्य की, दल से छटी हुई, छोटी हरिणी-सी, एकाएक खड़ी होकर, सजग-दृग, पार्श्व-स्थिति का ज्ञान-सा प्राप्त करने लगती है कि वह कहाँ आयी, यहाँ कोई

भय तो नहीं । दृष्टि के सूक्ष्मतम तार इस पृथ्वी के परिचय से नहीं, जैसे शून्य आकाश से बाँधे हुए हों; जैसे पृथ्वी पर उतारकर विधाता ने एक भूल की हो। उसके इस भाव के दर्शन से 'हिरनी' नाम, कवि के शब्द की तरह, रानी के कण्ठ से आप निकल आया ।

वही हिरनी अब जीवन के रूपोज्ज्वल वसन्त में कली की तरह मधुसुरभि से भरकर चतुर्दिक् सूचना-सी दे रही है कि प्रकृति की दृष्टि में अमीर और गरीब-वाला क्षुद्र भेद-भाव नहीं, वह सभी की आँखों को एक दिन यौवन की ज्योत्स्ना से स्निग्ध कर देती है; किरणों के जल से भरकर, जीवन में एक ही प्रकार की लहरें उठाती हुई, परिचय के प्रिय पथ पर वहाँ ले जाती है; जो सबसे बड़ी है, जिसके भीतर ही बड़े और छोटे की नाप में भ्रम है, वह स्वयं कभी छोटे और बड़े का निर्णय नहीं करती, उसकी दृष्टि में सभी बराबर हैं, क्योंकि सब उसी के हैं। उसी ने हिरनी में एक आशा, एक अज्ञात सुख की आकांक्षा भी भर दी, जिससे दृष्टि में मद, मद में नशा, नशे में संसार के विजय की निश्चल भावना मनुष्य को स्त्री के प्रणय के लिए खींचती रहती है ।

इसी समय इंगलैण्ड से शिक्षा प्राप्त कर राजकुमार घर लौटे थे, और दो-तीन बार हिरनी को बुला चुके थे। रानी दूसरी दासियों से यह समाचार पाकर हिरनी का विवाह कर देने की सोचने लगीं। वहीं एक कहार रामगुलाम रहता था। नौजवान था। रानी साहिबा ने उससे पुछवाया कि हिरनी से विवाह करने को वह राजी है या नहीं। वह बड़ा खुश हुआ, उत्तर में अपनी खुशी को दबाकर रानी साहिबा को खुश करनेवाले शब्दों में कहा, "सरकार की जैसी मर्जी हो, सरकार की हुकुमअदूली मुझसे न होगी ।"

विवाह में घरवालों की राय न थी। रामगुलाम बागी हो गया।

एक दिन उसके साथ हिरनी का विवाह प्रासाद के आँगन में कर दिया गया। हिरनी पति के साथ रहने लगी। साल ही भर में एक लड़की की माँ हो गयी।

दो साल और पार हो गये। रानी साहिबा का स्नेह, हिरनी के कन्या-स्नेह के बढ़ने के साथ-साथ, उस पर से घटने लगा। जिन दासियों की पहले उसके सामने न चलती थी, वे ताक पर थीं कि मौका मिले, तो बदला चुका लें।

एक दिन रानी साहिबा ताश खेल रही थीं। पक्ष और विपक्ष में उन्हीं की दासियाँ थीं। श्यामा उर्फ स्याही उन्हीं की तरफ थी। मौका अच्छा समझकर बोली, "सरकार को हिरनी ने आज फिर धोखा दिया; मैं गयी थी, उसकी लड़की को जूड़ी-बुखार कहीं कुछ भी नहीं।"

लड़की की बीमारी के कारण हिरनी दो दिन की छुट्टी ले गयी थी। रानी साहिबा पहले ही से नाराज थीं। अब धुआँ देती हुई लकड़ी को हवा लगी, वह जल उठी। रानी साहिबा ने उसी वक्त स्याही को एक नौकर से पकड़ लाने के लिए कहने को भेज दिया। स्याही पुलकित होकर बूटासिंह के पास गयी। बूटासिंह से उसकी आशनाई थी। बोली, "सरकार कहती हैं, हिरनी का झोंटा पकड़कर ले आओ, अभी ले आओ, बहुत जल्द।"

बूटासिंह जब गया, तब हिरनी बालिका के लिए वैद्य की दी एक दवा अपने दूध में घोल रही थी। बूटासिंह को मतलब समझाने के लिए तो कहा नहीं गया था। उसने झोंटा पकड़कर खींचते हुए कहा, "चल, सरकार बुलाती हैं।"

प्रार्थना की करुण चितवन से बूटासिंह को देखती हुई हिरनी बोली, "कुछ देर के लिए छोड़ दो, मयना को दवा पिला दूँ।"

घसीटता हुआ बूटासिंह बोला, "लौटकर दवा पिला चाहे ज़हर, सरकार ने इसी वक्त बुलाया है।"

स्याही उसे साथ लेकर ऊपर गयी। हिरनी रानी साहिबा की मुद्रा तथा क्रूर चितवन देखकर काँपने लगी।

रानी साहिबा ने हिरनी को पास पकड़ लाने के लिए स्याही से कहा, स्याही ने जोर से खींचा, पर हिरनी का हाथ छूट गया, जिससे वह गिर गयी, हाथ मोच खाकर उतर गया।

रानी साहिबा क्रोध से काँपने लगीं। दूसरी दासियों को पकड़ लाने के लिए भेजा। इच्छा थी कि उसका सर दबाकर स्वयं प्रहार करें। दासियाँ पकड़कर ले चलीं, तो रानी साहिबा को आँसुओं में देखती हुई, उसी अनिन्द्य हिन्दी में हिरनी क्षमाप्रार्थना करती हुई बोली, "सरकार, मेरा कुछ कुसूर नहीं है।"

पर कौन सुनता है, उससे रानी साहिबा की सेवा में कसर रह गयी है।

जब पास पहुँची, उसको झुकाकर मारने के लिए रानी साहिबा ने घूँसा बाँधा।

हिरनी के मुख से निकला, "हे रामजी!"

रानी साहिबा की नाक से खून की धारा बह चली। वह वहीं मूर्च्छित हो गयीं। हिरनी के बाल, मुख उसी खून से रँग गये।

डॉक्टरों ने आकर कहा, "गुस्से से खून सर पर चढ़ गया है।"

तब से ज़रा भी गुस्सा करने पर रानी साहिबा को यह बीमारी हो जाती है।

['सुधा', अर्धमासिक, लखनऊ, 16 अगस्त, 1933। **लिली में संकलित**]

परिवर्तन

परी सात साल की थी, और सूरज दस साल का। दोनों धूप-छाँह-से हिले-मिले रहते थे। परी की आदत थी आज्ञा करने की, वह फूल तोड़ दो, वह फल चढ़कर गिरा दो। सूरज की आदत थी, उसी समय उसे पूरा करने की।

एक दिन, नजरबागवाले तालाब में कमल खिले थे, एक बड़ा-सा अधखिला

उन्हीं के बीच में था, परी ने कहा, "वह बीचवाला लाल-लाल बड़ा-सा कमल ला दो सूरज !" सूरज कूद पड़ा। तैरता, नालों को चीरता हुआ कमल को तोड़ तो लिया, पर लेकर निकल न सका।—पैर मृणालों में फँस गये। परी को देने को स्नेह-फूल हाथ से न छोड़ा, पैरों को पटक-पटककर नालों की उलझन छुड़ाता रहा। तट पर खड़ी लालसा की दृष्टि से फूल को देख-देखकर साग्रह हाथ फैलाती हुई परी हँस रही थी। थककर कमल लिये सूरज एकाएक डूब गया।

परी दौड़ती हुई कोठे पर माँ के पास गयी, और हाँफती हुई बोली, "सूरज मेरे लिए फूल तोड़ने को तालाब में तैरा था, डूब गया है।"

खबर फैली, लोग दौड़े, सूरज को निकाल लिया। उसकी मुट्ठी में तब भी कमल बँधा हुआ था। पेट से पानी निकाला गया। मुँह फूंका गया। साँस चलने लगी।

कई साल बीत गये। परी अब दस साल की है। पुस्तकों के साथ नृत्यगीत की भी शिक्षा उसे दी जाती है।

माता के संस्कार चापल्य की उस विद्युत् में प्रवेश करने लगे हैं। उसकी माता एक समय कलकत्ते की सुन्दरी वेश्या थी। अब राजा महेश्वरसिंह की रक्षिता है। यह कन्या राजा साहब के औरस से पैदा हुई है। इसका नाम है परिमलकुमारी। स्नेह से राजा साहब तथा उसकी माँ परी कहते हैं।

परी की माँ के नाम राजा साहब ने एक अलग ज़ायदाद लिख दी है। बड़े-से अहाते के अन्दर चारों ओर से जल से भरी खाई है, बीच में कोठी, शिव-मन्दिर, बगीचा, फुलवाड़ी, राजपथ आदि प्रासाद के अनुरूप और-और सबकुछ। परी की माता शान में रानी साहबा से बढ़कर रहती है। परी का खर्च कुँवर साहब से ज्यादा है।

सूरज ड्योढ़ी के जमादार शत्रुहनसिंह का लड़का है। शत्रुहनसिंह किसी तरह नौकरी से गुजर करते हैं। ऐसी जगह जाकर नौकरी की है, जहाँ पास-पड़ोस का कोई आदमी नहीं। इसलिए एक प्रकार उनका जीवन अपने कर्त्तव्य और पुत्र स्नेह में ही पार होता है। सूरज इस समय मिडिल क्लास का विद्यार्थी है। परी के स्नेह-लेश-रहित तेज स्वभाव के कारण वह उससे नहीं मिलता। पुनः वह मिडिल क्लास में पढ़ता है, परी से वह ऊँचे दर्जे में, ज्यादा पढ़ा हुआ है, इसका विचार परी नहीं करती, जो काम उससे करवाती है, उसके कारण वह लाज से मुरझा जाता है। इसलिए नहीं जाता, प्रायः परी के निकलने के समय कोठी में नहीं रहता। उधर लोगों से आदर तथा सम्मान प्राप्त कर, परी के स्वभाव में, सम्मान्य राज-कुमारीवाला गुरु गहन भाव, इतनी ही उम्र में दूब की जड़ की तरह फैलने लगा। एक सूरज को छोड़कर और सब उसकी इज्जत करते हैं, उसकी आज्ञा मानते हैं, उसके नौकर हैं। सूरज परी का शासन नहीं मानता, ऐसा विचार उठते ही वह सूरज को बुलवाती है। पर सूरज उस समय या तो गढ़ के बाहर किसी सहाध्यायी मित्र के साथ पढ़ता होता है या स्कूल गया होता है या खेलने के लिए निकला होता है।

ठीक बारह बजे दोपहर को, सोचकर इतवार के दिन, परी नीचे उतरी। सूरज उस समय पिता के साथ भोजन कर रहा था। एक नौकर चुपचाप दौड़कर देख आने के लिए भेजा। लौटकर नौकर ने कहा, "है भोजन कर रहा है।"

"अभी ले आओ, न आये, तो कान पकड़कर ले आओ।" हुक्म हुआ। नौकर दौड़ा हुआ गया, और सूरज के बाप से कहा कि परी बहुत जल्द सूरज को बुलाती हैं, भेज दो, नहीं तो दिखाने के लिए कान पकड़कर ले जाना होगा।

सूरज का बाप आँसू पीकर रह गया। सँभलकर कहा, "लड़के को फिजूल परेशान करती हैं, क्या काम है ?"

"कुछ नहीं।" नौकर ने कहा, "गेंद धूप में फेंक दिया है, और हठ है कि सूरज आकर उठाकर दे।"

सूरज ने कहा, "बाबू, मुझे इस तरह गेंद उठाकर देते हुए लाज लगती है।"

ठाकुर शत्रुहनसिंह की आँखों से आग निकलने लगी। कहा, "हम नौकर हैं, हमारा लड़का नौकर नहीं, और हम भी गेंद उठाने की नौकरी नहीं करते, तलवार बाँधने की करते हैं, जाओ, परी की माँ से कह दो।"

नौकर परी के पास लौट आया। कहा, "सूरज न आवेगा, शत्रुहनसिंह बिगड़ रहा है।" परी की आँखें लाल हो गयीं, पर शत्रुहनसिंह वहाँ के सिपाहियों का अफसर था, वह भी कुछ डरती थी, इसलिए माँ के पास नालिश करने चली। उधर से नौकर भी चला।

परी और नौकर की बातें सुनकर, पूजा समाप्त करके आयी हुई पहले कामलता दासी, अब श्रीमती रानी कामलतादेवी तिनककर द्रुत-पद राजा साहब के कमरे में गयी (राजा साहब का स्थायी निवास उन्हीं की कोठी में रहता था), और आँखों की पुतलियों को भौंहों के पास तक चढ़ाकर, एक झटका गर्दन का देती हुई बोली, "ऊँ हूँ, यह तो न होगा; सुना, तुम्हारी परी कभी-कभी सुरजुआ को बुलाकर खेलती है, इससे उनके पिताजी महान् की मर्यादा जाती रहती है; क्योंकि उनके पुत्र अब दफ्तर के बाबू की जगह लेनेवाले हैं। मैं पूछती हूँ, ऐसे आदमी को रखने से फायदा ?"

"फायदा क्या है ? उसको निकाल दो।" राजा साहब ने आज्ञा दी।

रानी कामलतादेवी ने कहा, "परी के सामने पिता और पुत्र दोनों के कान पकड़कर गढ़ से बाहर कर दो।"

पुरस्कार की लालसा से दो सिपाही शत्रुहनसिंह के मकान की तरफ दौड़े, परी हँसती हुई वहीं से देख रही थी। दोनों जैसे-के-वैसे ही लौटते हुए देख पड़े। परी को साथ लेकर रानी कामलतादेवी के पास जाकर कहा, "वे लोग पहले ही से फाटक के बाहर निकल गये, और सरकारी थाने में जाकर बैठे हैं। हरगोविन्द से शत्रुहन कह गये हैं कि थानेदार को साथ लेकर कल चारज समझा जायेंगे।"

सात वर्ष और पार हो गये। परी अब सत्रह साल की परी हो गयी है। राजा महेश्वरसिंह इस समय राजा और तअल्लुकेदारों में बड़े जोरों से समाज-सुधार कर रहे हैं। संवादपत्रों में इस कार्य के लिए कभी-कभी उनके दिये दान की तालिका

प्रकाशित होती है, और जिस सभा में समाज की बुराइयों पर उनका भाषण होता है, लोग तालियाँ पीटकर अपनी सहानुभूति प्रकट करते हैं। देश के राजा-रईसों के बिगड़ैल, समाज-सुधार के शंख-स्वरूप, रूप के अन्धे, कुँवर लोगों ने एक वाक्य से राजा महेश्वरसिंह का समाज-प्रेम स्वीकृत कर लिया है, प्रायः उनकी कलकत्ते-वाली कोठी में एकत्र होते हैं, और परी के रूप में जलकर, सहानुभूति की राख उसके पिता की आँखों में झोंककर चले जाते हैं। राजा महेश्वरसिंह की इतनी उदारता, दान-मान और समाज-सुधार का फल यह न हुआ कि किसी कुँवर से वह परी का विवाह कर पाते। अधिकांश कुँवरों के पिता जीवित थे। पिता की मृत्यु न होने तक विवाह के लिए कुंवर लोग अपनी सम्मति नहीं दे सकते, राजा महेश्वरसिंहजी को बातचीत पड़ने पर समझा देते थे। दो साल से राजा महेश्वर-सिंह भी उनमें से किसी के पिता के मरने की प्रतीक्षा कर रहे हैं, पर परी के दुर्भाग्य से अभी तक सब जी रहे हैं—रावनगर, धनपुर, कटहर, बिड़ासी, पाटन, वहेड़ा, भुजइन, गजखान, कुम्हड़ौरा, तिरपट, सकोटा आदि-आदि की नवीस गद्दी आवाद नहीं हुई। कुछ दिनों से उन्हें महाराज प्रतापनारायणसिंह, चन्दपुर, से आशा हो रही है। रानी कामलतादेवी की भी इच्छा है कि परी का विवाह यहीं हो। राजा साहब को भरोसा इसलिए है कि महाराज चन्दपुर को बंगाली सभ्यता बहुत पसन्द है। समाज-सुधारक के नाम से प्रसिद्ध राजा महेश्वरसिंह से जब वह पहले-पहल कलकत्ते के ग्रैण्ड-होटल में मिले थे, तब बंगाल की सभ्यता की बड़ी तारीफ की थी, और उनके समाज-सुधार के लिए सहानुभूति दिखलायी थी। इसके बाद रानी कामलतादेवी तथा कुमारी परिमल को साथ लेकर कई बार राजा महेश्वरसिंह उनसे मिल चुके हैं। माता के साथ परी भी सहमत है। कारण, वहाँ ऐश्वर्य और सम्मान अधिक है।

आज महाराजा साहब के सेक्रेटरी मिस्टर रैटलर साहब फिर राजा महेश्वर-सिंहजी को निमन्त्रण देने आये हैं कि रात नौ बजे कृपा कर राजा साहब सपरि-वार महाराजा साहब की कोठी में दर्शन दें।

सपरिवार राजा साहब महाराजा साहब के साथ भोजन कर रहे थे। और कोई न था। भोजन में राजाओं के साथ सम्मिलित हो भी नहीं सकता था। राजा साहब ने महाराजा साहब को गौर से परी की ओर देखते हुए देखकर आशा से पुलकित होकर कहा, "महाराज, अगर एक सम्बन्ध बंगाल में भी करें, तो अच्छा हो, प्रान्तीय सौहार्द इस प्रकार बढ़ता रहे।"

"मेरी इच्छा तो है," महाराज साहब ने परी को देखते हुए कहा। रानी कामलतादेवी ने मुस्किराकर कहा, "आप मेरी परी से विवाह कीजिए।" बड़ी सभ्यता से महाराजा साहब ने कहा, "आपकी आज्ञा मुझे शिरोधार्य है।"

दिन ठीक करने को एकान्त में महाराजा ने आज्ञा दे दी। लौटकर राजा महेश्वरसिंह ने रानी कामलतादेवी से कहा, "पहाड़ी हूस है, परी को देखकर पागल हो गया है, हमें तो अपना मतलब गाँठना है।"

विवाह से पहले महाराजा साहब ने कहला भेजा कि आप तो समाज-सुधारक हैं,

विवाह में व्यर्थ खर्च क्यों किया जाये, वही रकम जिस सार्वजनिक संस्था को आप कहें, दे दी जाये। प्रस्ताव राजा को भी पसन्द आया। फिर पण्डित लोग महाराजा साहब की तरफ के, जो एक पग इधर-से-उधर होनेवाले न थे, बोले, हमारे महाराज का विवाह तो उसी ढंग से होगा, जो रीति हमारे यहाँ प्रचलित है। उदार राजा महेश्वरसिंह ने यह भी मंजूर कर लिया।

विवाह का दिन जहाँ तक शीघ्र किया जा सका, स्थिर किया गया। राजा साहब को महाराजा साहब के यहाँ की सभी प्रथाएँ मंजूर करनी पड़ीं। इसलिए विवाह के दिन राजा साहब को अपने कुछ आदमियों, रानी कामलतादेवी तथा परी के साथ महाराजा साहब के ही मकान जाना पड़ा। राजा साहब अपनी तरफ से कोई ब्राह्मण पण्डित नहीं ले गये थे, उन्हें ब्राह्मणों के मन्त्रों पर विश्वास न था।

मन्त्रोच्चार करते समय ब्राह्मणों को 'दासी-ग्रहणम्'-'दासी ग्रहणम्' कई बार कहते हुए सुनकर राजा साहब चौंके, पर संस्कृत अच्छी पढ़ी न थी, सोचा, यह भी कोई रीति की ही यहाँ होगी। इस विचार से चुप हो रहे। 'कन्या-दासी-समर्पणम्' से 'दासी-ग्रहणम्' सब पूरा हो गया।

प्रधान पण्डित ने कहा, "राजा महेश्वरसिंहजी ने हमारे महाराज को दासी-रूप से अपनी कन्या का समर्पण किया है।"

राजा साहब को शब्द बड़े बुरे लगे। पूछा, "दासी-रूप क्या है?"

प्रधान पण्डित ने कहा, "आपने अपनी कन्या महाराज की सेवा के लिए दी"।

राजा साहब रुष्ट होकर बोले, "आप केवल दासी और सेवा का उल्लेख करते हैं।"

पण्डित ने कहा, "महाराज के पूज्य पिताजी की ऐसी ही आज्ञा है, वह महाराज आ रहे हैं।"

राजा महेश्वरसिंह ने देखते ही पुकारा, "शत्रुहनसिंह!"

"चुप! कान पकड़कर निकाल दिये जाओगे।" पास ही खड़े हुए महाराज के एक शरीर-रक्षक ने कहा।

"राजा महेश्वरसिंह," महाराज शत्रुहनसिंह ने कहा, "तुम्हारी जैसी लड़की है, हमने वैसा विवाह भी कराया। हम, अपने विपक्ष के सताये हुए, राज्य से भगकर तुम्हारे यहाँ दो रोटियों के लिए राज्य के हकदार बच्चे को लेकर गये थे। समय बदला। लड़के को गद्दी मिली। तुम और तुम्हारी यह सात रोज तक हमारे जूते उठाओ, तो तुम्हारी लड़की को लड़की समझकर, क्षमा कर, लड़के के साथ एक आसन पर बैठने का अधिकार हम देंगे। क्षत्रिय होकर क्षत्रिय के साथ वैसा नीच बर्ताव तुम देखते रहे!"

['सुधा', अर्धमासिक, लखनऊ, 1 सितम्बर, 1933। **लिली में संकलित**]

अर्थ

पंजाबमेल पूरी रफ्तार से कलकत्ता जा रहा है। दूसरे दर्जे में दो मुसाफिर पास-पास बैठे हैं। कुछ देर मौन रहकर एक ने दूसरे से नाम पूछा, जब वह प्रयाग में गाड़ी पर चढ़ा। उसने कहा, "मेरा नाम दिनेशकुमार है।" थोड़ी देर में घनिष्ठता बढ़ गयी। पहला मुसाफिर हीरालाल कलकत्ता लौट रहा है। वहाँ व्यवसाय करता है। नवयुवक है। धनी व्यवसायी का लड़का, दिल्ली गया था। दिनेश भी नवयुवक है। हीरालाल को मालूम हुआ कि एक अच्छी जगह सिनेमा में कहानी लिखने की दिनेश को मिली है, इसलिए कलकत्ता जा रहा है। हीरालाल खुद भी हिन्दी के कथानक, उपन्यास तथा नाटक सिनेमा-साहित्य का शौकीन है, कुछ ज्ञान भी इधर उसने अर्जित कर लिया है। पूछा, "हिन्दी के उपन्यास-लेखक रामकुमारजी को आप जानते हैं?"

"हाँ, वह तो आजकल प्रयाग ही रहते हैं।" दिनेश ने कहा।

"मेरे विचार से उनके जो उपन्यास निकले हैं, उनकी जोड़ के हिन्दी में दूसरे नहीं, आप क्या कहते हैं?"

"मेरा भी यही विचार है।"

"उनका एक जीवन-चरित इधर 'भारती' में प्रकाशित हुआ है, वह बड़ा अद्भुत है। उसमें एक ईश्वरीय सत्य है। आप कहें, तो सुनाऊँ?"

"सुनाइए।"

हीरालाल कहने लगा, "रामकुमार एक कुलीन ब्राह्मण के घर का बालक ही था, जब घर की पूजार्चा देखकर, पाठ सुनकर हिन्दू-धर्म पर उसे पूरा विश्वास हो गया! जैसा सुना, वैसी ही धारणा भी बँध गयी कि अगर आज अकेले भीम होते, तो म्लेच्छों के पैर क्षण-भर के लिए भी उनके सामने न ठहरते। जहाँ गदा को घुमाने पर भगदत्त के हाथी सेमर की रुई की तरह आकाश में उड़ गये, कुछ तो अब भी चक्कर काट रहे हैं, वहाँ म्लेच्छों का पता न रहता कि किस लोक में, अँधेरे की तरह प्रकाश में कहाँ, गायब हो गये। अगर कहीं महावीर स्वामी आ जाते—आ क्या जायँ, अब उनके समकक्ष योद्धा कोई रह ही नहीं गया, द्वापर में इसीलिए वह लड़े नहीं—नहीं तो वह अमर हैं, कहीं गये थोड़े ही हैं! और उखाड़-उखाड़कर पटकते पहाड़, तो सारी अक्ल हवा हो जाती तुर्रमखानों की। इस तरह श्रीराम और कृष्णजी को, सोचता हुआ, आजकल के रावण की सशस्त्र सेना को वानर-मात्र की सहायता से परास्त कर देता, कभी कृष्णजी से असम्भव कार्य-रूप गोवर्धन धारण करा, उसके नीचे देश के भगवद्भक्त गोप-गोपियों को आश्रय देकर वर्तमान इन्द्र की दुश्शासन-वर्षा से उद्धार कर लेता, कभी किसी राक्षस-रूप में कृष्ण को घुसेड़कर पेट चिरवाता बाहर निकालता। इस तरह बन्दर को आदमी और आदमी को बन्दर बनाने की आदत पड़ गयी। करुणा तुलसी-कृत रामायण और सूरसागर के दैनिक पाठ से बढ़ती गयी। नवें दर्जे में था, इसी समय भक्ति के आवेश में सूझा, म्लेच्छों की विद्या न पढ़ूँगा, यह धन के लिए है, ज्ञान के लिए नहीं। इस समय यह

पन्द्रह साल का बालक था। घरवालों का शासन प्रबल था, इसलिए स्कूल जाना पड़ा। पर वह रह-रहकर सोचता था कि उसके घरवाले ढोंगी हैं; बाहर से तो भगवान् का नाम लेते हैं, पर भीतर से रुपया ही उनका लक्ष्य है। घरवालों से उसे घृणा हो गयी। धीरे-धीरे दो साल का समय और बीता, और इसने प्रवेशिका-परीक्षा पास कर ली। इसी समय पिता ने उसका विवाह किया। बहू युवती थी। बहू के घर आने पर रामकुमार ज्यों-ज्यों क्षीण हो चला, उसकी ईश्वर-भक्ति और आस्तिकता त्यों-त्यों प्रवीण होने लगी। पति ही पत्नी का ईश्वर है, यह संस्कार यद्यपि घर से पत्नी को प्राप्त हो चुका था, फिर भी रामकुमार ने अपनी ओर से शिक्षा देने की गफलत न की। फलतः वह गम्भीर होने लगा, और उसकी धार्मिक साधना भी बहू को प्रभावित करने के लिए बढ़ गयी। बहू सुन्दरी थी। पत्नी को पूर्ण मादकता से प्यार देना धर्म में दाखिल है। अतः इधर भी रामकुमार संसार की भावनाओं को स्वर्ग में बदल-बदलकर विहार करने लगा। पिता ने कॉलेज जाने के लिए कई बार कहा। वह वृद्ध हो गये थे। शारीरिक शासन करने में असमर्थ थे। रामकुमार ने पिता के शब्दों पर ध्यान न दिया। पत्नी ने भी श्वसुर के आदेश की एक बार पुनरावृत्ति की, क्योंकि उसे भय था कि पति के कॉलेज न जाने का कारण वही समझी जायेगी। रामकुमार ने कहा, 'अँगरेजी-शिक्षा से बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है।'

"तब तक रामकुमार को अर्थ की चिन्ता न थी। पिता को पेंशन मिलती थी, संसार-चक्र मजे में चला जा रहा था। उसकी माता का कुछ दिन बाद देहान्त हो गया। एक साल का क्रिया-कर्म भी पूरा हुआ। पिता ने कहा, 'बेटा, हम करारे के रूख हैं; तुमने पढ़ा नहीं, तो हमारे रहते कोई काम ही कर लो; नहीं तो पीछे तुम्हें कष्ट होगा।' रामकुमार गम्भीर होकर बोला, 'आप इसकी चिन्ता न करें।' मन-ही-मन कहा, 'कितना अविश्वास इन्हें ईश्वरपर है—पशु-पक्षिउ की लेत खबरिया, तोरिउ सुरति करै; अरे मन, धीरज क्यों न धरै!' रामकुमार को बालक-काल से सन्तों की उक्तियों पर दृढ़ विश्वास करने की आदत पड़ गयी थी। गोस्वामीजी की चौपाई याद आयी, 'विश्व-भरण-पोषण कर जोई, ताकर नाम भरत अस होई।' जो भरत संसार का पालन करते हैं, वह भोजन न देंगे, उन पर कितना अविश्वास है इन लोगों को! सोचता हुआ वह चला जाता, पिता खिन्न हो जाते।

"कुछ समय और पार हुआ, एक रोज पिता को कुछ बुखार आया, दो-तीन दिन बाद उनका दम निकल गया। आज पहला दिन था, जब गाँव के लोगों से रामकुमार को एक गृहस्थ की तरह, दीन होकर, धार्मिक उद्दण्डता छोड़कर, बर्ताव करना पड़ा। पहला बुलावा गया, और लाश उठाकर गंगाजी चलने के लिए कोई न आया, तब नाई ने समझाया कि, 'भैया, यह हाथ जोड़ने का समय है।' रामकुमार जाकर घर-घर हाथ जोड़ता फिरा। लोगों ने सलाह करके कहा, रामचन्द्र शुक्ल मरे थे, तब लोगों को 15) के पेड़े उनके लड़के ने खिलाये थे; कहो, 15) के पेड़े खिलाओगे? तो चलें अपने गिरोह के बीस आदमी।' रामकुमार को स्वीकार करना पड़ा। घाट से लौटने पर तेरहीं तक बड़ी विपत्ति रही। कुटुम्बों का व्यवहार खासे दुश्मनों का-सा रहा। एक की जगह तीन-तीन लेकर टले। माता का भी क्रिया-कर्म उसी ने किया था। पर तब पिता थे, इसलिए संसार का बर्ताव नहीं

समझ सका। तेरहीं के बाद उसकी पत्नी विद्या ने कहा, 'नकद आठ सौ रुपये थे, सब खर्च हो गये।' धर्म के दबाव से पत्नी ने यह न कहा कि कोई काम देखो, नहीं तो इस तरह और कब तक चलेगा। रामकुमार ने कहा, 'अच्छी बात है, खर्च होने दो, मुझे धन के मालिक का पता मालूम है।'

"कुछ समय और बीता, रामकुमार की पूजा बढ़ चली। गाँववाले आपस में बतलाने लगे, 'कैसा बेवकूफ है, पढ़ा-लिखा है, कहीं नौकरी या रोजगारी नहीं करता, रामायण लिये चार-चार घण्टे मन्दिर में बड़बड़ाया करता है।' इसके जवाब में कोई कहता है, 'बाप की कमाई का रुपया गाँजा है; हमारी-तुम्हारी तरह नदार है? कराया तो तुमने तेरहीं में मनमाना खर्च, फिर रुका? नहीं जाता नौकरी करने। जब माल होता है, तब भगवान् का नाम सूझता ही है, आखिर बैठा-बैठा क्या करे? अब आगे वर्षी में कराओ खर्च दो हजार, देख लो, कभी जो हाथ खींचे।' इधर एक रोज ऐसा हो गया कि विद्या के हाथ में एक पैसा भी न रहा। उसने पति से कहा कि आज से अब एक पैसा भी खर्च के लिए नहीं है।

"युवक रामकुमार गम्भीर होकर बोला, 'अच्छी बात है, आज पैसा हो जायेगा।' जैसा उसने पढ़ रक्खा था कि भरतजी का नाम जपने पर अर्थ होता है, शाम होने पर एक कोठरी में बैठकर भरतजी का नाम जपने लगा। रात ग्यारह बजे तक पाँच हजार जप पूरा कर, वहीं एक चुटके में यह लिखकर कि मेरे इस जप की जो मजदूरी होती हो, यहीं अँगोछे पर रख दीजिए, उठकर पत्नी के पास आया। उधर विद्या भी चूल्हे के पास भोजन तैयार कर बैठी हुई पति के लिए तपस्या कर रही थी। गम्भीर भाव से भोजन कर रामकुमार बाहर आया, तब विद्या ने भी भोजन किया। मारे डर के उसने कारण न पूछा। प्रेम से उच्छ्वसित हो, गम्भीर भाव से, पलँग पर पड़े-पड़े पति ने स्वयं पत्नी से अपने अर्थोपगम का मन्त्र बतलाया। विद्या मुँह फेरकर हंसने लगी।

"सुबह उठकर रामकुमार नहाया, फिर भक्ति-भाव से उस कोठरी में गया। विद्या मुस्किराती हुई बाहर से झाँकने लगी। रामकुमार ने देखा, भीतर अँगोछा जिस तरह फैलाया था, उसी तरह फैला है; भरतजी पाँच हजार नाम जप की मजदूरी उस पर नहीं रख गये। हृदय को बड़ा दुख हुआ। मारे लज्जा के पत्नी से आँख न मिला सका। विद्या बडे कष्ट से हँसी रोके हुए थी। सान्त्वना की बातें हँस डालने के भय से नहीं कह रही थी। इसी समय छक्कन साह ने द्वार पर आकर पुकारा। छक्कन पहले बचका लाते थे। अब रुपया कर्ज दिया करते हैं। रामकुमार द्वार पर गया; तो छक्कन ने पालागन करके कुशल पूछी। अनुभवी छक्कन पड़ोस के दूसरे गाँव में रहते हैं। आलसी अकर्मण्य आजकल के बाबू युवकों की नस-नस से वाकिफ हो चुके, उन्हें थोड़े रुपये देकर काफी रकम—सोने-चाँदी के गहने ले चुके हैं। रामकुमार के पिता का देहान्त हो चुका है, पेंशन बन्द हो गयी है, जवान लड़का बहू के रूप में फँसकर बाहर पैर नहीं निकालता, हैसियत इतनी अच्छी नहीं कि इसी तरह हमेशा निभे, कहीं बीच में रुपयों की जरूरत हुई, तो ऐसा न हो कि दूसरे के हाथ शिकार फँस जाये, यह सब सोचकर छक्कन साह घर से चले थे। सरल रामकुमार ने पहले ही कहा, 'पिताजी की तेरहीं में रहा-सहा रुपया खर्च हो

गया है, अब तो बड़ी दिक्कत में हैं।' छक्कन का श्रम सफल हुआ। बड़ी हमदर्दी से बोले, 'तो डर किस बात का है ? आप तो घर के लड़के हैं। जैसे यह घर आपका, वैसे वह घर भी आपका। आपका खर्च न रुकेगा, रुपयों का इन्तजाम कर दिया जायेगा।' रामकुमार के विचार से साक्षात् भरतजी आ गये। बोला, 'रुपये तो अभी मुझे चाहिए।' छक्कन समझ गये कि यह बेवकूफ है, यह मुझसे उसी तरह रुपये लिया चाहता है, जैसे अपने बाप से लेता था। बोले, 'तो कितने रुपये अभी आपको चाहिए ?' 'दो सौ।' छक्कन ने कहा, 'हमारे पास होते, तो हम दे देते; हमें दूसरे से लेकर देना है, और वह बगैर कुछ रेहन रक्खे रुपया न देगा। अगर आप कहें, तो हम अपने यहाँ से 20 तोले की जंजीर सोने की रेहन करके रुपये ले आवें। आप सोलह तोले भी हमारे यहाँ सोना ले आवें, तो पिछले पहर तक दो सौ रुपये ले जा सकते हैं। दूसरे के पास जायेंगे, तो 2 रुपया सैकड़ा ब्याज से कम में न देगा, हम 1 रु. ही सैकड़ा लेंगे।' इसके सिवा कोई चारा न था। रामकुमार ने रुपयों का इन्तजाम कर रखने के लिए कह दिया। उधर छक्कन घर गये, इधर वह पत्नी के पास आया। बड़ी लाज लगी, पर उपाय न था, विद्या से कहा, 'अपनी जंजीर दे दो, तो पिछले पहर रुपये ले आऊँ।' अम्लान विद्या ने बॉक्स खोलकर जंजीर निकाल ली, फिर पति को देखती हुई, उसे ही हर तरह पाने की प्रार्थना से हाथ पर रख दी। रामकुमार जंजीर लिये पड़ा रहा। चौका-टहल कर, पानी भरकर चलती हुई महरी ने पूछा, 'आज अभी तक भैया पड़े हैं, गाँव के लोग कहते हैं, आज सुबह छक्कन साह आये थे, जान पड़ता है, दिवाला छ महीने में निकल गया, क्या बात है वहू ?' 'बात क्या है ? तुम अपना काम करो, कहने के लिए दुनिया है, किसी की जीभ में ताला पड़ा है ?' भोजन पकाकर, पति को समझाती हुई बोली, 'तुम्हारी जैसी इच्छा हो, करो---फिर हम दोनों एक साथ भीख माँगेंगे, पर अब मैं तुम्हें कहीं भी न जाने दूंगी। मेरे चार हजार के गहने हैं, तुम सब बेच डालो।' रामकुमार को आज कार्यतः पहलेपहल प्रिया के अपार प्रेम का परिचय मिला। उठकर नहाया, भोजन किया, शाम को 30 तोले की जंजीर के बदले दो सौ रुपये लेकर घर लौटा।

"हृदय को बड़ी चोट पहुँची। 'जो राम पृथ्वी के ईश्वर हैं, जो भरत सृष्टि-भर को भोजन देते हैं, उन्होंने स्वयं अपने भक्त की लाज ले ली, अब मैं किस विश्वास पर उन्हें पुकारूँ ? वे मेरे किस काम आयेंगे ?' सोचते-सोचते मस्तिष्क में गरमी छा गयी। प्यार की जगह चोट खाकर मनुष्य मुश्किल से सुधरता है। इसी समय याद आयी, 'भगवान् चित्रकूट में हैं। तुलसीदास को वहीं उनके दर्शन हुए थे।' कागज लेकर उनके नाम चिट्ठी लिखने लगा। लिखा---

'प्रभो,

मुझे तुम्हारा बड़ा भरोसा था। मेरी नाव अब मझदार में है। पर तुम्हारी कृपा तो मुझे नहीं नजर आती। अब तुम्हारे सिवा संसार में मेरी मदद करनेवाला कोई नहीं है। मेरे पिता का भी सहारा तुमने छुड़ा दिया। अब तो दया करो। तुमने सुग्रीव और विभीषण को राजा बना दिया; तो मेरी कुछ तो खबर करो। प्रभो, मैंने तुम्हीं को संसार में माना है, और आज तुम्हारी ओर से मुँह फेरते हुए

छाती दो-टूक हुई जा रही है। प्रभो, दास पर दया करो, वह बड़े दुःख में है। रामायण में भक्त-शिरोमणि तुलसीदासजी ने लिखा है—

जो सम्पति शिव रावणहिं, दीन दिये दस माथ;
सोई सम्पदा बिभीषणहिं, सकुचि दीन रघुनाथ।

क्या यह सब झूठ ही है? रघुनाथ, विश्वास जो नहीं होता? अधिक और क्या लिखूं? तुम तो हृदय-हृदय का हाल जानते हो, स्वामिन्!

तुम्हारा दास
रामकुमार'

"ऊपर लिफाफे में, श्रीरामचन्द्रसिंह, रामघाट, चित्रकूट, सीतापुर, बाँदा लिखकर चिट्ठी डाकखाने में छोड़ दी। एकचित्त से प्रभु के उत्तर की राह देखता रहा। चिन्ता से दुर्बल हो गया। एक दिन चिट्ठीरसा वही चिट्ठी वापस ले आया। चिट्ठी देखकर रामकुमार अर्द्ध-विक्षिप्त हो गया।

"धीरे-धीरे वर्षी का समय आ गया। लोग स्वयं उसे बुलाकर सलाह देने लगे कि 'कुल कमाई तुम्हारे पिता की है, ऐसा न हो कि स्वर्ग में उन्हें संकोच हो।' लोग इस प्रसंग पर रामकुमार को काफी आदर देते थे। उसके चले जाने पर आपस में कहते, 'इनके पिता हँसिया-खुर्पी छोड़कर परदेस गये थे, खैर, उनकी तो निबह गयी, पर इन्हें देखो, पकड़ाते हैं चार साल में।'

"विद्या ने कभी पति को कोई सलाह न दी। पति की ही मर्जी उसकी मर्जी रही। रामकुमार के हृदय को भक्ति से स्वार्थपूर्ति न होने पर एक चोट लगी है, यह वह समझ चुकी थी, इसलिए अपने स्नेह से बराबर उसे सिक्त रखने का प्रयत्न करती रहती। इसी बल से रामकुमार चल-फिर रहा था। पिता की वर्षी में दो हजार का खर्च है। इस बार विद्या के सब गहनों की बाजी है। विना वर्षी किये जा नहीं सकता, पिता को लोग हँसेंगे। यह सोच-सोचकर एक दिन वर्षी की तैयारी करनी पड़ी। विद्या ने कुल जेवर निकालकर दे दिये। उसकी तरफ देखा तक नहीं। बराबर निगाह पति की आँखों से मिली रही।

"वर्षी हो गयी। दो हजार ब्राह्मणों का जमाव रहा। एक दिन उसने अपने ही कानों शाम को आते हुए सुना, लोग बातचीत कर रहे थे, 'कैसा बेवकूफ बनाया!' रामकुमार संसार से सब प्रकार हताश हो गया। एक दिन विद्या को बिदा कराने के लिए उसका भाई आया। रामकुमार को निराभरण विद्या को भेजते हुए बड़ी लज्जा लगी। पर वह स्वयं कुछ दिनों के लिए विद्या से अलग होना चाहता था। पति को छोड़कर पिता के यहाँ जाने की विद्या की भी इच्छा न थी। उसने निश्चय कर लिया था, एक दिन इनके साथ हाथ पकड़कर हमेशा के लिए घर छोड़ेगी। ऐसी दशा जब उत्तरोत्तर हो रही है, तब वह दिन भी शीघ्र आनेवाला है, जब इसे स्त्रीत्व की विभूतियों से अमर, ऊँचा आदर्श पति के प्रेम में पूरा करना होगा। उसे विना गहनों के मायके जाने में लाज न थी, जहाँ उसके बालकेलियों से उज्ज्वल, निराभरण रूपवाले दिन बीते थे। वह केवल पति के सोच में थी। पर रामकुमार, कुछ समय, हीरे की खान ढूंढ़ने के लिए निकले हुए योरपीयों की तरह, अर्थ के अन्वेषण में अकेला चलना चाहता था। विद्या को घर में निस्संग रहने के कारण

कष्ट होगा, सोचकर, मौका देख एकान्त में उसने समझाया कि जब तक किसी जगह वह पैर न जमा सके, तब तक विद्या का मायके ही रहना अच्छा होगा, और उसके विदा होने के बाद वह भी अर्थ की तलाश में निकलेगा।

"विद्या पति की पद-धूलि लेकर भाई के साथ चली गयी। रामकुमार भी अर्थ की खोज में बाहर निकला। लखनऊ, कानपुर और प्रयाग में कई जगह गया, पर किसी ने भी न पूछा। वह क्या जाने कि संसार किसे कहते हैं, एक साधारण-सी जगह के लिए कितने असाधारण कार्य करने पड़ते हैं, कितना छल, कितनी खुशामद, कितनी सिफारिश दो रोटियों की नौकरी के लिए आज जरूरी हो रही है? उसके राम इस संसार के स्वामी हो सकते हैं, पर बर्ताव में इस संसार के स्वामी उसके राम नहीं। सभी जगह से उसे अपमान सहकर लौटना पड़ा; सभी ने उसे बेवकूफ बनाकर छोड़ा। उसके हृदय की कौन जानता था? पर उसकी मूर्खता नौकरी के लिए बेकायदा आकर गिड़गिड़ाने पर सब पहचान लेते थे। वह कितना पवित्र है, इसकी किसे आवश्यकता है? उसे संसार का, ऑफिस का कुछ ज्ञान नहीं, यह सब समझ जाते थे। उसने क्यों पहले से ऑफिस का ज्ञान प्राप्त नहीं कर लिया? दस रुपये की नौकरी? नहीं है। रुपया पेड़ में फलता है? लाखों का माल किसी के पास होता है, तो वह लुटा देता है? लोग दमड़ी की हण्डी बजाकर लेते हैं।

"सब जगह ठोकरें मिलीं। रामजी के विश्वास पर इधर जो शैथिल्य आ गया था, संसार का जितना तृण इस मन्द अंगार पर आ पड़ा था, संस्कार की तेज हवा से जलने लगा। तमाम आग राम के ही विश्वास में बदल गयी। बार-बार हृदय में स्पन्द-स्पन्द पर ध्वनित हो चला—जिन पर इतने बड़े-बड़े महात्मा विश्वास करते आये, वह एक मिथ्या कल्पना-मात्र है? आज तक जिसके सहारे का भरोसा किया, वह शून्य की तरह कुछ भी नहीं? रामकुमार का मस्तिष्क और हृदय जलने लगा। प्रयाग-स्टेशन आ, चित्रकूट के लिए टिकट कटाकर गाड़ी पर बैठ गया।

"जब चित्रकूट उतरा, तब उसके पास कुछ न था। जो कुछ थोड़ा-सा सामान और रुपया-पैसा था, मानिकपुर और कर्वी के बीच जब रात को गाड़ी पहाड़ी जंगल पार कर रही थी, दूसरों की आँख बचाकर फेंक दिया। चित्रकूट पहुँच, चुल्ल से पयस्विनी का जल पीकर, एक यात्री की कृपा से नदी पार हो, हनुमद्धारा में पहले रामभक्त महावीरजी के दर्शन करने गया। पहाड़ की सीढ़ियाँ तय कर बड़े भक्ति-भाव से हनुमानजी को प्रणाम किया। पर पैसे न चढ़ाये। थे ही नहीं। गृहस्थ, और पैसे न चढ़ाये। एक बाबाजी बैठे थे, गालियाँ देने लगे। चुपचाप, कुछ देर भी विश्राम किये बिना, लौटा। महावीरजी की सहायता से विश्व-सम्राट् भगवान् श्रीरामचन्द्रजी से वह पैसे माँगने गया था, चढ़ाने नहीं। थका हुआ, सीढ़ियाँ उतरने लगा। सावन की सजल दिगन्त तक फैली हुई श्याम शोभा राममयी हो रही थी, शीतल-सुख-स्पर्श वर्षा-समीर बह रही थी, पर उसके हृदय की आग इससे और जल-जल उठने लगी। इतने जल में भी मुख सूख गया। नदी के किनारे दीन भाव से आकर खड़ा हुआ। अबकी मल्लाह ने स्वयं दया की। पार उतरकर रामकुमार कामद-गिरि की परिक्रमा करने लगा। पहाड़ पर मोरों के झुण्ड निर्भय नृत्य कर रहे थे। बड़े-बड़े पेड़ हवा के झोंकों से लहरा-लहराकर कह रहे थे 'हम पूर्ण हैं, हमें

कुछ भी न चाहिए।' एक जगह लोगों से उसने पूछा, 'भगवान् के इस गिरि पर क्या है ?' लोगों ने कहा, 'इस पर भगवान् स्वयं रहते हैं। ऊपर एक बड़ा-सा सरोवर है, उसके किनारे उनकी कुटी है, वहीं सीताजी और लक्ष्मणजी के साथ वह निरन्तर तपस्या करते हुए भक्तों की मनोवांछाएँ पूरी करते रहते हैं।' रामकुमार ने आग्रह से पूछा, 'वहाँ दर्शन के लिए जाने की मनाही क्यों है ?' उत्तर मिला, 'वहाँ जाने से भी दर्शन नहीं हो सकते, भगवान्, सरोवर, कुटी, सब लुप्त हो जाते हैं।' रामकुमार को बड़ा ताज्जुब हुआ। उसने निश्चय किया, लोग दिन को नहीं चढ़ने देते, मैं रात को चढ़ूँगा। फिर वह परिक्रमा करता गया। पहले भूख और प्यास से सूख रहा था, अब इस निश्चय से, राम-दर्शन-भर पर विश्वास दृढ़ हुआ, चेहरा गुलाब के फूल-जैसा खुल गया। प्राकृतिक शोभा जैसे सूचित कर रही हो, राम हैं, वह मिलेंगे। खुशी से परिक्रमा करता हुआ मंसूबे बाँधता रहा।

"परिक्रमा समाप्त कर एक मन्दिर में शिव-नाम जपता हुआ उनकी कृपा की भिक्षा, जिससे रामजी के दर्शन मिल जायें, और अपने समय की प्रतीक्षा करता रहा। सब दिनों की असफलता आज आशा में पूरी सफलता बनकर उसे आनन्द में लहरा रही थी। रात दस बजे तक वह उसी मन्दिर में बैठा रहा। जब देखा कि सब सुनसान हो गया है, तब बाहर निकला। घोर अन्धकार छाया हुआ था। आकाश में सावन की घटा छायी हुई थी, हवा चल रही थी, बादल गरज रहे थे। परिक्रमा का अन्त करने से कुछ पहले एक स्थान उसे ऐसा मिला, जहाँ मन्दिर कम हैं, रास्ता रोकनेवाले लोगों का भय नहीं। वहीं से पहाड़ चढ़ने का उसने निश्चय किया था, उसी ओर, उलटी परिक्रमा करता हुआ चला। घोर रात्रि-काल। मन्दिरों के द्वार बन्द हो चुके थे। शायद लोग भी सो चुके हों। तीव्र आकांक्षा से बढ़ता हुआ अपने स्थान पर पहुँचा। देखा, कामद-गिरि का बड़ा भयानक रूप हो रहा था। पर रामकुमार के प्राणों को चोट पहुँची थी, राम को वह प्यार करता था, उन्हीं राम ने संसार में उसे अकेला छोड़ दिया है, प्रार्थना पर भी सहायता नहीं की। इसलिए मृत्यु भी आज तुच्छ है—सत्य का साक्षात्कार, चिरकाल के प्यारवाले राम एक तरफ हैं, घोर प्रकृति, दुर्धर्ष पहाड़, अपार बाधाएँ प्राणों का मोह पैदा करती हुई एक तरफ। पर प्राणों का मोह तो उसे होता है, जिसका संसार सुखमय, विलास की रंगशाला में परियों की पद-भूमि हो। एक बार पहाड़ की ओर गर्दन उठाकर रामकुमार ने देखा। घोर अन्धकार के सिवा कुछ भी न देख पड़ा। उसके बाद नग्न गिरि की पूजा में अपने वस्त्र उतारकर पद-मूल में नमन कर मन-ही-मन कहा, 'लो, अब कुछ भी मेरे पास अपना कहने के लिए नहीं रह गया, मैं अब केवल उनसे मिलकर एक बार पूछना चाहता हूँ, मेरे पत्र का ग्रहण मेरे किस अपराध के फलस्वरूप आपने नहीं किया ?' अर्द्ध-विक्षिप्त-सा होकर बाह्य त्याग को सीमा तक पहुँचा-कर रामकुमार पहाड़ चढ़ने लगा। कमर-भर सब जगह घास उगी हुई, खड़ा पहाड़, वर्षा के जल से पत्थरों पर कहीं-कहीं काई जमी हुई, प्रति पद साँप और बिच्छुओं का भय। पर रामकुमार को कोई होश नहीं, केवल राम से मिलने की लगन लगी हुई। कुछ दूर बाद पहाड़ से एक झरना उतरा था, जल न था, वह

रास्ता मिलने पर, उसी से हाथ-पैर, चारों टेककर चढ़ता गया। कुछ दूर जाने पर थका, तो महावीरजी के देह के घी-मिले सेंदुर की सुगन्ध आने लगी। मन में विचार आया, महावीरजी मेरे साथ मेरी रक्षा कर रहे हैं, फिर प्राणों को अपूर्व बल प्राप्त हो गया। फिर चढ़ने लगा। तीन-चौथाई पहाड़ चढ़ गया, तब सामने पहाड़ का एक हिस्सा लटका हुआ देख पड़ा। चढ़ने का उपाय न था। बड़ा दुःख हुआ। उसी समय बिजली कौंधी। प्रकाश में कुछ पग दाहने एक पेड़ देख पड़ा, जो पहाड़ के लटकते हिस्से की बगल से उगकर उससे मिला हुआ तने मे ही कुछ ऊँचा उठ गया था। रामकुमार उसी पेड़ पर चढ़कर उस लटकते हिस्से पर गया। अब बूंदों की वर्षा होने लगी। पर रामकुमार चढ़ता ही गया। जब कुछ और ऊपर गया, तो वैसा ही एक दूसरा उससे कुछ और ऊँचा लटकता हिस्सा देख पड़ा। ठीक इसके बाद कामद-गिरि की चढ़ाई समाप्त थी। पर चढ़ने का कोई उपाय न था। बिजली चमकी, देखा, दूर तक पहाड़ वैसा ही खड़ा चढ़ा था। ऊपर से लटका हुआ। अब पानी भी धीरे-धीरे बरसने लगा। लाचार हो, उसी लटके पहाड़ के नीचे बैठकर रोने लगा।

"कुछ देर बाद पानी बन्द हो गया। उसे भय हुआ कि दिन को लोग देखेंगे, तो पकड़कर मारेंगे। रात दो-ढाई घण्टे रह गयी थी, तब तक पहाड़ से उतर जाने का निश्चय कर उतरने लगा। उसी तरह पहले पेड़ से होकर उतरा। फिर धीरे-धीरे घण्टे-भर बाद नीचे आया। कपड़े जो उतारकर कामद-गिरि पर चढ़ा दिये थे, फिर से पहन लेने की इच्छा हुई। जहाँ उतारे थे, वहाँ देखने लगा, वहाँ कोई कपड़ा न मिला। पवन देव न-जाने कहाँ उड़ा ले गये थे। अब बड़ी लज्जा लगी। अँधेरा जब तक है, तब तक बस्ती छोड़कर दूर निकल जाने को जी करने लगा। वह पयस्विनी की तरफ चला। रास्ते में नाला छाती तक भरा हुआ मिला। वहाँ उसे मालूम हुआ, पानी जोर का गिरा है। नाला पार कर पयस्विनी के तट पर गया, तो पानी के मारे सब घाट डूब गये थे। नदी का रूप भयंकर हो रहा था। जहाँ आदमी चलते थे, वहाँ कहीं-कहीं छाती से ज्यादा पानी था। यह देखकर अनजाने एक दूसरे रास्ते से चलकर सीतापुर के भीतर पैठा। जल्द-जल्द बस्ती के बाहर जा रहा था। ऊषा के क्षीण प्रकाश से अँधेरा हट चला। अभी तक लोग जगे न थे। कुछ दूर जाने पर ब्राह्ममुहूर्त में उठनेवाले एक यज्ञोपवीतधारी ब्राह्मण मिले। ब्राह्मण देवता को देखकर रामकुमार ने करुण कण्ठ से प्रार्थना की, 'आप अपना गमछा मुझे दे दीजिए! यहाँ बस्ती है।' ब्राह्मण गला फाड़कर पुकार उठे, 'चोर है! पुलिस-पुलिस!' रामकुमार धीर पद चल दिया। लोगों ने निकलकर देखा, प्रशान्त अविचल नग्न युवक-साधु चला जा रहा है—उसकी चाल में चोर के लक्षण नहीं। ब्राह्मण ने कहा, 'यह मुझसे अँगौछा माँग रहा था।' लोगों ने कहा, 'मूर्ख, बस्ती के विचार से साधु ने ऐसा कहा होगा, तेरा एक अँगौछा लेकर वह क्या करेंगे? तूने बड़ा धोखा खाया, डेढ़ गज कपड़े के तुझे थानों मिलते।'

"धीरे-धीरे रामकुमार बस्ती पार कर गया। जिधर निगाह जाती है, लक्ष्य-हीन उसी तरफ चला गया। दुःख, ग्लानि, क्षोभ, क्लान्ति और भूख से बिलकुल मुरझा गया था। मन इतने उच्च स्तर पर था कि उसे अपने नग्न शरीर के लिए

अब बिलकुल लज्जा न थी। प्रकाश फैलने के साथ ही लाज का अँधेरा भी मिट गया। सामने महुए के दो-तीन पेड़ देख पड़े, उसी ओर चला। पहुँचकर छाया में बैठते ही इतनी क्लान्ति बढ़ी कि लेट गया। लेटते ही बेहोश हो गया।

"जब जागा, तब दोपहर थी। देह फूल-सी हलकी हो गयी थी। इतनी स्वच्छता का उसे कभी अनुभव न हुआ था। शंका आप-ही-आप पैदा हुई, 'क्या भगवान् नहीं हैं ?'

"सुना, ठीक मस्तक के ऊपर से आवाज आयी—'हैं, हैं।'

"तअज्जुब में आ निगाह उठाकर देखा, एक सुग्गा बैठा हुआ फिर 'टें-टें' कर उठा।

"सन्देह से निगाह हटा ली। फिर शंका हुई, 'यह सब क्या है ?'

"फिर ऊपर से आवाज आयी, 'चित्रकूट', 'चित्रकूट'।

"मन में उत्तर तैयार हो गया, 'चित्रकूट है इसका।'

"समास का ज्ञान रामकुमार को था। इस उत्तर के निकलते ही जैसे सारी पृथ्वी उसकी दृष्टि में चक्कर खाने लगी, पेड़ आदि सब घूमने लगे, घूमते-घूमते, धूमिल छाया में बदलते हुए सब आकाश में मिलने लगे। अन्त में रामकुमार को कहीं कुछ न देख पड़ा। उसके देह है, यह ज्ञान भी न रहा। शरीर निश्चल, आँखें निष्पलक रह गयीं।

"कुछ देर बाद ज्ञान हुआ। गोस्वामी तुलसीदासजी की जीवनी का वह अंश याद आया, जहाँ लिखा है, महावीर-रूपी तोते ने कहा है--

'चित्रकूट के घाट पै भइ सन्तन की भीर;
तुलसिदास चन्दन घिसैं, तिलक देत रघुबीर।'

"इसके बाद ही शुकदेव की याद आयी।

"मन में फिर शंका हुई, 'तो क्या अभी-अभी जो कुछ मैंने देखा, यही राम हैं ?' फिर सुन पड़ा—'हाँ-हाँ !' आँख उठाकर देखा—'टें-टें' करता हुआ सुआ उड़ गया।

"फिर मन चिरकाल से अभ्यस्त अज्ञानवाले घर में जाना ही चाहता था कि 'उठ-उठ' की आवाज आयी। फिरकर देखा, तो एक कठफोरा दूसरे महुए की सूखी डाल में खटाखट चोंच मार रहा था।

"इस समय कुछ चरवाहे बालक सामने आ, हाथ जोड़कर बोले, 'महाराज, गाँव जाइए। पास ही, वह देख पड़ता है।'

"रामकुमार उठकर खड़ा हो गया। भूख लग आयी। भिक्षा की इच्छा हुई। गाँव की ओर चला। मन आज की विश्व-प्रकृति के अद्भुत सत्य-परिचय में तन्मय था, स्वभाव एक सरल बालक का-सा बन रहा था। लज्जा लेश-मात्र न थी। घर-द्वार, पेड़-पौधे छायामय दिखायी दे रहे थे। उनका सत्य उसी के पास सिमटा हुआ था। गाँव पहुँचकर, एक द्वार पर खड़ा हो, मौन अंजलि फैला दी। उसे अब कोई आवश्यकता नहीं मालूम दी कि यह किस जातिवाले का घर है, जाँचकर भिक्षा ले। वह बाहरी दुनिया को इतना कम देख रहा था। जिसके द्वार पर उसने हाथ फैलाया था, वह नीच जाति का मनुष्य था। उसके यहाँ किसी साधु ने भोजन-भिक्षा

नहीं ली। उसके संस्कार भी ऐसे बन गये थे कि उसे भोजन देते हुए संकोच हुआ, गाँव के ऊँचे कुलवालों से डरा, प्रणाम कर भक्ति-पूर्वक उसने कहा, 'महाराज, आप उस तरफ जाइए, उधर ब्राह्मणों के मकान हैं।' रामकुमार उसी तरफ चला। कुछ दूर पर एक आदमी बैठा था, देखकर रामकुमार ने पूर्ववत् अंजलि फैला दी।

"इसी समय 'अरे रामकुमार ! तुम्हारा यह हाल ! !' कहकर वह युवक ऊँचे स्वर से रोने लगा। अब रामकुमार का भी ध्यान उसकी तरफ गया। उसने देखा, युवक उसका मित्र है। जब वह पिता के साथ परदेश में रहता था, तब वहाँ यह युवक भी अपनी बहन के पास जाकर कुछ साल तक ठहरा था। दोनों घनिष्ठ मित्रता के पाश में बँध चुके थे।

"परिचय के पश्चात् रामकुमार का मन नीचे उतर चला। उसे लाज लगने लगी। युवक एक धोती आप-ही-आप ले आया, और देकर कहा कि इसे पहनकर यहीं कुछ दिन रहो, और अपने समाचार कहो। उसकी स्नेहमयी मैत्री का दबाव रामकुमार हटा न सका। धोती पहनने लगा। गाँव के कुछ लोग एकटक यह स्नेह-संयोग देख रहे थे। बाद को युवक से उन्हें मालूम हुआ, यह भले घर का लिखा-पढ़ा लड़का है, भक्ति के आवेश में इसने ऐसा किया है।

"जलपान तथा भोजन समाप्त कर युवक ने अपने पिता के स्वर्गवास का हाल तो कहा, पर वह भगवान् रामचन्द्रजी से रुपया माँगने के लिए चित्रकूट आया हुआ है, और इसी उद्देश से नग्न है, यह कुछ न कहा। उसी रात को सोते हुए उसने स्वप्न देखा, उसका वही मित्र सूर्य की तरह प्रकाशवान्, श्यामलाभ, धनुर्धर साक्षात् रामचन्द्र है, हँसता हुआ कह रहा है, तुमने अर्थ के लिए बड़ा परिश्रम किया, मैंने तुम्हें दिया। इसी समय आँखें खुल गयीं। देखा, उसका युवक मित्र उठ बैठा है, ठीक ब्राह्ममुहूर्त है। युवक ने कहा, रामकुमार, मैंने आज बड़ा खराब स्वप्न देखा, देखा कि तुम एक नदी तैरकर पार कर रहे हो, पर बीच धारा में पड़कर बहे जा रहे हो, तुम्हें बचाने के लिए मैं भी नदी में कूदा, तब न वहाँ पानी था, न तुम, घबराकर उठ बैठा।

"दूसरे दिन रामकुमार को कर्वी-स्टेशन पर ले जाकर उसने घर तक का टिकट कटा दिया। प्रयाग उतरकर नौकरी की तालाश में पूछ-ताछ करता हुआ वह 'नवयुग' प्रेस में गया, वहाँ चिट्ठियाँ लिखने के लिए एक क्लर्क की आवश्यकता थी, जगह बीस रुपये की। उसकी बातचीत से मालिक को दया आ गयी, उसे रख लिया।

"वहीं से उसने पढ़ना शुरू किया, और साल ही भर में एक उपन्यास लिखा, और मुफ्त छापने को दे दिया। उपन्यास की भाषा बड़ी सजीव थी। भाव बिलकुल नये। लोगों को बहुत पसन्द आया। खूब बिका। नौकरी छोड़ दी। दूसरे साल तीन उपन्यास लिखे। चार ही साल में वह उपन्यास-साहित्य की चोटी पर पहुँच गया। कई हजार रुपये उसने एकत्र कर लिये। सारा ऋण चुका दिया, और अब विद्या के साथ सुखपूर्वक रहता है।

"रामकुमार का कहना है कि ईश्वर ही अर्थ है, वह जिस भक्त पर कृपा करते हैं; उसमें सूक्ष्म अर्थ बनकर रहते हैं, जिससे वह स्थूल अर्थ पैदा करता रहता है।"

हीरालाल ने कहा, "संसार के व्यवसाय में भी सूक्ष्म अर्थ ही स्थूल अर्थ पैदा होने के कारण है।"

फिर दिनेश की ओर देखकर पूछा, "अच्छा, तोते की जगह आपको विश्वास होता है ?"

"मुझे कुल आत्मकथा पर विश्वास है।" दिनेश ने उत्तर दिया।

"तो रामकुमार की तरह आपको भी हिन्दू-धर्म के गपोड़ों पर विश्वास करने की आदत है।"

"नहीं, इसलिए नहीं, बल्कि रामकुमार—"

छूटते ही हीरालाल ने पूछा, "रामकुमार आप ही हैं ?"

"नहीं, रामकुमार को वस्त्र देनेवाला उसका मित्र।"

['सुधा', अर्धमासिक, लखनऊ, 16 सितम्बर, 1933। **लिली में संकलित**]

न्याय

अभी ऊषा की रेशमी लाल साड़ी प्रत्यक्ष हो रही है—भास्कर-मुख अपर प्रान्त की ओर है, केवल केशों की सघन व्योम-नीलिमा इधर से स्पष्ट। मुख का मृदु-स्पर्श, प्रकाश, लघुतम तूलि जैसे, पर दिगन्तशोभ से उतरकर तन्द्रा से अलस जीवों को जगा रहा है। खिली अमलतास की हेमांगी शाखाएँ तरुणी-बालिकाओं-सी स्वागत के लिए सजकर खड़ी हैं। पवन पुनः-पुनः ऊषा का दर्शन शुभ-मधुर सन्देश दे रहा है। निबिड़ नीड़ाश्रय से विहंग प्रभाती गा रहे हैं।

इस सुख के समय गोमती-तट से क्षिप्र गति में दो-एक भ्रमणशील शिक्षित युवक शंकाकुल लौटते हुए देख पड़ते हैं, जैसे शीघ्र घर लौटकर भ्रमण के लिए जाने का सत्य भी छिपाना चाहते हों। भय और उद्वेग का अशुभ कारण कोई किसी से नहीं कह रहा।

उसी रास्ते के दूसरी ओर वकील लाला महेश्वरीप्रसाद रहते हैं। रोज सुबह उसी रास्ते घड़ी और छड़ी लेकर टहलने जाते हैं। उधर चले, तो लौटनेवाले एक अनजाने आदमी को देखकर मन में चौंके। उससे घबराकर चलने का कारण डरते-डरते पूछा। उत्तर में, सँभलकर उसने कहा, "आपको भ्रम हो रहा है, मैं घबराने क्यों लगा ?"—फिर अपना रास्ता नापा। वकील महेश्वरीप्रसाद आगे बढ़े। गोमती के किनारे कुछ दूर जाने पर बड़ी करुण आवाज आयी, "भैया ! मुझे निकाल लो, तीन आदमी सुन-सुनकर चले गये, दया करो, मैं आप नहीं निकल सकता, जख्मी हूँ, रात को मारकर डाल दिया है बदमाशों ने।"

वकील साहब के कलेजे में हूक-सी लगी। उल्टे पैर भगे। उनका बँगला पास

ही था। रास्ता छोड़कर खेतों से दौड़े। एक दूसरे बँगले से एक युवक उनकी चाल देखकर हँस रहा था। हाथ के इशारे से वकील साहब ने उसे पास बुलाया। युवक चला गया। घबराये हुए गोमती की तरफ उँगली उठाकर वकील साहब ने कहा, "वहाँ जाओ, देखो।" कहकर बँगले की तरफ बढ़े। युवक गोमती की तरफ गया।

घायल की दशा देखकर युवक को दया आ गयी। उसके सीने में दोनों तरफ से छुरा भोंका गया था। गोमती के प्रवाह से देह का तमाम खून बह गया था। पर वह साधारण मनुष्य से ज्यादा सचेत था, आवाज ज्यादा साफ। वीर कर्त्तव्य की ओर देखता है, काल्पनिक भविष्य-विपत्ति की ओर नहीं। उस घायल की रक्षा के लिए उसके विशाल हृदय में सहानुभूति पैदा हुई, व्यायाम से कसी बाँहें अपनी ही शक्ति से वासस्थल तक ले जाने को फड़कने लगीं। आँखों ने अपने भाई को देखा।

एक हाथ जाँघों से, एक गर्दन से लगाकर अनायास युवक उसे निकालकर अपने डेरे को ले चला। जल से निकलते ही घावों की पीड़ा से घायल चीत्कार करने लगा। नजदीक ही युवक का डेरा था। अपने बिस्तर पर ले जाकर लेटा दिया। कपड़े की रगड़ से पीड़ा बढ़ रही थी, घायल ने उतार देने के लिए कहा, सँभालकर युवक ने एक-एक कपड़े उतार दिये।

फिर कागज लेकर उसके बयान लिखने लगा। घायल को बेहोशी आ रही थी, कहते-कहते भूल जाता था। कुछ असम्बद्ध उक्तियाँ युवक ने लिख लीं। घायल मूर्छित हो गया।

युवक व्यग्रता से निश्चय न कर सका कि क्या करे, पहले थाने में रिपोर्ट लिखवाये या अस्पताल ले जायें। घायल की प्रति-मुहूर्त बढ़ती हुई बुरी हालत एक बार उसे थाने की ओर ढकेलती, फिर अस्पताल की ओर। अन्त में अस्पताल ले जाने का निश्चय किया। पास एक रईस रहते थे। उनके यहाँ जाकर उसने कुल किस्सा बयान किया और उनकी मोटर माँगी। उन्होंने घड़ी देखकर कहा, "सिर्फ छ मिनट समय रह गया है, हमें डिप्टी-कमिश्नर साहब से मिलने के लिए जाना है।" कहकर निगाह फेर ली। एक बार उनकी तरफ देखकर युवक अपने कमरे में चला आया। उस बँगले में 3-4 भले आदमी किराये पर रहते थे। जब घायल को लेकर युवक आया था, तब वे लोग थे, घायल के मौन होते ही सब लोग उसकी साँसों से जाग्रत बँगले के शरीर से स्वप्न की तरह अदृश्य हो गये। घबराया हुआ युवक रास्ते पर आकर खड़ा हुआ। एक खाली ताँगा सवारी छोड़कर कार्लटन होटल से निकला। कुछ हाल न कहकर युवक ने ताँगा बुला लिया। बँगले जाकर ताँगेवाला जख्मी को देखते ही बिगड़कर बोला, "आप हमें फँसाना चाहते हैं? यह रास्ते-भर को भी तो न होगा।" कहकर उसने अपना ताँगा बढ़ाया। युवक को काठ मार गया। कुछ देर बाद खड़ा कवियों के स्वर्गतुल्य, अप्सराओं के नूपुरों से मुखर, इस मनोहर संसार को भावना की अचपल दृष्टि से देखता रहा, फिर घायल के पास गया। देखा, सब खेल खत्म हो चुका है। साँस देखी, नाड़ी देखी, कहीं से भी

उसके अस्तित्व का प्रमाण नहीं मिल रहा है। सूख गया। सिर्फ उसका नौकर मालिक की आज्ञा-पूर्ति के लिए मुस्तैद उसकी तरफ देख रहा था। हताश होकर युवक कुर्सी पर बैठ गया। एक चिट्ठी लिखकर नौकर से 'वसन्तावास' दे आने के लिए कहा। नौकर चिट्ठी लेकर गया, युवक थाने की ओर चला।

रिपोर्ट अधूरी और ऐसी थी कि साथ-साथ दारोगाजी की तहकीकात की जरूरत हुई। वह युवक के साथ हो लिये। बँगले पहुँचकर देखा, एक लाश पलंग पर पड़ी है, सीने में दोनों तरफ से छुरे की तरह कोई अस्त्र भोंका गया है।

पूरी मुस्तैदी से गोमती तट, मृतक के लेटने की विधि आदि की परीक्षा कर, निर्भय, निश्चिन्त होकर दारोगाजी कुर्सी पर बैठ गये और गम्भीर प्रभावोत्पादक स्वर से पुनः पूछने और बयान लिखने लगे।

"आपने इसे कहाँ देखा है ?"

"एक बार कह चुका हूँ।"

"आप वहाँ कैसे गये ?"

"मुझसे वकील बाबू महेश्वरीप्रसाद ने कहा। वह उस तरफ वाले बँगले में रहते हैं।"

थानेदार साहब ने बाबू महेश्वरीप्रसाद को कारण बताकर ले आने के लिए कान्स्टेबिल को भेज दिया।

"फिर आपने क्या किया ?"

"मैं इसे उठा लाया, यह निकाल देने के लिए मुझे देखते ही पुकारकर कहने लगा था।"

"आप कैसे ले आये ?"

"बाँहों पर उठाकर।"

दारोगाजी ने एक बार युवक के पुष्ट शरीर को देखा।

"फिर आपने क्या किया ?"

"इसके कहने पर कपड़े उतारे, फिर पूछ-पूछकर बयान लिखने लगा।"

"दिखलाइए वह कागज।"

युवक ने कागज दे दिया। पढ़कर थानेदार साहब जामे से बाहर हो गये। डाँटकर कहा, "यह कोई बयान है ? नाम है किरिश्नाचरन (कृष्णचरन), बस, बाप का नाम ? कौम ?"

"कौम के लिए मैं पूछ रहा था, पर वह बोल नहीं सका।"

पूरे सन्देह की दृष्टि से थानेदार साहब ने युवक को देखा। व्यंग्य करते हुए बोले, "आप जब गये थे, तब पानी में डूबा हुआ यह साफ आवाज निकाल रहा था, पर आपके यहाँ आते ही इसकी जबान में ताला पड़ गया।"

युवक ने भी व्यंग्य किया, "जी हाँ, जब यहाँ मरा पड़ा है, तो वहाँ भी क्यों न मरा पड़ा होगा ?"

क्रूर दृष्टि से थानेदार साहब ने युवक को घूरा। कहा, "और 'चौक से आ'—इसके क्या मानी?"

"यह मैं क्या बताऊँ ? मैंने पूछा था, वह सवाल ऊपर लिखा हुआ है कि तुम कैसे मारे गये, तो 'चौक से आ' कहकर चुप हो गया।"

"फिर 'किसने मारा ?'—'मह'। 'मह' ने मारा ? 'मह' क्या बला है ?"

युवक थानेदार साहब की स्वगतोक्ति सुनकर मन-ही-मन भारतवर्ष की पुलिस के साथ विलायत की पुलिस को मिला रहा था, इसी समय सिपाही बाबू महेश्वरी-प्रसाद के यहाँ से संवाद लेकर लौटा, दारोगाजी से कहा, "बाबू महेश्वरीप्रसाद बँगले में नहीं हैं, उनके नौकर ने कहा है, कल अदालत से लौटकर शामवाली गाड़ी से वकील साहब घर गये हैं।"

थानेदार साहब की शंका बढ़ गयी। पर रह-रहकर सोच रहे थे—'इसने वकील साहब का नाम क्यों लिया ?' समाधान करते थे—'मुमकिन है, किसी दुश्मन पर होनेवाली वारदात के लिए वकील ने पहले से कह रक्खा हो कि हम ऐसा कह देंगे, तो तुम छूट जाओगे।' निश्चय किया—'यह जैसा तगड़ा है, यह अकेला भी इसे मार सकता है।'

मन में विश्वास भर गया, इसलिए स्वर भी शंका के बाद निश्चय में बदल गया, मृतक के कपड़ों की जाँच करते हुए दारोगाजी को जेब में जनेऊ मिला। निश्चय पर जोर पड़ा—यह जनेऊ छिपाया गया है। पूछा, "यह जनेऊ किसने निकाला ?"

"मुझे नहीं मालूम।"

दारोगाजी ने गम्भीर होकर पूछा, "फिर आपको क्या मालूम है ?"

युवक क्रोध से चुप हो गया। दारोगाजी ने पूछा, "तो आपने फिर क्या किया ?"

युवक ने सोचा—'अब मोटरवाली बात कहता हूँ, तो सम्भव है, मोटर-मालिक वकील साहब की तरह उस समय मौजूद न रहें।' फिर कहा, "फिर अस्पताल ले जाने के लिए रास्ते से एक ताँगा ले आया, पर ताँगेवाले ने ले जाना मंजूर न किया।"

"वह कितने नम्बर का ताँगा था ?" जमकर दारोगाजी ने पूछा।

"मुझे मालूम तो था नहीं कि आप नम्बर पूछेंगे।"

दारोगाजी गौर करने लगे। युवक दोषी है, ऐसा प्रमाण तो न था, पर निर्दोष है, ऐसा भी प्रमाण न था, बल्कि एक झूठ साबित हो चुका है। ऐसी हालत में सन्देह को ही श्रेय देना उचित है। हत्या का एक विश्वसनीय कारण पुलिस को दिखाना पड़ता है, यदि प्रमाण अप्राप्य रह गया।

थाने में रिपोर्ट लिखाने के समय युवक नाम-धाम आदि लिखा चुका था, पर इस समय दारोगाजी ने फिर उससे कुछ ऐसे प्रश्न किये। वह कौन है, इस प्रश्न का बहुत ही संक्षिप्त उत्तर सभ्यता के विचार से ह्रस्व स्वरों में उसने दिया। अतः उसकी स्थिति का भी कोई प्रभाव थानेदार साहब पर न पड़ा। फिर पढ़े-लिखे युवकों द्वारा हुई हत्या के कारण हैं भी—कुछ ऐसा इनमें भी रहस्य सम्भव है।

सोच-विचारकर दारोगाजी पंचनामे की कार्रवाई पूरी करने लगे। इस

सम्बन्ध से अपने को बिल्कुल अनभिज्ञ बतलानेवाले कुछ पंच भी मिले। इसी समय सिपाहियों की ओर थानेदार साहब ने एक इशारा किया। सिपाही युवक को चारो ओर से घेरे हुए खड़े थे। इशारा पाकर बाँध लिया। पंच डरे हुए काम के बहाने, चलने को हुए। लाश की हालत और युवक के कमरे की चीजें लिखकर पंचों के दस्तखत कराकर ताला लगा दिया गया।

युवक ने शून्य दृष्टि से एक बार थानेदार साहब को, फिर आकाश की ओर देखा।

हत्या का करण और कारण साथ लेकर थानेदार साहब थाने के लिए रवाना हुए।

थाने पहुँचे ही थे कि ताँगे से उतरकर इक्कीस-बाईस साल की एक सुन्दरी दारोगा-जी की कुर्सी की ओर बढ़ती नजर आयी। केश-वेश अत्यन्त आधुनिक। चाल-ढाल संकोच से सोलहो आने रहित। दारोगाजी को रास्ते में छोड़कर थाने में ऐसा चमत्कार कभी नहीं देख पड़ा। युवती सीधे दारोगाजी के सामने जा, उन्हीं से पूछने लगी, "मुझे थाने के इंचार्ज दारोगाजी की सख्त जरूरत है, क्या आप बतला सकेंगे—वह कहाँ मिल सकते हैं ?"

"हाँ, फर्माइए।"

"अच्छा, आप हैं, पोशीदा बातचीत है।" युवती मुस्करायी।

थानेदार साहब ने एकान्त कर लिया।

साग्रह देखते हुए दारोगाजी से युवती ने कहा, "आपने राजीव को गिरफ्तार किया है, पर वह बेकुसूर है।"

"कोई सुबूत तो नहीं।"

"मैं गोमती-किनारे से टहलती हुई आ रही थी, वकील महेश्वरीप्रसाद राजीव को उधर जाकर देखने के लिए कह रहे थे, और खुद डरे हुए कमरे की तरफ जा रहे थे।"

कुछ सोचकर दारोगाजी ने कहा, "वह कल शाम को घर चले गये हैं, उनके नौकर से मालूम हुआ।"

"अच्छा, मैं बहुत ज्यादा कुछ नहीं कहना चाहती। मेरे पास तीस गवाह हैं, लेडीज और जेण्टिलमेन, अदालत में आपको मालूम हो जायगा, साढ़े नौ बजे रात को कल मैं अपनी तीन सखियों और दो मित्रों के साथ छतरमंजिल की तरफ से आ रही थी, एक आदमी हम लोगों को देखकर भगा। हमें शक हुआ, हमारे साथ के मित्रों ने दौड़कर उसे पकड़ा। उसकी कमर में सात सौ रुपये थे, कुर्ता नहीं पहने था, अब मालूम होता है खून के धब्बों की वजह से कुर्ता कहीं फेंक दिया था। वही खूनी रहा होगा, मेरे मित्र बदमाश समझकर यहाँ ले आये, आपका नाम लेकर कहते थे कि दारोगाजी ने देखकर उसे पहचान लिया—वह चौक का भागा हुआ बदमाश महताबअली था। जान पड़ता है, आपने उसे छोड़ दिया, अच्छा, देखा जायगा।" कहकर लापरवाही से युवती उठी।

दारोगाजी सूख गये। घबराकर बोले, "यह सरासर झूठ है।"

चलती हुई युवती बोली, "आपके इस मुकद्दमे की तरह अदालत में यह भी सच साबित हो सकता है। मगर हाँ, तब आपके सुबूत से यह ज्यादा सही साबित होगा।" एड़ी के बल ज़रा लौटकर युवती बोली, "और बहुत-सी बातें हैं, आपने जिसे गिरफ्तार किया है, आप जानते नहीं, यह कितना बड़ा इज्जत का आदमी है।"

युवती फिर बढ़ी, तो दारोगाजी ने बड़े विनयपूर्ण शब्दों से बुलाया। युवती लौट पड़ी। पास आने पर पूछा, "वे आपके कोई होते हैं ?"

"मेरे कोई होते, तो मेरे यहाँ आने की जरूरत क्या थी ?"

इस अद्भुत स्त्री की ओर देखकर दारोगाजी ने कैदी को छोड़ देने के लिए कहा।

ताँगे पर बैठकर प्रतिमा ने राजीव से कहा, "पूरा प्लाट तुम्हारी चिट्ठी पर तैयार किया। तुमने लिखा भी खूब था। सिर्फ महताव के लिए रिसर्च करते कुछ देर लगी थी, यानी जितनी देर इस ताँगेवाले से बातचीत करने में लगेगी। यह रिसर्च हो सकता है।"

थानेदार साहब ने लिखा, "जान पड़ता है, यह कोई क्रान्तिकारी था, बम लिये जा रहा था, एकाएक बम के धड़ाके से काम आ गया है।"

डाक्टर की परीक्षा में जख्मों के भीतर से सीसे के कुछ नुकीले टुकड़े भी मिले।

['सुधा', अर्धमासिक, लखनऊ, 1 अक्तूबर, 1933। पहले **सखी** में, फिर **चतुरी चमार** में संकलित]

स्वामी सारदानन्द महाराज और मैं

उन दिनों 1921 ई. थी। एक साधारण-से विवाद पर विशद महिषादल-राज्य की नौकरी नामंजूर-इस्तीफे पर भी छोडकर मैं देहात में अपने घर रहता था। कभी-कभी आचार्य पं. महावीरप्रसादजी द्विवेदी के दर्शनों के लिए जुही, कानपुर जाया करता था। इससे पहले भी, जब 1919 में हिन्दी और बंगला के व्याकरण पर लिखा हुआ मेरा लेख शुद्ध कर, 'सरस्वती' में छापकर 1920 में उन्होंने साहित्य-सेवा से अवसर ग्रहण किया, दौलतपुर में उनके दर्शन कर चुका था। साहित्य में द्विवेदीजी का गुरुत्व मैं उन्हीं के गुरुत्व के कारण मानता था (मानता भी हूँ), अपने किसी अर्थ-निष्कर्ष या स्वार्थ-लघुत्व के लिए नहीं। पर इष्ट तो निर्भर भक्त की भक्ति की ओर देखता ही है— द्विवेदीजी भी मेरी स्वतन्त्रता से पैदा हुई आर्थिक परतन्त्रता

पर विचार करने लगे। आज ही की तरह उन दिनों भी हिन्दी की मसजिदों पर मुरीद द्विवेदीजी की नमाज पढ़ते थे, लिहाजा उनकी कोशिश—मैं किसी अखबार के दफ्तर में जगह पा जाऊँ—कारगर हुई। दो पत्र उन्होंने अपनी आज्ञा से चिह्नित कर गाँव के पते पर मेरे पास भेज दिये, एक काशी के प्रसिद्ध रईस राजनीतिक नेता का था, एक कानपुर ही का। काशीवाले में आने-जाने का खर्च देने के विवरण के साथ योग्यता की जाँच के बाद जगह देने की बात थी, कानपुरवाले में लिखा था—'इस समय एक जगह 25) रुपये की है, अगर वह चाहें, तो आ जायँ।' मालूम हो कि यह सब उदारता पूज्य द्विवेदीजी अपनी तरफ से स्नेहवश कर रहे थे। अवश्य मेरे पास शिक्षा का जो प्रमाण-पत्र इस समय तक है, उस योग्यता की पूरी-पूरी रक्षा जगह देनेवालों ने की थी, तथापि सिपहगरी के समतल क्षेत्र से सुबेदारी तक के सुस्तर उन्नति-क्रम पर अविचल श्रद्धा न मुझे पहले थी, न अब भी है। फलतः उन पत्रों ही को मेरी अशिक्षा के कारण स्थान-प्राप्ति हुई, मेरी जेब में प्रमाण के तौर पर अपने सुलेखकों के पास वापस जाने का सौभाग्य उन्हें न मिला। मेरे अन्दर मर्यादा का ज्ञान अत्यन्त प्रबल है, इनकी जानकारी पूज्य द्विवेदीजी को स्वतः उत्तरादायी पद दिलाने की ओर फेरने लगी। पर द्विवेदीजी करते भी क्या, प्रमाण जो न था। जो कुछ भी साहित्य-सेवा की प्रबल प्रेरणा से मैं लिखता था, वह एक ही सप्ताह के अन्दर सम्पादक महोदय की अस्वीकृति के साथ मुझे पुनः प्राप्त हो जाता था। केवल दो लेख और शायद दो कविताएँ तब तक छप पायी थीं, सो भी जब हिन्दी के छन्दों में बड़ी रगड़ की और लेखों में कलम की पूरी ऊँची आवाज से हिन्दी की प्रशंसा। अस्तु, इन्हीं दिनों स्वामी माधवानन्दजी, प्रेसिडेण्ट, अद्वैत आश्रम (रामकृष्ण-मिशन), मायावती, अलमोड़ा, हिन्दी में एक पत्र निकालने के विचार से पत्रों में विज्ञापन करते हुए सम्पादक की तलाश में द्विवेदीजी के पास जूही आये। उस समय मेरी एक कविता, वह 'परिमल' में 'अध्यात्म-फल' के नाम से छपी है, 'प्रभा' में प्रकाशित हुई थी। उतने ही प्रत्यक्ष आधार पर आचार्य द्विवेदीजी स्वामीजी के पत्र के लिए मेरी योग्यता की सिफारिश कर चले। उनकी तकलीफ आप समझ सकते हैं। स्वामीजी ने मेरा पता नोट कर लिया, और मुझे एक चिट्ठी योग्यता के प्रमाण-पत्र भेजने की आज्ञा देते हुए लिखी। बंगाल में रहकर परमहंस श्रीरामकृष्ण देव तथा स्वामी विवेकानन्दजी के साहित्य से मैं परिचय प्राप्त कर चुका था, दो-एक बार श्रीरामकृष्ण मिशन, बेलूड़, दरिद्र नारायणों की सेवा के लिए भी जा चुका था, श्रीपरमहंसदेव के शिष्य श्रेष्ठ पूज्यपाद स्वामी प्रेमानन्दजी महाराज को महिषादल में अपना तुलसीकृत रामायण का सस्वर पाठ सुनाकर उनका अनुपम स्नेह तथा आशीर्वाद प्राप्त कर चुका था, स्वामी माधवानन्दजी को पत्रोत्तर में अपनी इसी योग्यता के हृष्ट-पुष्ट प्रमाण दिये। स्वामीजी का वह पत्र अँगरेजी में था और मेरा उत्तर बंगला में। कुछ दिनों बाद द्विवेदीजी के दर्शनों के लिए फिर गया तो मालूम हुआ कलकत्ता में एक सुयोग्य साहित्यिक स्वामीजी को सम्पादन के लिए स्वयं प्राप्त हो गये हैं। घर लौटने पर उनका एक पत्र मुझे भी बंगला में लिखा हुआ मिला कि धैर्य धारण करो, प्रभु की इच्छा होगी, तो आगे देखा जायगा।

इसी समय महिषादल-राज्य से मुझे तार मिला कि जल्द चले आओ। मैंने सोचा, जब नामंजूर इस्तीफे पर हठवश चले आने का दोष ही हटा दिया गया, तो अब जाने में दुविधा क्यों करूँ ? मैं महिषादल गया। पर राजा, जोगी, अग्नि, जल की उल्टी रीतिवाली याद न रही। यहाँ 'समन्वय' के सार्थक नाम से एक सुन्दर पत्र प्रकाशित हुआ। मेरे पास भी वह लेख के तकाजे के साथ गया। मैंने उसमें 'युगावतार भगवान् श्रीरामकृष्ण' ऐसा एक लेख लिखा। जब वह प्रकाशित हुआ, तब मैंने द्विवेदीजी की राय माँगी। उन्होंने उस लेख को पढ़कर बधाई दी। मैं मौलिक लेख लिख सकता हूँ, आचार्य द्विवेदीजी के इस आशीर्वाद का सदुपयोग मैं अपने ही भीतर तब से अब तक करता जा रहा हूँ। कई और भी मेरे साहित्यिक पूज्यपादों ने इस लेख की विचारणा और भाषा-शैली के लिए मुझे प्रोत्साहन दिया। 'समन्वय' को एक बड़ी अड़चन पड़ी और यह हिन्दी और बंगला बोलनेवालों में, मेरे विचार से, शायद अभी बहुत दिनों तक रहेगी। इधर मेरे सामने भी राजावाली उल्टी रीति पेश हुई। इसी समय 'समन्वय' के मैनेजर स्वामी आत्मबोधानन्दजी ने मुझे लिखा कि बंगालियों के भावों को समझने के लिए यहाँ ऐसा आदमी चाहिए, जो बंगला जानता हो। हमें अड़चन पड़ती है, तुम चले आओ। मैंने जाकर देखा, 'समन्वय' के आठ ही महीने में दो सम्पादक बदल चुके थे। सम्पादक की जगह नाम स्वामी माधवानन्दजी का छपता था, वह हिन्दी भी बहुत अच्छी जानते हैं, काम तथा हिन्दी की विशेषता की रक्षा के लिए 'समन्वय' में एक हिन्दी-भाषी सम्पादक रहता था। इस तरह मैं 'समन्वय' में जाकर स्वामीजी महाराज के साथ, 'उद्‌बोधन' कार्यालय, बागबाजार में रहने लगा। यहीं पहले-पहल आचार्य स्वामी सारदानन्दजी महाराज के दर्शन किये। यह 1922 ई. की बात है।

स्वामी सारदानन्दजी इतने स्थूल थे कि उन्हें देखकर डर लगता था। यद्यपि डरवाली बात मेरे पास बहुत पहले ही से कम थी, भूतों से साक्षात्कार करने के लिए रात-रात-भर श्मशानों की सैर करता रहा था, और आधी रात को घर से निकलकर पैदल आठ-नौ कोस जमीन चलकर सुबह आचार्य द्विवेदीजी के दर्शन किये थे, फिर भी स्वामी सारदानन्दजी की ओर बहुत दिनों तक मैं देख नहीं सका। पर मैं आँखें झुकाकर, प्रणाम कर उनकी सभा में कभी-कभी बैठ जाता था—बात-चीत सुनने के लिए। किसी दर्शन या धर्मग्रन्थ का पाठ होने पर उठकर चला आता था, क्योंकि दार्शनिकता की मात्रा यों भी दिमाग में बहुत ज्यादा थी, जी घबरा उठता था। स्वामीजी की वार्तालाप-सभा में महीनों मैंने संयम रक्खा, कुछ बोलकर बेवकूफ न बनूँगा, सिद्धान्त कर लिया था। बाहर के आये हुए विद्वानों को देखता भी था, अण्ट-सण्ट बकते जा रहे हैं, न सिर, न पूँछ, उनकी आवाज की किरकिराहट अर्थ से पहले अनर्थ व्यंजित करती थी। स्वामीजी मेरी 'यावर्त्किचिन्न-भाषते' नीति पर प्रसन्न होकर मुस्कराते थे। एक रोज धैर्य जाता रहा। मैंने पूछा, "यह संसार मुझमें है, या मैं इस संसार में हूँ।" उन्होंने बड़े स्नेह से कहा, "इस तरह नहीं।"

हमारे यहाँ की जैसी संस्कृति थी, मैं बचपन से सन्तों की सूक्तियों पर भक्ति

करता हुआ विशेष रूप से ईश्वरानुरक्त हो चला था। इसलिए सो जाने पर देवताओं के स्वप्न बहुत देखता था। जो देव जाग्रत अवस्था में कभी नहीं बोले, मैं ही बात-चीत करता थकता, वे सो जाने पर दम न भरते थे। इसे धर्म-ग्रन्थों में शुभ लक्षण कहा है। पर मेरे लिए यह उत्तरोत्तर अशुभ हो चला। क्योंकि बराबर यह प्रश्न जारी रहा कि मूर्तियाँ जाग्रत अवस्था में क्यों नहीं बोलतीं ? रात की अनिद्रा और दिन की उधेड़बुन के शुभ लक्षण सहज की अनुमेय हैं। क्रमशः दार्शनिकता प्रबल हो चली। धीरे-धीरे देवताओं के कथोपकथन के फलस्वरूप घोर नास्तिक, शंकित-चित्त हो गया। जब 'समन्वय' के सम्पादन के लिए गया था, तब यही दशा थी। आस्तिकता पहले के उपार्जित संस्कार या धूप-छाँह की सार्थकता की तरह आती थी। एक दिन मैंने स्वामीजी से कहा, "सो जाने पर मेरे साथ देवता बातचीत करते हैं।" वह सस्नेह हँसकर बोले, "बाबूराम महाराज से भी करते थे।" (स्वामी प्रेमानन्दजी का पहला नाम श्रीबाबूराम था। इनका जिक्र मैं कर चुका हूँ कि श्रीरामकृष्ण के शिष्यों में पहले इन्हीं के दर्शन मैंने महिषादल में किये थे)। इस प्रसंग के कुछ ही दिनों में मैं अपने एक बंगाली मित्र के बिस्तरे पर सो रहा था, दुपहर को सोने का मुझे अब भी अभ्यास है, देखता हूँ कि स्वामी सारदानन्दजी महाध्यान में मग्न हैं, ईश्वरीय विभूति से युक्त ऐसी मूर्ति मैंने आज तक नहीं देखी—कमलासन बैठे हुए, ऊर्ध्वबाहु, मुद्रितनेत्र, मुख-मण्डल पर महानन्द की दिव्य ज्योति, जो कुछ है, सब ऊपर उठा जा रहा है, इसी समय उनके सेवक एक संन्यासी महाराज उन्हें खिलाने के लिए रसगुल्ले ले गये, उसी ध्यानावस्थित अवस्था में स्वामीजी ने मेरी ओर इशारा किया। सेवक महाराज ने लौटकर मुझे रसगुल्लों का कटोरा दे दिया। मैं गया और एक रसगुल्ला खिलाकर लौट आया। कटोरा सेवक संन्यासी महाराज को दे दिया।

बस, आँख खुल गयी। मेरा मस्तिष्क हिम-शीकरों-सा स्निग्ध हो गया। उसमें महाज्ञान का कितना बड़ा प्रत्यक्ष प्रमाण मैंने देखा है, मैं क्या कहूँ।

पर मेरी विरोधी शक्ति बराबर प्रबल रही! तीव्र तीक्ष्ण दार्शनिक वज्र-प्रहारों से बराबर मैं मन से उनका अस्तित्व मिटाता रहा—मिटा देता था, तभी काम कर सकता था, पर वह काम—जो घर के लिए, संसार के लिए बन्धनों से मुक्त होनेवाला सामाजिक और साहित्यिक उत्तरदायित्व लिये हुए था। पर आकाश से सीमावकाश में आकर भी मैं आकाश में ही रहता हूँ, ज्यों-ज्यों लड़ता गया—जुदा होता गया, वह भाव प्रबल होता रहा। जीवन्मुक्त महापुरुष क्या है, मैं अब और अच्छी तरह समझने लगा। मैं प्रहार करता हुआ जब थक जाता था, तब मेरे मनस्तत्व के सत्य-स्वरूप स्वामी सारदानन्दजी मुझे रंगीन छाया की तरह ढककर हँसते हुए तर कर देते थे। इन महादार्शनिक, महाकवि, स्वयंभू, मनस्वी, चिर-ब्रह्मचारी, संन्यासी, महापण्डित, सर्वस्वत्यागी, साक्षात् महावीर के समक्ष देवत्व, इन्द्रत्व और मुक्ति भी तुच्छ है। मैंने भी देश तथा प्रदेशों के बड़े-बड़े कवियों, दार्शनिकों, पण्डितों तथा पुरुषों के साथ एक सर्वश्रेष्ठ उपाधि से भूषित किये हुए अनेकानेक लोगों को देखा है, पर वाह रे संसार, सत्य की कितनी खरी जाँच तूने की—महाविद्या और महापुरुष-चरित्रों का कितने पोच मस्तिष्कों में तूने पता

लगाया। मैं ब्राह्मण था, किसी मनुष्य को सिर नहीं झुकाया, मेरे चरित्र का पूरा अध्ययन कीजियेगा, चरित्र और ज्ञान, जीवन और परिसमाप्ति में जो 'एजति, न एजति' को सार्थक करनेवाले ब्रह्म थे, उन्होंने अपनी पूर्णता देकर मेरी स्वल्पता ले ली। अब दोनों भाव उन्हीं के हैं, एक से वह लड़ते हैं, दूसरे से बचते हैं—यही मेरा इस समय का जीवन है।

स्वामी सारदानन्दजी के जिन सेवक संन्यासी के हाथ से कटोरा लेकर स्वप्न में मैंने स्वामी को रसगुल्ला खिलाया था, उन्होंने मुझसे एक रोज एकाएक कहा, "तुम मन्त्र नहीं लोगे?—जाओ।" मैंने सोचा, 'यहाँ महाप्रसाद की तरह मन्त्र भी बँटता होगा, लेने में हर्ज क्या है?' मुझे बड़े को गुरु मानने में आपत्ति कभी नहीं रही, रहा सिर्फ गुरुडम के खिलाफ, फिर मन्त्र लेने से कुछ मिलता ही है, जहाँ मिलनेवाली रचना हो, वहाँ पैर न बढ़ाये, वह ब्राह्मण का कोई बेवकूफ लड़का ही होगा। मैं सपाटा-चाल सीढ़ी तय करके स्वामीजी के कमरे में पहुँचा और बैठ गया। उन्होंने पूछा, "क्या है?" मैंने कहा, "मन्त्र लेने आया हूँ।" मेरे स्वर में न जाने क्या था। मुझे तन्त्र-मन्त्र पर बिल्कुल विश्वास न था। स्वामीजी प्रसन्न गम्भीरता से बोले, "अच्छा, फिर कभी आना।"

मैंने मन में कहा, अब इञ्जानिब नहीं जाने के। कई रोज हो गये, नहीं गया। वहाँ कभी-कभी माँ के कमरे में (श्रीपरमहंसदेव की धर्मपत्नी श्रीसारदामणि देवी, तब माँ देह छोड़ चुकी थीं) तुलसीकृत रामायण पढ़ता था। पहले दिन पढ़ी थी, तब स्वामी सारदानन्दजी ने प्रसाद के दो रसगुल्ले दिलाये थे। सबको एक रसगुल्ला मिलता है। केवल शंकर महाराज (स्वामी सारदानन्दजी के बड़े गुरुभाई, श्रीरामकृष्णमिशन के प्रथम प्रेसीडेंट, पूज्यपाद स्वामी ब्रह्मानन्दजी के प्रिय शिष्य) को दो रसगुल्ले पाते हुए बाद को मैंने देखा था, पर उन्होंने एक रसगुल्ला मुझे दे दिया था। एक बार माँ को प्रणाम कर, प्रसाद लेकर मैं स्वामी सारदानन्दजी महाराज के ज़ीने की तरफ से उतरने के लिए जा रहा था, प्रसाद मेरे हाथ में था, मन बड़ा प्रफुल्ल, फूल-सा खिला हुआ, हलका, गोस्वामी तुलसीदासजी की भारतीय संस्कृति मन को ढके हुए। स्वामीजी आ रहे थे, मुझे भावावेश में देखकर, रास्ता छोड़कर एक तरफ हट गये, मुझे होश था ही, मैं भी हटकर खड़ा हो गया कि यह चले जायँ, तो जाऊँ। स्वामीजी ने पूछा, "यह प्रसाद किसके लिए ले जा रहे हो?" (स्वामीजी से मेरी बंगला में बातचीत होती थी) मैंने कहा, "अपने लिए।" उन्होंने कहा, "अच्छा, खाकर आओ।" चटपट प्रसाद खाकर मैं ऊपर गया। स्वामीजी अपने कमरे के सामने उसी रास्ते पर खड़े थे। मुझे देखकर बड़े स्नेह से पूछा, "उस रोज तुम क्या कहनेवाले थे?" मैंने कहा, "मुझे तन्त्र-मन्त्र पर विश्वास नहीं।" उन्होंने पूछा, "तुम गुरुमुख हो?" मैंने कहा, "हाँ, पर तब मैं नौ साल का था!" उन्होंने कहा, "हम लोग तो श्रीरामकृष्ण को ही ईश मानते हैं।" मैंने कहा, "ऐसा तो मैं भी मानता हूँ।" उत्तर की मैंने कभी देर नहीं की, वह ठीक हो या गलत। पहले क्या कह गया हूँ, फिर क्या कह रहा हूँ, इसकी तरफ ध्यान देनेवाला सच्चा वक्ता लेखक, कवि या दार्शनिक नहीं—वह कला की मुक्ति में गण्य नहीं, कलाकारों के ऐसे कथन का मैं सजीव उदा-

हरण था। स्वामीजी के भारतीय कान ऐसे न थे, जो अँगरेजी बाजे के विवादों से भड़ककर उसे संगीत स्वीकार ही न करते। वह भावस्थ गुरुत्व से मेरे सामने आये। मुझे ऐसा जान पड़ा, एक ठण्डी छाँह में मैं डूबता जा रहा हूँ। फिर मेरे गले में अपनी उँगली से एक बीजमन्त्र लिखने लगे। मैंने मन को गले के पास ले जाकर क्या लिख रहे हैं, पढ़ने की बड़ी चेष्टा की, पर कुछ मेरी समझ में न आया।

परोक्ष रीति से ध्यान-धारणा के लिए स्वामीजी मुझे कभी-कभी याद दिला देते थे, पर मुझे यह धुन थी कि अब देखना है, गलेवाला मन्त्र क्या गुल खिलाता है। पूजा-पाठ जो कुछ कभी-कभी करता था, वह भी बन्द कर दिया। मुझे कुछ ही दिनों में जान पड़ने लगा, मेरा निचला हिस्सा ऊपर और ऊपरवाला नीचे हो गया है, और रामकृष्ण मिशन के साधु मुझे खींच रहे हैं। अजीब घबराहट हुई। मैंने सोचा इन साधुओं ने मुझ पर वशीकरण किया। तब 'समन्वय' के कार्यकर्त्ता 'उद्‌बोधन' छोड़कर 'मतवाला' ऑफिस में (तब 'मतवाला' न निकलता था, वालकृष्ण प्रेस था, मालिक 'मतवाला' के सम्पादक बाबू महादेवप्रसादजी सेठ थे) किराये के कमरों में रहते थे। मैं भी उनके साथ अलग कमरे में रहता था। महादेव बाबू से मैंने कहा, "ये साधु लोग मुझे जादूगर जान पड़ते हैं।" महादेव बाबू गम्भीर होकर बोले, "यह आपका भ्रम है।" मैंने कुछ न कहा, पर मुझे भ्रम होता, तो विश्वास भी होता। एक रोज ऐसा हुआ कि उन्हीं साधुओं में से एक की मेरे पास आकर यही हालत हुई। यह दर्शन-शास्त्र के एम. ए. हैं। आजकल अमेरिका में प्रचार कर रहे हैं। जब खिंचने लगे, तो बोले, "पण्डितजी, क्या आप वशीकरण जानते हैं?" मैंने मन में कहा, 'हूँ!' खुलकर बोला, "मैं मारण, मोहन, वशीकरण, उच्चाटन सबमे सिद्ध हूँ।"

इसके बाद एक दिन स्वप्न देखा—ज्योतिर्मय समुद्र है, श्यामा की बाँह पर मेरा मस्तक, मैं लहरों में हिल रहा हूँ।

फिर इतने चमत्कार इधर दस वर्षों में देखे कि अब बड़े-बड़े कवियों तथा दार्शनिकों की चमत्कारोक्तियाँ पढ़कर हँसी आती है। वह मन्त्र भी तीन साल हुए, आग-सा चमकता हुआ कुछ दिनों तक सामने आया, उसे मैंने पढ़ लिया है।

['सुधा', अर्धमासिक, लखनऊ, 16 नवम्बर, 1933। पहले **सखी** में, फिर **चतुरी चमार** में संकलित]

देवी

बारह साल तक मकड़े की तरह शब्दों का जाल बुनता हुआ मैं मक्खियाँ मारता रहा। मुझे यह ख्याल था कि मैं साहित्य की रक्षा के लिए चक्रव्यूह तैयार कर रहा

हूँ। इससे उसका निवेश भी सुन्दर होगा और उसकी शक्ति का संचालन भी ठीक-ठाक। पर लोगों को अपने फँस जाने का डर होता था, इसलिए इसका फल उल्टा हुआ। जब मैं उन्हें साहित्य के स्वर्ग ले चलने की बातें कहता था, तब वे अपने मरने की बातें सोचते थे; यह भ्रम था। इसलिए मेरी कद्र नहीं हुई। मुझे बराबर पेट के लाले रहे। पर फाकेमस्ती में भी मैं परियों के ख्वाब देखता रहा—इस तरह अपनी तरफ से मैं जितना लोगों को ऊँचा उठाने की कोशिश करता गया, लोग उतना मुझे उतारने पर तुले रहे और चूँकि मैं साहित्य को नरक से स्वर्ग बना रहा था, इसीलिए मेरी दुनिया भी मुझसे दूर होती गयी, अब मौत से जैसे दूसरी दुनिया में जाकर मैं उसे लाश की तरह देखता होऊँ। "दूबर होत नहीं कबहूँ पकवान के विप्र, मसान के कुकर" की सार्थकता मैंने दूसरे मित्रों में देखी, जिनकी निगाह दूसरों की दुनिया की लाश पर थी। वे पहले फटीचर थे, पर अब अमीर बन गये हैं, दोमंजिला मकान खड़ा कर लिया है, मोटर पर सैर करते हैं। मुझे देखते हैं, जैसे मेरा-उनका नौकर-मालिक का रिश्ता हो। नक्की स्वरों में कहते हैं—'हाँ, अच्छा आदमी है; ज़रा सनकी है।' फिर बड़े गहरे पैठकर मित्र के साथ हँसते हैं। वे उतनी दूर बढ़ गये हैं, मैं जिस रास्ते पर था, उसी पर खड़ा हूँ। जिसके लिए मेरी इतनी बदनामी हुई, दुनिया से मेरा नाम उठ जाने को हुआ, जो कुछ था, चला गया, उस कविता को जीते-जी मुझे भी छोड़ देना चाहिए। जिसे लोग खुराफात समझते हैं, उसे न लिखना हो तो लोगों की समझ की सच्ची समझ होगी? रतिशास्त्र, वनिता-विनोद, काम-कल्याण में मश्क करते कौन देर लगती है? चार किताबों की रूह छानकर एक किताब लिख दूँगा। 'सीता', 'सावित्री', 'दमयन्ती' आदि की पावन कथाएँ आँख मूँदकर लिख सकता हूँ। तब बीवी के हाथ 'सीता' और 'सावित्री' आदि देकर बगल में, 'चौरासी आसन' दबानेवाले दिल से नाराज न होंगे। उनकी इस भारतीय संस्कृति को बिगाड़ने की कोशिश करके ही बिगड़ा हूँ। अब जरूर सँभलूँगा। राम, श्याम जो-जो थे पूजने-पुजानेवाले, सब बड़े आदमी थे। बगैर बड़प्पन के तारीफ कैसी? बिना राजा हुए राजर्षि होने की गुंजायश नहीं, न ब्राह्मण हुए बगैर ब्रह्मर्षि होने की है। वैश्यर्षि या शूद्रर्षि कोई था, इतिहास नहीं, शास्त्रों में भी प्रमाण नहीं, अर्थात् नहीं हो सकता। बात यह कि बड़प्पन चाहिए। बड़ा राज्य, ऐश्वर्य, बड़े पोथे, तोप, तलवार, गोले-बारूद, बन्दूक-किर्च, रेल-तार, जंगी जहाज, टारपेडो, माइन, सबमेरीन-गैस, पल्टन-पुलीस, अट्टालिका-उपवन आदि-आदि सब बड़े-बड़े—इतने कि वहाँ तक आँख नहीं फैलती, इसलिए कि छोटे समझें कि वे कितने छोटे हैं। चन्द्र, सूर्य, वरुण, कुबेर, यम, जयन्त, इन्द्र, ब्रह्म, महेश तक बाकायदा बाहिसाब ईश्वर के यहाँ भी छोटे से बड़े तक मेल मिला हुआ है।

होटल के बरामदे में एक आराम-कुर्सी पर पैर फैलाकर लेटा हुआ इस तरह के विचारों से मैं अपनी किस्मत ठोंक रहा था। चूँकि यह तैयारी के बाद का भाषण न था, इसलिए इसके भाव में बेभाव की बहुत पड़ी होंगी, आप लोग सँभाल लीजियेगा। बड़े होने के ख्याल से ही मेरी नसें तन गयीं, और नाम-मात्र के अद्भुत प्रभाव से मैं उठकर रीढ़ सीधी कर बैठ गया। सड़क की तरफ बड़े गर्व

से देखा, जैसे कुछ कसर रहने पर भी बहुत कुछ बड़ा आदमी बन गया होऊँ। मेरी नजर एक स्त्री पर पड़ी।

वह रास्ते के किनारे बैठी थी, एक फटी धोती पहने हुए। बाल कटे हुए। तअज्जुब की निगाह से आने-जानेवालों को देख रही थी। तमाम चेहरे पर स्याही फिरी हुई। भीतर से एक बड़ी तेज भावना निकल रही थी, जिसमें साफ लिखा था—"यह क्या है ?" उम्र पच्चीस साल से कम। दोनों स्तन खुले हुए। प्रकृति की मारों से लड़ती हुई, मुरझाकर, मुमकिन है किसी को पच्चीस साल से कुछ ज्यादा जँचे, पास एक लड़का डेढ़ साल का खेलता हुआ, संसार की स्त्रियों की एक भी भावना नहीं, उसे देखते ही मेरे बड़प्पनवाले भाव उसी में समा गये, और फिर वही छुटपन सवार हो गया। मैं उसी की चिन्ता करने लगा—'यह कौन है, हिन्दू या मुसलमान ? इसके एक बच्चा भी है। पर इन दोनों का भविष्य क्या होगा ? बच्चे की शिक्षा, परवरिश क्या इसी तरह रास्ते पर होगी। यह क्या सोचती होगी, ईश्वर, संसार, धर्म और मनुष्यता के सम्बन्ध में ?'

इसी समय होटल के नौकर को मैंने बुलाया। उसका नाम है संगमलाल। मैं उसे संग-मलाल कहकर पुकारता था। आने पर मैंने उससे उस स्त्री की बाबत पूछा। संगमलाल मुझे देखकर मुस्कुराया। बोला, "वह तो पागल है, और गूँगी भी है, बाबू। आप लोगों की थालियों से बची रोटियाँ दे दी जाती हैं।" कहकर हँसता हुआ बात को अनावश्यक जानकर अपने काम पर चला गया।

मेरी बड़प्पनवाली भावना को इस स्त्री के भाव ने पूरा-पूरा परास्त कर दिया। मैं बड़ा हो भी जाऊँ, मगर इस स्त्री के लिए कोई उम्मीद नहीं। इसकी किस्मत पलट नहीं सकती। ज्योतिष का सुख-दुःख-चक्र इसके जीवन में अचल हो गया है। सहते-सहते अब दुःख का अस्तित्व इसके पास न होगा। पेड़ की छाँह या किसी खाली बरामदे में दोपहर की लू में, ऐसे ही एकटक कभी-कभी आकाश को बैठी हुई देख लेती होगी। मुमकिन है, इसके बच्चे की हँसी उस समय उसे ठण्डक पहुँचाती हो। आज तक कितने वर्षा-ग्रीष्म इसने झेले हैं, पता नहीं। लोग नेपोलियन की वीरता की प्रशंसा करते हैं। पर यह कितनी बड़ी शक्ति है, कोई नहीं सोचता। सब इसे पगली कहते हैं, पर इसके इस परिवर्तन के क्या वही लोग कारण नहीं ? किसे क्या देकर, किससे क्या लेकर लोग बनते-बिगड़ते हैं, यह सूक्ष्म बातें कौन समझा सकता है ? यह पगली भी क्या अपने बच्चे की तरह रास्ते पर पली है ? सम्भव है, पहले सिर्फ गूँगी रही हो, विवाह के बाद निकाल दी गयी हो, या खुद तकलीफ पाने पर निकल आयी हो, और यह बच्चा रास्ते के किसी ख्वाहिश-मन्द का सुबूत हो।

मैं देख रहा था, ऊपर के धुएँ के नीचे दीपक की शिखा की तरह पगली के भीतर की परी इस संसार को छोड़कर कहीं उड़ जाने की उड़ान भर रही थी। वह साँवली थी, दुनिया की आँखों को लुभानेवाला उसमें कुछ न था, दूसरे लोग उसकी रुखाई की ओर रुख न कर सकते थे, पर मेरी आँखों को उसमें वह रूप देख पड़ा, जिसे मैं कल्पना में लाकर साहित्य में लिखता हूँ; केवल वह रूप नहीं, भाव भी। इस मौन-महिमा आकार-इंगितों की बड़े-बड़े कवियों ने कल्पना न की होगी।

भाव-भाषण मैंने पढ़ा था, दर्शनशास्त्रों में मानसिक सूक्ष्मता के विश्लेषण देखे थे, रंगमंच पर रवीन्द्रनाथ का किया अभिनय भी देखा था, खुद भी गद्य-पद्य में थोड़ा-बहुत लिखा था, चिड़ियों तथा जानवरों की बोली बोलकर उन्हें बुलानेवालों की भी करामात देखी थी; पर वह सब कृत्रिम था, यहाँ सब प्राकृत। यहाँ माँ-बेटे के मनोभाव कितनी सूक्ष्म व्यञ्जना से संचारित होते थे, क्या लिखूँ। डेढ़-दो साल के कमजोर बच्चे को माँ मूक भाषा सिखा रही थी— आप जानते हैं, वह गूँगी थी। बच्चा माँ को कुछ कहकर न पुकारता था, केवल एक नजर देखता था, जिसके भाव में वह माँ को क्या कहता आप समझिए; उसकी माँ समझती थी; तो क्या वह पागल और गूँगी थी।

पगली का ध्यान ही मेरा ज्ञान हो गया। उसे देखकर मुझे बार-बार महाशक्ति की याद आने लगी। महाशक्ति का प्रत्यक्ष रूप संसार को इससे बढ़कर ज्ञान देनेवाला और कौन-सा होगा? राम, श्याम और संसार के बड़े-बड़े लोगों का स्वप्न सब इस प्रभात की किरणों में दूर हो गया। बड़ी-बड़ी सभ्यता, बड़े-बड़े शिक्षालय चूर्ण हो गये। मस्तिष्क को घेरकर केवल यही महाशक्ति अपनी महत्ता में स्थित हो गयी। उसके बच्चे में भारत का सच्चा रूप देखा, और उसमें—क्या कहूँ, क्या देखा।

देश में शुल्क लेकर शिक्षा देनेवाले बड़े-बडे विश्वविद्यालय हैं। पर इस बच्चे का क्या होगा? इसके भी माँ है। वह देश की सहानुभूति का कितना अंश पाती है—हमारी थाली की बची रोटियाँ, जो कल तक कुत्तों को दी जाती थीं। यही, यही हमारी सच्ची दशा का चित्र है। वह माँ अपने बच्चे को लेकर राह पर बैठी हुई धर्म, विज्ञान, राजनीति, समाज जिस विषय को भी मनुष्य होकर मनुष्यों ने आज तक अपनाया है, उसी की भिन्न रुचिवाले पथिक को शिक्षा दे रही है—पर कुछ कहकर नहीं। कितने आदमी समझते हैं? यही न समझना संसार है—बार-बार वह यही कहती है। उसकी आत्मा से यही ध्वनि निकलती है—संसार ने उसे जगह नहीं दी—उसे नहीं समझा, पर संसारियों की तरह वह भी है—उसके भी बच्चा है।

एक रोज मैंने देखा, नेता का जुलूस उसी रास्ते से जा रहा था। हजारों आदमी इकट्ठे थे। जय-जयकार से आकाश गूँज रहा था। मैं उसी बरामदे पर खड़ा स्वागत देख रहा था। पगली भी उठकर खड़ी हो गयी थी। बड़े आश्चर्य से लोगों को देख रही थी। रास्ते पर इतनी बड़ी भीड़ उसने नहीं देखी। मुँह फैलाकर, भौंहें सिकोड़कर आँखों की पूरी ताकत से देख रही थी—समझना चाहती थी, वह क्या था। क्या समझी, आप समझते हैं? भीड़ में उसका बच्चा कुचल गया और रो उठा। पगली बच्चे की गर्द झाड़कर चुमकराने लगी और फिर कैसी ज्वालामयी दृष्टि से जनता को देखा। मैं यही समझता हूँ। नेता दस हजार की थैली लेकर गरीबों के उपकार के लिए चले गये—जरूरी-जरूरी कामों में खर्च करेंगे।

एक दिन पगली के पास एक रामायणी समाज में कथा हो रही थी। मैंने देखा, बहुत से भक्त एकत्र थे। एतवार का दिन। दो बजे से साहित्य-सम्राट् गो. तुलसी-

दासजी की रामायण का पाठ शुरू हुआ, पाँज बजे समाप्त। उसमें हिन्दुओं के मँजे स्वभाव को साहित्य-सम्राट् गो. तुलसीदासजी ने और माँज दिया है, आप लोग जानते हैं ! पाठ सुनकर, मँजकर भक्त-मण्डली चली। दुबली-पतली ऐश्वर्य-श्री से रहित पगली बच्चे के साथ बैठी हुई मिली। एक ने कहा, इसी संसार में स्वर्ग और नरक देख लो। दूसरे ने कहा, कर्म के दण्ड हैं। तीसरा बोला, सकल पदारथ है जग माहीं, कर्म-हीन नर पावत नाहीं। सब लोग पगली को देखते, शास्त्रार्थ करते चले गये।

संगमलाल ने मुझसे कहा, "बाबू, यह मुसलमान है।" मैंने उससे पूछा, "तुम्हें कैसे मालूम हुआ।" उसने बतलाया, "लोग ऐसा ही कहते हैं कि पहले यह हिन्दू थी, फिर मुसलमान हो गयी, इसका बच्चा मुसलमान से पैदा हुआ है; पहले यह पागल नहीं थी, न गूंगी; बाद को हो गयी।" मैंने सुन लिया। संगम ने किस ख्याल से कहा, मैं सोच रहा था। उन दिनों कई आदमियों से बातें करते हुए मैंने पगली का जिक्र किया; साहित्य, राजनीति आदि कई विषयों के आदर्श पर बहस थी; कुछ हँसकर चले गये, कुछ गम्भीर होकर और कुछ-कुछ पैसे उसे देने के लिए देकर।

मैंने हिन्दू, मुसलमान, बड़े-बड़े पदाधिकारी, राजा, रईस, सबको उस रास्ते में जाते समय पगली को देखते हुए देखा। पर किसी ने दिल से भी उसकी तरफ देखा, ऐसा नहीं देखा। जिन्हें अपने को देखने-दिखाने की आदत पड़ गयी है, उनकी दृष्टि में दूसरे की सिर्फ तस्वीर आती है, भाव नहीं, यह दर्शन मुझे मालूम था। जिन्दा को मुर्दा और मुर्दा को जिन्दा समझना भ्रम भी है और ज्ञान भी, बाड़ियों में आदमी का पुतला देखकर हिरन और स्यार जिन्दा आदमी समझते हैं, उसी तरह ज्ञान होने पर गिलहरियाँ बदन पर चढ़ती हैं—आदमी उन्हें पत्थर जान पड़ता है। ऊपरवाले आदमी पगली को देखते हुए किस कोटि में जाते थे, भगवान् जानें।

एक दिन शहर में पल्टन का प्रदर्शन हो रहा था। पगली फुटपाथ पर बैठी थी। मैं उसी बरामदे पर नंगे बदन खड़ा सिपाहियों को देख रहा था। मेरी तरफ देख-देखकर कितने सिपाही मुस्कुराये। मेरे बालों के बाद मुँह की तरफ देखकर लोग मिस-फैशन कहते हैं। थिएटर, सिनेमा में यह सम्बोधन दशाधिक बार एक ही रोज सुनने को मिला है। रास्ते पर भी छेड़खानी होती है, मैं कुछ बोलता नहीं। क्योंकि सबसे अच्छा जवाब है बालों को कटा देना। पर ऐसा करूँ, तो मुझे दूसरों की समझ की खुराक न मिले। मैं सोचता हूँ, आवाज कसनेवालों पर एक हाथ रक्खूँ, तो छठी का दूध याद आ जाय, यह वे नहीं देखते। मैं समझ गया, सिपाही भी मिस-फैशन से खुश होकर हँस रहे हैं। लत तो है। मेरे ग्रीक कट, पाँच फुट साढ़े ग्यारह इंच लम्बे, जरूरत से ज्यादा चौड़े और चढ़े मोढ़ों के कसरती बदन को देखकर किसी को आतंक नहीं हुआ। इसका निश्चय कर मैं पगली की तरफ देखने लगा। पगली बैठी थी। सिपाही मिलिटरी ढंग से लेफ्ट-राइट, लेफ्ट-राइट दुरुस्त, दर्प से, जितना ही पृथ्वी को दहलाते हुए चल रहे थे, पगली उतना ही उन्हें देख-देखकर हँस रही थी। गोरे गम्भीर हो जाते थे। मैंने सोचा, मेरा बदला इसने चुका लिया।

पगली ने खुशी में बच्चे को भी शरीक करने की कोशिश की—माँ अच्छी चीज, अच्छी तालीम बच्चे को देती ही है। पगली पास बैठे बच्चे की ओर देखकर चुटकी बजाकर सिपाहियों की तरह छँगुली से हवा को कोंच-कोंचकर दिखा रही थी, और हँसती हुई जैसे कह रही थी—'खुश तो हो ? कैसा अच्छा दृश्य है।'

कई महीने हो चुके। आदान-प्रदान से पगली की मेरी गहरी जान-पहचान हो गयी। पगली मुझे अपना शरीर-रक्षक समझने लगी। उसे लड़के बहुत तंग करते थे। मैं वहाँ होता था, तो विचित्र ढंग से मुँह बनाअर मुझसे सहानुभूति की कामना करती हुई, अपार करुणा से देखती हुई लड़कों की तरफ इशारा करती थी मुझे देखकर लड़के भग जाते थे। इस तरह मेरी उसकी घनिष्टता बढ़ गयी। वह मुझे अपना परम हितकारी मानने लगी। मैं खुद भी पैसे देता था और मित्रों से भी दिला देता था, पगली यह सब समझती थी। एक दिन मुझे मालूम हुआ, उसके पैसे बदमाश रात को छीन ले जाते हैं। यह मनुष्यों का विश्वव्यापी धर्म सोचकर मैं चप हो गया। चुरा जाने पर पगली भूल जाती थी, छिन जाने पर, कम प्रकाश में किसी को न पहचानकर रो लेती थी।

एक दिन मेरे एक मित्र ने पगली से मजाक किया। किसी ने उन्हें बतलाया था कि इसके पास बड़ा माल है, मिट्टी में गाड़-गाड़कर इसने बड़े पैसे इकट्ठे किये हैं। मेरे मित्र पगली के पास गये, और मुस्कराते हुए ब्याजवाली बात समझाकर दो रुपये उधार माँगे। उनकी बात सुनकर पगली जी खोलकर हँसी, फिर कमर से तीन पैसे निकालकर निःसंकोच देने लगी।

गरमी की तेज लू और बरसात की तीव्र धार पगली और उसके बच्चे के ऊपर से पार हो गयी। लोग—जो समर्थ कहलाते हैं—केवल देखते रहे। पास एक खाली मकान के बरामदे में, पानी बरसने पर, वह आश्रय लेती थी। जब तक वह उठकर बिस्तरा उठाकर जाय-जाय, तब तक उसका बिस्तरा भीग जाता था, वह भी नहा जाती थी। फिर उसी गीले में पड़ी रहती। उसका स्वास्थ्य धीरे-धीरे टूटने लगा। उसे तपस्या करने की आदत थी, काम करने की नहीं। उसके हाथ-पैर बैठे-बैठे जकड़ गये थे। पानी पीने के लिए रास्ते के उस पार जाना पड़ता था। पानी की कल उसी तरफ थी। इस पार से उस पार तक इतना रास्ता पार करते उसे आधे घण्टे से ज्यादा लग जाता था। एक फर्लाङ्ग पर कोई इक्का या ताँगा आता होता, तो पगली खड़ी हुई उसके निकल जाने की प्रतीक्षा करती रहती। उसकी मुद्राएँ देखकर कोई मनुष्य समझ जाता कि उस एक्के या ताँगे से दब जाने का उसे डर हो रहा है। साधारण आदमी तब तक चार बार रास्ता पार करता। एक एक्का निकल जाता, फिर दूसरा आता हुआ देख पड़ता। पगली अपनी जगह जमी हुई चलने के लिए दो-एक दफे झूमकर रह जाती। उसकी मुख-मुद्रा ऐसी विरक्ति सूचित करती थी—वह इतनी खुली भाषा थी कि कोई भी उसे समझ लेता कि वह कहती है, 'यह सड़क क्या मोटर-ताँगे-इक्केवालों के लिए ही है ? इन्हें देखकर मैं खड़ी होऊँ, मुझे देखकर ये क्यों न खड़े हों ?' बड़ी देर बाद पगली को रास्ता पार करने का मौका मिलता। तब तक उसकी प्यास कितनी बढ़ती थी, सोचिए।

एक दिन हम लोग ब्लैक कुइन खेल रहे थे। शाम को पानी बरस चुका था। पगली उसी खाली मकान के बरामदे पर थी। हम लोगों ने खाना खाकर खेल शुरू किया था। होटल के गेट की बिजली जल रही थी। फुटपाथ पर मेज और कुर्सियाँ डाल दी गयी थीं। दस बज चुके थे। बच्चे को सुलाकर पगली किसी जरूरत से बाहर गयी थी। उसका बच्चा सोता हुआ करवट बदलकर दो हाथ ऊँचे बरामदे से नीचे फुटपाथ पर आ गिरा, जोर से चीख उठा। मेरे साथ के खिलाड़ी आलोचना करने लगे, "जान पड़ता है, पगली कहीं गयी है, है नहीं।" होटल के एक अमीर-दिल बोर्डर ने संगम से कहा, "देख रे पगली कहीं हो, तो बुला तो दे।"

इनकी बातचीत में वह भाव था, जिसके चाबुक ने मुझे उठने को विवश कर दिया। मैंने उस बच्चे को दौड़कर उठा लिया। मेरे एक मित्र ने कहा, "अरे, यह गन्दा रहता है।" मैं गोद में लेकर उसे हिलाने लगा। उतनी चोट खाया हुआ बच्चा चुप हो गया, क्योंकि इतना आराम उसे कभी नहीं मिला। उसकी माँ इस तरह बच्चे को सुख के झूले में झुलाना नहीं जानती। जानती भी हो तो उसमें शक्ति नहीं। बच्चे को आँखों के प्यार से गोद का सुख ज्यादा प्यारा है। इसे इस तरह की मारें बहुत मिली होंगी, पर इस तरह का सुख एक बार भी न मिला होगा। इसलिए वह चोट की पीड़ा भूल गया, और सुख की गोद में पलकें मूँदकर बात-की-बात में सो गया। मैंने उसे फिर उसकी जगह पर सावधानी से सुला दिया।

अब धीरे-धीरे जाड़ा पड़ने लगा था। मेरे मित्र श्रीयुन नैथाणी ने कहा, "एक रोज पगली का बच्चा गिर गया था, आपने गोद में उठा लिया था। दीवान साहब तब जग रहे थे, मुझे भी देखने को जगा दिया।" मैं चुप रहा। मन में कहा, 'यह कोई बड़ी बात तो थी नहीं, बुद्ध एक बकरे के लिए जान दे रहे थे। जब हममें बड़ी-बड़ी बातें पैदा होंगी, तब हम इन बातों की छुटाई समझेंगे। आज तो तरीका उल्टा है। जिसकी पूजा होनी चाहिए, वह नहीं पुजता; जो कुछ पूजता है, वही अधिक पुजने लगता है!'

जाड़ा जोरों का पड़ने लगा। एक रोज रात बारह बजे के करीब रास्ते में पिल्ले की-सी कूँ-कूँ सुन पड़ी। मैं एक कहानी समाप्त करके सोने का उपक्रम कर रहा था। होटल में और सब लोग सो चुके थे। मैं नीचे रास्ते के सामनेवाले कमरे में रहता था। होटल का दरवाजा बन्द हो चुका था। पर मैं अपना दरवाजा खोल-कर बाहर गया। देखता हूँ, एक पाया हुआ मामूली काला कम्बल ओढ़े बच्चे को लिये पगली फुटपाथ पर पड़ी है। जब उसे दुनिया का, अपने अस्तित्व का ज्ञान होता है, तब हाड़ तक छिद जानेवाले जाड़े से काँपकर वह ऐसे करुण स्वर से रोती है। जमीन पर एक फटी-पुरानी ओस से भीगी कथरी बिछी, ऊपर पतला कम्बल। ईश्वर ने मुझे केवल देखने के लिए पैदा किया है। मेरे पास जो ओढ़ना है, वह मेरे लिए भी ऐसा नहीं कि खुली जगह सो सकूँ। पुराने कपड़े होटल के नौकर माँग लेते हैं—मथुरा मेरा कुर्ता, जो उसके अचकन की तरह होता है, बाँहें काटकर रात को पहनकर सोता है, संगम मेरी धोती से अपनी धोती साँटकर ओढ़ता है, महाराज ने राखी बाँधकर कम्बल माँगा था, अभी तक मैं नहीं दे सका। मैं सोचने लगा, यह कम्बल पगली को किसने दिया होगा? याद आया, सामने के धनी बंगाली-घराने

की महिलाएँ बड़ी दयालु हैं, कभी-कभी पगली को धोती और उसके लड़के को अँगरेजी फ्राक पहना देती थीं—उन्हीं ने दिया होगा। ऐसे ही विचार में मेरी आँख लग गयी।

होटल के मालिक से नाराज होकर, गुट्ट बाँधकर एक रोज बारह-तेरह बोर्डर निकल गये। सब विद्यार्थी थे। मुझे जानते थे। कुछ कैंनिग कालेज के थे, कुछ क्रिश्चियन कालेज के। मुझसे उनके प्रमुख दो लॉ-क्लास के विद्यार्थियों ने आकर कहा, "जनाब, ऐसा तो हो नहीं सकता कि हम उस महीने का खर्च यहाँ देकर, वहाँ पेशगी फिर एक महीने का खर्च दें—धीरे-धीरे प्रोप्राइटर को रुपये देंगे, हमारे पास घर से खर्च तो एक महीने का आता है, अब वहाँ जाकर लिखेंगे, खर्च आयेगा, तब देंगे। होटल तोड़ने के लिए कई बार हम लोगों से मैनेजर कह चुके हैं। बीच में तोड़ दिया, तो हम कहीं के न हुए। इम्तहान सिर पर है। हमने पहले से अपना इन्तजाम कर लिया।" मुझे ख्याल आया अब पगली की रोटियाँ भी गयीं। वह अब चल भी नहीं सकती कि दूसरी जगह से माँग लाये। विद्यार्थी मन में सोचते हुए गये (अब मालूम हो रहा है) कि जैसा सड़ा खाना खिलाया है, दामों के लिए वैसे ही सड़क पर चक्कर खिलवायेंगे।

उनके जाने से होटल सूना हो गया। निश्चय हुआ कि इस महीने के बाद बन्द कर दिया जायगा। संगम मेरे पास उस जाड़े में दी हुई एक बनियानी पहने हुए मुट्ठियाँ दोनों बगलों में दबाये संसार का एक्स (X) बना हुआ सुबह-सुबह आकर बोला, "बाबूजी, मेरी दो महीने की तनख्वाह बाकी है, आप दस रुपया काटकर मैनेजर साहब को बिल चुकाइयेगा।" मैंने उसे धैर्य दिया। दस रुपये की कल्पना से खुलकर हँसता हुआ बड़े मित्र-भाव से संगम मुझे देखने लगा। मैंने देखा, हँसते वक्त उसका मुँह नवयुवतियों की आँखों को मात कर कानों तक फैल गया है।

दो-तीन दिन बाद एक मकान किराये पर लेकर मैनेजर को अपनी बेयरर चेक दस्तखत करके देने से पहले मैंने कहा, "आपको चेक दिलवाने के लिए गंगा-पुस्तकालय जाता हूँ, चेक में दस रुपये कम होंगे, संगम की दो महीने की तनख्वाह बाकी है? उसने कहा है—मेरे रुपये रोककर होटल को रुपये दीजियेगा।" मैनेजर यानी प्रोप्राइटर साहब ने संगम को बुलाया। कहा, "क्यों रे, तू हमें बेईमान समझता है?" संगम सिटपिटा गया, मारे डर के उसकी जबान बन्द हो गयी। मैनेजर साहब उसे घूरकर मेरी ओर देखकर बोले, "आप मुझे ही दीजियेगा, नौकरों की इस तरह आदत बिगड़ जायेगी।" मैं सतहत्तर रुपये का चेक मैनेजर साहब को देकर किराये के दूसरे मकान में चला आया। मेरे साथ मेरे मित्र कुँवर साहब भी आये।

एक रोज पगली का हाल सुनकर उनके मामा साहब एक नफीस बारीक कम्बल पगली को देने के लिए दे गये। मैंने कुँवर साहब से कहा, "रजाई ठीक थी, इससे कीमत में भी ज्यादा नहीं होगी, और पगली का जाड़ा भी छूट जायगा।" कुँवर साहब अपनी रजाई देने के लिए देकर बड़े दिन की छुट्टियों में घर गये। मैं रजाई लेकर पगली को उढ़ा आया। दो-तीन दिन बाद मेरे मित्र श्रीयुत नैथाणी मिले। कहा, "पगली अस्पताल भेज दी गयी। डाक्टर का कहना है, उसे डबल निमोनिया हो गया है। बचेगी नहीं। उसका बच्चा श्रीदयानन्द अनाथालय भेज दिया गया है।

पगली बच्चे को छोड़ती न थी। पगली को ले जानेवाले एक्के की बगल से निकलती हुई मोटर के धक्के से एक स्वयंसेवक के पैर में सख्त चोट आ गयी है, इसी ने सबसे पहले गन्दगी से न डरकर पगली को उठाया था।"

एक रोज सुबह उसी तरह बगल में मुट्ठी दबाये हुए संगम ने आकर कहा, "बाबू आपका चेक भुनाकर मैनेजर साहब भाग गये हैं।"

"नहीं, संगम," मैंने समझाया, "मैनेजर साहब बड़े अच्छे आदमी हैं। घर रुपये लेने गये हैं। उन्हें कई सौ रुपये देने हैं—लकड़ी, घी, आटा, दूध और किराये के। लौटकर रुपये दे देंगे।" संगम वैसा ही फिर हँसा।

['सुधा', अर्धमासिक, लखनऊ, 1 फरवरी, 1934। पहले **सखी** में, फिर **चतुरी चमार** में संकलित]

चतुरी चमार

चतुरी चमार डाकखाना चनियानी, मौजा गढ़ाकोला, जिला उन्नाव का एक कदीमी बाशिन्दा है। मेरे ही नहीं, मेरे पिताजी के, बल्कि उनके भी पूर्वजों के मकान के पिछवाड़े, कुछ फासले पर, जहाँ से होकर कई और मकानों के नीचे और ऊपरवाले पनालों का, बरसात और दिन-रात का शुद्धाशुद्ध जल बहता रहता है, ढाल से कुछ ऊँचे एक बगल चतुरी चमार का पुश्तैनी मकान है। मेरी इच्छा होती है, चतुरी के लिए 'गौरवे बहुवचनम्' लिखूँ, क्योंकि साधारण लोगों के जीवन-चरित या ऐसे ही कुछ लिखने के लिए सुप्रसिद्ध सम्पादक पं. बनारसीदास चतुर्वेदी द्वारा दिया हुआ आचार्य द्विवेदीजी का प्रोत्साहन पढ़कर मेरी श्रद्धा बहुत बढ़ गयी है, पर एक अड़चन है, गाँव के रिश्ते में चतुरी मेरा भतीजा लगता है। दूसरों के लिए वह श्रद्धेय अवश्य है, क्योंकि वह अपने उपानह-साहित्य में आजकल के अधिकांश साहित्यिकों की तरह अपरिवर्तनवादी है। वैसे ही देहात में दूर-दूर तक उसके मजबूत जूतों की तारीफ है। पासी हफ्ते में तीन दिन हिरन, चौगड़े और बनैले सुअर खदेड़कर फाँसते हैं, किसान अरहर की ठूँठियों पर ढोर भगाते हुए दौड़ते हैं—कँटीली झाड़ियों को दबाकर चले जाते हैं, छोकड़े बेल, बबूल, करील और बेर के काँटों के भरे रुँधवाये बागों से सरपट भागते हैं, लोग जेंगरे पर मड़नी करते हैं, द्वारिका नाई न्योता बाँटता हुआ दो साल में दो हजार कोस से ज्यादा चलता है, चतुरी के जूते अपरिवर्तनवाद के चुस्त रूपक जैसे टस से मस नहीं होते; यह जरूर है कि चतुरी के जूते जिला बाँदा के जूतों से वजन में हल्के बैठते हैं, सम्भव है, चित्रकूट के इर्द-गिर्द होने के कारण वहाँ के चर्मकार भाइयों पर रामजी की तपस्या का प्रभाव पड़ा हो, इसलिए उनका साहित्य ज्यादा ठोस हुआ, चतुरी

वगैरह लखनऊ के नजदीक होने के कारण नवाबों के साये में आये हों। उन दिनों मैं गाँव में रहता था। घर बगल में होने के कारण, घर बैठे ही मालूम कर लिया कि चतुरी चतुर्वेदी आदिकों से सन्त-साहित्य का कहीं अधिक मर्मज्ञ है, केवल चिट्ठी लिखने का ज्ञान न होने के कारण एक क्रिया होकर भी भिन्नफल है, वे पत्र-पुस्तकों के सम्पादक हैं, यह जूतों का। एक रोज मैंने चतुरी आदि के लिए चरस मँगवाकर अपने ही दरवाजे पर बैठक लगवायी। चतुरी उम्र में मेरे चाचाजी से कुछ ही छोटा होगा, कई घरों के लड़के-बच्चे समेत 'चरस-रसिक रघुपति-पद-नेहु' लोध आदि के सहयोग से मजीरेदार डफलियाँ लेकर वह रात आठ बजे आकर डट गया। कबीरदास, सूरदास, तुलसीदास, पलटूदास आदि ज्ञात-अज्ञात अनेकानेक सन्तों के भजन होने लगे। पहले मैं निर्गुण शब्द का केवल अर्थ लिया करता था, लोगों को 'निर्गुण पद है' कहकर संगीत की प्रशंसा करते हुए सुनकर हँसता था, अब गम्भीर हो जाया करता हूँ—जैसे उम्र की बाढ़ के साथ अक्ल बढ़ती है। मैं मचिया पर बैठकर भजन सुनने लगा। चतुरी आचार्य-कण्ठ से लोगों को भूले पदों की याद दिला दिया करता। मुझे मालूम हुआ, चतुरी कबीर-पदावली का विशेषज्ञ है। मुझसे उसने कहा, "काका, ये निर्गुण-पद बड़े-बड़े विद्वान नहीं समझते।" फिर शायद मुझे भी उन्हीं विद्वानों की कोटि में शुमारकर बोला, "इस पद का मतलब—" मैंने उतरे गले से बात काटकर उभड़ते हुए कहा, "चतुरी, आज गा लो, कल सुबह आकर मतलब समझाना। मतलब से गाने की तलब चली जायगी।" चतुरी खखारकर गम्भीर हो गया। फिर उसी तरह डिक्टेट करता रहा। बीच-बीच में ओजस्विता लाने के लिए चरस की पुट चलती रही। गाने में मुझे बड़ा आनन्द आया। ताल पर तालियाँ देकर मैंने भी सहयोग दिया। वे लोग ऊँचे दर्जे के उन गीतों का मतलब समझते थे, उनकी नीचता पर यह एक आश्चर्य मेरे साथ रहा। बहुत-से गाने आलंकारिक थे। वे उनका भी मतलब समझते थे। एक बजे रात तक मैं बैठा रहा। मुझे मालूम न था कि 'भगत' कराने के अर्थ रात-भर गँवाने के हैं। तब तक आधी चरस भी खत्म न हुई थी। नींद ने जोर मारा। मैंने चतुरी से चलने की आज्ञा माँगी। चरस की ओर देखते हुए उसने कहा, "काका, फिर कैसे काम बनेगा ?" मैंने कहा, "चतुरी, तुम्हारी काकी तो भगवान् के यहाँ चली गयीं, जानते ही हो—भोजन अपने हाथ पकाना पड़ता है, कोई दूसरा मदद के लिए है नहीं, जरा आराम न करेंगे, तो कल उठ न पायेंगे।" चतुरी नाराज होकर बोला, "तुम ब्याह करते ही नहीं, नहीं तो तेरह काकी आ जायँ, हाँ वैसी तो···।" मैंने कहा, "चतुरी, भगवान् की इच्छा।" दुखी हृदय से सहानुभूति दिखलाते हुए चतुरी ने कहा, "काकी बहुत पढ़ी-लिखी थीं। मैंने कई चिट्ठियाँ उनसे लिखवायी हैं।" फिर जलती हुई चिलम में दम लगाकर धुवाँ पीकर, सिर नीचे को ओर जोर से दबाकर, नाक से धुवाँ निकालकर बैठे गले से बोला, "काकी रोटी भी करती थीं, बर्तन भी मलती थीं और रोज रामायण भी पढ़ती थीं, बड़ा अच्छा गाती थीं काका, तुम वैसा नहीं गाते, बुढ़ऊ बाबा (मेरे चाचा) दरवाजे बैठते थे। भीतर काकी रामायण पढ़ती थीं। गजलें और न जाने क्या-क्या—टिल्लाना गाती थीं—क्यों काका ?" मैंने कहा, "हूँ; तुम लोग चतुरी गाओ, मैं दरवाजा बन्द करके सुनता हूँ।"

जगने तक भगत होती रही। फिर कब बन्द हुई, मालूम नहीं। जब आँख खुली, तब काफी दिन चढ़ आया था। मुँह धोकर दरवाजा खोला, चतुरी बैठा एकटक दरवाजे की ओर देख रहा था। कबीर-पदावली का अर्थ उससे किसी ने नहीं सुना। मैंने सुबह सुनने के लिए कहा था, वह आया हुआ है। मैंने कहा, "क्यों चतुरी, रात सोये नहीं ?" चतुरी सहज-गम्भीर मुद्रा से बोला, "सोकर जगे तो बड़ी देर हुई, बुलाने की वजह से आया हुआ हूँ।" जिनमें शक्ति होती है अवैतनिक शिक्षक वही हो सकते हैं। मैंने कहा, "मैं तैयार हूँ, पहले तुम कबीर साहब की कोई उलटवाँसी सीधी करो।" "कौन सुनाऊँ।" चतुरी ने कहा, "एक से एक बढ़कर हैं। मैं कबीरपन्थी हूँ न काका, जहाँ गिरह लगती है, साहब आप खोल देते हैं।" मैंने कहा, "तुम पहुँचे हुए हो, यह मुझे कल ही मालूम हो गया था।" चतुरी आँख मूँदकर शायद साहब का ध्यान करने लगा, फिर सस्वर एक पद गुनगुनाकर गाने लगा, फिर एक-एक कड़ी गाकर अर्थ समझाने लगा। उसके अर्थ में अनर्थ पैदा करना आनन्द खोना था, जब वह भाष्य पूरा कर चुका, जिस तरह के भाष्य से हिन्दीवालों पर 'कल्याण' के निरमिष लेखों का प्रभाव पड़ सकता है, मैंने कहा, "चतुरी, तुम पढ़े-लिखे होते, तो पाँच सौ की जगह पाते।" खुश होकर चतुरी बोला, "काका, कहो तो अर्जुनवा (चतुरी का सत्रह साल का लड़का) को पढ़ने के लिए भेज दिया करूँ, तुम्हारे पास पढ़ जायगा, तुम्हारी विद्या ले लेगा, मैं भी अपनी दे दूँगा, तो कहो भगवान् की इच्छा हो जाय तो कुछ हो जाय।" मैंने कहा, "भेज दिया करो। दिया घर से लेकर आया करे। हमारे पास एक ही लालटेन है, बहुत नजदीक घिसेगा, तो गाँववाले चौंकेंगे। आगे देखा जायगा। लेकिन गुरु-दक्षिणा हम रोज लेंगे। घबराओ मत। सिर्फ बाजार से हमारे लिए गोश्त ले आना होगा, और महीने में दो दिन चक्की से आटा पिसवा लाना होगा। इसकी मेहनत हम देंगे। बाजार तुम जाते ही हो।" चतुरी को इस सहयोग से बड़ी खुशी हुई। एक प्रसंग पर आने के विचार से मैंने कहा, "चतुरी, तुम्हारे जूते की बड़ी तारीफ है।" खुश होकर चतुरी बोला, "हाँ, काका, दो साल चलता है।" उसमें एक दर्द भी दबा था। दुखी होकर कहा, "काका, जमींदार के सिपाही को एक जोड़ा हर साल देना पड़ता है। एक जोड़ा भगतवा देता है, एक जोड़ा पंचमा। जब मेरा ही जोड़ा मजे में दो साल चलता है, तब ज्यादा लेकर कोई चमड़े की बरबादी क्यों करे ?" कहकर डबडबायी आँखों देखता हुआ जुड़े हाथों सेवईं-सी बटने लगा।

मुझे सहानुभूति के साथ हँसी आ गयी। मगर हँसी को होंठों से बाहर न आने दिया। सँभलकर स्नेह से कहा, "चतुरी, इसका वाजिब-उल-अर्ज में पता लगाना होगा। अगर तुम्हारा जूता देना दर्ज होगा, तो इसी तरह पुश्त-दर-पुश्त तुम्हें जूते देते रहने पड़ेंगे।"

चतुरी सोचकर मुस्कराया। बोला, "अब्दुल-अर्ज में दर्ज होगा, क्यों काका ?" मैंने कहा, "हुँ, देख लो, सिर्फ एक रुपया हक लगेगा।"

वक्त बहुत हो गया था। मुझे काम था। चतुरी को मैंने बिदा किया। वह गम्भीर होकर सिर हिलाता हुआ चला। मैं उसके मनोविकार पढ़ने लगा—'वह एक ऐसे जाल में फँसा है, जिसे वह काटना चाहता है, भीतर से उसका, पूरा जोर

उभड़ रहा है, पर एक कमजोरी है, जिसमें बार-बार उलझकर रह जाता है।'

अर्जुन का आना जारी हो गया। उन दिनों बाहर मुझे कोई काम न था, देहात में रहना पड़ा। गोश्त आने लगा। समय-समय पर लोध, पासी, धोबी और चमारों का ब्रह्मभोज भी चलता रहा। घृतपक्व मसालेदार मांस की खुशबू से जिसकी भी लार टपकी, आप निमन्त्रित होने को पूछा। इस तरह मेरा मकान साधारण जनों का अड्डा, बल्कि House of Commons हो गया। अर्जुन की पढ़ाई उत्तरोत्तर बढ़ चली। पहलेपहल जब 'दादा, मामा, काका, दादी, नानी' उसने सीखा, तो हर्ष में उसके माँ-बाप सम्राट्-पद पाये हुए को छापकर छलके। सब लोग आपस में कहने लगे, अब अर्जुनवा 'दादा-दीदी' पढ़ गया। अर्जुन अपने बाप चतुरी को दादा और माँ को दीदी कहता था। दूसरे दिन उसके बड़े भाई ने मुझसे शिकायत की। कहा, "बाबा अर्जुनवा और तो सब लिख-पढ़ लेता है, पर भैया नहीं लिखता।" मैंने समझाया कि किताब में 'दादा-दादी' से भैया की इज्जत बहुत ज्यादा है, 'भैया' तक पहुँचने में उसे दो महीने की देर होगी।

धीरे-धीरे आम पकने के दिन आये। अर्जुन अब दूसरी किताब समाप्त कर अपने खानदान में विशेष प्रतिष्ठित हो चला। कुछ नाजुक-मिजाज भी हो गया। मोटा काम न होता था। आम खिलाने के विचार से मैं अपने चिरंजीव को लिवा लाने के लिए ससुराल गया। तब उसकी उम्र 9-10 साल की होगी। सोम या चहर्रुम में पढ़ता था। मेरे यहाँ उसके मनोरंजन की चीज न थी। कोई स्त्री भी न थी, जिसके प्यार से वह बहला रहता। पर दो-चार दिन के बाद मैंने देखा, वह ऊबा नहीं, अर्जुन से उसकी गहरी दोस्ती हो गयी है। वह अर्जुन का काका लगता था, जैसे मैं अर्जुन के बाप का। यद्यपि अर्जुन उम्र में उससे पौने दो पट था, फिर भी पद और पढ़ाई में मेरे चिरंजीव बड़े थे, फिर यह ब्राह्मण के लड़के भी थे। अर्जुन को नयी और इतनी बड़ी उम्र में उतने छोटे से काका को श्रद्धा देते हुए प्रकृति के विरुद्ध दबना पड़ता था। इसका असर अर्जुन के स्वास्थ्य पर तीन ही चार दिन में प्रत्यक्ष हो चला। तब मुझे कुछ मालूम न था, अर्जुन शिकायत करता न था। मैं देखता था, जब मैं डाकखाना या बाहर गाँव से लौटता हूँ मेरे चिरंजीव अर्जुन के यहाँ होते हैं, या घर ही पर उसे घेरकर पढ़ाते रहते हैं। चमारों के टोले में गोस्वामीजी के इस कथन को 'मनहु मत्त गजपन निरखि सिंह किसोरहिं चोप' वह कई बार सार्थक करते देख पड़े। मैं ब्राह्मण-संस्कारों की सब बातों को समझ गया। पर उसे उपदेश क्या देता? चमार दबेंगे, ब्राह्मण दबायेंगे। दवा है, दोनों की जड़ें मार दी जायँ, पर यह सहज-साध्य नहीं। सोचकर चुप हो गया।

मैं अर्जुन को पढ़ाता था तो स्नेह देकर, उसे अपनी ही तरह का एक आदमी समझकर, उसके उच्चारण की त्रुटियों को पार करता हुआ। उसकी कमजोरियों की दरारें भविष्य में भर जायँगी, ऐसा विचार रखता था। इसलिए कहाँ-कहाँ उसमें प्रमाद है, यह मुझे याद भी न था। पर मेरे चिरंजीव ने चार ही दिन में अर्जुन की सारी कमजोरियों का पता लगा लिया, और समय-असमय उसे घर बुलाकर मेरी गैरहाजिरी में उन्हीं कमजोरियों के रास्ते उसकी जीभ को दौड़ाते

हुए अपना मनोरंजन करने लगे। मुझे बाद को मालूम हुआ।

सोमवार मियाँगंज के बाजार का दिन था। गोश्त के पैसे मैंने चतुरी को दे दिये थे। डाकखाना तब मगरायर था। वहाँ से बाजार नजदीक है। मैं डाकखाने से प्रबन्ध भेजने के लिए टिकट लेकर टहलता हुआ बाजार गया। चतुरी जूते की दूकान लिये बैठा था। मैंने कहा, "कालिका (धोबी) भैया आये हैं, चतुरी, हमारा गोश्त उनके हाथ भेज देना। तुम बाजार उठने पर जाओगे, देर होगी।" चतुरी ने कहा, "काका एक बात है, अर्जुनवा तुमसे कहते डरता है, मैं घर आकर कहूँगा, बुरा न मानना लड़कों की बातों का।" 'अच्छा' कहकर मैंने बहुत-कुछ सोच लिया। बकर-कसाई के सलाम का उत्तर देकर बादाम और ठण्डाई लेने के लिए बनियों की तरफ गया। बाजार में मुझे पहचाननेवाले न पहचाननेवालों को मेरी विशेषता से परिचित करा रहे थे। चारों ओर से आँखें उठी हुई थीं। तअज्जुब यह था कि अगर ऐसा आदमी है, तो मांस खाना-जैसा घृणित पाप क्यों करता है। मुझे क्षण-मात्र में यह सब समझ लेने का काफी अभ्यास हो गया था। गुरुमुख ब्राह्मण आदि मेरे घड़े का पानी छोड़ चुके थे। गाँव तथा पड़ोस के लड़के अपने-अपने पिता-पितामहों को समझा चुके थे कि 'बाबा (मैं) कहते हैं, मैं पानी-पाँडे थोड़े ही हूँ, जो ऐरे-गैरे नत्थू-खैरे सबको पानी पिलाता फिरूँ।' इससे लोग और नाराज हो गये थे। साहित्य की तरह समाज में भी दूर-दूर तक मेरी तारीफ फैल चुकी थी—विशेष रूप से जब एक दिन विलायत की टोरी-पार्टी की तारीफ करनेवाले, एक देहाती स्वामीजी को मैंने कबाब खाकर काबुल में प्रचार करनेवाले, रामचन्द्रजी के वक्त के, एक ऋषि की कथा सुनायी, और मुझसे सुनकर वहीं गाँव के ब्राह्मणों के सामने बीड़ी पीने के लिए प्रचार करके भी वह मुझे नीचा नहीं दिखा सके—उन दिनों भाग्यवश मिले हुए अपने आवारागर्द नौकर से बीड़ी लेकर, सबके सामने दिया-सलाई लगाकर मैंने समझा दिया कि तुम्हारे इस जूठे धुएँ से बढ़कर मेरे पास दूसरा महत्त्व नहीं।

मैं इन आश्चर्य की आँखों के भीतर बादाम और ठण्डाई लेकर ज़रा रीढ़ सीधी करने को हुआ कि एक बुड्ढे पण्डितजी एक देहाती भाई के साथ मेरी ओर बढ़ते नजर आये। मैंने सोचा, शायद कुछ उपदेश होगा। पण्डितजी सारी शिकायत पीकर, मधु-मुख हो अपने प्रदर्शक से बोले, "आप ही हैं?" उसने कहा, "हाँ, यह हैं।" पण्डितजी देखकर गद्‌गद हो गये। ठोड़ी उठाकर बोले, "ओहोहो! आप धन्य हैं।" मैंने मन में कहा—'नहीं, मैं वन्य हूँ। मजाक करता है खूसट।' पर गौर से उनका पग और खौर देखकर कहा, "प्रणाम करता हूँ पण्डितजी।" पण्डितजी मारे प्रेम के संज्ञा खो बैठे। मेरा प्रणाम मामूली प्रणाम नहीं—बड़े भाग्य से मिलता है। मैं खड़ा पण्डितजी को देखता रहा। पण्डितजी ने अपने देहाती साथी से पूछा, "आप बे-मे सब पास हैं?" उनका साथी अत्यन्त गम्भीर होकर बोला, "हाँ। जिला में दूसरा नहीं है।" होंठ काटकर मैंने कहा, "पण्डितजी, रास्ते में दो नाले और एक नदी पड़ती है। भेड़िए लागन हैं। डण्डा नहीं लाया। आज्ञा हो, तो चलूँ—शाम हो रही है।" पण्डितजी स्नेह से देखने लगे। जो शिकायत उन्होंने सुनी थी, आँखों में उस पर सन्देह था, दृष्टि कह रही थी—'यह वैसा नहीं—

जरूर गोश्त न खाता होगा, बीड़ी न पी होगी, लोग पाजी हैं।' प्रणाम करके, आशीर्वाद लेकर मैंने घर का रास्ता पकड़ा।

दरवाजे पर आकर रुक गया। भीतर बातचीत चल रही थी। प्रकाश कुछ-कुछ था। सूर्य डूब रहा था। मेरे पुत्र की आवाज आयी —"बोल रे, बोल।" इस वीर-रस का अर्थ मैं समझ गया। अर्जन बोलता हुआ हार चुका था, पर चिरंजीव को रस मिलने के कारण बुलाते हुए हार न हुई थी। चूंकि बार-बार बोलना पड़ता था, इसलिए अर्जुन बोलने से ऊबकर चुप था। डाँटकर पूछा गया, तो सिर्फ कहा, "क्या ?"

"वही—गुण, बोल।"

अर्जुन ने कहा, "गुण।"

बच्चे के अट्टहास से घर गूँज उठा। भरपेट हँसकर, स्थिर होकर फिर उसने आज्ञा की---"बोल—गणेश।"

रोनी आवाज में अर्जुन ने कहा, "गड़ेस।" खिलखिलाकर, हँसकर, चिरंजीव ने डाँटकर कहा, "गड़ेस-गड़ास करता है--साफ नहीं कह पाता क्यों रे, रोज दातौन करता है ?"

अर्जुन अप्रतिभ होकर, दबी आवाज में एक छोटी-सी 'हूँ' करके, सिर झुकाकर रह गया। मैं दरवाजा धीरे-से ढकेलकर भीतर खम्भे की आड़ से देख रहा था। मेरे चिरंजीव उसे उसी तरह देख रहे थे, जैसे गोरे कालों को देखते हैं। ज़रा देर चुप रहकर फिर आज्ञा की—"बोल, वर्ण।"

अर्जुन की जान की आ पड़ी। मुझे हँसी भी आयी, गुस्सा भी लगा। निश्चय हुआ, अब अर्जुन से विद्या का धनुष नहीं उठने का। अर्जुन वर्ण के उच्चारण में विवर्ण हो रहा था। तरह-तरह से मुँह बना रहा था। पर खुलकर कुछ कहता न था। उसके मुँह बनाने का आनन्द लेकर चिरंजीव ने फिर डाँटा—"बोलता है, या लगाऊँ झापड़। नहा लूंगा, गरमी तो है।"

मैंने सोचा, अब प्रकट होना चाहिए। मुझे देखकर अर्जुन खड़ा हो गया, आँखें मल-मलकर रोने लगा। मैंने पुत्र-रत्न से कहा, "कान पकड़कर उठो-बैठो दस दफे।" उसने नजर बदलकर कहा, "मेरा कुसूर कुछ नहीं और मैं यों ही कान पकड़कर उठूं-बैठूं !" मैंने कहा, "तुम इससे गुस्ताखी कर रहे थे।" उसने कहा, "तो आपने भी की होगी। इससे 'गुण' कहला दीजिए, आपने पढ़ाया तो है, इसकी किताब में लिखा है।" मैंने कहा, "तुम हँसते क्यों थे ?" उसने कहा, "क्या मैं जान-बूझकर हँसता था ?" मैंने कहा, "अब आज से तो तुम इससे बोल न सकोगे।" लड़के ने जवाब दिया, "मुझे मामा के यहाँ छोड़ आइए, यहाँ डाल के आम खट्टे होते हैं—चोपी होती है। मुँह फदक जाता है, वहाँ पाल के आम आते हैं।"

चिरंजीव को नाई के साथ भेजकर मैंने अर्जुन और चतुरी को सान्त्वना दी।

कुछ महीने और गाँव में रहना पड़ा। अर्जुन कुछ पढ़ गया। शहरों की हवा मैंने बहुत दिनों से न खायी थी—कलकत्ता, बनारस, प्रयाग आदि का सफर करते हुए लखनऊ में डेरा डाला—स्वीकृत किताबें छपवाने के विचार से। कुछ काम लखनऊ

में और मिल गया। अमीनाबाद होटल में एक कमरा लेकर निश्चिन्त चित्त से साहित्य-साधना करने लगा।

इन्हीं दिनों देश में आन्दोलन जोरों का चला—यही, जो चतुरी आदिक के कारण फिस्स हो गया है। होटल में रहकर, देहात से आनेवाले शहरी युवक मित्रों से सुना करता था, गढ़ाकोला में भी आन्दोलन जोरों पर है—छः-सात सौ तक की जोत किसान लोग इस्तीफा कर छोड चुके हैं—वह जमीन अभी तक नहीं उठी—किसान रोज इकट्ठे होकर झण्डा-गीत गाया करते हैं। साल-भर बाद, जब आन्दोलन में प्रतिक्रिया हुई, जमींदारों ने दावा करना और रियाया को बिना किसी रियायत के दबाना शुरू किया, तब गाँव के नेता मेरे पास मदद के लिए आये, बोले—"गाँव में चलकर लिखो। तुम रहोगे, तो मार न पड़ेगी, लोगों को हिम्मत रहेगी, अब सख्ती हो रही है।" मैंने कहा, "मैं कुछ पुलिस तो हूँ नहीं, जो तुम्हारी रक्षा करूँगा, फिर मार खाकर चुपचाप रहनेवाला धैर्य मुझमें बहुत थोड़ा है, कहीं ऐसा न हो कि शक्ति का दुरुपयोग हो।" गाँव के नेता ने कहा, "तुम्हें कुछ करना तो है नहीं, बस बैठे रहना है।" मैं गया।

मेरे गाँव की कांग्रेस ऐसी थी कि जिले के साथ उसका कोई तअल्लुक न था—किसी खाते में वहाँ के लोगों के नाम दर्ज न थे। पर काम में पुरवा-डिवीजन में उससे आगे दूसरा गाँव न था। मेरे जाने के बाद पता नहीं, कितनी दरख्वास्तें साहब ने इधर-उधर लिखीं।

कच्चे रंगों से रँगा तिरंगा झण्डा महावीर स्वामी के सामने एक बड़े बाँस में गड़ा, बारिश से धुलकर धवल हो रहा था। इन दिनों मुकद्दमेबाजी और तहकीकात जोरों से चल रही थी। कुछ किसानों पर एक साल के हरी-भूसे को तीन साल की बाकी बनाकर, जमींदार ने आनरेरी दावे दायर किये थे, जो अपनी क्षुद्रता के कारण जमींदार साहब से मजिस्ट्रेट के पास आकर किसानों की दृष्टि में और भयानक हो रहे थे। एक दिन दरख्वास्तों के फलस्वरूप शायद, दारोगाजी तहकीकात करने आये। मैं मगरायर डाक देखने जा रहा था। बाहर निकला तो लोगों ने कहा—"दारोगाजी आये हैं, अभी रहो।" आगे दारोगाजी भी मिल गये। जमींदार साहब ने मेरी तरफ दिखाकर अँगरेजी में धीरे से कुछ कहा। तब मैं कुछ दूर था, सुना नहीं। गाँववाले समझे नहीं, दारोगाजी झण्डे की तरफ जा रहे थे। जमींदार शायद उखड़वा देने के इरादे से लिये जा रहे थे। महावीरजी के अहाते में झण्डा देखकर दारोगा कुछ सोचने लगे, बोले, "यह तो मन्दिर का झण्डा है।" अच्छी तरह देखा, उसमें कोई रंग न देख पड़ा। जमींदार साहब को गौर से देखते हुए लौटकर डेरे की तरफ चले। जमींदार साहब ने बहुत समझाया कि 'वह बारिश से धुलकर सफेद हो गया है, लेकिन है यह कांग्रेस का झण्डा।' पर दारोगाजी बुद्धिमान थे।

महावीरजी के अहाते में सफेद झण्डे को उखड़वाकर वीरता प्रदर्शित करने की आज्ञा न दी। गाँव में कांग्रेस है, इसका पता न सब-डिवीजन में लगा, न जिले में, थानेदार साहब करें क्या?

उन दिनों मुझे उन्निद्र-रोग था। इसलिए सिर के बाल साफ थे। मैंने

सोचा—'वेश का अभाव है, तो भाषा को प्रभावशाली करना चाहिए, नहीं तो थानेदार साहब पर अच्छी छाप न पड़ेगी। वहाँ तो महावीर स्वामी की कृपा रही, यहाँ अपनी ही सरस्वती का सहारा है।' मैं ठेठ देहाती हो रहा था; थानेदार साहब ने मुझसे पूछा, "आप कांग्रेस में हैं?" मैंने सोचा, इस समय राष्ट्रभाषा से राजभाषा का महत्त्व बढ़कर होगा। कहा, "मैं तो विश्व-सभा का सदस्य हूँ। इस सभा का नाम भी थानेदार साहब ने न सुना था। पूछा, "यह कौन-सी सभा है!" उनके जिज्ञासा-भाव पर गम्भीर होकर नोबुल पुरस्कार पाये हुए कुछ लोगों के नाम गिनाकर मैंने कहा, "ये सब उसी सभा के सदस्य हैं।" थानेदार साहब क्या समझे, वह जानें। मुझसे पूछा, "इस गाँव में कांग्रेस है।" मैंने सोचा—'युधिष्ठिर की तरह सत्य की रक्षा करूँ तो असत्य भाषण का पाप न लगेगा।' कहा, "इस गाँव के लोग तो कांग्रेस का मतलब भी नहीं जानते।" इतना कहकर मैंने सोचा—'अब ज्यादा बातचीत ठीक न होगी।' उठकर खड़ा हो गया, और थानेदार साहब से कहा, "अच्छा, मैं चलता हूँ। जरा डाकखाने में काम है। चिट्ठीरसा हफ्ते में दो दिन गश्त पर आता है। मेरी जरूरी चिट्ठियाँ होती हैं और रजिस्ट्री, अखबार, मासिक पत्र-पत्रिकाएँ आती हैं, फिर उस गाँव में हम लोगों की लाइब्रेरी भी है, जान पड़ता है।" थानेदार साहब ने पूछा, "कांग्रेस की चिट्ठियाँ आती हैं?" मैंने कहा, "नहीं, मेरी अपनी।" मैं चला आया। थानेदार साहब जमींदार साहब से शायद नाराज होकर गये।

इससे तो बचाव हुआ, पर मुकद्दमा चलता रहा। आनरेरी मैजिस्ट्रेट ने, जिनके एक रिश्तेदार जमींदार की तरफ से वकील थे, किसानों पर जमींदार की डिगरी दे दी। बाद को चतुरी वगैरह की बारी आयी। दावे दायर हो गये, अब तक जो सम्मिलित धन मुकद्दमों में लग रहा था, सब खर्च हो गया। पहले की डिगरी में कुछ लोगों के बैल वगैरह नीलाम कर लिये गये। लोग घबरा गये। चतुरी को मदद की आशा न रही। गाँववालों ने चतुरी आदि के लिए दोबारा चन्दा न लगाया।

चतुरी सूखकर मेरे सामने आकर खड़ा हुआ। मैंने कहा, "चतुरी, मैं शक्ति-भर तुम्हारी मदद करूँगा।"

"तुम कहाँ तक मदद करोगे, काका?" चतुरी जैसे कुएँ में डूबता हुआ उभड़ा।

"तो तुम्हारा क्या इरादा है?" उसे देखते हुए मैंने पूछा।

"मुकद्दमा लड़ूँगा। पर गाँववाले डर गये हैं, गवाही न देंगे।" दिल से बैठा हुआ चतुरी बोला।

उस परिस्थिति पर मुझे भी निराशा हुई। उसी स्वर से मैंने पूछा, "फिर, चतुरी?"

चतुरी बोला, "फिर छेदनी-पिरकिया आदि मालिक ही ले लें।"

मैंने गाँव में कुछ पक्के गवाह ठीक कर दिये। सत्तू बाँधकर, रेल छोड़कर, पैदल दस कोस उन्नाव चलकर, दूसरी पेशी के बाद पैदल ही लौटकर हँसता हुआ चतुरी बोला, "काका, जूता और पुरवाली बात अब्दुल-अर्ज में दर्ज नहीं है।"

['सुधा', अर्धमासिक, लखनऊ, 16 मई, 1934। पहले **सखी** में, फिर **चतुरी चमार** में संकलित]

राजा साहब को ठेंगा दिखाया

लोग कहते हैं, ऐसा लिखा जाय कि एक मतलब हो, उसी वक्त समझ में आ जाय, अपढ़ लोग भी समझें। बात बहुत सीधी है। मुझे एक उदाहरण याद आया। लिखता हूँ। यह लिखा हुआ, उद्धृत नहीं, देखा हुआ है। तब तक आप लोग ठेंगा दिखाने का मुहावरा याद रक्खें।

बङ्गाल और उड़ीसा को जोड़नेवाली एक नहर है। रूपनारायण (नद) से काटकर कटक तक निकाली गयी है। यह केवल आबपाशी के लिए नहीं, इससे व्यवसाय भी होता है, बड़ी-बड़ी नावें चलती हैं।

इसके किनारे पद्मदल राजधानी है। राजा साहब के छोटे-छोटे स्टीमर, बोट, लांच, बजरे, किश्ती, डोंगी आदि राजधानी के पास चौड़ी की हुई नहर के एक तरफ बँधी रहती हैं।

जेठ का महीना, सूरज डूब रहा है। जोरों से बहती हुई मलय वायु में षोडशी का स्पर्श मिलता है। यह अकेली दक्षिणी हवा बङ्गाल की आधी कविता है। प्रासाद-शिखरों से सुनहली किरणें लिपटी हैं, उन्हीं के प्रेम की साँस जैसे दक्षिणी हवा में बह रही है। बड़े-बड़े तालाबों में श्वेत और रक्त कमल, खुले हुए अनुभव-जैसे, लोट रहे हैं। स्वच्छ, कीमती, चौड़ी किनारीवाली, बारीक, ठोस-बुनी, बंगला-ढंग से कोंछीदार शान्तिपुरी धोती, रेशमी शर्ट और सुनहरे स्लीपर पहने चश्मा लगाये राजा साहब नाव की सैर के लिए चले। रास्ते में तीन ड्योढ़ियाँ पड़ती हैं, हौदा-कसे हाथियों के निकलते आधी और ऊँची; रास्ते के दोनों तरफ बड़े-बड़े तालाब; साफ-सुथरे दूब जमाये पार्क; दोनों बगल बटम-पाम की कतारें; दूर के देशी बागीचों से बेला, जूही और कमलों की खुशबू आती हुई। पहली ड्योढ़ी में बैठे हुए राजा साहब के मुसाहब उनके आने पर कतार बाँधकर भक्ति-पूर्वक प्रणाम करके उद्दण्ड प्रसन्नता से साथ हो गये। अर्दली, सिपाही, खानसामे प्रासाद के साथ आये थे। पहली, दूसरी और तीसरी ड्योढ़ी के सिपाही क्रमशः किर्च निकाल-निकालकर राजा साहब को बायें रखकर दाहिने हाथ से सलामी देते गये। तीसरी ड्योढ़ी प्रासाद के अहाते को घेरनेवाली जलाशय चौड़ी खाई के किनारे है—खाई के ऊपर से पुल है।

राजा साहब निकलकर नहर-घाट की तरफ चले। स्टीमर, लांच, मोटर-बोट और देशी किश्तीवाले मुसलमान नौकर कप्तान और माझियों ने भी उसी प्रकार कतार बाँधकर सलाम किया। राजा साहब खुली छतवाली एक अँगरेजी कट की देशी किश्ती पर पतवार पकड़कर बैठ गये। पीछे-पीछे मनोरंजन के लिए पले पहलवान-जैसे मुसाहब आकर एक-एक तख्ते पर डाँड़ सँभालकर बैठे। माझी खड़े रहे। सिपाही और अर्दली नहर के किनारे-किनारे बोट के साथ दौड़ लगाकर रहने के लिए लाँग समेटने लगे। किश्ती चली, किनारे-किनारे सिपाही दौड़े।

डेढ़ मील के फासले पर शक्तिपुर नाम का एक बागी गाँव है। वहाँ विश्वम्भर भट्टाचार्य नाम का एक ब्राह्मण रहता है। राजा साहब कई रोज से किश्ती पर

हवाखोरी करते हैं, देखकर, सोच-विचारकर, लाँग चढ़ाकर, अपने गाँव के पास नहर के बाँध पर खड़ा विश्वम्भर राजा साहब की प्रतीक्षा कर रहा है।

सिपाही लोग दौड़कर कुछ ही दूर तक साथ रहते हैं, आठ-आठ दस-दस पट्ठों की डाँड़मारी किश्ती तीर-सी चलती है, तीन-चार फर्लांग के बाद सिपाहियों का दम खुल जाता है, किश्ती आगे निकल जाती है, वे पीछे-पीछे लट्ठ लिये दुलकी दौड़ते आते हैं।

जब शक्तिपुर के पास किश्ती पहुँची, तब सिपाही तीन-चार फर्लांग पीछे थे। विश्वम्भर राजा साहब की ताक में खड़ा ही था; जब किश्ती आती हुई सौ गज फासले पर रह गयी, तब उसने एक अद्भुत प्रकार की ध्वनि की, जिससे राजा साहब का ध्यान आकर्षित हो। राजा साहब को अपनी तरफ देखते हुए देखकर उसने हवा में उँगली से लिखकर राजा साहब की ओर कोंचा, फिर पेट खलाकर दोनों हाथों को मरोड़ा, फिर दाहने हाथ से मुँह थपथपाया, फिर दोनों हाथों के ठेंगे हिलाकर राजा साहब को दिखाया।

राजा साहब देख रहे थे। डाँड़ धीमे कर देने को कहा। फिरकर देखा, सिपाही दूर थे। किश्ती धीरे-धीरे चलती गयी। विश्वम्भर पीछे-पीछे दोनों हाथों से पेट दिखाता, ठेंगे हिलाता दौड़ा। राजा साहब जब सिपाहियों को फिरकर देखते थे, तब पहले विश्वम्भर ठेंगे हिलाता हुआ देख पड़ता था। बाँध पर और भी आ-जा रहे थे। कुछ भले आदमी हवाखोरी को निकले हुए मुस्कुरा रहे थे। किश्ती की चाल धीमी देखकर सिपाहियों ने जल्दी की। नजदीक आकर एक अनजाने को बेअदबी करते देखकर राजा साहब की तरफ देखा। राजा साहब ने इशारे से सिर हिलाया। सिपाही विश्वम्भर को पकड़कर प्रहार करने लगे। किश्ती लौट चली।

सिपाहियों ने आते हुए विश्वम्भर की मुद्राएँ देखी थीं, जिनका अर्थ समझने में उन्हें देर नहीं हुई। उसे मारते हुए कहने लगे, "क्यों रे···हमारे महाराज रियाया की जबान बन्द करते हैं?—पेट भी मारते हैं?—ठेंगा दिखाता है हमारे महाराज को, इतना भी नहीं समझता?"

विश्वम्भर को पीटकर दोनों गदोरी और उँगलियाँ कुचलकर सिपाही चले गये। खबर विश्वम्भर के घर पहुँची। उसकी पत्नी, सत्रह साल की विधवा बेटी और दो (नौ और पाँच साल के) छोटे लड़के फटे कपड़े पहने, रोते हुए बाँध पर पहुँचे। गाँव के और लोग भी गये। विश्वम्भर को सँभालकर उठा लाये। खाट पर लिटा दिया। गर्म हल्दी-चूना लगाने लगे। राजा साहब के जासूस छद्मवेश से पता लगाते रहे।

गाँव के कुछ भलेमानस गर्म पड़े। पर कुछ कर न सके। राजा साहब का प्रताप बड़ा प्रबल है। उनके विरोध में कुछ करने की अपेक्षा विश्वम्भर के समर्थन में कुछ करना अच्छा है, यह सोचकर उसी की सेवा करने लगे।

विश्वम्भर बड़ा सीधा, सच्चा ब्राह्मण है। विशेष पढ़ा-लिखा नहीं, किसी तरह पूजा कर लेता था। शक्तिपुर से तीन कोस दूर रंगनगर में राज्य की विशालाक्षी देवी हैं। विश्वम्भर इनका पूजक है। तीन रुपया महीना और रोज पूजा के लिए तीन पाव चावल और चार केले पाता है। घर में पाँच आदमी खाने-

वाले हैं। बड़े दुःख के दिन होते हैं। इधर बीस महीने से उसे वेतन नहीं मिलता। केवल तीन पाव चावल का सहारा रहा। कुछ और काम वह, उसकी पत्नी और बेटी, तीनों अलग-अलग कर लेते थे। फिर भी पेट-भर को न होता था। विश्वम्भर ने तनख्वाह के लिए इधर साल-भर में दो दर्जन से ज्यादा दरख्वास्तें दी थीं, पर सुनवाई नहीं हुई। इस बार प्राणों की भाषा में उसने अपने भाव प्रकट किये थे—हवा में लिखकर, कोंचकर बताया था, तुम्हें लिख चुका हूँ, पेट मलकर कहा था, भूखों मर रहा हूँ; मुँह थपथपाकर और ठेंगे हिलाकर बतलाया था, खाने को कुछ नहीं है। उतने प्रकाश में, इतनी स्पष्ट भाषा से समझाया था, पर राजा साहब ने अपमान समझा। सिपाहियों ने दूसरे अर्थ लगाये।

जासूसों ने राजा साहब को समझाया कि शक्तिपुर के बागी विश्वम्भर से मिले हैं, उन्होंने उसे बेवकूफ जानकर महाराज का उससे अपमान कराया। विश्वम्भर सरकार की नौकरी का ख्याल छोड़कर बागियों से मिला है। जासूसों ने इस प्रकार अपनी रोटियों का प्रबन्ध किया।

कुछ दिनों बाद, घाव पुरने पर स्टेट की तरफ से विश्वम्भर को आज्ञा-पत्र मिला, "अब तुम्हारी नौकरी की सरकार को आवश्यकता नहीं रही।"

['सुधा', अर्धमासिक, लखनऊ, 1 जुलाई, 1934। पहले **सखी** में, फिर **चतुरी चमार** में संकलित]

सफलता

जो हवा दिए के जलते रहने की वजह है, वह दिए को बुझा भी देती है। आभा के सस्नेह अकलुष प्राणों के पावन प्रदीप को पति की जिस निश्चल समीर ने साल-भर तक जला रक्खा था, वह साल-भर से उसे बुझाकर, उसकी पृथ्वी से दूर, अन्तरिक्ष की ओर तिरोहित हो गयी है। साल-भर ही में सुहाग का काजल उस दीपक-प्रकाश के ऊपर, रत्नार आँखों में प्रिय-दर्शन के अंजन-रूप नहीं रह गया। आभा आज की शरद् की तरह अपनी सारी रंगीनियों को धोकर शुभ्र हो रही है—श्वेत शेफाली-सी रँगे प्रभात के रश्मि-पात्र-मात्र से वृंतच्युत—जैसे केवल देवार्चन के लिए चुनी हुई। पर, प्राणों के नीचे, डण्ठल में, जो रंग लाया हुआ है, वह तो शरद् का नहीं—बसन्त का है। उसी के ऊपर बसन्त के बादवाले महीनों के ये दल जैसे शरद् की आभा से शुभ्र हो रहे हैं। लालसा-चपल क्या कोई उस पूर्ण विकसित स्खलित शेफालिकाराशि को केसरिए सुगन्ध रंग से अपनी बसन्त की पाग रँगने के लिए वृक्ष के नीचे से चुपचाप चुन ले जायगा? हाय, यह वह सत्य शेफालिका तो नहीं! यह तो केवल देव-चरणों पर चढ़ने के लिए है—

माला होकर हृदय पर या रंग बनकर आँखों पर चढ़ने के लिए नहीं। तभी आभा गाँव के किनारे धुले धवल शिवालय में देवता-पदों पर प्रत्यह पुष्प-स्वरूप अर्पित होने के लिए जाती है। उसके भीतर हृदय का दीप तो गुल हो चुका है, पर, बाहर अन्ध मन्दिर-हृदय का दीप वह जला आती है।

यशस्वी साहित्यिक नरेन्द्र ने उधर से जाते हुए, दीपक जलाकर देवता को प्रणाम करते समय कई बार आभा का दिव्य मुख और विशाल आँखों की सकरुण दृष्टि देखी। कई शुभ सान्ध्य क्षण उसे कारुण्य से ओतप्रोत कर चुके—उसके हृदय में सहानुभूति का तैल संचित हुआ; वेदना की वर्तिका में समाज की कुप्रथा की आग—उसके हृदय का दीप जला।

यह प्रकाश कई बार, रास्ते में, मन्दिर की सीढ़ियों पर, आभा के म्लान मुख पर पड़ा, प्रतिफलित हुआ। आभा के अन्तःपुर की रूपसी ने अन्तःपुर में उसे उतने ही निकट सम्बन्ध से पहचाना, जितने दूर व्यवहार से आभा धारा से दूर हो गयी थी।

हाय रे जीवन! कितने आवर्तों से तू प्रवाहित होता है। जिन कारणों से आभा पथ्वी से छुटी थी, वे ही उसे नरेन्द्र के साथ लपेटने लगे। मन से वह नरेन्द्र की दृष्टि की तरह उसके नजदीक हो गयी। वह आज एकान्त में नरेन्द्र से पूछना चाहती है—इस संसार-दुख से मुक्ति पाने का कौन-सा मार्ग है। वह विद्वान् होकर उसे वंचित न करेगा—न, वह धोखा नहीं दे सकता—उसकी आँखें इसका विशद साक्ष्य देती हैं, फिर वह भी तो उसी की तरह विधुर है—जानता है व्यर्थ स्नेह कितना दुःखद, कितना कठोर है। होगा कि स्त्री न होने के कारण वह इतना दुःख, इतना अपमान न पा रहा हो; पर स्त्री न होने के कारण कभी उसने कल्पना तो की होगी कि उसके न रहने पर उसकी स्त्री को क्या होगा। आभा का हृदय भर आया।

पर, आज-आज करके कई आज पार कर चुकी। नरेन्द्र आज मिला। वह सोपान-सोपान उतर रही थी, नरेन्द्र चढ़ रहा था। बहुत कुछ कहना चाहा था, पर कुछ भी कह न सकी। कितना हृदय धड़का। चुपचाप खड़ी रही। नरेन्द्र ऊपर चला गया।

नरेन्द्र बीसवीं सदी का मनुष्य है। वह न कर सके, ऐसा कोई काम नहीं, ऐसा कुछ किया भी नहीं। वह तन के धर्म और अधर्म को पार कर दूर निकल गया है, पर मन में धर्म से श्रद्धा और अधर्म से घृणा करता है। वह भौंरे की तरह खुली कली पर नहीं बैठा, पर भौंरे की तरह कलियों का यश बहुत गा चुका है, उनके चारों ओर बहुत मँडलाया। उसकी कल्पना में आभा उतने रंग भर चुकी है जितने किरण भरती है—फूलों में, पहाड़ पर, बादलों में, दिशाकाश में, तरह-तरह के सुघर विचारों में। पर आभा को वरण करने की कोई शहजोरी भी उसमें पैदा हुई, ऐसा लक्षण नहीं देख पड़ा। सोचा जरूर, पर उठे सिर का झुक जाना देखा और डरा।

त्यों-त्यों आभा दृढ़ होती गयी। उसकी धड़कन जाती रही। चुपचाप स्नेह का एक लेख नरेन्द्र के स्मरण-मात्र से लगने लगा। लाज फिर भी रही। एक रोज

उसी तरह एकान्त मिला। कण्ठ की देवी कण्ठ में निर्भय बैठी रही। शब्द जैसे आप बनकर, तुले हुए निकले, "मुझे संसार में बड़ा दुख है।"

"दुख को देवता समझो।" नरेन्द्र ने जैसे लेख की एक पंक्ति लिखी।

आभा का सारा दुख जैसे एक साथ वाष्प बन गया—उस महाशक्ति का धड़का हुआ, "अर्थात् राक्षस को देवता मानूं ?"

नरेन्द्र काँप उठा। क्यों डरा, न समझा। आभा ने फिर कहा, "केवल दुख नहीं सहा जाता। रोज का अपमान भार हो जाता है।"

धड़कन के बाद भाव स्पष्ट हुआ। नरेन्द्र ने सोचा, यह भागना चाहती है। कृत्रिम गले से बोला, "धैर्य रक्खो !"

एक बार आभा ने अच्छी तरह नरेन्द्र को देखा। खुलकर बोली, "आपको लोग बहुत बड़ा विद्वान् कहते हैं—पर मैं क्या समझूँ, पर बड़े भी छोटों को नहीं समझ पाते।"

नरेन्द्र ने फिर कहा, "धैर्य रक्खो।"

सिर झुकाकर आभा ने उत्तर दिया, "अच्छा।"

आभा की इच्छा निकल जाने की न थी, न किसी विषय-वासना से वह खिंची थी। नरेन्द्र की तरफ उसके भाव ने उसे खींचा, और स्त्रियों की अवहेलना, अवज्ञा, जीती हुई एक प्रतिमा को मृत प्रेम से भी भयंकर—इतर पशु से भी तुच्छ समझनेवाली धारणा और व्यवहार ने उसे धकेला था। वह विद्वान् आचार्य से शिष्या की तरह मुक्ति की शिक्षा लेने गयी थी, बस। हृदय में जो भाव नरेन्द्र की प्रीतिवाले, कुछ काल के लिए उसे एक आवेश में भुला रखते थे, वे इतने पूर्ण थे कि उनसे अधिक की कामना वह कहकर नहीं कर सकती थी, करना सीखा भी न था। मुक्ति का पथ परिष्कृत होने पर वह हृदय की तुला पर तोलकर अवश्य देखती कि वह कितना प्रशस्त और कितना पवित्र है, तब आगे पैर बढ़ाती, तो बढ़ाती। यदि विद्वान् की बतलायी राह में उसे वैसा ही लांछन और अपमान देख पड़ता, जैसा वह घर में देख रही थी, तो घर और बाहर, दोनों के रास्तों को पार कर जाने का गौरव प्राप्त करती। विद्वान् नरेन्द्र— सहृदय नरेन्द्र की 'धैर्य रक्खो' यह उक्ति उस दुख के प्रवाह में हृदय से लगा रखने के लिए एक उतराती कुछ भार सँभालनेवाली लकड़ी हुई। धैर्य रखकर भविष्य में सत्य-निर्देश पाने की कल्पना लिये वह घर जाकर चुपचाप पहले के अपमान सहने लगी।

इधर नरेन्द्र ने सोचा, वह उसके साथ निकल जाने को एक पर से तैयार थी। नरेन्द्र को बड़ी घृणा हुई। कुछ आत्मप्रसाद भी हुआ कि उसकी धैर्य रखने की सलाह उसे मंजूर हुई। नरेन्द्र गाँव में रह रहा था, अधिक दिनों तक रहने की गुंजाइश न थी; कारण, वृत्ति लिखायी थी, जो घर बैठे मनिआर्डर द्वारा काम आती थी; शहर में रहकर आर्डर पूरे करने पड़ते थे; तब पेट-भर को कहीं होता। पेट भी दो-चार नहीं, सिर्फ एक। नरेन्द्र को इस दुर्दशा की चिन्ता न थी। कारण, वह साहित्य का सुधार कर रहा था। आदर्शवाद को साहित्य में दर्शाकर तब वह दम लेता था—उसके लेख और पुस्तकें प्रमाण हैं। बीसवीं सदी की समस्त

विचारधाराएँ उसकी धरा से बह चुकी थीं, पर जो कुछ उसने धारण किया था, वह था मनुष्य-धर्म, जिसे अँगरेजी में 'Religion of man' नये स्वरपात से, जोर देकर कहते हैं। इसमें भूत, वर्तमान और भविष्य के सब धर्म वह धर देता था।

अस्तु, नरेन्द्र घर से कलकत्ते के लिए रवाना हुआ। रास्ते में कानपुर, लखनऊ, प्रयाग, काशी, पटना, गया होता गया। मित्रों से और प्रकाशकों से मिलकर साहित्य तथा बाजार के हाव-भाव समझता रहा। 'आरती' के प्रकाशक ने कहा, "हमारे यहाँ 8) फार्म से अधिक मौलिक पुस्तक के लिए देने का नियम नहीं, रुपया पुस्तक प्रकाशित होने के तीन महीने बाद से दिया जाना शुरू होता है।" सम्पादक ने कहा, "हम कोई लेख बिना पुरस्कार का नहीं छापते, अवश्य नये लेखकों को 2) रुपये ही प्रति लेख देने का नियम है, पर आपको हम 1॥) पृष्ठ देंगे।" फिर बड़ी सहृदयता से बोले, "इससे अधिक 'आरती' दे नहीं सकती।" सम्पादक को लेख देने का वादा कर प्रकाशक से नरेन्द्र ने कहा, "आप लोग पुस्तकें बेचने के विचार से 50 और 60 प्रतिशत कमीशन बेचनेवाले को देते हैं—यह आपकी साहित्य-सेवा नहीं, अर्थ-सेवा हुई। यदि लेखकों को अधिक देने लगें, तो किताबें अच्छी-अच्छी लिखी जायँ, और साहित्य का उद्धार भी हो।" प्रकाशक ने आँखें मूँदकर कहा, "साहित्य का उद्धार हम आपसे ज्यादा समझते हैं।" इस प्रकार अड़ता-छूटता नरेन्द्र कलकत्ता गया। वहाँ बीसवीं सदी-पुस्तक-एजेंसी में 6) फार्म का बंगला के रद्दी उपन्यासों के अनुवाद का काम मिला। कुछ करना ही था। काम लेकर, एक रोज निश्चित होकर जॉन बाजार-लाइब्रेरी में बैठा मासिक पत्र-पत्रिकाएँ देख रहा था। अँगरेजी, बंगला, हिन्दी, गुजराती, उर्दू, मराठी सभी भाषाओं में एक विशेष आदर-भाव देखा--सिनेमा स्टारों के सभी स्टोर हो रहे थे। देख-भालकर नरेन्द्र डेरे पर लौटा।

बीसवीं सदी पुस्तक एजेंसी का अनुवाद शुरू तो किया, पर हाथ बन्द हो गया। बार-बार आँखों के सामने सिनेमा के सितारे चमकने लगे। साथ मन सोचने लगा—'यह अनुवाद का काम भी क्यों? इससे किस आदर्श की पुष्टि होती है? अर्थ मुझे भी तो चाहिए। बड़ा अर्थ अगर लोग नहीं लेते, तो जो लोग लेते हैं, उसे ही बढ़ाओ।' साथ-साथ, जो सफल हुए थे, सामने आने लगे। फिर दीन हिन्दी के लेखकों की सूरत आयी। उसका मित्र स्नेहशरण एक सर्वश्रेष्ठ गद्य-लेखक है, पर कदाचित् सबसे बड़ा दरिद्र और उपेक्षित। उसका भाव, जो अब तक उसे बड़ा बनाये हुए, दिन-रात उसे छोटा करता जा रहा था, सामने आया। देखकर उसे बड़ी घृणा हुई। कितने प्रकाशक उसका अपमान कर चुके हैं, कोई-कोई आफिस से भी निकाल चुके हैं, पर बराबर वह अपने नाम को मरता रहा, जो वास्तव में अपमान था। उसे नामी कहकर, कहाकर किसी शाप ने उसे ऊँचे शासन से गिरने का धोखा दिया है। जो नाम स्वरूप श्रेष्ठ वैभव का भोक्ता हो, वह कौड़ी-कौड़ी का मोहताज भी रहे, ऐसा हो नहीं सकता; छोटे वैभव उसके पास जरूर होंगे, या वह चाहता न होगा। याद आया, छोटे वैभवों की उसने पर-वाह कब की; इसलिए छोटों ने उसे बराबर धोखा दिया—नीचा दिखाया और

अन्त में आज यह प्रमाण भी दे रहे हैं कि वे छोटे उससे कितने बड़े हैं—उनके बिना उसका जीवन कितना अधूरा, कितना छोटा है !

नरेन्द्र ने अनुवाद बन्द कर दिया। सोचने लगा, किस प्रकार छोटा होकर वह बड़ा होगा। उसी क्षण आँखों के सामने यह सोलह सालवाली साक्षात् आभा अपने पूर्ण यौवन में उभरी स्वर्ग की अप्सरा-सी झलमलाने लगी। वह मधुर ध्वनि याद आयी। वह 'अच्छा' प्राणों में घुलकर अमृत बन गया।

तरंग के तृण की तरह अब नरेन्द्र अपने सोचे हुए विचारों में नहीं बह रहा—एक दूसरी विचारधारा उसे बहाये लिये जा रही है। जो सचाई आज तक दूसरों को रास्ता बताने में लगी थी, उसने आज अपना रास्ता पहचाना। एकाएक नरेन्द्र जैसे रात के शुभादर्श स्वप्न से जगकर दिन के प्रकाश में आया, जहाँ सबकुछ खुला हुआ है।

बक्स खोलकर रुपये गिने—लौटने का खर्च था।

गाँव में खबर उड़ी—नरेन्द्र बाबू ने आवारगी पर कमर कस ली—बाप-दादे का नाम मिटा दिया। घर-द्वार, जर-जमीन, जो कुछ था, बेच डाला—पाप कहीं छिपता है ? अब वह चेहरा ही नहीं रहा। आभा ने भी सुना। आँखों में गुनकर चुप हो गयी।

शाम को समय पर, नरेन्द्र मन्दिर में गया। जैसे ही दीपक जला, वैसे ही मुख प्रकाश में ज्योतित हुआ। उतरने के वक्त उसी तरह चढ़ता हुआ मिला, आभा उसी तरह खड़ी हो गयी।

"आभा, मैंने रास्ता ठीक कर लिया है।" यह आचार्य का कण्ठ न था, एक घनिष्ठ मित्र का था, जिसकी ध्वनि प्राणों में बहुत निकट पहुँचती है।

आभा ने सुना, और तोलकर देखा, यह स्वर वहीं पहुँचा है, जहाँ कभी आँखों की सहानुभूति से स्नेह पहुँचा था। इसमें उपदेश की गुरुता नहीं, मनुष्य के प्रति मनुष्य का समभाव है। वीणा स्वर से झंकृत हुआ, "क्या है वह रास्ता ?"

"तुम्हारे और मेरे जीवन से बँधकर बिल्कुल एक नया, जिससे आगे और लोग आयँगे, मनुष्य के लिए मनुष्य होने को।"

आभा ने नरेन्द्र को देखा, फिर निगाह फेरकर दीपक-प्रकाश में श्वेत शिव को देखने लगी। प्राणों में कैसी गुदगुदी हुई। बोली, "आप मुझे भगाना चाहते हैं ?"

"नहीं।" नरेन्द्र का कण्ठ बिल्कुल स्थिर था।

आभा ने फिर नरेन्द्र को देखा, "गाँववाले आपको आवारा कहते हैं।" कण्ठ में सहानुभूति बज उठी।

"यह भ्रम गाँववालों को बराबर रहेगा।" नरेन्द्र की आँखों से बिजली निकल रही थी।

"मेरे लिए आपकी जैसी आज्ञा हो—"

"हाँ, मैं तुम्हें वही अधिकार लेने के लिए कहता हूँ, जो तुमसे छिन चुका है।"

अज्ञात आँखों से आभा ने देखा।

"जिस दुनिया ने तुम्हें छोटी, अधम, भाग्य से रहित कहा, क्या उसे तुम नहीं समझाना चाहती कि तुम बहुत बड़ी – बहुत बड़ी, भाग्य से भरी हुई हो।"

"ऐसा तो अब क्या होगा ?"

"होगा आभा। वही रास्ता देखकर मैं आ रहा हूँ। विश्वास करो, और आज से दुनिया को ठोकर मार दो—इसे जो जितनी ठोकरें लगा सका, इसकी आँखों में वह उतना ही बड़ा हुआ—उतना ही इसने उसके पैर पकड़े।"

ध्वनि जैसी होती है, प्रतिध्वनि भी वैसी ही होती है। आभा इस सम्पूर्ण शक्ति को भरकर एक दूसरे रूप में बदल गयी। तन्मय खड़ी सुनती रही—

"वह संसार तुम्हारे लिए जैसा था, मेरे लिए भी वैसा ही था। तुम दुख को समझती थीं, मैं न समझ पाता था या समझकर भी न समझता था। अब हमें इस संसार को वैसे ही दुख के भीतर से उचित शिक्षा देनी है।"

आभा की आँखें, हृदय, वह सम्पूर्ण निश्चलता कह रही थी —'यह ठीक कह रहे हैं।'

नरेन्द्र ने आभा को देखा, फिर देखा —यह निगाह बदल चुकी थी, जो झुकती है। यह वह निगाह है, जो धूप की तरह लोगों को उठाती हुई उठ जाती है— फिर पृथ्वी पर नहीं झुकती। आभा हृदय से इतना कभी नहीं उठी।

'यह', नरेन्द्र ने मन में कहा—'यह आभा है।' खुलकर बोला, "आभा, चलो; मेरे घर में बहुत दिनों से अँधेरा है; उसमें प्रकाश भर दो। मैंने तुम्हारी शिक्षा के लिए जायदाद बेची है।"

होश में आते ही हृदय हिल उठा। आँखों में शंका आयी, "आपको लोग क्या कहेंगे ?"

"मुझे कुछ नहीं कह सकते; अब अपनी-अपनी किस्मत को रोयेंगे, जिसे किसी तरह वे फूटा नहीं समझ पाये —थाने जायेंगे, दारोगा के आगे-पीछे दुम हिलायेंगे --कुत्तों की तरह भौंकेंगे, पर कुछ कर नहीं सकते। सामने आकर काटना देशी कुत्ते जानते नहीं। मैं मुँह पर विलायती ठोकरें लगाना सीख चुका हूँ, तुम्हें भी सिखाना चाहता हूँ। आओ --"

नरेन्द्र आगे-आगे था; इस दृढ़ता को सर्वस्व सौंपकर आभा पीछे-पीछे चली। बारहदरी की बगल में तीन आदमी खड़े थे, इनके आने से ये पहले ही चल दिये। नरेन्द्र ने देखा, पर उपेक्षा में भरकर रह गया। आभा ने देखा, मन में कहा —'ये वे ही हैं, जिन्हें रोज देखती और रोज समझती थी।'

द्वार खोलकर, दीपक जलाकर नरेन्द्र ने कहा, "आभा, अभी हमें कुछ रोज यहाँ रहना होगा। गाँववालों को बता जाना है कि हम भागनेवाले नहीं थे—तुम्हें, भगानेवाला रास्ता बतलानेवाले थे।"

आभा प्रकाश में मुस्कुरा दी।

दूसरे दिन से कई दिनों तक लगातार नरेन्द्र को देख-देखकर गाँववालों ने घृणा से अपना ही सिर झुका-झुका लिया, और घर-घर राय कायम हो गयी कि आभा के बाप की नाक कट गयी। कीच पर ढेले चलाने से छींटे अपने ऊपर आयेंगे, यह

समझाकर वयोवृद्धों ने आभा के घरवालों को थाने जाने से रोका।

इस तरह की अनेक अड़चनों को आसानी से पार कर नरेन्द्र आभा को लेकर साल-भर से दिल्ली में है। आने के साथ ही, अपनी और आभा की एक साथ उतरवायी तस्वीर, ब्याह के सूक्ष्म स्वतन्त्र ब्यौरे से मासिक तथा साप्ताहिकों के सम्पादकों के पास भेज दी। 'भारत' तथा स्त्री-जाति के उद्धार कल्प से सम्पादकों की लिखी ओजस्विनी टिप्पणियों के साथ दोनों का सुन्दर चित्र प्रकाशित हुआ। छोटे-छोटे पत्रवालों ने ब्लाक मँगा-मँगाकर और ऊँची आवाज लगायी। आभा तस्वीरें देख-देख, तारीफ पढ़-पढ़कर मुस्कुराती रही।

घर पर उस्तादों को बुलाकर नरेन्द्र आभा को नृत्य-गीत की शिक्षा दिलवाने लगा --इसको भी एक साल हो चुका। अक्षर-विज्ञान का खुद शिक्षक बना। साल-भर में आभा अच्छी तरह हिन्दी और उर्दू समझ लेने लगी है। बुद्धि में इतनी बढ़ गयी है, जैसे कई साल से तालीम पा रही हो। जैसा सुरीला, कोमल गला उसका था, स्टेज पर उतारने पर दर्शक ताँगेवालों और प्रशंसक पत्रवालों में उसके उतर जाने की नरेन्द्र को शंका न हुई।

आभा का बड़े-बड़े चित्रों, पोस्टरों, दैनिक, साप्ताहिक, मासिक पत्रों में बड़ा विज्ञापन हुआ। 'लीडर' में विज्ञापन के दाम अग्रिम भेजकर नरेन्द्र ने सम्पादकीय कालम में तारीफ छापने का अनुरोध किया। लोगों की तो आज भी बँधी धारणा है कि आँखें मूँदने पर ज्यादा देख पड़ता है। फलतः सम्पादक के कलम ने कालम-के-कालम रँग डाले। आभा उतरी भी। और, दर्शकों का क्या कहना, सहृदय तारीफ के बोझ से औंधे हो गये। स्त्रियों की पत्रिका 'पतिव्रता' ने लिखा, 'हमारी देवियों को इस : बढ़कर दूसरा आदर्श नहीं मिल सकता कि पति और पत्नी सम्मिलित रूप से कला की सेवा में लगें।' साहित्यिक पत्रों ने लिखा, 'नरेन्द्रजी प्रतिभाशाली तो पहले से थे, परन्तु अब वह विशेष रूप से राष्ट्र-भाषा को समुन्नत कर रहे हैं। दिल्ली में उनका अर्धनारीश्वर नाटक बड़ी सफलता से खेला गया, जिसमें पति-पत्नी दोनों उतरे।' यह पिछड़े हुए हिन्दीवालों को पढ़ने की उचित शिक्षा इस धन्यवादार्ह दम्पति ने दी। तीन साल में आभा और नरेन्द्र का भारत के कोने-कोने में नाम और बङ्क-बङ्क में रुपया हो गया। नरेन्द्र ने एक आश्वासन की साँस ली।

अपना 'सुभद्रार्जुन' नया नाटक शहर-शहर चलकर दिखाने के अभिप्राय से नरेन्द्र ने प्रोग्राम बनाना और विज्ञापन करना शुरू किया। कानपुर, लखनऊ, प्रयाग, काशी आदि शहरों से क्रमशः कलकत्ते तक का निश्चय हुआ। केवल काशी के लिए ज़रा सन्देह रहा। स्टेज के मालिक ने किराये पर स्टेज न देकर कमीशन पर देने की बात लिखी।

कम्पनी चली, साथ-साथ पत्रों में सुभद्रा की भूमिका में आभादेवी की आभा-सी तारीफ! प्रोग्राम बदल देना पड़ा। निश्चित दिनों से अधिक दिन लोगों को तृप्त करने में लगते रहे। सरकारी अफसर चलने में सबसे पहले बाधक होते थे। पत्रों की विपुल प्रशंसा और नागरिकों की ऊर्ध्व-कण्ठ प्रतीक्षा को लिये कम्पनी काशी आयी।

'आरती' के प्रकाशक ने पुस्तकों की बदौलत आज के सिनेमा-साहित्य के उद्धार के विचार से अपनी एक रंगशाला बनवायी है, जिसका नाम भारतीय भावों से, काशी के एक कलाकार से सलाह लेकर 'पवित्रा' रक्खा है। इस स्टेज में नाटक भी खेला जाता है। इन्हीं से नरेन्द्र की शर्तें तय न हुई थीं।

कम्पनी के काशी पहुँचने पर 'पवित्रा' के मालिक स्वयं नरेन्द्र से मिले। पुरानी पहचान थी ही। बड़ा सम्मान-प्रदर्शन किया। नरेन्द्र ने कहा, "आपसे भाड़े का स्टेज नहीं मिला, अतः लाचार होकर मुझे दूसरा प्रबन्ध करना पड़ेगा।" नम्र भाव से मुस्कुराते हुए 'पवित्रा' के मालिक ने कहा, "पवित्रा आप ही की है। आप कुछ भी न दें।"

नरेन्द्र ने कहा, "नहीं, ऐसी तो कोई बात है नहीं, आप अगर लेना चाहें।"

वैसा ही नम्र उत्तर आया, "पचास नहीं, तो चालीस सैकड़ा तो दीजिए।"

नरेन्द्र ने भौंहें सिकोड़ लीं। कहा, "हमारे चालीस सैकड़े के मानी हैं, भाड़े के अलावा आपको सात-आठ सौ रुपये रोज मिलेंगे। अगर यही है, तो पन्द्रह सैकड़ा ले लीजिए।"

"पन्द्रह सैकड़ा।"

नरेन्द्र अट्टहास हँसा। संयत होकर कहा, "बाबू धनीरामजी, मैं 6 महीने में एक किताब लिखता था, पर उसके लिए आपने मुझे 15 सैकड़ा भी नहीं दिया!"

एक दिन, बाहर की पृथ्वी में प्रकाश की तरह प्रसिद्ध हो चुकने पर, आभा ने नरेन्द्र के पास एकान्त में बैठकर हाथ में हाथ लेते हुए कहा, "नरेन्द्र, तुम बुरा तो न मानोगे, मैं देखती हूँ, दुःख बहुत थे जरूर; पर मन्दिर का वह दीप जलानेवाला जीवन मुझे बड़ा सुखमय लग रहा है।"

['सुधा', मासिक, लखनऊ, अक्तूबर, 1934। पहले **सखी** में, फिर **चतुरी चमार** में संकलित]

भक्त और भगवान्

भक्त साधारण पिता का पुत्र था। सारा सांसारिक ताप पिता के पेड़ पर था, उस पर छाँह। इसी तरह दिन पार हो रहे थे। उसी छाँह के छिद्रों से रश्मियों के रंग, हवा से फूलों की रेणु-मिश्रित गन्ध, जगह-जगह ज्योतिर्मय जल में नहाई भिन्न-भिन्न रूपों की प्रकृति को देखता रहता था। स्वभावतः जगत् के करण-कारण भगवान् पर उसकी भावना बँध गयी।

पिता राजा के यहाँ साधारण नौकर थे। उसे इसका ज्ञान रहने पर भी न था।

लिखने के अनुसार उसकी उम्र का उल्लेख हो जाता है। इस समय एक घटना हुई। गाँव के किनारे, कुएँ पर एक युवती पानी भर रही थी। पकरिए के पेड़ के नीचे एक बाबा तन्मय गा रहे थे—'कौन पुरुष की नार झमाझम पानी भरे ?' युवती घड़ा खींचती दाहिनी ओर के दाँतों से घूँघटका छोर पकड़े, बायें झुकी आँखों में मुस्कुरा रही थी। तरुण भक्त की ओर मुँह था। बाबाजी की ओर दाहने अंगों से पर्दा।

भक्त का विद्यार्थी-जीवन था। उसने पढ़ा। विस्मित हो गया। देवी को मन में प्रणाम कर आगे बढ़ा। गाँव की गली में साधारण किसानों की भजन-मण्डली जमी थी। खँझड़ी पर लोग समस्वर से गा रहे थे—

'कहत कोउ परदेशी की बात—
कहत कोउ परदेशी की बात !
वइ तरु-लता, वइ द्रुम-खंजन,
वइ करील, वइ पात !
जब ते बिछुरे स्याम साँवरे,
ना कोउ आवत जात !'

तरुण युवक खड़ा हो गया। अच्छा लगा। एक पेड़ की जड़ पर बैठकर एक-चित्त सुनता रहा। कितने भाव प्राणों में जगकर उथल-पुथल मचाने लगे—'यह परदेशी की बात कौन कहता है ? क्या कहता है ? तरु-लता-द्रुम-खंजन आदि वही सब अब भी हैं, पर श्याम बिछुड़ गये हैं, इसलिए तो वह सब सूना हो रहा है ? वहाँ कोई नहीं आता-जाता।—यह परदेशी की कैसी बात है ?' कितने विचार बह गये। वह सुनता रहा—अज्ञात भी कितना कह गये। फिर सब भूल गया। एक होश रहा—यह परदेशी कौन है—क्या कहा—यह साँवरे श्याम कैसे बिछुड़े ? —फिर भी परदेशी की बात कहने में इनका अस्तित्व है।

चुपचाप उठकर वह चला गया। गाँव से बाहर एकान्त में, एक रास्ते के किनारे, चढ़ी मालती के बड़े पीपल के नीचे बँधे पक्के चबूतरे पर महावीरजी की सुन्दर मूर्ति स्थापित थी, वहीं जाकर बैठ गया। विशद विचार का नशा था ही। लड़ी आप फैल चली। तुलसीदास की याद आयी। महावीरजी, तुलसीदासजी और श्रीरामायण से हिन्दी-भाषी पठित हिन्दू-मात्र का जीवन-सम्बन्ध है। मन सोचने लगा। तुलसीदास की सिद्धि के कारण महावीरजी हैं। सामने सिन्दूर की सजी सुन्दर मूर्ति पर सूर्य की किरणें पड़ रही थीं। देखकर भक्ति-भाव से प्रणाम किया। अर्थ कुछ नहीं समझा। पर उस पत्थर की मूर्ति पर प्राण मुग्ध हो गये। यह एक संस्कार था—एक मूर्ख संस्कार, जिसे ब्रह्मभाव के लोग आज कुसंस्कार कहते हैं, बृहत्तर के निर्माण के लिए प्रयत्नपर हैं।

'खसी माल मूरति मुसकानी' वह नहीं समझा; पर खसी मालवाली—बिना माला की मूर्ति मुस्कुरायी। उसने केवल देखा—सामने एक पुराने क़लमी आम के पेड़ पर नयी जंगली बेले की लता पूरी फूली हवा में हिल रही है। तरुण भक्त की इच्छा हुई, माला गूँथकर महावीरजी को पहनायें। सामने केले लगे थे। एक पत्ता बीच से तोड़कर पैनी लकड़ी से काट लिया और पेड़ पर चढ़कर, उसी के बनाये दोनों में फूल तोड़-तोड़कर रखने लगा। फिर गुर्च-जैसी एक लता की पतली लड़ी

तोड़कर, उसी चबूतरे पर बैठकर माला गूँथने लगा। पूरी होने पर महावीर को पहनाकर देखा। कोई हँस दिया—वह नहीं समझा। प्रणाम कर चला गया।

वह विवाहित था। घर आया। सिन्दूर का सुहाग धारण किये नवीन पत्नी खड़ी थी, आँखों में राज्य-श्री उतरकर अभिनन्दन कर रही थी—वह मुस्कुरायी; पर वह फिर भी नहीं समझा।

भक्त की ऋतुएँ वहुत धीरे-धीरे वेश बदलती हुई चलती हैं। पर इतनी सुन्दर हैं, इतनी कोमल और इतनी मनोरम कि वहाँ प्रखरता का कोई भी निर्झर-स्वर नहीं, जो शैलोच्च प्रकृति से उतरता हुआ हरहराता हो, वहाँ केवल मर्मरोज्ज्वल तरंग भंग है।

भक्त का नाम निरंजन था। सम्पत्ति के सम्बन्ध में भी वह निरंजना था। केवल भक्ति थी। भक्ति बुद्धि नहीं, पर पूजा चाहती है। पूजा के लिए सामग्री एकत्र करने की विधि वह नहीं बताती, विधि आप विधान देते हैं।

भक्त ने देखा, राजा का सरोवर सरोरुहों से पूर्ण है। नील जलराशि पर हरे पत्र, उनके बीच वृन्त उठे, उन पर डोलते हुए कमल, उन पर काँपती हुई किरणें। भक्त ने देखा—ये श्वेत-कमल श्वेत होकर भी कैसी अंजलि बाँधे हुए हैं; इच्छा हुई, इन्हें महावीर पर चढ़ावें। लाँग मारकर पानी में कूद पड़ा। जल 'छल-छल' करता छलकता हुआ, तरंगों से वर्तित हो चला। वह तैरने लगा। नाल और नालों के काँटे रोकने लगे—लिपटकर, छिदकर, खरोंचते रहे; पर उसे केवल महावीर-जी, पूजा और कमलों का ध्यान था—तैरता-तोड़ता, तट-जल पर फेंकता रहा। फिर निकलकर उठा लिये। चबूतरे पर जाकर भक्ति-भाव से सजाने लगा। मूर्ति वीर-मूर्ति न थी। हाथ जोड़े हुए थी। दोनों बगलों में, कन्धे के बीच कानों के नीचे, पैरोंके नीचे, पैरों से लेकर ऊपर तक मूर्ति को श्वेत-कमलों से सुवासित कर दिया। सिर के लिए एक सनाल कमल की गुड़री बनायी। पहनाने लगा, आगे भार अधिक होने के कारण अर्द्धविकच कमल गिरने लगा—सँभालकर, दबाकर पहना दिया। देर तक तृप्ति की दृष्टि से देखता रहा, जैसे कमल उसी के हों, इस सारी शोभा पर उसी की दृष्टि का पूरा अधिकार हो।

घर आकर बड़ी प्रसन्नता से रात के भोजन के बाद सोया। मस्तिष्क स्निग्ध था। बात-की-बात नींद आ गयी। रात पिछले पहर की थी। स्वप्न देखने लगा। इसे आजकल के लोग संस्कार कहेंगे। पर इसकी पूरी व्याख्या करते नहीं पढ़ा गया। देखा, महावीरजी की वही भक्तिमूर्ति सामने मुस्कुराती हुई खड़ी है। कह रही है—'बन्धु, तुमने अपनी पूजा का स्वार्थ देखा, पर मेरे लिए कुछ भी विचार नहीं किया। कमल-नाल की गुड़री इतनी जोर से तुमने गड़ायी कि उसके काँटे मेरे रस में छिद गये हैं, दर्द हो रहा है।' भक्त वज्रांग की वाणी सुनकर चकित था, साथ आनन्द में मत्त कि वज्रांग इतने कोमल हैं।

वह मूर्ति धीरे-धीरे अदृश्य हो चली। साथ भक्त की पत्नी अँधेरे के प्रकाश में उठती हुई सामने आयी। सिर पर सिन्दूर चमक रहा था। महावीरजी अदृश्य होते हुए बदल गये—'इनके मस्तक पर क्या है ?' भक्त को ताज्जुब में देखकर पत्नी

बोली, "प्रिय, महावीर को मैं मस्तक पर धारण करती हूँ।" स्वप्न में भक्त ने पूछा, "मैं नहीं समझा—अर्थ क्या है ?" बड़ी रहस्यमयी मुस्कान आँखों में दिखायी दी। "उठो" पत्नी ने कहा, "अर्थ सब मैं हूँ—मुझे समझो।" भक्त की आँखें खुल गयीं। जगकर देखा, पत्नी घोर निद्रा में सो रही है। उसका दाहना हाथ उसके हृदय पर रक्खा है, जैसे उसके हृदय के यन्त्र को स्वप्न के स्वरों में उसी ने बजाया हो। खिड़की से ऊषा का अन्धकार पार करनेवाली तैरती छवि, दूर जगत की मधुर ध्वनि की तरह, अस्पष्ट भी स्पष्ट प्रतीत हो रही थी। भक्त ने उठकर बाहर जाना चाहा। धीरे-से, हृदय से प्रिया का हाथ उठाकर चूमा; फिर सघन जाँघ पर सहारे से प्रलम्ब कर एक बार मुँह देखा—खुले, प्रसन्न, दिव्य, भाल पर अन्धकार बालों को चीरनेवाली माँग में वैसा ही शोभन सिन्दूर दीपक-प्रकाश में जाग्रत था। कमल आँखें मुँदी हुई। कपाल, भौंह, गाल, नाक, चिबुक आदि के कितने सुन्दर कमल सोहाग सिन्दूर पर चढ़े हुए हैं। देखकर चुपचाप उठकर बाहर चला गया।

भक्त की भावना बढ़ चली। प्राणों में प्रेम पैदा हो गया। यह बहुत दूर का आया प्रेम है; यह वह न जानता था। क्योंकि वह जाग्रत लोक में ज्यादा बँधा था। उसकी मुक्ति जाग्रत की मुक्ति थी। खाने-पीने रहने-सहने की मामूली बातों से निवृत्त हो, इतना ही समझता था। स्वप्न के बाद तमाम दिन एक प्रसन्नता का प्रवाह बहा—पहले-पहल जवानी में ब्याह होने पर जैसा होता है।

आज फिर अच्छी पूजा की इच्छा हुई। सरोवर के किनारे से दूसरों की आँख बचाकर ऊँची चारदीवार की बगल-बगल जाने लगा। बारहदरी के पिछवाड़े, एक दूसरे सरोवर के किनारे, गुलाब-बाग था। दाहने आमों की श्रेणी। बीच से बड़ा रास्ता। राहियों की नजर से ओझल पड़ता था। चुपचाप, केले का एक वैसा ही आधार लिये बाग में पैठा। बसरा, विलायत, फ्रांस आदि देशों के तरह-तरह के, घने और हल्के लाल, गुलाबी, पीले गुलाब हिल रहे थे, जैसे हाथ जोड़े आकाश की स्तुति कर रहे हों—'खेसंभवं शंकरम्'—'खेसंभवं शंकरम्', मौन वीणा बजा रही हो सुगन्ध की झंकारें दिशाओं को आमोद-मुग्ध करती हुई।

क्षण भर शोभा देखकर गुलाब तोड़ने लगा। ध्यान महावीरजी की ओर बह रहा था। साक्षात् भक्ति जैसे वीर की सेवा में रत हो।

लौटकर आज लाल को लाल करने चला। सिन्दूर पर गुलाब की शोभा चढ़ी। सुन्दर सब समय सुन्दर है। सजाकर देर तक देखता रहा। यही पूजा थी।

घर आया। पत्नी ने नयी साड़ी पहनी थी, गुलाबी। देखकर भक्त हँसा। रात का स्वप्न मस्तिष्क में चक्कर काटने लगा। कहा, "तुम मन की बात समझती हो।"

सहज सरलता से पत्नी ने कहा, "तुम जैसा पसन्द करते हो, मैं वैसा करती हूँ।"

भक्त की इच्छा हुई रात की बात कहे; पर किसी ने रोक दिया। सिर झुकाने लगा—न झुकाया। पत्नी सिर झुकाये मुस्कुरा रही थी। मस्तक का सिन्दूर चमक रहा था। देखकर भक्त चुप हो गया।

उसकी पत्नी का नाम सरस्वती था। पति को चुप देखकर बोली, "मेरा नाम सरस्वती है, पर मैं सजकर जैसे लक्ष्मी बन गयी हूँ।" यह छल भक्त को हँसाने के लिए था, पर भक्त ने सोचा, यह मुझे समझना है कि तुम विष्णु हो। वह और गम्भीर हो गया। मन में सोचा, यह सब समझती है।

कुछ दिनों बाद एक आवर्त आया। भक्त के घरवाले ईश्वर के घर चले गये। धैर्य से उसने यह प्रहार सहा। पहले उसकी पत्नी मरी थी। घर बिल्कुल सूना हो गया।

एक दिन पड़ोस की एक भाभी मिलीं। कहने लगीं, "भैया, ऐसी देवी तुम्हें दूसरी नहीं मिल सकती, चाहे तुम दुनिया देख डालो। उसने दो साल पहले मुझसे कहा था, 'दीदी, मैं दो साल और हूँ।'" भक्त दंग हो रहा। पहले के उसके भी संस्कार उग-उगकर पल्लवित हो चले। वह नहीं समझा कि एक अपनी जन्म-पत्रिका पढ़ते हुए पत्नी से उसने कहा था कि दो साल बाद दारा और बन्धुओं से वियोग होगा, लिखा है; इसे उसकी पत्नी प्रमाण की तरह ग्रहण किये हुए थी, और इसी के आधार पर दीदी से भविष्यवाणी की थी।

पत्नी की समझ को उसी से सिन्दूर की तरह सिर पर धारण कर वह महावीरजी की सेवा में लीन हुआ। अब रामायण भी उन्हें पढ़कर सुनाया करता था। रामायण के ऊँचे गूढ़ अर्थ अभी मस्तिष्क में विकास प्राप्त नहीं कर सके। पत्नी के बाद पिता तथा अन्य बन्धुओं का भी वियोग हुआ था। राजा ने दया करके एक साधारण नौकरी उसे दी।

उन्हीं दिनों श्रीपरमहंस देव के शिष्य स्वामी प्रेमानन्दजी को राजा के दीवान अपने यहाँ ले गये। राजा की परमहंसदेव के शिष्यों पर विशेष श्रद्धा न थी। वह समझते थे, साधु महात्मा वह है ही नहीं, जिसके तीन हाथ की जटा, चिमटा न हो, चिलम भी होनी चाहिए और धूनी भी, तभी राजा भक्तिपूर्वक गाँजा पिलाने को राजी होते। परन्तु राजा के पढ़े-लिखे नौकर पुराने महात्माओं को जसा घोंघा समझते थे, राजा को उससे बढ़कर खाजा।

स्वामी प्रेमानन्दजी का बड़े समारोह से स्वागत हुआ। भक्त भी था। दीवान साहब भक्त की दीनता से बड़े प्रसन्न थे। भक्त ने स्वामीजी की माला तथा परमहंसदेव की पूजा के लिए खूब फूल चुने। स्वामीजी मालाओं में भर गये। हँसकर बोले—'तोरा आमा के काला करे दिली।' (तुम लोगों ने मुझे काली बना दिया।)

भक्त नहीं समझा कि उस दिन उसके सभी धर्मों का वहाँ समाहार हो गया—ब्रह्मचारी महावीर, उनके राम, देवी और समस्त देव-दर्शन उन जीवित संन्यासी में समाकृत हो गये।

बड़ी भक्ति से परमहंसदेव का पूजन हुआ। दीवान साहब कबीर साहब का बंगला-अनुवाद स्वामीजी को सुना रहे थे, राज्य के अच्छे-अच्छे कई अफसर एकत्र थे, भक्त तुलसीकृत रामायण सुनाने को ले गया और स्वामीजी की आज्ञा पा पढ़ने लगा। स्थल वह था, जहाँ सुतीक्ष्ण रामजी से मिले हैं, फिर अपने गुरु के पास

उन्हें ले गये हैं। स्वामीजी ध्यानमग्न बैठे सुनते रहे। "श्यामतामरस-दाम-शरीरम्; जटा-मुकुट-परिधन-मुनि-चीरम्।" आदि साहित्य-महारथ महाकवि गोस्वामी तुलसीदास की शब्द-स्वर-गंगा बह रही थी, लोग तन्मय मज्जित थे। स्वामीजी के भाव का पता न था। भक्त कुछ थक गया था। पूर्ण-विरामवाला दोहा आया, स्वामीजी ने बन्द कर देने के लिए कहा।

फिर तरह-तरह के धार्मिक उपदेश होने लगे। स्वामीजी ने दीवान साहब से हर एकादशी महावीर-पूजन और रामनाम-संकीर्तन करने के लिए कहा।

भक्त को नौकरी नहीं अच्छी लगती थी। मन पूजा के सौन्दर्य-निरीक्षण की ओर रहता था। तहसील-वसूल, जमा-खर्च, खत-किताब, अदालत-मुकद्दमा आदि राज्य के कार्य प्रतिक्षण सर्प-दंशवत् तीक्ष्ण ज्वालामय हो रहे थे, हर चोट महावीरजी की याद दिलाने लगी। मन में घृणा भी हो गयी, राजा कितना निर्दय, कितना कठोर होता है। प्रजा का रक्त-शोषण ही उसका धर्म है।

उसने नौकरी छोड़ने का निश्चय कर लिया। उस रोज शाम को महावीरजी को प्रणाम करके चिन्तायुक्त घर लौटा। घर में दूसरा कोई न था, भोजन स्वयं पकाता था। खा-पीकर सोचता हुआ सो रहा।

समय समझकर महावीरजी फिर आये। उसने आज महावीरजी की वीरमूर्ति देखी। मन इतने दूर आकाश पर था कि नीचे समस्त भारत देखा; पर यह भारत न था--साक्षात् महावीर थे, पंजाब की ओर मुँह, दाहने हाथ में गदा—मौन शब्द-शास्त्र, बंगाल के ऊपर दायें-बायें पर हिमालय-पर्वत की श्रेणी, बगल के नीचे बंगोपसागर, एक घुटना वीर-वेश-सूचक--टूटकर गुजरात की ओर बढ़ा हुआ, एक पैर प्रलम्ब—अँगूठा कुमारी-अन्तरीप, नीचे राक्षस-रूप लङ्का-कमल--समुद्र पर लिखा हुआ।

ध्वनि हुई, "वत्स, यह वीर-रूप समझो।" इसके बाद स्वामी प्रेमानन्दजी की प्रशान्त मूर्ति ऊषा के अरुण प्रकाश की तरह भक्त के सुन्दर मन के आकाश से भी ऊँचे उगी। ध्वनि हुई, "वत्स, यह सूक्ष्म भारत है, इससे नीचे नहीं उतर सकते; इनका प्रसार समझ के पार है।" एक बार सूर्य दिखायी दिया, फिर अगणित तारे, प्रकाश मन्दतर होता हुआ विलीन हो गया।

फिर उसके पूजित महावीरजी की वही भक्त-मूर्त्ति आयी, हाथ जोड़े हुए। उसी मुख से निर्गत हुआ, "मैं इसी तत्त्व को हाथ जोड़े हुए हूँ--यही मेरे राम हैं, तुम इसी तरह रहो। किसी कार्य को छोटा न समझो, न किसी की निन्दा करो।"

अन्धकार जल पर एक कमल निकला, हाथ जोड़े हुए बोला, "मैं तो राजा का था, तुमने मुझे क्यों तोड़ा?" फिर गुलाब हिल-हिलकर कहने लगे, "मुझे छूने का तुम्हें क्या अधिकार था?" हाथ जोड़े हुए महावीरजी बोले, "वत्स, यहाँ कौन-सी चीज राजा की नहीं है—यह मूर्त्ति किसकी खरीदी है? कौन पुजवाता है?"

स्वप्न में आतुर होकर भक्त ने कहा, "ये गरीब मरे जा रहे हैं—इनके लिए क्या होगा।"

"ये मर नहीं सकते, इनके लिए वही है, जो वहाँ के राजा के लिए, इन्हें वही

उभाड़ेगा, जो वहाँ के राजा को उभाड़ता है, तुम अपने में रहो। दूर मत आओ।"

मन धीरे-धीरे उतरने लगा। देखा, आकाश की नीली लता में सूर्य, चन्द्र और ताराओं के फूल हाथ जोड़े खिले हुए एक अज्ञात शक्ति की समीर से हिल रहे हैं, पृथ्वी की लता पर पर्वतों के फूल हाथ जोड़े आकाश को नमस्कार कर रहे हैं। आशीर्वाद की शुभ्र हिम-धारा उन पर प्रवाहित है; समुद्रों की फैली लता में आवर्तों के फूल खुले हुए अज्ञात किसी पर चढ़ रहे हैं; डाल-डाल की बाहें अज्ञात की ओर पुष्प बढ़ाये हुए हैं। तृण-तृण पूजा के रूप और रूपक हैं। इसके बाद उन्हीं-उन्हीं पुष्पों के पूजा-भावों में छन्द और ताल प्रतीयमान होने लगे—सब जैसे आरती करते, हिलते, मौन भाषा में भावना स्पष्ट करते हों, सबसे गन्ध निर्गत हो रही है, सत्य की समीर वहन कर रही है, पुष्प-पुष्प पर कहीं से अज्ञात आशीर्वाद की किरणें पड़ रही हैं, इसके बाद उसकी स्वर्गीया प्रिया वैसी ही सुहाग का सिन्दूर लगाये हुए सामने आयी।

"वत्स, यह मेरी माता देवी अंजना है। इनके मस्तक पर देखो।" उसी भक्त-मूर्ति की ध्वनि आयी।

मस्तक पर वीर-पूजा का वही सिन्दूर शोभित था। मुस्कुराकर देवी सरस्वती ने कहा, "अच्छे हो?"

आँख खुल गयी, कहीं कुछ न था।

[‘सुधा’, मासिक, लखनऊ, दिसम्बर, 1934। पहले **सखी** में, फिर **चतुरी चमार** में संकलित]

सखी

आज थिएटर जाने की बात है। माडल हौसेज की छात्रा-तरुणियों में निश्चय हो गया है, सब एक साथ जायँगी। निर्मला, माधवी, कमला, ललिता, शुभा और श्यामा आदि सज-सजकर एक-दूसरी से मिलती हुई एकत्र होने लगीं। कमला के मकान में पहले से सबके मिलने का निश्चय हो चुका था। ज्योतिर्मयी उर्फ जोत अभी नहीं आयी। समय थिएटर जाने का करीब आ गया।

ललिता बोली, "वह आज कालेज में इतनी खुश थी कि अवकाशवाली लड़कियों से गप लड़ाती, मजाक करती हुई, समय से पहले घर चली आयी थी। पूरे उच्छ्वास से थिएटर चलना स्वीकार किया था। मैंने पूछा भी कि क्या है, जो आज जमीन पर कदम नहीं पड़ रहे हैं। जवाब न देकर मेरी ओर देखकर हँसने लगी।"

शुभा—"तो क्लास नहीं किया?"

"ना," ललिता बोली।

श्यामा—"मुझसे कहा कि पढ़ना-लिखना तो अब यहीं तक समझो।"

निर्मला—"क्यों, उसे कोई अड़चन तो है नहीं; फिर पढ़ाई क्यों बन्द कर रही है?"

श्यामा हँसने लगी। बोली, "वह कहती है, अब पढ़ना छोड़कर पढ़ाना पड़ेगा, इसकी तैयारी करनी है।"

सब हँसती हुई एक-दूसरों की ओर देखने लगीं।

माधवी—"इसका मतलब?"

श्यामा हँसकर बोली, "उसे बड़ी चिन्ता है कि शिक्षा आई. सी. एस. है।"

"अच्छा," कई एक साथ कह उठीं, "यह बात है?"

ललिता—"तो चलो, उसी के मकान से चला जाय। देखें, आपने अपनी तैयारी में कहाँ तक तरक्की की?"

सब जोत के मकान चलीं। सब आइसावेला थार्बन कालेज की छात्राएँ हैं। कोई तीसरे, कोई चौथे, कोई छठे साल में है। जोत का तीसरा साल है।

घर पहुँचकर दंगल-का-दंगल जोत के कमरे में पैठा। वह जैसी जोत है, उसका पहनावा भी वैसा ही जगमगाता हुआ था। उस समय वह आइने के सामने खड़ी मुस्करा रही थी। एकाएक संगिनियों को देखकर लजा गयी। बोली, "मुझे ज़रा देर हो गयी।" वजह कोई न थी। सोचकर कुछ कह दे, हृदय और मस्तिष्क में उतनी जगह न थी···एक अजीब भाव में सारी देह भरी हुई थी, अतः देर के लिए दबनेवाले स्वर में भी उच्छ्वास उमड़ रहा था।

श्यामा बोली "अब तो हर काम के लिए देर होगी। जलदबाजी सिर्फ खास विद्यार्थी को अवैतनिक पढ़ाने के वक्त हो तो हो।"

सब हंसने लगीं। ललिता ने देखा—मेज पर एक खुला अंग्रेजी लिफाफा पड़ा हुआ है। उठा लिया।

उठाते ही जोत तीर-सी ललिता पर टूटी। पर श्यामा ने पकड़ लिया, "अरे-अरे, अभी से। अभी तो पढ़ने की दरख्वास्त मंजूर होने को आयी होगी।"

ललिता ऊँचे स्वर से पढ़ने लगी। श्यामा जोत को पकड़े रही। चिट्ठी अंग्रेजी में थी। आवश्यकता से अधिक लम्बी। बायरन, शेली आदि के उद्धरण थे ही, विद्यापति भी नहीं बचे थे। पकड़ी हुई जोत खुशी में छलक रही थी।

पत्र समाप्त कर सब चलने को हुईं, अमीनाबाद से ताँगे कर लेंगी, एक जोत की मोटर में सब अट नहीं सकतीं, क्योंकि सामने ड्राइवर की वजह से सीट खाली रहेगी।

जोत को लीला की याद आयी। बोली, "भई, लीला रही जाती है उसे भी ले लें।"

"उससे चलने की बात तो हुई नहीं, वह शायद ही जाय।" माधवी बोली।

"पक्की कंजूस है। पैसा दाँत से पकडती है!" श्यामा ने कहा, "सौ रुपये कम-से-कम ट्यूशन से पाती है, पर हालत देखो, तो मालूम होगा महादरिद्र।"

जोत लजाकर बोली, "तुम्हें तो उसका जीवन-चरित्र लिखने को मिले, तो

चौपट करके छोड़ो। हमारे कॉलेज में एक ही कैरेक्टर है। कहो तो, उसके यहाँ पैदा करनेवाला कौन है ? ट्यूशन से अपना खर्च चलाती है, छोटे भाइयों को भी पढ़ाती है, साथ घर का खर्च भी है। बूढ़ी माँ को कोई तकलीफ न हो, इसके लिए बेचारी कितना खटती है। मेहनत की मारी सूखकर काँटा हो रही है। चेहरे में आँखें ही आँखें तो हैं।''

लीला का घर आ गया। सब भीतर धँस गयीं। लीला पढ़ रही थी।

जोत ने हाथ से किताब छीन ली, थप से मेज पर रखकर बोली, ''मिस लैला, मजनू के मजमून में दीवानी न बनो। प्रेम का परिणाम बुरा होता है प्यारी ! चलो, कलकत्ते से पारसी कम्पनी आयी हुई है, वहाँ हम लोग धार्मिक शिक्षा ग्रहण करें।''

लीला जोत से दो साल आगे एम. ए. में है। जोत चंचल है। लीला क्षमा करती है। बड़ी-बड़ी सकरुण आँखों से देखती हुई बोली, ''भाई, तुम लोग जाओ। मुझे इतना समय कहाँ ?''

''समय नहीं, पैसे कहो।'' श्यामा बोली।

''अच्छा, पैसे सही। कालेज के अलावा पाँच घण्टे पढ़ाती हूँ। डाक्टर साहब बड़े आदमी हैं। लड़कियों की पढ़ाई के लिए साठ देते हैं। मेरी हालत भी जानते हैं। तअल्लुकदार रघुनाथसिंह की नयी पत्नी को पढ़ाती हूँ, चालिस वहाँ मिलते हैं। इसी में घर का कुल खर्च है। इतने के बाद अपने पढ़ने के लिए भी समय निकालना पड़ता है। दिक्कत तुम लोग समझ सकती हो। ऐसी हालत में समय और पैसों की मुझे कितनी तंगदस्ती हो सकती है।''

''अच्छा महाशयाजी, चलिए।'' जोत बोली, ''आपके लिए फ्री पास का प्रबन्ध हो जायगा।''

''तुम तो आज म्यान से निकली तलवार-सी चमक रही हो जोत ! क्या खुशी है ?'' लीला ने धीर स्नेह-कण्ठ से पूछा।

''महाशयाजी, जो किसी के हलक से नीचे उतरकर सिर चढ़ी हो, वह शराब हैं यह अब।'' मुस्कुराकर शुभा ने कहा।

''नहीं,'' कमला बोली, ''अभी तो—देख लो न, इनकी तरफ—होंठों पर हँसी, आबरू पर खम, इसलिए इकरार भी है, इनकार भी है।''

''बात क्या है ?'' अनजान की तरह देखते हुए लीला ने पूछा।

''पूरा रहस्यवाद उर्फ छायावाद।'' निर्मला ने कहा, ''वाद-विवाद में देर हो रही है। प्रकाशवाद यह है कि इनके पास मिस्टर श्यामलाल आई. सी. एस. का पत्र आया है कि आप अगर मंजूर करें, आपको अपना सर्वस्व—तीन हजार मासिक—प्रेम की पर्मानेण्ट शिक्षा के लिए देकर मिस्ट्रेस बनने की प्रार्थना करता हूँ। अब तो आया समझ में ?''

''तो क्या तुम्हारे पिताजी राजी हो गये ?'' लीला ने जोत से पूछा।

''खूब कही !'' जोत बोली, ''जहाँ आई. सी. एस. वर मिलता हो, वहाँ पिताजी खुद ब्याह करने को तैयार हो जायँ।''

कमरा खिलखिलाहट से गूँज उठा।

"तुम लोग भई जाओ, माफ करो, मुझे समय नहीं।"

"नहीं महाशयाजी, आप तो फर्स्ट क्लास लें, और हम लोग वहीं पैर रगड़ते रहें, ऐसा नहीं होने को। आपको चलना होगा, कपड़े बदलिए।"

जोत लीला को प्यार करती है, सम्मान भी देती है। लीला भी जानती है, जोत की खुली जबान में हृदय की कीमती बहुत-सी चीजें खुली रहती हैं। इसलिए उसका प्रस्ताव मंजूर कर, कपड़े बदलकर साथ चल दी।

तीन बजे से पहले ही लीला का क्लास खत्म हो जाता है। वहाँ से वह तअल्लुकदार साहब की पत्नी को पढ़ाने के लिए भैंसाकुण्ड जाया करती है। रोज बहुत चलना पड़ता है। किसी तरह साइकिल खरीद सकती है। पर सीखने की लाज कि मैदान में मर्दों के सामने बेहयाई होगी, कौन पकड़कर चलायेगा, गिरूँगी तो लोग हँसेंगे आदि-आदि—बाधक होती है। इसलिए चलने की काफी मेहनत गवारा करती है।

भैंसाकुण्ड से साढ़े पाँच-छः के करीब लौटती हुई कई रोज से देखती है—दो मुसलमान उसका पीछा करते हैं। वे आपस में न जाने क्या बातचीत करते हैं। कभी-कभी पास आ जाते हैं। हृदय धड़कने लगता है। पर वह जल्द-जल्द चली आती है। ज्यों-ज्यों तेज चलती है, वे भी त्यों-त्यों तेज पीछा करते हैं। किससे कहे? भैंसाकुण्ड का बहुत-सा रास्ता बँगलों तथा बगीचों के कारण सुनसान निर्जन रहता है। धड़कते कलेजे से साधारण बस्ती के पास आकर साँस लेती है।

मन-ही-मन अपनी असमर्थता पर लीला को बड़ा क्षोभ हुआ। दुर्बलों को सब सताते हैं। पर आप ही शान्त हो जाना पड़ा, क्योंकि अपनी हद में वही अपना उपाय सोचनेवाली थी। माता से नहीं कहा कि कहीं वह रोक न दें, खर्च के लिए फिर क्या होगा?

एक दिन लौटते हुए उन्हीं में एक को अश्लील बकते हुए सुना—जैसे सुनाकर बातें कही जा रही हों। वह तेज कदम चलने लगी। वे भी उसी हिसाब से बढ़ते गये—तीन ही चार हाथ का फासला था। ऐसे समय उनके साहस की ऐसी बात उसने सुनी, जो उसकी मर्यादा के प्रतिकूल थी। भय से एक प्रकार दौड़ने लगी। सामने एक हैट-कोट पहने देशी साहब आते हुए देख पड़े। लीला उनकी तरफ कुछ तेज बढ़ी। उन्हें देखकर बदमाश लौट गये। लीला उनके पास पहुँचकर हाँफती हुई बोली, "आज कई रोज से दो बदमाश मेरा पीछा करते हैं। मैं तअल्लुकदार रघुनाथसिंह की पत्नी को पढ़ाने जाती हूँ। लौटते समय राह पर मिल जाते हैं। मुझे ऐसी-ऐसी बातें आज कहीं—" कहकर अपने को सँभालने लगी।

बिजली की रोशनी में बड़ी-बड़ी आँखों से आँसू गिरते हुए देखकर साहब क्रोध से रास्ते की ओर देखने लगे। बोले, "वे लोग मुझे देखकर भाग गये शायद। यह सामने मेरा ही बँगला है। आइए आपको मोटर पर भेज दूँ। कोई डर की बात नहीं।" साहब सोचते चले, पीछे-पीछे लीला।

अहाते के भीतर बगीचे के पास साहब खड़े हो गये। बँगले के सामने की बिजली से लीला का दुबला सुन्दर कुछ लम्बा गोरा मुख, बड़ी-बड़ी आँखें दीख रही हैं। साहब ने दुख के कारण चित्र का सौन्दर्य देखकर पूछा, "आपका शुभ नाम ?"

"मुझे लीला कहते हैं।" निगाह झुकाती हुई लीला बोली।

"आप ही को अपनी संभाल करनी पड़ती है; आप—आप शादीशुदा तो हैं ?"

"जी नहीं, मैं आइसाबेला थार्बन कालेज की छात्रा हूँ।"

"किस क्लास में आप हैं ?"

"एम. ए. में।" धीमे स्वर से कहकर समझ की लाजभरी पलकें झुका लीं।

कुछ आग्रह से साहब ने पूछा, "आप ब्राह्मण हैं ?"

"जी नहीं, कायस्थ हूँ।"

"यहाँ कहाँ रहती हैं ?"

"माडेल हौमेज में।'

साहब कुछ चौंके। पूछा, "आपके वहाँ कोई ज्योतिर्मयी रहती हैं। आपके कालेज की बी. ए. पहले साल की छात्रा हैं।"

लीला भी चौंकी। कुछ हिम्मत हुई। लजाकर पूछा, "जनाब का नाम ?"

"मुझे श्यामलाल कहते हैं।—अरे ए, कार तो ले आने को कह दे।"

लीला का संकोच बहुत कुछ दूर हो गया। बोली, "हाँ, आपका जिक्र मैंने सुना है।"

साहब की उत्सुकता बढ़ गयी। बड़ी उतावली से पूछा, "कहाँ सुना ?"

लीला मुस्कुरायी। कहा, "जोत की सखियों से, उसकी एक चिट्ठी देखी थी।"

साहब उतरे स्वरों में बोले, "उसका कोई जवाब अभी नहीं मिला। उनके पिताजी मेरे विलायत रहते समय मेरे पिताजी से मिले थे। मेरे पास उनका चित्र गया था। विलायत से लौटकर एक पत्र में मैंने लिखा था अभी मैंने उन्हें देखा नहीं। तारीफ सुनी है।" कहकर साहब कुछ चिन्ता करने लगे।

मोटर आ गयी।

मुस्कुराकर लीला ने वादा किया कि वह जोत से पत्र लिखने के लिए कहेगी। साहब आँखें झुकाये चुपचाप खड़े रहे। कुछ देर बाद बोले, "नहीं, आप ऐसा कुछ मत कहें।" फिर मोटर पर चढ़ने के लिए लीला को आमन्त्रित किया।

नमस्कार कर लीला बैठ गयी। मोटर चल दी।

तीसरे दिन बाबू श्यामलाल को जोत का उत्तर मिला। लिखा था—

जनाब,

मैंने आपको जवाब इसलिए नहीं दिया कि जवाब देना सभ्यता के खिलाफ है। आज लीला दीदी से आपके मिलने की सांगोपांग बातें मालूम हुईं। जिस मजनू की जो लैला होती है, वह इसी तरह उसे अपने आप मिलती है। अपनी

लैला की आप हमेशा रक्षा करें, आपसे सविनय मेरी प्रार्थना है। तब मेरा और आपका रिश्ता और मधुर हो जायगा, क्योंकि बहन जिसे ब्याहती है, वह अगर पत्नी की बहन को साली कह सकते हैं, तो पत्नी की बहन भी उन्हें वही पुरुष-सम्बोधन कर सकती है। आशा है, मेरा-आपका यह सम्बन्ध स्थायी होगा।

आपकी

जोत।

[पहले **सखी** में, फिर **चतुरी चमार** में संकलित]

कला की रूप-रेखा

(सत्य घटना)

प्रयाग में था, लूकरगंज में, पं. वाचस्पति पाठक के यहाँ। 'लीडर प्रेस' में 'निरुपमा' बेचने गया था। जाड़े के दिन। 1936 का प्रारम्भ। चाय पीने की लत है। चाय के साथ हिन्दू मिठाई, फल, टोस्ट वगैरह खाते हैं, मैं अण्डे खाता हूँ—बायल्ड, हाफ-बायल्ड या पोच, समय रहा तो आमलेट; अण्डे बत्तख के नहीं, मुर्गी के। पाठक की मा मुर्गी का पैर देख लें तो मकान छोड़ दें, लिहाजा सुबह उठकर स्टेशन जाता था, एक मुसलमान की दूकान में, पाठक देखते थे, मैं खाता-पीता था।

जाते-आते रास्ते में बातचीत होती थी, तरह-तरह की। पाठक मुझसे ग्यारह-बारह साल छोटे हैं। इस समय, अट्ठाईस और चालीस की पटरी बैठ सकती है, उस समय जब पाठक पाँच के और मैं सत्रह का था, अवश्य कोई साम्य न रहा होगा। आज इंगलैण्ड की निगाह में भारत जितना समझदार और शक्तिशाली है, मेरी निगाह में पाठक उतने भी न रहे होंगे; मैं 'जुही की कली' का कवि था और पाठक पहली किताब के पाठक। लेकिन पहलेपहल जब मेरी पाठक से मुलाकात हुई, काशी में—मैं तीस का और पाठक अट्ठारह के, वह मेरे घनिष्ठ, कवि-प्रिय मित्र होकर मिले। मेरी विशेषता मेरे काशी जाने से पहले पहुँच चुकी थी, इसलिए अपने एक मित्र के यहाँ, जिन्होंने एक वेश्या को पत्नी-रूप से रखकर सामाजिक श्रेय प्राप्त किया है—बड़े भगवद्भक्त हैं, मुझे मछली पकवाकर खिलायी।

एक रोज जब लूकरगंज से हम लोग स्टेशन की तरफ चले, उन्होंने मुझसे पूछा, "कला क्या है ?"

मैंने कहा, "कुछ नहीं।"

पाठक उड़ी निगाह से मुझे देखने लगे। मालूम नहीं, क्या सोचा। मुमकिन,

जैसा सब सोचते हैं, उन्होंने भी सोचा हो।

मैंने फिर कहा, "जो अनन्त है, वह गिना नहीं जा सकता। इसलिए 'कुछ नहीं' कहा। इसका बड़ा अच्छा उदाहरण है। कला उसी तरह की सृष्टि है, जैसे आप सामने देखते हैं, बल्कि यही सृष्टि लिखने की कला की जमीन है। अनादि-काल से अब तक सृष्टि को गिनने की कोशिश जारी है, पर अभी तक यह गिनी नहीं जा सकी, अधिकांश में बाकी है। यह एक-एक सृष्टि एक-एक कला है। फलतः कला क्या है, यह बतलाना कठिन है। अद्वैतवाद में, सृष्टि के गिनने की असमर्थता के कारण, सृष्टि का अस्तित्व ही उड़ा दिया गया है। इसलिए कहा, कला कुछ नहीं है। कला के दो-चार, दो-चार सौ, दो-चार हजार, दो-चार लाख, दो-चार करोड़ रूप ही बतलाये जा सकते हैं। पर इससे कला पूरी-पूरी न बतलायी गयी। पर एक बोध है, उसका स्पष्टीकरण किया जा सकता है, जैसे ब्रह्म के अलग-अलग रूपों की बात नहीं कही गयी, केवल 'सच्चिदानन्द' कह दिया गया है। इसी को साहित्यिकों ने 'सत्य, शिव और सुन्दर' कहकर अपनाया है। बोध वह है, जैसी कला हो, उसके विकास-क्रम का वैसा ज्ञान। इसके लिए प्राचीन और नवीन परम्परा भी सहायक है और स्वजातीय और विजातीय ज्ञान के साथ मौलिक अनुभूति और प्रतिभा भी।"

फिर हिन्दी के भिन्न-भिन्न अंगों की बातचीत होती रही। हिन्दी-भाषियों का मस्तिष्क दुर्बल है, रूढ़िग्रस्त होने के कारण वहाँ नवीन विचारधारा जल्द नहीं प्रवेश पाती, यद्यपि भारतीय समस्त साहित्य का इतिहास समस्त प्रकार की मौलिकता लिये हुए है। हिन्दी का समाज-संस्कार अनुरूप न होने के कारण उपन्यास उच्चता तक नहीं पहुँच रहे—बहुत जगह भविष्य-समाज की कल्पना कर लिखा जाता है। काव्य, कहानी, प्रबन्ध, नाटक इन सबका लेखक जो मनुष्य है, वह अनेक रूपों में अभी विकसित नहीं हुआ, बड़ी कमजोरियाँ हैं, फलतः साहित्य अभी साहित्य नहीं हो सका। मैं कहता गया, ये सब नाई हैं अपनी बारात में ठाकुर बने हुए। कुछ नाम भी गिनाये, कलकत्ते से लाहौर तक। तब तक स्टेशन आ गया। मेरा मुसलमान दूकानदार आदर की दृष्टि से मुझे देखकर अण्डे फोड़ने चला। अण्डे उबाले हुए रक्खे थे; मैं बैठ गया, पाठक वहीं दो-चार कदम इधर-उधर टहलते रहे। कुछ और भी चाय पीनेवाले मुसलमान सज्जन थे।

एक दुबले-पतले प्रायः पचास साल के मुसलमान सज्जन गौर से मुझे देखते रहे। उनकी आँखों के आश्चर्य का मैं चुपचाप आनन्द लेता रहा। अन्त तक उनसे न रहा गया, पूछा—

"जनाब पंजाबी हैं ?"

मैंने सोचा, जितनी कम मिहनत हो, अच्छा है; कहा, "जी।"

उन्होंने पूछा, "कारोबार करते हैं ?"

मैंने कहा, "जी।"

उन्होंने पूछा, "यहीं ?"

मैंने कहा, "नहीं, लखनऊ में।" मैं अण्डेवाला प्लेट उठाकर काँटे से खाने लगा। प्रश्नकर्ता को अभी पूरी-पूरी दिलजमई न हुई थी।

पूछा, "काहे का कारोबार करते हैं ?"

मैंने बिना विचार किये कह दिया, "रेशम का।"

ज्यों मुसलमान सज्जन का आश्चर्य बढ़ा त्यों ही मैंने भी सोचा, 'यार, पंजाब में रेशम की पैदावार कहाँ होती है, कारखाने कहाँ हैं, यह तो नहीं मालूम; उधर से पश्मीने आते हैं, जानता हूँ, पेशावर, काश्मीर वगैरह के पश्मीने मशहूर हैं।' बदलकर बोला, "लेकिन मैं स्वीजरलैण्ड से रेशम मँगाता हूँ।" कहकर मैं गम्भीर भाव से अण्डे खाने लगा। सोचा—

'स्वीजरलैण्ड एक सुन्दर देश है, वहाँ रेशम जरूर बनता होगा, और न भी बनता हो तो क्या ?—मियाँ खतव खाल से मालूम देते हैं, उन्होंने स्वीजरलैण्ड का नाम पहले-पहल सुना है।'

"जनाब का इस्मशरीफ ?"

एक बार इस 'इस्मशरीफ' शब्द से बड़ा धोखा खाया था; सोचा था, वह 'दौलतखाने' का पर्यायवाची है, लेकिन जैसा धोखा मैंने खाया, जवाब सुनकर वैसा ही पूछनेवाले ने। मेरे विशुद्ध संस्कृत में दिये स्थान-परिचय को उन्होंने नाम-परिचय समझा। तब मैं मेदिनीपुर में रहता था। जानता था, 'पुर' कहूँगा तो मेरी तरह ये संशय में न रहेंगे। कहा, "मेदिनीदल।" उन्होंने 'जुझारमल' की तरह का एक नाम यह भी होगा, सोच लिया।

इस बार जल्दी-जल्दी मुसलमानी नाम याद करने लगा तो एक भी नाम न आया। पेट में 'महम्मद-महम्मद' हो रहा था, लेकिन कहने की हिम्मत नहीं पड़ती थी, बंकिमचन्द्र की याद आयी, उन्होंने अपने एक हिन्दू पात्र से 'महम्मद' के नाम एक प्रेम-पत्रिका शाही कैम्प में भिजवायी है, इस निश्चय से कि इस नाम का कोई सैनिक अवश्य होगा। वहाँ कई महम्मद निकले, एक-दूसरे से लड़ने लगे। नाम बताने में ज़रा भी देर शंका पैदा करती है। मुझे नाम तो न याद आया, पर समझ ने साथ न छोड़ा।—मुँह का अण्डा निगला जा चुका था, पर मैं मुसलमान सज्जन की ओर मुँह किये विराट रूप से मुँह चलाये जा रहा था, सिर हिलाता हुआ उन्हें आश्वासन दे रहा था कि ज़रा देर ठहर जाइए। फिर भी नाम न आया। अन्त में बड़ी मुश्किल से एक शब्द याद आया। पर वैसा नाम मैंने स्वयम् कभी नहीं सुना। उधर मियाँ का धैर्य छूट रहा था—मेरी पागुर बन्द नहीं हो रही थी।

मैंने कहा, "जनाब, मुझे वकूफ हुसेन कहते हैं।" मियाँ उसे और मुलायम करके बोले, "उकूफ हुसेन ?"

मैंने कहा, "जी।"

मियाँ बढ़े। मैंने चाय पीना शुरू किया। पाठक पीछे थे। शायद सामने से ज्यादा हँसी आती थी।

जब चाय पीकर दाम देकर चला, तब रास्ते में, पाठक ने मुझसे कहा, "आपने 'वकूफ' शब्द का एक अक्षर छोड़ क्यों दिया ?"

मैंने बैसवाड़ी में कहा, "तुम थे, इसलिए।"

अभी हम लोगों ने स्टेशन का अहाता पार नहीं किया था। अहाते में मदरासियों का एक दल बैठा हुआ देख पड़ा। मैंने सोचा, शायद ये लोग कुम्भ

नहाने आये थे। इतने ही में कि उनमें से एक आदमी, उम्र पैंतालीस के लगभग, भौंरे का रंग, खासा मोटा-तगड़ा, एक लँगोटी से किसी तरह लाज बचाये हुए, उतने जाड़े में नंगा बदन, दौड़ा हुआ मेरे पास आया और एक साँस में इतना कह गया कि मैं कुछ भी न समझा। मैंने फिर पूछा। टूटी-फूटी हिन्दी में पूरे उच्छ्‌वास से वह फिर कहने लगा। इस बार मतलब मेरी समझ में आया। वह यात्री है, मदरास का रहनेवाला, कुम्भ नहाने आया था, यहाँ चोर उसके कपड़े-लत्ते, माल-असबाब उठा ले गये, गठरियों में ही रुपये-पैसे थे, अब वह (अपने आदमियों के साथ) हर तरह लाचार है, दिन तो किसी तरह धूप खाकर, भीख माँगकर पार कर देता है, पर रात काटी नहीं कटती। जाड़ा लगता है। वह एक दृष्टि से मेरा मोटा खद्दर का चादरा देख रहा था। मैं विचार न कर सका, उतारकर दे दिया। वह मारे आनन्द के दौड़ा हुआ अपने साथियों के पास गया और इस महादान की तारीफ करने लगा, मेरी तरफ उँगली उठाकर बतलाता हुआ।

पाठक संसार के चक्रान्त की बातें सोच रहे थे—देश दुर्दशा-ग्रस्त है, इसलिए कितने चक्कर रोज देशवासियों को खाने पड़ते हैं—कितने लोग उन्हें छलते रहते हैं—कितने प्रकार प्रचलित हैं। मुझसे बोले, "आखिर आपने अपना बतलाया नाम यहाँ सार्थक कर दिया न?—यह अभी दोपहर को, गुदड़ीबाजार में, चार आने में, यह चादरा बेचेगा।"

मैंने कहा, "धोखा भी हो सकता है और इसकी बात भी सच हो सकती है? यह मदरास से यह सोचकर चला नहीं होगा कि गुदड़ीबाजार में कपड़ा बेचेगा।"

पाठक अप्रसन्न होकर बोले, "मैं आपके देने का विरोध नहीं करता, लेकिन—"

मेरे पास कपड़े कम रहते हैं, कम थे, 'लेकिन' के बाद वह इसी भाव की पूर्ति करना चाहते थे, पर रुक गये।

हम लोग लूकरगंज आये। धीरे-धीरे दो महीने बीते। लखनऊ कांग्रेस के समय सत्ताईस मार्च को वह मेरे साथ लखनऊ आये और मेरे मकान में ठहरे। धीरे-धीरे कांग्रेस का समय आया। उनके दो मित्र, जो मेरे भी मित्र हैं, आकर ठहरे। जहाँ तक बिना टिकट के देखा जा सकता था, मैंने घूम-फिरकर कई रोज देखा। दो-तीन रुपये प्रदर्शनी देखने और महात्माजी के व्याख्यान सुनने में खर्च किये। प्रदर्शनी के कवि-सम्मेलन में नहीं जाता, यहाँ भी नहीं गया। जो कुछ हुआ, संवाद मालूम कर लिया। सब्जेक्ट-कमेटी की बैठकें देखने की इच्छा थी, पर वह दृश्य अप्सराओं के नृत्य देखने से भी महँगा था। पाठक बोले, "मेरा पास लेकर देख आइए।" मैंने कहा, "वहाँ बहुत-से लोग होंगे, जो मुझे पहचानते होंगे। फिर प्रेस-रिपोर्टरों की जगह मुझे कोई अपने पास से भी कुछ देकर बैठने के लिए कहे तो मैं न बैठूं।"

पाठक लड़ने लगे। बोले, "वह सबसे बढ़िया जगह होती है!" कहा, "होगी। मैं न जाऊँगा।"

कांग्रेस शुरू हुई। पहले दिन मैं न गया। आगे भी जाने का विचार न था। कारण, प्रेस-रिपोर्टर की हैसियत से जाना मुझे पसन्द न था, और तीन दिन तक

दाम खर्च कर जाने में अड़चन थी। प्रयाग से ढाई सौ रुपये ले आया था। प्रायः सब खर्च हो चुका था, कई महीने के बाकी मकान किराये और भोजन के खर्च में।

दूसरे दिन जब कांग्रेस की बैठक शुरू होने को हुई, मेरे मकान से लोग चलने को हुए तो मैं सोने का सुबीता करने लगा।

जो मारवाड़ी सज्जन आये हुए थे, उन्होंने कहा, "निरालाजी, मैं कई दिनों से देख रहा हूँ आप सोते बहुत हैं।"

मैंने कहा, "हाँ, यह तो है, पर जब जागता हूँ, तब पन्द्रह-पन्द्रह रात लगातार नहीं सोता।"

मारवाड़ी सज्जन हँसे। बोले, "चलिए।"

मैं बड़े संकट में पड़ा, कैसे कहूँ मेरे पास खर्च की कमी है। कहा, "कांग्रेस में बड़ी गरमी है।"

"हाँ, पर हवा अच्छी चलती है।" मारवाड़ी सज्जन बड़े मजेदार आदमी मालूम दिये। मैं उनके उत्तर पर मुस्किरा रहा था, तब तक एक पच्चीस रुपये का टिकट निकालकर उन्होंने कहा, "यह टिकट आपके लिए है।"

मैं चला। मैं और मारवाड़ी सज्जन एक ही जगह पर थे। वह जगह कुछ ऊँची थी। कुछ दूर पर बड़े-बड़े नेता और नेत्रियाँ। देखा, एक-एक छोटी मेज के पीछे प्रेस-रिपोर्टर बैठे थे। पं. दुलारेलाल भार्गव, ठाकुर श्रीनाथसिंह आदि-आदि परिचित-अपरिचित। श्रीमती कमला चट्टोपाध्याय को मैं गौर से देख रहा था। उन्हें पहले ही पहल देखा था। कभी-कभी श्रीमती सरोजिनी नायडू से बातें करती थीं, उठकर उनके पास जाकर। रह-रहकर उस समर्पण की याद आ रही थी, जो मिस्टर चट्टोपाध्याय ने अपने एक अंग्रेजी पद्य-संग्रह का किया है, इस तरह का—To K, the first sunshine of my life (मेरे जीवन की प्रथम सूर्य-किरण 'क' को)। फिर इस राजनीतिक जीवन के घोर परिवर्तन पर सोच रहा था, जहाँ दोनों एक-दूसरे के काव्य के विषय नहीं—जीवन के अन्तरंग नहीं, स्पर्द्धा के विषय हो गये हैं।

शाम को बाहर निकला। एकाएक एक ऊंची आवाज आयी। देखा, एक स्वयंसेवक दौड़ा आ रहा है, स्वयंसेवक की वर्दी पहने हुए। मुझे देखकर दोनों हाथ उठाकर फिर उसने हर्षध्वनि की। मुझे ऐसा मालूम देने लगा जैसे उसे स्वप्न में कभी देखा हो। मुझे पहचानता हुआ न जानकर उसने आनन्दपूर्ण लड़खड़ाती हिन्दी में कहा, "मैं वही हूँ, जिसे आपने चादरा दिया था।"

मुझे कला का जीवित रूप जैसे मिला। प्रसन्न आँखों से देखता हुआ मैं तत्काल कुछ कह न सका। संयत होकर बोला, "आप कांग्रेस में आ गये, अच्छा हुआ।" उसने कहा, "फिर मैं वहाँ स्वयंसेवकों में भरती हो गया।"

प्रसन्न-चित्त बाहर निकलकर मन में मैंने कहा, 'पाठक मिलें तो बताऊँ कैसे गुदड़ीबाजार में इसने चादरा बेचा।'

कई दिन हो गये। कांग्रेस खत्म हो गयी। पाठक वगैरह चले गये। मैं शाम को कैसर बाग में टहल रहा था कि वह मनुष्य मेरी ओर तेज कदम आता देख पड़ा,

मैं खड़ा हो गया। मेरे पास आकर उसने कहा, "अब गरमी बहुत पड़ने लगी है। देश जाना चाहता हूँ। रेल का किराया कहाँ मिलेगा ? पैदल जाना चाहता हूँ।"

मैंने बीच में बात काटकर कहा, "क्या कांग्रेस के लोग आपकी इतनी-सी मदद नहीं कर दे सकते !"

उसने कहा, "नहीं, कांग्रेस का यह नियम नहीं है। मैं मिला था। मुझे यह उत्तर मिला है। खैर, मैं भीख माँगता-खाता पैदल चला जाऊँगा। पर"—(अपने) पैरों की ओर देखकर कहा, "गरमी बहुत पड़ती है, पैर जल जाते हैं, अगर एक जोड़ी चप्पल आप ले दें।"

मुझ पर जैसे वज्रपात हुआ। मैं लज्जा से वहीं गड़ गया। मेरे पास तब केवल छः पैसे थे। इससे चप्पल नहीं लिये जा सकते। अपने चप्पल देखे, जीर्ण हो गये थे। लज्जित होकर कहा, "आप मुझे क्षमा करें, इस समय मेरे पास पैसे नहीं हैं।"

उसने वीर की तरह मुझे देखा। फिर बड़े भाई की तरह आशीर्वाद दिया और मुस्किराकर अमीनाबाद की ओर चला। मैं खड़ा-खड़ा उसे देखता रहा, जब तक वह दृष्टि से ओझल नहीं हो गया।

['माधुरी', मासिक, लखनऊ, नवम्बर, 1936। **सुकुल की बीवी** में संकलित]

सुकुल की बीवी

बहुत दिनों की बात है। तब मैं लगातार साहित्य-समुद्र-मन्थन कर रहा था। पर निकल रहा था केवल गरल। पान करनेवाले अकेले महादेव बाबू ('मतवाला'-सम्पादक)।—शीघ्र रत्न और रम्भा के निकलने की आशा से अविराम मुझे मथते जाने की सलाह दे रहे थे। यद्यपि विष की ज्वाला महादेव बाबू की अपेक्षा मुझे ही अधिक जला रही थी, फिर भी मुझे एक आश्वासन था कि महादेव बाबू को मेरी शक्ति पर मुझसे भी अधिक विश्वास है। इसी पर वेदान्त-विषयक नीरस एक साम्प्रदायिक पत्र का सम्पादन-भार छोड़कर मनसा-वाचा-कर्मणा सरस कविता-कुमारी की उपासना में लगा। इस चिरन्तन चिन्तन का कुछ ही महीने में फल प्रत्यक्ष हुआ; साहित्य-सम्राट् गोस्वामी तुलसीदासजी की मदन-दहन-समयवाली दर्शन-सत्य उक्ति हेच मालूम दी, क्योंकि गोस्वामीजी ने, उस समय, दो ही दण्ड के लिए, कहा है—'अबला बिलोकहिं पुरुषमय अरु पुरुष सब अबलामयम्।' पर मैं घोर सुषुप्ति के समय को छोड़कर, बाकी स्वप्न और जाग्रत् के समस्त दण्ड, ब्रह्माण्ड को अबलामय देखता था।

इसी समय दरबान से मेरा नाम लेकर किसी ने पूछा, "हैं ?"

मैंने जैसे वीणा-झंकार सुनी। सारी देह पुलकित हो गयी, जैसे प्रसन्न होकर पीयूषवर्षी कण्ठ से साक्षात् कविता-कुमारी ने पुकारा हो, बड़े अपनाव से मेरा नाम लेकर। एक साथ कालिदास, शेक्सपियर, बकिमचन्द्र और रवीन्द्रनाथ की नायिकाएँ दृष्टि के सामने उतर आयीं। आप ही एक निश्चय बँध गया—यह वही हैं, जिन्हें कल कार्नवालिस स्क्वायर पर देखा था—टहल रही थीं। मुझे देखकर पलकें झुका ली थीं। कैसी आँखें वे!—उनमें कितनी बातें!—मेरे दिल के साफ आईने में उनकी सच्ची तस्वीर उतर आयी थी, और मैं भी वायु-वेग से उनकी बगल से निकलता हुआ, उन्हें समझा आया था कि मैं एक अत्यन्त सुशील, सभ्य, शिक्षित और सच्चरित्र युवक हूँ। बाहर आकर, गेट पर, एक मोटर खड़ी देखी थी। जरूर वह उन्हीं की मोटर थी। उन्होंने ड्राइवर से मेरा पीछा करने के लिए कहा होगा। उससे पता मालूम कर, नाम जानकर, मिलने आयी हैं। अवश्य यह बेथून-कालेज की छात्रा हैं। उसी के सामने मिली थीं। कविता से प्रेम होगा। मेरे छन्द की स्वच्छन्दता कुछ आयी होगी इनकी समझ में, तभी बाकी समझने के लिए आयी हैं।

उठकर जाना अपमानजनक जान पड़ा। वहीं से दरबान को ले आने की आज्ञा दी।

अपना नंगा बदन याद आया। ढकता, कोई कपड़ा न था। कल्पना में सजने के तरह-तरह के सूट याद आये, पर, वास्तव में, दो मैले कुर्ते थे। बड़ा गुस्सा लगा, प्रकाशकों पर। कहा, नीच हैं, लेखकों की कद्र नहीं करते। उठकर मुंशीजी के कमरे में गया, उनकी रेशमी चादर उठा लाया। कायदे से गले में डालकर देखा, फबती है या नहीं। ज़ीने से आहट नहीं मिल रही थी, देर तक कान लगाये बैठा रहा। बालों की याद आयी—उकस न गये हों। जल्द-जल्द आईना उठाया। एक बार मुँह देखा, कई बार आँखें सामने रेल-रेलकर। फिर शीशा बिस्तरे के नीचे दबा दिया। शॉ की 'गेटिंग मैरेड' सामने करके रख दी। डिक्शनरी की सहायता से पढ़ रहा था, डिक्शनरी किताबों के अन्दर छिपा दी। फिर तनकर गम्भीर मुद्रा से बैठा।

आगन्तुका को दूसरी मंजिल पर आना था। ज़ीना गेट से दूर था।

फिर भी देर हो रही थी। उठकर कुछ कदम बढ़ाकर देखा, बचपन के मित्र मिस्टर सुकुल आ रहे थे।

बड़ा बुरा लगा, यद्यपि कई साल बाद की मुलाकात थी। कृत्रिम हँसी से होंठ रँगकर उनका हाथ पकड़ा, और लाकर उन्हें बिस्तरे पर बैठाला।

बैठने के साथ ही सुकुल ने कहा, "श्रीमतीजी आयी हुई हैं।"

मेरी रूखी जमीन पर आषाढ़ का पहला दौंगरा गिरा। प्रसन्न होकर कहा, "अकेली हैं, रास्ता नहीं जाना हुआ, तुम भी छोड़कर चले आये, बैठो तब तक, मैं लिवा लाऊँ—तुम लोग देवियों की इज्जत करना नहीं जानते।"

सुकुल मुस्कराये। कहा, "रास्ता न मालूम होने पर निकाल लेंगी—ग्रैज्युएट हैं, ऑफिस में 'मतवाला' की प्रतियाँ खरीद रही हैं, तुम्हारी कुछ रचनाएँ पढ़कर—खुश होकर।"

मैं चल न सका। गर्व को दबाकर बैठ गया। मन में सोचा, कवि की कल्पना झूठ नहीं होती। कहा भी है, 'जहाँ न जाय रवि, वहाँ जाय कवि।'

कुछ देर चुपचाप गम्भीर बैठा रहा। फिर पूछा, "हिन्दी काफी अच्छी होगी इनकी ?"

"हाँ," सुकुल ने विश्वास के स्वर से कहा, "ग्रैज्युएट हैं।"

बड़ी श्रद्धा हुई। ऐसी ग्रैज्युएट देवियों से देश का उद्धार हो सकता है, सोचा। निश्चय किया, अच्छी चीज का पुरस्कार समय देता है। ऐसी देवीजी के दर्शनों की उतावली बढ़ चली, पर सभ्यता के विचार से बैठा रहा, ध्यान में उनकी अदृष्ट मूर्ति को भिन्न-भिन्न प्रकार से देखता हुआ।

एक बार होश में आया, सुकुल को धन्यवाद दिया।

सुकुल का परिचय आवश्यक है। सुकुल मेरे स्कूल के दोस्त हैं, साथ पढ़े। उन लड़कों में थे जिनका यह सिद्धान्त होता है कि सिर कट जाय, चोटी न कटे। मेरी समझ में सिर और चोटी की तुलना नहीं आयी; मैं सोचता था, पूंछ कट जाने पर जन्तु जीता है, पर जन्तु कट जाने पर पूंछ नहीं जीती; पूंछ में फिर भी खाल है, खून है, हाड़ और मांस है, पर चोटी सिर्फ बालों की है, बालों के साथ कोई देहात्म-बोध नहीं। सुकुल-जैसे चोटी के एकान्त उपासकों से चोटी की आध्यात्मिक व्याख्या कई बार सुनी थी, पर सग्रन्थि बालों के बल्ब में आध्यात्मिक इलेक्ट्रिसिटी का प्रकाश न मुझे कभी देख पड़ा, न मेरी समझ में आया। फलतः सुकुल की और मेरी अलग-अलग टोलियाँ हुईं। उनकी टोली में वे हिन्दू-लड़के थे, जो अपने को धर्म की रक्षा के लिए आया हुआ समझते थे, मेरी में वे लड़के, जो मित्र को धर्म से बड़ा मानते हैं, अतः हिन्दू, मुसलमान, क्रिस्तान सभी। हम लोगों के मैदान भी अलग-अलग थे। सुकुल का खेल अलग होता था, मेरा अलग। कभी-कभी मैं मित्रों के साथ सलाह करके सुकुल की हाकी देखने जाता था, और सहर्ष, सविस्मय, सप्रशंस, सक्लैप और सनयन-विस्तार देखता था। सुकुल की पार्टी-की-पार्टी की चोटियाँ, स्टिक बनी हुई, प्रतिपद-गति की ताल-ताल पर, सिर-सिर से हाकी खेलती हैं, वली मोहम्मद कहता था, जब ये लोग हाकी में नाचते हैं, वे चोटियाँ सिर पर ठेका लगाती हैं। फिलिप कहता था, See, the Hunter of the East has caught the Hindoos' forehead in a noose of hair. (देखो, पूरब के शिकारी ने हिन्दुओं के सिर को बालों के फन्दे में फँसा लिया है)। इस तरह शिखा-विस्तार के साथ-साथ सुकुल का शिक्षा-विस्तार होता रहा। किसी से लड़ाई होने पर सुकुल चोटी की ग्रन्थि खोलकर, बालों को पकड़कर ऊपर उठाते हुए कहते थे, मैं चाणक्य के वंश का हूँ।

धीरे-धीरे प्रवेशिका-परीक्षा के दिन आये। सुकुल की आँखें रक्त मुकुल हो रही थीं। एक लड़के ने कहा, सुकुल बहुत पढ़ता है; रात को खूंटी से बँधी हुई एक रस्सी से चोटी बाँध देता है, ऊँघने लगता है, तो झटका लगता है, जगकर फिर पढ़ने लगता है। चोटी की एक उपयोगिता मेरी समझ में आयी।

मैं कवि हो चला था फलतः पढ़ने की आवश्यकता न थी। प्रकृति की शोभा

देखता था। कभी-कभी लड़कों को समझाता भी था कि इतनी बड़ी किताब सामने पड़ी है, लड़के पास होने के लिए सिर के बल हो रहे हैं, वे उद्भिद्कोटि के हैं। लड़के अवाक् दृष्टि से मुझे देखते रहते थे, मेरी बात का लोहा मानते हुए।

पर मेरा भाव बहुत दिनों तक नहीं रहा। जब आठ-दस रोज इम्तहान के रह गये, एक दिन जैसे नाड़ी छूटने लगी। खयाल आते ही कि फेल हो जाऊंगा, प्रकृति में कहीं कविता न रह गयी; संसार के प्रिय मुख विकृत हो गये; पिताजी की पवित्र मूर्ति प्रेत की-जैसी भयकर दिखी; माताजी की स्नेह की वर्षा में अविराम बिजली की कड़क सुनायी देने लगी; वंश मर्यादा की रक्षा के लिए विवाह बचपन में हो गया था --नवीन प्रिया की अभिन्नता की जगह बंकिम दृगों का वैमनस्य-हलाहल क्षिप्त होने लगा; पुरजनों के प्रगाढ़ परिचय के बदले प्राणों को पार कर जानेवाली अवज्ञा मिलने लगी। इस समय एक दिन देखा, सुकुल के शीर्ण मुख पर अध्यवसाय की प्रसन्नता झलक रही है।

किताब उठाने पर और भय होता था, रख देने पर दूने दबाव से फेल हो जाने-वाली चिन्ता। फलतः कल्पना में पृथ्वी-अन्तरिक्ष पार करने लगा। कल्पना की वैसी उड़ान आज तक नहीं उड़ा। वह मसाला ही नहीं मिला। अन्त में निश्चय किया, प्रवेशिका के द्वार तक जाऊँगा, धक्का न मारूंगा, सभ्य लड़के की तरह लौट आऊंगा, अस्तु, सबके साथ गया। और-और लड़कों ने पूरी शक्ति लगायी थी, इस-लिए, परीक्षा-फल के निकलने से पहले, तरह-तरह से हिसाब लगाकर अपने-अपने नम्बर निकालते थे, मैं निश्चित, इसलिए निश्चिन्त था; मैं जानता था कि गणित की नीरस कापी को पद्माकर के चुहचुहाते कवित्तों से मैंने सरस कर दिया है; फलतः, परीक्षा समुद्र-तट से लौटते वक्त, दूसरे तो रिक्त-हस्त लौटे, मैं दो मुट्ठी बालू लेता आया; घर में पिता, माता, पत्नी, परिजन, पुरजन सबके लिए आवश्यकतानुसार उसका उपयोग किया।

मेरे अविचल कण्ठ से यह सुनकर कि सूबे में पहला स्थान मेरा होगा, अगर ईमानदारी से पर्चे देखे गये, लोग विचलित हो उठे। पिताजी तो गर्व से गर्दन उठाये रहने लगे। पर ज्यों-ज्यों फल के दिन निकट होते आये, मेरी आत्मा की वल्लरी सूखती गयी। वह जगह मैंने नहीं रक्खी थी कि पिताजी एक साल के लिए माफ कर देते। घर छोड़े बगैर निस्तार न देख पड़ा। एक दिन माताजी से मैंने कहा, "जगतपुर के जमींदारों ने बारात में चलने के लिए बुलाया है, और ऐसा कहा है, जैसे मेरे गये बगैर बारात की शोभा न बन पड़ती हो।" जमींदारों के आमन्त्रण से माताजी छलक उठीं, पिताजी को पुकारकर कहा, "सुनते हो, तुम्हारे सपूत जमींदारों के यहाँ उठने-बैठने लगे हैं, बारात में चलने का न्योता है।" पिताजी प्रसन्नता को दबाकर बोले, "तो चला जाय; जो कहे, कपड़े बनवा दो और खर्चा दे दो।" एकान्त में पत्नीजी मिलीं, बड़ी तत्परता से बोलीं, "वहाँ नाच देखकर भूल न जाइएगा।" "राम भजो," मैंने कहा, "क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्प विषया मतिः।" "मैं इसका मतलब भी समझूं ?" वह एक कदम आगे बढ़कर बोलीं, मन में निश्चय कर कि तुलना में मैंने उन्हें श्रेष्ठ बतलाया है। समझकर मैंने कहा, "कहाँ तुम्हारी बाँस-सी कोमल दुबली देह से सूरज का प्रकाश, कहाँ वह

जहर की भरी मोती रण्डी !" "चलो" कहकर वह गर्व-गुरु-गमन से काम को चल दीं।

समय पर कपड़े बने, और खर्चा भी मिला। पश्चात्, यथासमय, जगतपुर के जमींदारों की बारात के लिए रवाना होकर कुछ दूर से राह काटकर ऐन गाड़ी के वक्त मैं स्टेशन पहुँचा। वहाँ से ससुराल का टिकट लिया। रास्ते-भर में खासी मुहर्रमी सूरत बना ली। ससुरालवाले देखते ही दंग हो गये। ससुरजी, सासुजी और-और लोग घेरकर कुशल पूछने लगे। मैंने उखड़ी आवाज में कहा, "गाँव में एक खेत के मामले में फौजदारी हो गयी है, दुश्मनों के कई घायल हुए हैं, इसलिए पिताजी की गिरफ्तारी हो गयी है, गिरफ्तार होते वक्त उन्होंने कहा है, अपने ससुरजी से विवाह के करारवाले बाकी 300 रुपये लेकर, दूसरे दिन जिले में आकर जमानत से छुड़ा लेना।" ससुरजी सन्न हो गये। सासुजी रोने लगीं, और-और लोगों को काठ मार गया। ससुरजी के पास रु.ये नहीं थे। पर सासुजी घबरायीं कि ऐसे मौके पर मदद न की जायगी, तो त्रिपाठीजी कैद से छुटकर अपने लड़के की दूसरी शादी कर लेंगे। इस विचार से नथ, करधनी, पायजेब आदि कुछ गहने रेहन कर 150 रु. मुझे देती हुई बोलीं, "बच्चा, इससे ज्यादा नहीं हो सका; हम तो तुम्हारे सदा के ऋणी हैं; फिर धीरे-धीरे पूरा कर देंगे, त्रिपाठी से हाथ जोड़कर हमारी प्रार्थना है।"

मैंने उन्हें सान्त्वना दी कि बाकी रुपये लेने मैं उनके घर कभी न आऊँगा। एक विपत्ति की बात थी, वह इतने से टल जायगी। सासुजी मारे आनन्द के रोने लगीं। मैंने बड़ी भक्ति से उनके चरण छुए, और यथासमय स्टेशन आकर कलकत्ते का टिकट कटाया।

यहाँ से मेरे नये जीवन की नींव पड़ी। अखबारों में देखा, सुकुल प्रथम श्रेणी में पास हुआ है। चार साल बाद वह बी. ए. हुआ, एम. ए. हुआ, मैं मालूम करता रहा, अच्छी जगह पायी, अब परीक्षा समाप्त कर परीक्षक है; मैं ज्यों-का-त्यों; एक बार धोखा खाकर बराबर धोखा खाता रहा; एक परीक्षा की तैयारी न करके कभी पास न हो सका।—कितनी परीक्षाएँ दीं।

तब से यह आज सुकुल से मेरी मुलाकात है। एक बार सारा इतिहास मेरे मस्तिष्क में चक्कर लगा गया। अब वह पिताजी नहीं, माताजी नहीं, पत्नी नहीं, केवल मैं हूँ, और परीक्षा-भूमि, सामने प्रश्नों की अगणित तरंग-माला !

मैं विचार में था। जब आँख खुली, साकार सुघरता मेरे सामने थी, अविचल दृष्टि से मुझे देखती हुई। अंजलि बाँधकर नमस्कार किया, ललित अँगरेजी से संवर्द्धित करते हुए—"Good morning, poet of Vers Libre !" मैं उठा। नमस्कार कर सुकुल के नजदीकवाली कुर्सी पर बैठने के लिए बड़े अदब से हाथ बढ़ाकर बताया।

वह खड़ी थीं। लहराती हुई मन्द गति से चलीं। बैठकर मुझे देखकर मुस्कराती हुई बोलीं, "आप खूब लिखते हैं।"

प्यासा मृग-मरीचिका के सरोवर का व्यंग्य नहीं समझता। मुझे यह पहली

तारीफ मिली थी। इच्छा हुई, जाऊँ, महादेव बाबू को भी बुला लाऊँ, कहूँ कि अब अमृत निकलने लगा है, चुल्लू बाँधकर चलिए। लेकिन अभी उतने अमृत से मुझे ही अघाव न हुआ था। बैठा हुआ एकान्त भक्त की दृष्टि से देखता रहा।

रक्त अधरों के करारों से अमृत का निर्झर बहा, वह बोलीं, "सुकुल आपकी कविता नहीं समझते, मैं समझाती हूँ।"

सुकुल न रह सके। कहा, "ऐसा समझना वास्तव में कहीं नहीं देखा; असर भी क्या; चाहे कुछ न समझिए, पर सुनने से जी नहीं ऊबता। एम. ए. क्लास तक किसी प्रोफेसर के लेक्चर में यह असर न था।"

"हाँ-हाँ जनाब," देवीजी मेरुमूल सीधा करके बोलीं, "यह एम. ए. क्लास से आगे की पढ़ाई है, जब पास करके आये थे, हाथ-भर की चोटी थी, समझ में एक वैसी ही मेख।"

सुकुल की चोटी मेरी निगाह में सुकुल से अधिक परिचित थी। पर उनके आने पर मैंने उन्हें ही देखा था। चोटी सही-सलामत है या नहीं, मालूम करने के लिए निगाह उठायी कि देवीजी बोलीं, "अब तो चाँद है। सुकुल को सुकुल बनाते, सच कहती हूँ, मुझे बड़ी मिहनत उठानी पड़ी है।"

उन्हें धन्यवाद दूँ, हिम्मत बाँध रहा था कि बोलीं, "मैं स्वयं सुकुल की सह-धर्मिणी नहीं।"

मेरा रंग उड़ गया।

मुझे देखकर, मेरे ज्ञान पर हँसकर जैसे बोलीं, "सुकुल स्वयं मेरे सहधर्मी हैं।"

मैं साहित्यिका को तअज्जुब की निगाह देखने लगा।

इतने पर उनकी कृपा की दृष्टि मुझ पर पड़ी। बोलीं, "मैं आपको भी सह-धर्मी बनाना चाहती हूँ।"

मैं चौंका; सोचा, 'क्या यह द्रौपदीवाला धर्म है ?'

देवीजी ने कलाईवाली घड़ी देखी और उठकर खड़ी हो गयीं। भौंहें चढ़ाकर बोलीं, "बहुत देर हो गयी, चलिए, आपको लेने आयी थी, टैक्सी खड़ी है।" फिर बढ़कर, मेरे कन्धे पर हाथ रखकर बड़े ही मधुर स्वर से पूछा, "आप मुर्गी तो खाते हैं ?"

मैंने सुकुल को देखा। सुकुल सिर्फ मुस्कराये। समझकर मैंने कहा, "मेरा तो बहुत पहले से सिद्धान्त है।"

वह चलीं। मैं भी उसी तरह चद्दर ओढ़े सुकुल के पीछे चला।

रास्ते-भर तरह-तरह के विचार लड़ते रहे। समाज में इतनी आजादी नहीं। स्त्री के लिए तो बिलकुल नहीं। मुर्गी किसी तरह नहीं चल सकती। मैं खाता हूँ, छिपाकर। क्या यह स्त्री···, पर सुकुलजी तो सुकुल हैं।

सुकुल का घर आ गया। एक छोटा-सा दुमंजिला मकान। इधर-उधर बंगालियों की बस्ती। जगह-जगह कूड़े के ढेर; ऊपर मछलियों के सेल्हर, बदबू आती हुई।

हम लोग उतरे। भीतर पैठते दाहने हाथ का एक छोटा-सा बैठका। एक डेढ़ साल के बच्चे को दासी खेलाती हुई। श्रीमतीजी को देखकर बच्चा मा-मा करता हुआ उतावला हो गया; दोनों हाथ फैलाकर मा के पास आने के लिए कूदकर दासी की गोद में लटक रहा। लेकर देवीजी प्यार करने लगीं। सुकुल ने दासी को मकान खोलने के लिए कुंजी दी।

एक सहृदय बात कहना चाहिए, सोचकर मैंने कहा, "भूखा है, शायद दूध पीना चाहता है।"

देवीजी ने षोडशी के कटाक्ष से देखा। कहा, "दासी पिला देगी।"

मैंने पूछा, "क्या यह आपका बच्चा नहीं है?"

हँसकर बोलीं, "मेरा? है क्यों नहीं? पर दूध मेरे नहीं होता।"

मैंने निश्चय किया, शिक्षित महिला हैं, यौवन है, अभी मातृभाव नहीं आया, इसीलिए दूध नहीं होता। मन में विधाता को धन्यवाद देता रहा। "चलिए," वह बोलीं, "ऊपर चलें, एकान्त में बातें होंगी। सुकुल बाजार जायँगे मुर्गी लेने।"

बच्चे को फिर दासी के हवाले कर दिया। मैं उनके पीछे चला, यह सोचता हुआ कि एकान्त में सहधर्मी बनाने का प्रस्ताव न हो। चित्त को काबू में न कर सका, वह पुलकित होता रहा। यह कुछ सजा हुआ शयन-कक्ष था। "बैठिए," कहकर वह स्टोव जलाने लगीं। मैं आईने में उनकी पम्प करती तस्वीर देखता रहा।

चाय, पान और सिगरेट मेज पर लगाकर बैठीं। प्लेट पकड़कर मेरा प्याला बढ़ाती हुई मधुर कण्ठ से बोलीं, "शौक कीजिए।"

विनम्र भाव से मैंने दूसरी ओरवाली बात पकड़ी, और आँखों में ही उन्हें धन्यवाद दिया।

निगाह नीची कर मुस्कराती हुई उन्होंने अपना प्याला होंठों से लगाया। आधी चाय चुक जाने पर पूछा, "आप मेरे सहधर्मी हैं तो?"

पेट में, उतनी ही चाय से समन्दर लहराने लगा। ऊपर तूफान। श्याम तट पर भावों के कितने सजे सुदृढ़ मकान उड़ गये। ऐसी खुशी हुई। कहा, "आप लेकिन सुकुल की···"

"बीवी हैं—? हाँ, हूँ।"

"फिर मैं···"

"कैसे बीवी बना सकता हूँ?"

ऐसा धर्म-संकट जीवन में कभी नहीं पड़ा। मेरा सारा समन्दर सूख गया, तूफान न जाने कहाँ उड़ गया, सिर्फ रेगिस्तान रह गया, जो इस ताप से और तपने लगा।

मुझे चुपचाप बैठा अनमेल दृष्टि से देखता हुआ देखकर वह बोलीं, "आप बुरा न मानें, मैंने देखा है, मर्दों में एक पैदायशी नासमझी है; वह खासतौर से खुलती है जब औरतों से वे बातचीत करते हैं।"

मान लेने में ही बचत मालूम दी। मैंने कहा, "जी हाँ, औरतों के सामने उनकी समझ काम नहीं करती।"

"हाँ," वह बोलीं, "सुकुल को आदमी बनाती-बनाती मैं हार गयी। 'बीवी' को ही लीजिए। बीवी तो मैं सुकुल की भी हो सकती हूँ; हूँ ही, आपकी भी हो सकती हूँ।"

मैं सूख तो गया, पर प्रसन्नता फिर आयी। मैंने बिना कुछ सोचे एक उद्रेक में कह दिया, "हाँ।" "आप नहीं समझे" वह बोलीं, "आप साहित्यिक हैं तो क्या, फिर भी सुकुल के दोस्त हैं। बीवी की बहुत व्यापकता है।"

"जरूर," मैंने कहा।

उन्होंने कान न दिया। कहती गयीं—

"छोटी बहन, भतीजी, लड़की, भयहू (छोटे भाई की स्त्री) सबके लिए बीवी शब्द आता है। आपकी 'हाँ' किस अर्थ के लिए है ?"

मैंने डूबकर, कुछ कुल्ले पानी पीकर, जैसे थाह पायी। प्रसन्न होने की चेष्टा करते हुए, "बहन के अर्थ में।"

उन्होंने कहा, "देखिए,—मर्द की बात एक होती है।"

इज्जत बचाने के लिए और जोर देकर मैंने कहा, "हाँ, मुकर जाऊँ, तो मर्द नहीं।"

लजाकर उन्होंने एक बार अपनी आँख बचायीं। सँभलकर बोलीं, "हम बड़ी विपत्ति में हैं। साल-भर से छिपे फिरते हैं। मैं बचने के लिए सुकुल से उनके मित्रों का परिचय पूछती रही। सिर्फ आपका परिचय मुझे त्राण देनेवाला मालूम दिया। पर पता मालूम न था। साल-भर से लगा रहे हैं।"

मैंने चितवन देखी। आँखें सजल हो आयीं। कहा, "मैं तैयार हूँ।"

वह उठ खड़ी हुई। सामने आ, हाथ पकड़कर कहा, "भाईजी, मेरी रक्षा कीजिए। सुकुल का घर छुटा हुआ है, जिस तरह हो, मुझे अपने कुल में मिलाकर सुकुल से ब्याह साबित कीजिए।"

उसकी बड़ी-बड़ी आँखें; दो बूंद आँसू कपोलों से बहकर मेरी जाँघ पर टपके। मैं खड़ा हो गया, और अपनी चादर से उसके आँसू पोंछते हुए कहा, "तुम मेरे चाचाजी की लड़की, मेरी छोटी बहन हुईं। मेरे चाचा सस्त्रीक बंगाल में आकर गुजरे हैं। उनके एक कन्या भी थी, देश से आयी थी।"

आनन्द से भरकर, वह मेरा हाथ लेकर खेलने लगी। इसी समय सुकुल आये। पूछा, "रामकहानी हो गयी ?"

मैंने कहा, "अभी नहीं, कहानी से पहले भूमिका समाप्त हुई है।"

"सुकुल," भरकर उसने कहा, "कोलम्बस को किनारा दिखा।"

सुकुल बड़े प्रसन्न पदक्षेप से मेरे पास आये। पूछा, "चाय कुछ बची है ?"

"सब की सब," मैंने कहा, "पर ठण्डी हो गयी होगी, गरम करा लो।" बीवी की तरफ मुड़कर पूछा, "लेकिन तुम्हारा नाम अभी नहीं मालूम कर पाया।"

"जहाँ से आयी हूँ," उसने कहा, "वहाँ की पुखराज हूँ, यहाँ की पुष्कर-कुमारी।"

"कुँवर," मैंने कहा, "जल्दी करो, तुम्हारी मुर्गी स्वादिष्ट होगी, पर कहानी और स्वाददार हो। दोनों के लिए उतावली है ?"

कुँवर चाय बनाने लगी। पम्प करते समय सिर की साड़ी सरक गयी। फिर नहीं सँभाला। सुकुल की आँखें लोभी भौंरे की तरह उसके मुँह से लगी रहीं।

मैंने वहीं स्नान किया। सुकुल की धोती पहनी! भोजन किया—बिलकुल मुसलमानी खाना। वैसी ही चपातियाँ, वैसा ही कोरमा। वही चटनी, वही मुरब्बा, वही मिठाई। खाते हुए पूछा, "कुँवर, हिन्दू भोजन भी पका लेती हो या नहीं?" उसने 'हाँ' कहकर सुकुल की तरफ इशारा किया कि इनसे सीखा है।

"किताब छोड़कर खाना पकाते बड़ी परेशानी होती होगी तुम्हें।" मैंने कहा।

"सुकुल के लिए मैं सबकुछ सह सकती हूँ।" उसने जवाब दिया।

भोजन समाप्त हुआ। हम लोग उसी कमरे में गये। सुकुल बच्चे को लिये हुए।

पान खाते-खाते मैंने कहा, "अब देर न करो कुँवर।"

कुँवर एक बार नीचे गयी। दासी से कुछ कहकर दुमंजिले का दरवाजा बन्द कर आयी, और अपनी कुर्सी पर बैठी।

मैंने कहा, "अब शुभस्य शीघ्रम् होना चाहिए।"

कुँवर बोली, "मेरी माँ हिन्दू हैं। लखनऊ के वाजपेयी खानेवाले घर की। मैं उन्हीं से हूँ।"

"तब तो तुम कुलीन हो"—मैंने कहा, "तुम्हारे पिता का नाम?"

"उसका नाम कौन ले," कुँवर बोली, "आपके चाचाजी मेरे पिता हैं।"

कुँवर भर गयी। रुककर सँभलने लगी। बोली, "वाजपेयीजी को एक ब्याह से सन्तोष नहीं हुआ। दूसरी शादी की। तब मैं पेट में थी। बेहटा मेरा ननिहाल है। सिर्फ नानी थीं। ईश्वर की इच्छा, उनका देहान्त हो गया तब मेरी मा ने ससुर को कई चिट्ठियाँ लिखवायीं; पर उन्होंने खबर न ली। घर में किसी तरह गुजर न हुई, तब, लोटा-थाली बेचकर, उस खर्च से मा लखनऊ गयीं। घर में पैर रखते, ससुर और पति ने तेवर बदले। पति ने कहा, इसके हमल है, हमारा नहीं। ससुर ने कहा, बदचलन है, धरम बिगाड़ने आयी है, भली होती, तो चली न आती—वहीं के लोग परवरिश करते। पड़ोसियों की भी राय थी। सौत ने धरती उठा ली। एक रात को पति ने बाँह पकड़कर निकाल दिया। मा रास्तों पर मारी-मारी फिरीं। सुबह जिस आदमी ने उनके आँसू देखे, वह मुसलमान था। उस वक्त मा के दिल में हिन्दू, धर्म और भगवान के लिए कितनी जगह थी, आप सोच सकते हैं। निस्सहाय, अन्तःसत्त्वा, अबला केवल आश्रय चाहती थी, सहानुभूतिपूर्ण मनुष्यतायुक्त; वह एक मुसलमान से प्राप्त हुआ। मुसलमान की बातों में विधर्मीपन न था। एक स्त्री के प्रति पुरुष का जैसा चाहिए, वैसा आश्वासन, विश्वास और पौरुष था। मा आकृष्ट हुईं। वह मा को ले चला। आगे वह, पीछे मा। मा फूल के कड़े-छड़े-धोती पहने हुए, मुसलमान के पीछे चलती साफ हिन्दू-महिला मालूम दे रही थीं। ऐसे वक्त एक आर्यसमाजी की निगाह पड़ी। उसने पीछा किया। मुसलमान बढ़ता हुआ घर पहुँचा। पर उसे हिन्दू का पीछा करना मालूम हो गया था, इसलिए डरा। घर देखकर वह आर्यसमाजी पुलिस को खबर देने गया।

इधर मुसलमान ने भी पेशबन्दी शुरू की। एक दूसरे मुसलमान दोस्त के ताँगे में परदा लगाकर मा को दूसरे मुसलमान के घर कर आया। पुलिस की तहकीकात जारी हुई, साथ-साथ मा का एक मुसलमान के घर से दूसरे मुसलमान के घर होना। अन्त में वह एक ऐसे घर पहुँचीं जो एक इन्सपेक्टर, पुलिस, का था। इन्सपेक्टर साहब छुट्टी लेकर उस वक्त रह रहे थे। नौकरी पर चलते समय वह मा को भी साथ लेते गये। अकेले थे। मा सुन्दरी थीं।"

इच्छा हुई इन्सपेक्टर साहब का नाम पूछूँ, पर सोचा, वाजपेयीजी के नाम के साथ बाद को मालूम कर लूंगा।

कुँवर कहती गयी—"इस तरह इन्सपेक्टर साहब ने एक अबला की रक्षा की। मैं पैदा हुई। मेरे कई भाई-बहिन और हुए। मैं उर्दू पढ़ती थी; मुसलमान पिताजी का लखनऊ तबादला होने पर, अंग्रेजी पढ़ने लगी। नाइन्थ क्लास में थी, मा से पिताजी की बातचीत हुई, मेरी शादी के बारे में। मैं कमरे के बाहर खड़ी थी। उन्हें मालूम न था। उस रोज मुझे कुछ आभास मिला। पहले मा को नाराज होने पर जिन शब्दों में अभिहित करते थे, उनकी सचाई समझी। मेरी आँख खुली। बड़ी लज्जा लगी, हिन्दू मुसलमान इन दोनों शब्दों पर किसी की तरफदारी के लिए। एक रोज मा को रोककर मैंने पकड़ा। जो कुछ सुना और समझा था, कहा, और बाकी ब्यौरा समझाने के लिए विनय की। एकान्त में मा ने अपना सारा हाल सुनाया और ईश्वर का स्मरण कर, उनकी इच्छा कहकर खामोश हो गयीं। मुझे जातीय गर्व से घृणा हो गयी। मैंने कहा, मैं शादी नहीं करूँगी; जी-भर पढ़ना चाहती हूँ। बस, यहीं से मेरे विचार बदले। मैट्रीक्युलेशन पढ़कर मैं आई. टी. कालेज गयी, और दूसरे विषयों के साथ हिन्दी ली। एफ. ए. पास हो बी. ए. में गयी। आखिरी साल सुकुल को देखा।"

"सुकुल को देखा" कहने के साथ कुँवर का जैसे स्नेह का स्रोत फूट पड़ा। कुछ रस-पान कर मैंने कहा, "कुँवर, यहाँ अच्छी तरह वर्णन करो; हिन्दी के कहानी-लेखक और पाठक बहुत प्यासे हैं।"

कुँवर जमकर सीधी हुई। बोली, "सुकुल तब क्रिश्चियन कालेज में प्रोफेसर थे। प्रिंसिपल को आश्वासन दिया था कि ईसाई-धर्म को वह संसार में सर्वश्रेष्ठ धर्म मानते हैं, लेकिन बूढ़े पिताजी का लिहाज है, और वह दो-चार साल में चलते हैं, बाद को सुकुल क्रिश्चियन के अलावा दूसरा अस्तित्व नहीं रखते। कुछ निबन्ध भी प्रमाण के तौर पर लिखे। दूरदर्शी प्रिंसिपल ने तब सिफारिश की, और इन्हें जगह मिली। मेरे मकान के सामने ठहरे थे। बड़ी सँभाल से हैट लगाते थे कि चोटी कहीं से न देख पड़े, पगड़ी के भीतर विभीषण के तिलक की तरह। कभी मिसेज सुकुल आती थीं, कभी अकेले ठोंकते खाते थे। मुझे इतना जानते थे कि इस मकान से कोई कालेज जाती है। एक दिन की बात। मैं छत पर थी। शाम हो रही थी। सुकुल बराम्दे में बैठे थे। मौसम बरसात का। बादल मदन की वैजयन्ती बने हुए। ठण्डी हवा चल रही थी। पेड़-पौधे लोट-पोट। क्या कहूँ, मैं भी ऐसी हवा से लहरायी। बहुत पहले, कुछ ईंटें बाहर देखने के लिए जमाकर रक्खी थीं। उन पर खड़ी हो गयी। अवरोध के पार सिर उठाकर देखा। सुकुल बैठे थे। कई बार पहले

भी देख चुकी थी। सुकुल ने न देखा था। अब के निगाह एक हो ही गयी। सुकुल की जनरल की मूछें—बाघ का मुँह—कालिदास की आँखें! —माफ कीजियेगा, मैं बकरे को कालिदास कहती हूँ।—टकटकी बँध गयी। मुझे किसी ने जैसे गुदगुदा दिया। इतनी बिजली भर गयी कि मैंने फौरन सुकुल को फौजी सलामी दी। होश में आ, लजाकर बैठ गयी। फिर कई दिन आँखें नहीं मिलायीं, छिप-छिपकर देखती रही। सुकुल दूसरों की नजर बचाते कितने बेचैन थे! मुझे लुत्फ आने लगा, शिकार की तड़फड़ाहट से शिकारी को जो खुशी होती है। बराम्दे में सुबह-शाम बैठना सुकुल का काम हो गया। कहीं न जाते थे। इधर-उधर देखकर निगाह उसी जगह जमा देते थे। जगह खाली देखकर आह भरते थे। मैं दीवार के छेद से देखती थी। एक रोज फिर उसी तरह दर्शन देने की इच्छा हुई। ईंटें बिखेर देती थी। इकट्ठी कीं। खड़ी हुई। सूरज मुँह के सामने था। सुकुल ने देखते ही हाथ जोड़कर प्रणाम किया। मैं कागज का एक टुकड़ा ले गयी थी। उसकी गोली बनाकर उसे नीचे डाल दिया। उस पर सुकुल की जैसी निगाह थी, वैसी नादिरशाह की कोहनूर पर न रही होगी, न अंग्रेजों की अवध पर।"

मारे आकर्षण के मुझसे न रहा गया। पूछा, "क्या लिखा था?"

"कुछ नहीं," कुँवर बोली, "वह कोहनूर की ही तरह सफेद था। सुकुल ने उसे उठाकर बड़े चाव से खोला। और, यद्यपि उसमें कुछ न लिखा था, फिर भी, कुछ लिखा होता, तो सुकुल को इतनी सरसता न मिली होती—उस शून्य पृष्ठ पर विश्व की समस्त प्रेमिकाओं की कविता लिखी थी। सुकुल उसे लेकर बराम्दे में आये, और मुझे दिखाकर हृदय से लगा लिया। मैं मुस्किरा कर बिदा हुई। इस खाली के बाद भरी दागने लगी। रोज एक गोली चलाती थी, बिहारी, देव, पद्माकर, मतिराम आदि के दोहे और कवित्त लिख-लिखकर। अन्त में सुकुल का किला तोड़ लिया। एक दिन एक गोली में दागकर कि मैं तुम्हारे घर आऊँगी—रात-भर दरवाजा खुला रखना, गयी और अपने किले पर अधिकार कर समझा दिया कि इम्तहान के बाद स्थायी रूप से यहाँ आकर निवास करूँगी। सुकुल अपनी भूलों का बयान करते रहे—कब क्या करते क्या हो गया। पर मैंने कोई भूल की ही नहीं थी। मिसेज सुकुल से शादी करके सुकुल के पिताजी ने और सुकुल ने, मुमकिन है, भूल की हो। मैंने यह जरूर सोचा कि मेरे कारण सुकुल की मुसीबतें बढ़ सकती हैं, पर साथ ही यह खयाल आया कि कोई पहलू उठाइए, सामने मुसीबत है—अब कदम पीछे नहीं पड़ सकता। जहाँ सुकुल हर चाल पर चूकते थे, वहाँ मैंने पहले ही मात दी—इम्तहान में बैठी, और सुकुल के घर आकर मालूम किया, पास हुई, और रायबहादुर बन्नूलाल-हिन्दी-मेडल पाया। और फिर डिगरी लेने नहीं गयी। इम्तहान के बाद, जब एक रात को हमेशा के लिए सुकुल के घर आकर बैठी, बड़ा तहलका मचा, कुछ ढूंढ़-तलाश के बाद जब मैं नहीं मिली। निश्चय हुआ कि मेरी मर्जी से किसी ने मुझे भगाया। सुकुल पर शक हुआ। थाने में रिपोर्ट हुई। सुकुल मुझे कहाँ रक्खें—घबराये। दीवार से बनी एक आलमारी थी। आलमारी के नीचे एक तहखाना छोटा-सा था। मैं अब जैसी हूँ, तब इससे और दुबली थी।—जगन्नाथजी में, कुछ महीने हुए, कलियुग की मूर्ति देखी—कन्धे पर बीवी को

बैठाले मियाँ लड़के की उँगली पकड़े बाप को धतकार रहे हैं, मेरी इच्छा हुई, सुकुल कलियुग बनें। सुकुल को कई दफ़े कलियुग बना चुकी हूँ। धतकराने के लिए, कहती थी सामने समझो हिन्दूपनरूपी तुम्हारा बाप है। सुकुल धतकारते थे। गरज यह कि उस तहखाने में मैं आसानी से आ सकती थी। सुकुल से मैंने कहा, ऊपर कुछ कपड़े डाल दो, साँस लेने की जगह मैं कर लूँगी। आलमारी के ऊपरवाले ताकों में चीजें पहले से रक्खी थीं। बाहर से आलमारी बन्द कराके ताला लगवा देती थी। इस तरह दो-दो, तीन-तीन, चार-चार घण्टे दम साधने लगी। जब सुकुल कालेज जाते थे, तब बाहर से ताला बन्द कर लेते थे। जब लौटते थे, तब बाहर दरवाजा बन्द कर लेते थे। कोई पुकारता था, तो मैं तहखाने में जाती थी, आलमारी का ताला बन्द करके सुकुल बाहर निकलते थे। तीसरे दिन सही-सही पुलिस आ गयी। सुकुल उसी तरह बाहर निकले। प्रभातकाल था, बल्कि उषःकाल। दारोगा मुसलमान। डटकर तलाशी लेने लगा। आलमारी के पास आकर खड़ा हुआ। मैं समझ गयी, यह साँस की आहट ले रहा है। मैं मुँह से साँस लेने लगी। फिर आलमारी नहीं खोलवायी, दराज से देख-दाखकर चला गया। सुकुल उसे बिदा कर उसी तरह भीतर आये। मुझे निकाला। मैं खिलखिलाकर हँसी। फिर सुकुल से जल्द मकान बदलने के लिए कहा। तलाशी की खबर चारों तरफ फैली। सुकुल के गाँव भी पहुँची। सुकुल ने भी अब तक तलाशी का हाल लिखा, पर मकान बदलकर। यह मकान बड़ा था। बगल-बगल दो आँगन थे। मेरा खयाल रखकर लिया गया था। चिट्ठी पा सुकुल के भाई मिसेज सुकुल को लेकर आये। हम पहले से सतर्क थे। बड़े मकान मे सुकुल रहने लगे। मैं अपना गुप्त जीवन व्यतीत करती रही। मुझे कोई कष्ट न था; पर सुकुल की ड्यूटी बढ़ गयी। सौभाग्य कहूँ या दुर्भाग्य, 3-4 महीने रहकर मिसेज सुकुल बीमार पड़ीं; और 7-8 दिन के बुखार में उनका इन्तकाल हो गया। सुकुल के भाई चले गये थे। इन्होंने फिर किसी को नहीं बुलाया। किसी तरह मित्रों की मदद से उनका अन्तिम संस्कार कर दिया। सुकुल से पूछकर मैं तुम्हारा हाल मालूम कर चुकी थी; जानती थी, मुझे ही अपनी नाव खेनी है; पर तुम्हारा पता मालूम न कर सकी, इतनी ही चिन्ता रह-रहकर होती थी। मिसेज सुकुल के रहते मैंने मिस्टर सुकुल को तुम्हारे गाँव भेजा था। तुम्हीं जैसे मेरे सहारा हो सकते थे। मिसेज सुकुल के रहने पर मुझे कोई अड़चन न थी, न अब, न रहने पर, कोई सुविधा है। यह बच्चा मिसेज सुकुल का है। बड़ी कठिनाइयों से तुम्हारा पता लगा था। मिसेज सुकुल के गुजरने पर हम लोगों को विवश होकर लापता होना पड़ा। पास इतना धन था कि साल-डेढ़ साल का खर्च चल जाय। इतने दिनों बाद हमारी साधना सफल हुई।"

मैंने कुँवर को धन्यवाद दिया। कलकत्ते में ही उसका ब्याह कर दूँगा, यह आश्वासन देकर उससे बिदा ली।

सेठजी बैठे थे। एकान्त में ले जाकर यह हाल उनसे कहा। वह सहमत हो गये। कहा, मगर मुंशीजी से न कहियेगा, उनके पेट में बात नहीं रहती।

शुभ मूहूर्त में विवाह की तैयारियाँ होने लगीं। एक दिन आमन्त्रित हिन्दी-भाषी

विभिन्न प्रान्तों के साहित्यिकों की उपस्थिति में सुकुल के साथ श्रीपुष्करकुमारी का ब्याह कर दिया।

प्रीति-भोज में अनेक कनवजिए सम्मिलित थे। देश में यह शुभ सन्देश सुकुल के पहुँचने से पहले पहुँचा। कुँवर अब भी है।

['सुधा', मासिक, लखनऊ, सितम्बर, 1937। **सुकुल की बीवी** में संकलित]

श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी

श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी श्रीमान् पं. गजानन्द शास्त्री की धर्म-पत्नी हैं। श्रीमान् शास्त्रीजी ने आपके साथ यह चौथी शादी की है, धर्म की रक्षा के लिए। शास्त्रिणी-जी के पिता को षोडशी कन्या के लिए पैंतालीस साल का वर बुरा नहीं लगा, धर्म की रक्षा के लिए। वैद्य का पेशा अख्तियार किये शास्त्रीजी ने युवती पत्नी के आने के साथ 'शास्त्रिणी' का साइन-बोर्ड टाँगा, धर्म की रक्षा के लिए। शास्त्रिणीजी उतनी ही उम्र में गहन पातिव्रत्य पर अविराम लेखनी चालना कर चलीं, धर्म की रक्षा के लिए। मुझे यह कहानी लिखनी पड़ रही है, धर्म की रक्षा के लिए।

इससे सिद्ध है, धर्म बहुत ही व्यापक है, सूक्ष्म दृष्टि से देखनेवालों का कहना है कि नश्वर संसार का कोई काम धर्म के दायरे से बाहर नहीं। सन्तान पैदा होने के पहले से मृत्यु के बाद—पिण्डदान तक जीवन के समस्त भविष्य, वर्तमान और भूत को व्याप्त कर धर्म-ही-धर्म है।

जितने देवता हैं, चूँकि देवता हैं, इसलिए धर्मात्मा हैं। मदन को भी देवता कहा है। यह जवानी के देवता हैं। जवानी जीवन-भर का शुभ मुहूर्त है, सबसे पुष्ट, कर्मठ और तेजस्वी देवता मदन, जो भस्म होकर नहीं मरे; लिहाजा यह काल और काल के देवता सबसे ज्यादा सम्मान्य, फलतः क्रियाएँ भी सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण, धार्मिकता लिये हुए। मदन को कोई देवता न माने तो न माने, पर यह निश्चय है कि आज तक कोई देवता इन पर प्रभाव नहीं डाल सका। किसी धर्म, शास्त्र या अनुशासन को यह मानकर नहीं चले, बल्कि, धर्म, शास्त्र और अनुशासन के माननेवालों ने ही इनकी अनुवर्तिता की है। यौवन को भी कोई कितना निंद्य कहे, चाहते सब हैं, वृद्ध सर्वस्व भी स्वाहा कर। चिह्न तक लोगों को प्रिय हैं—खिजाब की कितनी खपत है! धातु-पुष्टि की दवा सबसे ज्यादा बिकती है। साबुन, सेण्ट, पाउडर, क्रीम, हेजलीन, वेसलीन, तेल-फुलेल के लाखों कारखाने हैं और इस दरिद्र देश में। जब न थे, तब रामजी और सीताजी उबटन लगाते थे। नाम और प्रसिद्धि कितनी है—संसार की सिनेमा-स्टारों को देख जाइए। किसी शहर में गिनिए—कितने सिनेमा-हाउस हैं। भीड़ भी कितनी—आवारागर्द मवेशी काइन्ज हाउस में इतने न मिलेंगे। देखिए—हिन्दू, मुसलमान, सिख, पारसी, जैन, बौद्ध, क्रिस्तान,

सभी; साफा, टोपी, पगड़ी, कैप, हैट और पाग से लेकर नंगा सिर—घुटन्ना तक, अद्वैतवादी, विशिष्टाद्वैतवादी, द्वैतवादी, द्वैताद्वैतवादी, शुद्धाद्वैतवादी, साम्राज्यवादी, आतंकवादी, समाजवादी, काजी, सूफी से लेकर छायावादी तक; खड़े-बेड़े, सीधे-टेढ़े सब तरह के तिलक-त्रिपुण्ड; बुरकेवाली, घूंघटवाली, पूरे और आधे और चौथाई बालवाली, खुली और मुंदी चश्मेवाली आँखें तक देख रही हैं। अर्थात् संसार के जितने धर्मात्मा हैं, सभी यौवन से प्यार करते हैं। इसलिए उसके कार्य को भी धर्म कहना पड़ता है। किसी के न कहने—न मानने से वह अधर्म नहीं होता।

अस्तु, इस यौवन के धर्म की ओर शास्त्रिणीजी का धावा हुआ, जब वह पन्द्रह साल की थीं अविवाहिता। यह आवश्यक था, इसलिए पाप नहीं। मैं इसे आवश्यकतानुसार ही लिखूंगा। जो लोग विशेषरूप से समझना चाहते हों, वे जितने दिन तक पढ़ सकें, काम-विज्ञान का अध्ययन कर लें। इस शास्त्र पर जितनी पुस्तकें हैं, पूरे अध्ययन के लिए पूरा मनुष्य-जीवन थोड़ा है। हिन्दी में अनेक पुस्तकें इस पर प्रकाशित हैं, बल्कि प्रकाशन को सफल बनाने के लिए इस विषय की पुस्तकें आधार मानी गयी हैं। इससे लोगों को मालूम होगा कि यह धर्म किस अवस्था से किस अवस्था तक किस-किस रूप में रहता है।

शास्त्रिणीजी के पिता जिला बनारस के रहनेवाले हैं, देहात के, पयासी, सरयूपारीण ब्राह्मण; मध्यमा तक संस्कृत पढ़े; घर के साधारण जमींदार, इसलिए आचार्य भी विद्वत्ता का लोहा मानते हैं। गाँव में एक बाग कलमी लँगड़े का है। हर साल भारत-सम्राट् को आम भेजने का इरादा करते हैं, जब से वायुयान-कम्पनी चली। पर नीचे से ऊपर को देखकर ही रह जाते हैं, साँस छोड़कर। जिले के अँगरेज हाकिमों को आम पहुँचाने की पितामह के समय से प्रथा है। यह भी सनातन-धर्मानुयायी हैं। नाम पं. रामखेलावन है।

रामखेलावनजी के जीवन में एक सुधार मिलता है। अपनी कन्या का, जिन्हें हम शास्त्रिणीजी लिखते हैं, नाम उन्होंने सुपर्णा रक्खा है। गाँव की जीभ में इसका यह रूप नहीं रह सका; प्रोग्रेसिव राइटर्स की साहित्यिकता की तरह 'पन्ना' बन गया है। इस सुधार के लिए हम पं. रामखेलावनजी को धन्यवाद देते हैं। पण्डितजी समय काटने के विचार से आप ही कन्या को शिक्षा देते थे, फलस्वरूप कन्या भी उनके साथ समय काटती गयी और पन्द्रह साल की अवस्था तक सारस्वत में हिलती रही। फिर भी गाँव की वधू-वनिताओं पर, उसकी विद्वत्ता का पूरा प्रभाव पड़ा। दूसरों पर प्रभाव डालने का उसका जमींदारी स्वभाव था, फिर संस्कृत पढ़ी, लोग मानने लगे। गति में चापल्य उसकी प्रतिभा का सबसे बड़ा लक्षण था।

उन दिनों छायावाद का बोलबाला था, खासतौर से इलाहाबाद में लड़के पन्त के नाम की माला जपते थे ध्यान लगाये। कितनी लड़ाइयाँ लड़ीं प्रसाद, पन्त और माखनलाल के विवेचन में। भगवतीचरण बायरन से आगे हैं, पीछे रामकुमार, कितनी ताकत से सामने आते हुए। महादेवी कितना खींचती हैं।

मोहन उसी गाँव का इलाहाबाद विश्वविद्यालय में बी. ए. (पहले साल) में पढ़ता था। यह रंग उस पर भी चढ़ा और दूसरों से अधिक। उसे पन्त की प्रकृति

प्रिय थी, और इस प्रियता से जैसे पन्त में बदल जाना चाहता था। संकोच, लज्जा, मार्जित मधुर उच्चारण, निर्भीक नम्रता, शिष्ट आलाप, सजधज उसी तरह। रचनाओं से रच गया। साधना करते सधी रचना करने लगा। पर सम्मेलन शरीफ अब तक नहीं गया। पिता हाईकोर्ट में क्लर्क थे। गर्मी की छुट्टियाँ में गाँव आया हुआ है।

सुपर्णा से परिचय है जैसे पर्ण और सुमन का। सुमन पर्ण के ऊपर है, सुपर्णा नहीं समझी। जमींदार की लड़की, जिस तरह वहाँ की समस्त डालों के ऊपर अपने को समझती थी, उसके लिए भी समझी। ज्यों-ज्यों समय की हवा से हिलती थी, सुमन की रेणु से रँग जाती थी; समझती थी, वह उसी का रंग है। मोहन शिष्ट था, पर अपना आसन न छोड़ता था।

सुपर्णा एक दिन बाग में थी। मोहन लौटा हुआ घर आ रहा था। सुपर्णा रँग गयी। बुलाया। मोहन फिर भी घर की तरफ चला।

"मोहन! ये आम बाबूजी दे गये हैं, ले जाओ। तकवाहा बाजार गया है।"

मोहन बाग की ओर चला। नजदीक गया तो सुपर्णा हँसने लगी, "कैसा धोका देकर बुलाया है? —आम बाबूजी ने तुम्हारे यहाँ कभी और भी भिजवाये हैं?" मोहन लजाकर हँसने लगा।

"लेकिन तुम्हारे लिए कुछ आम चुनकर मैंने रक्खे हैं। चलो।"

मोहन ने एक बार संयत दृष्टि से उसे देखा। सुपर्णा साथ लिये बीच बाग की तरफ चली, "मैंने तुम्हें आते देखा था, तुमसे मिलने को छिपकर चली आयी। तकवाहे को सौदा लेने बाजार (दूसरे गाँव) भेज दिया है। याद है मोहन?"

"क्या?"

"मेरी गुइँयों ने तुम्हारे साथ, खेल में।"

"वह तो खेल था।"

"नहीं वह सही था। मैं अब भी तुम्हें वही समझती हूँ।"

"लेकिन तुम पयासी हो। शादी तुम्हारे पिता को मंजूर न होगी।"

"तो तुम मुझे कहीं ले चलो। मैं तुमसे कहने आयी हूँ। दूसरे से ब्याह करना मैं नहीं चाहती।"

मोहन की सुन्दरता गाँव की रहनेवाली सुपर्णा ने दूसरे युवक में नहीं देखी। उसका आकर्षण उसकी मा को मालूम हो चुका था। उसका मोहन के घर जाना बन्द था। आज पूरी शक्ति लड़ाकर, मौका देखकर मोहन से मिलने आयी है। मोहन खिंचा। उसे यहाँ वह प्रेम न दिखा, वह जिसका भक्त था, कहा—

"लेकिन मैं कहाँ ले चलूँ?"

"जहाँ रहते हो।"

"वहाँ जो पिताजी हैं।"

"तो और कहीं।"

"खायेंगे क्या?"

खाना पड़ता है, यह सुपर्णा को याद न था। मोहन से लिपटी जा रही थी।

इसी समय तकवाहा बाजार से आ गया। देर का गया था। देखकर सचेत

करने के लिए आवाज दी। सुपर्णा घबरायी। मोहन खड़ा हो गया।

तकवाहा बाग आ सौदा देकर मोहन को जमींदार की ही दृष्टि से घूरता रहा। मतलब समझकर मोहन धीरे-धीरे बाग से बाहर निकला और घर की ओर चला।

तकवाहा धार्मिक था। जैसा देखा था, पं. रामखेलावनजी से व्याख्या समेत कहा। साथ ही इतना उपदेश भी दिया कि मालिक! पानी की भरी खाल है, कल क्या हो जाय! बिटिया रानी का जल्द ब्याह कर देना चाहिए।

पं. रामखेलावनजी भी धार्मिक थे। धर्म की सूक्ष्मतम दृष्टि से देखने लगे तो मालूम पड़ा कि सुपर्णा के गर्भ है, नौ-दस महीने में लड़का होगा। फिर? इस महीने लगन है—ब्याह हो जाना चाहिए।

जल्दी में बनारस चले।

पं. गजानन्द शास्त्री बनारस के वैद्य हैं। बैदकी साधारण चलती है, बड़े दाँव-पेंच करते हैं तब। पर आशा बहुत बढ़ी-चढ़ी है। सदा बड़े-बड़े आदमियों की तारीफ करते हैं और ऐसे स्वर से, जैसे उन्हीं में से एक हों। बैदकी चले इस अभिप्राय से शाम को रामायण पढ़ते-पढ़वाते हैं तुलसी-कृत; अर्थ स्वयं कहते हैं। गोस्वामीजी के साहित्य का उनसे बड़ा जानकार—विशेषकर रामायण का, भारतवर्ष में नहीं, यह श्रद्धापूर्वक मानते हैं। सुननेवाले ज्यादातर विद्यार्थी हैं, जो भरसक गुरु के यहाँ भोजन करके विद्याध्ययन करने काशी आते हैं। कुछ साधारण जन हैं, जिन्हें असमय पर मुफ्त दवा की जरूरत पड़ती है। दो-चार ऐसे भी आदमी, जो काम तो साधारण करते हैं, पर असाधारण आदमियों में गप लड़ाने के आदी हैं। मजे की महफिल लगती है। कुछ महीने हुए, शास्त्रीजी की तीसरी पत्नी का असच्चिकित्सा के कारण देहान्त हो गया है। बड़े आदमी की तलाश में मिलनेवाले अपने मित्रों में शास्त्रीजी बिना पत्नीवाली अड़चनों का बयान करते हैं, और उतनी बड़ी गृहस्थी आठाबाठा जाती है—इसके लिए विलाप। सुपात्र सरयूपारीण ब्राह्मण हैं; मामखोर सुकुल।

पं. रामखेलावनजी बनारस में एक ऐसे मित्र के यहाँ आकर ठहरे, जो वैद्यजी के पूर्वोक्त प्रकार के मित्र हैं। रामखेलावनजी लड़की के ब्याह के लिए आये हैं, सुनकर मित्र ने उन्हें ऊपर ही लिया, और शास्त्रीजी की तारीफ करते हुए कहा, सुपात्र बनारस शहर में न मिलेगा। शास्त्रीजी की तीसरी पत्नी अभी गुजरी हैं; फिर भी उम्र अभी अधिक नहीं, जवान हैं। शास्त्री, वैद्य, सुपात्र और उम्र भी अधिक नहीं—सुनकर पं. रामखेलावनजी ने मन-ही-मन बाबा विश्वनाथ को दण्डवत् की और बाबा विश्वनाथ ने हिन्दू-धर्म के लिए क्या-क्या किया है, इसका उन्हें स्मरण दिलाया—वह भक्तवत्सल आशुतोष हैं, यह यहीं से विदित हो रहा है—मर्यादा की रक्षा के लिए अपनी पुरी में पहले से वर लिये बैठे हैं—आने के साथ मिला दिया। अब यह बन्धन न उखड़े, इसकी बाबा विश्वनाथ को याद दिलायी।

पं. रामखेलावनजी के मित्र पं. गजानन्द शास्त्री के यहाँ उन्हें लेकर चले। जमींदार पर एक धाक जमाने की सोची; कहा, "लेकिन बड़े आदमी हैं, कुछ लेन-

देनेवाली पहले से कह दीजिए, आखिर उनकी बराबरी के लिए कहना ही पड़ेगा कि जमींदार हैं।"

"जैसा आप कहें।"

"कुल मिलाकर तीन हजार तो दीजिए, नहीं तो अच्छा न लगेगा।"

"इतना तो बहुत है।"

"ढाई हजार ? इतने से कम में न होगा। यह दहेज की बात नहीं, बनाव की बात है।"

"अच्छा, इतना कर दिया जायगा। लेकिन विवाह इसी लगन में हो जाना चाहिए।"

मित्र चौंका। सन्देह मिटाने के लिए कहा, "भई, इस साल तो नहीं हो सकता।"

पं. रामखेलावनजी घबराकर बोले, "आप जानते ही हैं ग्यारह साल के बाद लड़की जितना ही पिता के यहाँ रहती है, पिता पर पाप चढ़ता है। पन्द्रह साल की है। सुन्दर जोड़ी है। लड़की अपने घर जाय, चिन्ता कटे। जमाना दूसरा है।"

मित्र को आशा बँधी। सहानुभूतिपूर्वक बोले, "बड़ा जोर लगाना पड़ेगा, अगले साल हो तो बुरा तो नहीं ?"

पं. रामखेलावनजी चलते हुए रुककर बोले, "अब इतना सहारा दिया है, तो खेवा पार ही कर दीजिए। बड़े आदमी ठहरे, कोई हमसे भी अच्छा तब तक आ जायगा।"

मित्र को मजबूती हुई। बोले, "उनकी स्त्री का देहान्त हुआ है, अभी साल भी पूरा नहीं हुआ। बरखी से पहले मंजूर न करेंगे। लेकिन एक उपाय है, अगर आप करें।"

"आप जो भी कहें, हम करने को तैयार हैं, भला हमें ऐसा दामाद कहाँ मिलेगा ?"

"बात यह कि कुल सराधें एक ही महीने में करवानी पड़ेंगी, और फिर ब्रह्म-भोज भी तो है, और बड़ा। कम-से-कम तीन हजार खर्च होंगे। फिर तत्काल विवाह। आप हजार रुपये भी दीजिए। पर उन्हें नहीं। अरे रे! —इसे वह अपमान समझेंगे। हम दें। इससे आपकी इज्जत बढ़ेगी, और आखिर हमें बढ़कर उनसे कहना भी तो है कि बराबर की जगह है? हजार जब उनके हाथ पर रक्खेंगे कि आपके ससुरजी ने बरखी के खर्च के लिए दिये हैं, तब यह दस हजार के इतना होगा, यही तो बात थी। वह भी समझेंगे।"

पं. रामखेलावनजी दिल से कसमसाये, पर चारा न था। उतरे गले से कहा, "अच्छी बात है।" मित्र ने कहा, "तो रुपये कब तक भेजियेगा ? अच्छा, अभी चलिए : देख तो लीजिए, विवाह की बातचीत न कीजियेगा, नहीं तो निकाल ही देंगे। समझिए—पत्नी मरी हैं।"

रामखेलावन दबे। धीरे-धीरे चलते गये। "लड़की कुछ पढ़ी भी है ?—पढ़ती थी—तीन साल हुए, जब मैं गया था, गवाही थी—मौका देखने के लिए ?" मित्र ने पूछा।

"लड़की तो सरस्वती है। आपने देखा ही है। संस्कृत पढ़ी है।"

"ठीक है। देखिए, बाबा विश्वनाथ हैं।" मित्र की तरह पर उतरे गले से कहा।

रामखेलावनजी डरे कि बिगाड़ न दे। दिल से जानते थे, बदमाश है, उनकी तरफ से झूठ गवाही दे चुका है रुपये लेकर; लेकिन लाचार थे; कहा, "हम तो आप में बाबा विश्वनाथ को ही देखते हैं। यह काम आपका बनाया बनेगा।"

मित्र हँसा। बोला, "कह तो चुके। गाढ़े में काम न दे, वह मित्र नहीं—दुश्मन है।" सामने देखकर, "वह शास्त्रीजी का ही मकान है, सामने।" था वह किराये का मकान। अच्छी तरह देखकर कहा, "हैं नहीं बैठक में; शायद पूजा में हैं।"

दोनों बैठक में गये। मित्र ने पं. रामखेलावनजी को आश्वासन देकर कहा, "आप बैठिए। मैं बुलाये लाता हूँ।"

पं. रामखेलावनजी एक कुर्सी पर बैठे। मित्रवर आवाज देते हुए ज़ीने पर चढ़े।

जिस तरह मित्र ने यहाँ रोब गाँठा था, उसी तरह शास्त्रीजी पर गाँठना चाहा। वह देख चुका था, शास्त्री खिजाब लगाते हैं, अर्थ—विवाह के सिवा दूसरा नहीं। शास्त्रीजी बढ़-बढ़कर बातें करते हैं, यह मौका बढ़कर बातें करने का है। उसका मन्त्र है, काम निकल जाने पर बेटा बाप का नहीं होता। उसे काम निकालना है।

शास्त्रीजी ऊपर एकान्त में दवा कूट रहे थे। आवाज पहचानकर बुलाया। मित्र ने पहुँचने के साथ देखा—खिजाब ताजा है। प्रसन्न होकर बोला, "मेरी मानिए, तो वह ब्याह कराऊँ, जैसा कभी किया न हो, और बहू अप्सरा, संस्कृत पढ़ी, रुपया भी दिलाऊँ।"

शास्त्रीजी पुलकित हो उठे। कहा, "आप हमें दूसरा समझते हैं?—इतनी मित्रता—रोज की उठक-बैठक, आप मित्र ही नहीं—हमारे सर्वस्व हैं। आपकी बात न मानेंगे तो क्या रास्ता-चलते की मानेंगे?—आप भी!"

"आपने अभी स्नान नहीं किया शायद? नहाकर चन्दन लगाकर अच्छे कपड़े पहनकर नीचे आइए। विवाह करनेवाले जमींदार साहब हैं। वहीं परिचय कराऊँगा। लेकिन अपनी तरफ से कुछ कहिएगा मत नहीं तो, बड़ा आदमी है भड़क जायगा। घर की शेखी में मत भूलियेगा। आप जैसे उसके नौकर हैं। हाँ, जन्म-पत्र अपना हर्गिज न दीजियेगा। उम्र का पता चला तो न करेगा। मैं सब ठीक कर दूंगा। चुपचाप बैठे रहियेगा। नौकर कहाँ है?"

"बाजार गया है।"

"आने पर मिठाई मँगवाइयेगा। हालाँकि खायेगा नहीं। मिठाई से इनकार करने पर नमस्कार करके सीधे ऊपर का रास्ता नापियेगा। मैं भी यह कह दूंगा, शास्त्रीजी ने आधे घण्टे का समय दिया है।"

शास्त्री गजानन्दजी गद्गद हो गये। ऐसा सच्चा आदमी यह पहला मिला है, उनका दिल कहने लगा। मित्र नीचे उतरा और मित्र से गम्भीर होकर बोला, "पूजा में हैं, मैं तो पहले ही समझ गया था। दस मिनट के बाद आँख खोली, जब

मैंने घण्टी टिनटिनायी। जब से स्त्री का देहान्त हुआ है, पूजा में ही तो रहते हैं। सिर हिलाकर कहा—चलो। देखिए, बाबा विश्वनाथ ही हैं। हे प्रभो! शरणागत-शरण! तुम्हीं हो—बाबा विश्वनाथ!" कहते हुए मित्र ने पलकें मूँद लीं।

इसी समय पैरों की आहट मालूम दी। देखा, नौकर आ रहा था। डाँटकर कहा, "पंखा झल। शास्त्रीजी अभी आते हैं।"

नौकर पंखा झलने लगा। वैद्य का बैठका था ही। पं. रामखेलावनजी प्रभाव में आ गये। आधे घण्टे बाद ज़ीने में खड़ाऊँ की खटक सुन पड़ी। मित्र उठकर हाथ जोड़कर खड़ा हो गया, उँगली के इशारे पं. रामखेलावनजी को खड़े हो जाने के लिए कहकर। मित्र की देखा-देखी पण्डितजी ने भी भक्तिपूर्वक हाथ जोड़ लिये। नौकर अचम्भे से देख रहा था। ऐसा पहले नहीं देखा था।

शास्त्रीजी के आने पर मित्र ने घुटने तक झुककर प्रणाम किया। पं. राम-खेलावनजी ने भी मित्र का अनुसरण किया। "बैठिए, गदाधरजी," कोमल सभ्य कण्ठ से कहकर गजानन्दजी अपनी कुर्सी पर बैठ गये। वैद्यजी की बढ़िया गद्दीदार कुर्सी बीच में थी। पं. रामखेलावनजी आश्चर्य और हर्ष से देख रहे थे। आश्चर्य इसलिए कि शास्त्रीजी बड़े आदमी तो हैं ही, उम्र भी अधिक नहीं, 25 से 30 कहने की हिम्मत नहीं पड़ती।

शास्त्रीजी ने नौकर को पान और मिठाई ले आने के लिए भेजा और स्वाभा-विक बनावटी विनम्रता के साथ मित्रवर गदाधर से आगन्तुक अपरिचित महाशय का परिचय पूछने लगे। पं. गदाधरजी बड़े उदात्त कण्ठ से पं. रामखेलावनजी की प्रशंसा कर चले, पर किस अभिप्राय से वह गये थे, यह न कहा। कहा, "महाराज! आप एक अत्यन्त आवश्यक गृहधर्म से मुक्त होना चाहते हैं।"

पलकें मूँदते हुए, भावावेश में शास्त्रीजी ने कहा, "काशी तो मुक्ति के लिए प्रसिद्ध है।"

"हाँ, महाराज!" मित्र ने और आविष्ट होते हुए कहा, "वह छूट तो सबसे बड़ी मुक्ति है, पर यह साधारण मुक्ति ही है, जैसे बाबा विश्वनाथ के परमसिद्ध भक्त स्वीकारमात्र से इस भव-बन्धन से मुक्ति दे सकते हैं।" कहकर हाथ जोड़ दिये। पं. रामखेलावनजी ने भी साथ दिया।

हाँ, नहीं, कुछ न कहकर एकान्त धार्मिक दृष्टि को परम सिद्ध पं. गजानन्दजी शास्त्री पलकों के अन्दर करके बैठे रहे।

इसी समय नौकर पान और मिठाई ले आया। शास्त्रीजी ने खटक से आँखें खोलकर देखा, नौकर को शुद्ध जल ले आने के लिए कहकर बड़ी नम्रता से पं. रामखेलावनजी को जलपान करने के लिए पूछा। पं. रामखेलावनजी दोनों हाथ उठाकर जीभ काटकर सिर हिलाते हुए बोले, "नहीं महाराज, नहीं, यह तो अधर्म है। चाहिए तो हमें कि हम आपकी सेवा करें, बल्कि आपके सेवा सम्बन्ध में सदा के लिए—"

"अहाहा! क्या कही!—क्या कही!" कहकर, पूरा दोना उठाकर एक रस-गुल्ला मुँह में छोड़ते हुए मित्र ने कहा, "बाबा विश्वनाथजी के वर से काशी का एक-एक बालक अन्तर्यामी होता है, फिर उनकी सभा के परिषद शास्त्रीजी तो—"

शास्त्रीजी अभिन्न स्नेह की दृष्टि से प्रिय मित्र को देखते रहे। मित्र ने, स्वल्प-काल में रामभवन का प्रसिद्ध मिष्ठान्न उदरस्थ कर जलपान के पश्चात् मगही बीड़ों की एक नत्थी मुखव्यादान कर यथा-स्थान रक्खी। शास्त्रीजी विनयपूर्वक नमस्कार कर जीना तै करने को चले। उनके पीठ फेरने पर मित्र ने रामखेलावन-जी को पंजा दिखाकर हिलाते हुए आश्वासन दिया। शास्त्रीजी के अदृश्य होने पर इशारे से पं. रामखेलावनजी को साथ लेकर वासस्थल की ओर प्रस्थान किया।

रामखेलावनजी के मौन पर शास्त्रीजी का पूरा-पूरा प्रभाव पड़ चुका था। कहा, "अब हमें इधर से जाने दीजिए; कल रुपये लेकर आयेंगे। लेकिन इसी महीने विवाह हो जायगा।"

"इसी महीने—इसी महीने," गम्भीर भाव से मित्र ने कहा, "जन्मपत्र लड़की का लेते आइयेगा। हाँ, एक बात और है। बाकी डेढ़ हजार में बारह सौ का जेवर होना चाहिए, नया; आइएगा हम खरीदवा देंगे," दल्लाली की सोचते हुए—कहा, "आपको ठग लेगा। आप इतना तो समझ गये होंगे कि इतने के बिना बनता नहीं, तीन सौ रुपये रह जायँगे। खिलाने-पिलाने और परजों को देने को बहुत है। बल्कि कुछ बच जायगा आपके पास। फिज़ूल खर्च हो यह मैं नहीं चाहता। इसीलिए, ठोस-ठोस कामवाला खर्च कहा। अच्छा, नमस्कार!"

शास्त्रीजी का ब्याह हो गया। सुपर्णा पति के साथ है। शास्त्रीजी ब्याह करते-करते कोमल हो गये थे। नवीना सुपर्णा को यथाभ्यास सब प्रकार प्रीत रखने लगे।

बाग से लौटने पर सुपर्णा के हृदय में मोहन के लिए क्रोध पैदा हुआ। घर-वालों ने सख्त निगरानी रखने के अलावा, डर के मारे उससे कुछ नहीं कहा। उसने भी विरोध किये बिना विवाह के बहाव में अपने को बहा दिया। मन में यह प्रति-हिंसा लिये हुए, कि मोहन इस बहते में मिलेगा। और उसे हो सकेगा तो उचित शिक्षा देगी। शास्त्रीजी को एकान्त भक्त देखकर मन में मुस्करायी।

सुपर्णा का जीवन शास्त्रीजी के लिए भी जीवन सिद्ध हुआ। शास्त्रीजी अपना कारोबार बढ़ाने लगे। सुपर्णा को वैदक की अनुवादित हिन्दी पुस्तकें देने लगे, नाड़ी-विचार चर्चा आदि करने लगे। उस आग में तृण की तरह जल-जलकर जो प्रकाश देखने लगे, वह मर्त्य में उन्हें दुर्लभ मालूम दिया। एक दिन श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी के नाम से स्त्रियों के लिए बिना फीसवाला रोग परीक्षणालय खोल दिया—इस विचार से कि दवा के दाम मिलेंगे, फिर प्रसिद्धि होने पर फीस भी मिलेगी।

लेकिन ध्यान से सुपर्णा के पढ़ने का कारण कुछ और है। शास्त्रीजी अपनी मेज की सजावट तथा प्रतीक्षा करते रोगियों के समय काटने के विचार से 'तारा' के ग्राहक थे। एक दिन सुपर्णा 'तारा' के पन्ने उलटने लगी। मोहन की एक रचना छपी थी। यह उसकी पहली प्रकाशित कविता थी। विषय था 'व्यर्थ प्रणय'। बात बहुत कुछ मिलती थी। लेकिन कुछ निन्दा थी—जिस प्रेम से कवि स्वर्ग से गिरा जाता है—उसकी। काव्य की प्रेमिका का उसमें वही प्रेम दर्शाया गया था। सुपर्णा चौंकी फिर संयत हुई और नियमित रूप से 'तारा' पढ़ने लगी।

एक साल बीत गया। अब सुपर्णा हिन्दी में मजे में लिख लेती है। मोहन से उसका हाड़-हाड़ जल रहा था। एक दिन उसने पातिव्रत्य पर एक लेख लिखा। आजकल के छायावाद के सम्बन्ध में भी पढ़ चुकी थी और बहुत कुछ अपने पति से सुन चुकी थी। काशी हिन्दी के सभी वादों की भूमि है। प्रसाद काशी के ही हैं। उनके युवक पाठक शिष्य अनेक शास्त्रियों को बना चुके हैं। पं. गजानन्द शास्त्री गंगा नहाते समय कई बार तर्क कर चुके हैं, उत्तर भी भिन्न मुनि के भिन्न मत की तरह अनेक मिल चुके हैं। एक दिन शास्त्रीजी के पूछने पर एक ने कहा—"छायावाद का अर्थ है शिष्टतावाद; छायावादी का अर्थ है सुन्दर साफ वस्त्र और शिष्ट भाषा धारण करनेवाला; जो छायावादी है, वह सुवेश और मधुरभाषी है; जो छायावादी नहीं है वह काशी के शास्त्रियों की तरह अँगोछा पहननेवाला है या नंगा है।" दूसरे दिन दो थे। नहा रहे थे। शास्त्रीजी भी नहा रहे थे। "छायावाद क्या है।"—शास्त्रीजी ने पूछा। उन्होंने शास्त्रीजी को गंगा में गहरे ले जाकर डुबाना शुरू किया, जब कई कुल्ले पानी पी गये, तब छोड़ा; शिथिल होकर शास्त्रीजी किनारे आये, तब लड़कों ने कहा, "यही है छायावाद !" फलतः शास्त्रीजी छायावाद और छायावादी से मौलिक घृणा करने लगे थे, और जिज्ञासु षोडशी प्रिया को समझाते रहे कि छायावाद वह है, जिसमें कला के साथ व्यभिचार किया जाता है तरह-तरह से। आइडिया के रूप में, सुपर्णा-जैसी ओजस्विनी लेखिका के लिए इतना बहुत था। आदि से अन्त तक उसके लेख में प्राचीन पतिव्रतधर्म और नवीन छायावादी व्यभिचार प्रचारक के कण्ठ से बोल रहा था। शास्त्रीजी ने कई बार पढ़ा और पत्नी को सती समझकर मन-ही-मन प्रसन्न हुए। वह लेख सम्पादकजी के पास भेजा गया। सम्पादकजी लेखिका-मात्र को प्रोत्साहित करते हैं ताकि हिन्दी की मरुभूमि सरस होकर आबाद हो, इसलिए लेख या कविता के साथ चित्र भी छापते हैं। शास्त्रिणीजी को लिखा। प्रसिद्धि के विचार से शास्त्रीजी ने एक अच्छा-सा चित्र उतरवाकर भेज दिया। शास्त्रिणीजी का दिल बढ़ गया। साथ उपदेश देनेवाली प्रवृत्ति भी।

इसी समय देश में आन्दोलन शुरू हुआ। पिकेटिङ्ग के लिए देवियों की आवश्यकता हुई—पुरुषों का साथ देने के लिए भी। शास्त्रिणीजी की मारफत शास्त्रीजी का व्यवसाय अब तक भी न चमका था। शास्त्रीजी ने पिकेटिङ्ग में जाने की आज्ञा दे दी। इसी समय महात्माजी बनारस होते हुए कहीं जा रहे थे, कुछ घण्टों के लिए उतरे। शास्त्रीजी की सलाह से एक जेवर बेचकर, शास्त्रिणीजी ने दो सौ रुपये की थैली उन्हें भेंट की। तन, मन और धन से देश के लिए हुई इस सेवा का साधारण जनता पर असाधारण प्रभाव पड़ा। सब धन्य-धन्य कहने लगे। शास्त्रिणीजी पूरी तत्परता से पिकेटिङ्ग करती रहीं। एक दिन पुलिस ने दूसरी स्त्रियों के साथ उन्हें भी लेकर एकान्त में, कुछ मील शहर से दूर, सन्ध्या समय, छोड़ दिया। वहाँ से उनका मायका नजदीक था। रास्ता जाना हुआ। लड़कपन में वहाँ तक वह खेलने जाती थीं। पैदल मायके चली गयीं। दूसरी देवियों से नहीं कहा, इसलिए कि ले जाना होगा और सबके लिए वहाँ सुविधा न होगी। प्रातःकाल देवियों की गिनती में यह एक घटीं, संवाद-पत्रों ने हल्ला मचाया। ये तीन दिन

बाद विश्राम लेकर मायके से लौटीं, और शोक-सन्तप्त पतिदेव को और उच्छृङ्खल रूप से बड़बड़ाते हुए संवादपत्रों को शान्त किया—प्रतिवाद लिखा कि सम्पादकों को इस प्रकार अधीर नहीं होना चाहिए।

आन्दोलन के बाद इनकी प्रैक्टिस चमक गयी। बड़ी देवियाँ आने लगीं। बुलावा भी होने लगा। चिकित्सा के साथ लेख लिखना भी जारी रहा। यह बिल्कुल समय के साथ थीं। एक बार लिखा—'देश को छायावाद से जितना नुकसान पहुँचा है, उतना गुलामी से नहीं।' इनके विचारों का आदर नीम-राजनीतिज्ञों में क्रमशः जोर पकड़ता गया। प्रोग्रेसिव राइटर्स ने भी बधाइयाँ दीं और इनकी हिन्दी को आदर्श मानकर अपनी सभा में सम्मिलित होने के लिए पूछा। अस्तु शास्त्रिणीजी दिन-पर-दिन उन्नति करती गयीं। इस समय नया चुनाव शुरू हुआ। राष्ट्रपति ने कांग्रेस को वोट देने के लिए आवाज उठायी। हर जिले से कांग्रेस उम्मीदवार खड़े हुए। देवियाँ भी। वे मर्दों के बराबर हैं। शास्त्रिणीजी भी जौनपुर से खड़ी होकर सफल हुईं। अब उनके सम्मान की सीमा न रही। एम. एल. ए. हैं। 'कौशल' में उनके निबन्ध प्रकाशित होते थे। लखनऊ आने पर 'कौशल' के प्रधान सम्पादक एक दिन उनसे मिले और 'कौशल' कार्यालय पधारने के लिए प्रार्थना की। शास्त्रिणीजी ने गर्वित स्वीकारोक्ति दी।

'कौशल'-कार्यालय सजाया गया। शास्त्रिणीजी पधारीं। मोहन एम. ए. होकर यहाँ सहकारी है, लेकिन लिखने में हिन्दी में अकेला। शास्त्रिणीजी ने देखा। मोहन ने उठकर नमस्कार किया। 'आप यहाँ'' शास्त्रिणीजी ने प्रश्न किया। ''जी हाँ,'' मोहन ने नम्रता से उत्तर दिया, ''यहाँ सहायक हूँ।'' शास्त्रिणीजी उद्धत भाव से हँसीं। उपदेश के स्वर में बोलीं, ''आप गलत रास्ते पर थे!''

['माधुरी', मासिक, लखनऊ, जनवरी, 1938। **सुकुल की बीवी** में संकलित]

देवर का इन्द्रजाल

मेरे एक भाभी थीं—सगी नहीं, ताऊ की बहू। उनसे मेरे प्रेम की बात का अन्दाजा आप लगा सकते हैं—जब मैं पाँच साल का था, तब वह अठारह साल की, गौने आयी हुई। तभी से उनका जो प्रभाव मुझ पर पड़ा···?

लेकिन, फिर भी, जिन्दगी के पहलू बदलते हैं, मिठाई के साथ कुछ खटाई भी चलती है। मीठी भाभी की एक खटाई की याद आयी। कहता हूँ:

घर में दूसरी औरत न थी। मैं ढाई साल का था, जब माँ मरी थीं। रोटी पकाने का सवाल बड़े भाई साहब की शादी से हल किया गया था। भाभी का आना और मेरा मदरसा जाना करीब-करीब साथ-ही-साथ हुआ। भाभी के दो चिरंजीव

हो चुकने तक यह क्रम जारी रहा—यानी उनकी मिठाई के साथ इस खटाई का प्रयोग न हुआ था, जैसे सुप्रसिद्ध गांधी-भक्त काका कालेलकर का ताड़ी-प्रयोग। यह जरूर है कि काका साहब जैसे महान व्यक्ति हैं, वैसे उनके ताड़ी-प्रयोग में कइयों को जान देनी पड़ी; पर मेरी भाभी की मिठाई की खटाई में किसी को जान लेने-देने की जरूरत नहीं हुई।

मैं तेरहवें साल में था। तेरहवें साल तक की तालीम की तालिका की जरूरत न होगी। लेकिन, पृथ्वी सन्तरे की तरह गोल है, सूरज के चारों ओर घूमती है आदि अद्भुत बातों से भाभी पर मैंने अपना काफी प्रभाव डाल लिया था। इसी समय उन पर अधिक प्रभाव पड़ने की एक घटना और हुई। मेरे हाथ किसी तरह उन दिनों इन्द्रजाल की एक किताब लग गयी थी। उसमें मारन-मोहन, वशीकरण-उच्चाटन आदि के जन्त्र-मन्त्र-तन्त्र लिखे थे। भाभी उस किताब को जितने ताज्जुब से देखती थीं, ताजमहल, दि ग्रेट इमामबाड़ा, म्यूजियम और चिड़ियाखाने के दोनों तरफ बराबर रेंगनेवाले साँप को भी उतने से नहीं। इसी समय, एक रोज, रात के नौ बजे, भाभी अकेली अपने सोनेवाले कमरे में थीं। मंगल का दिन। मैं कमरे में ही था। सहसा मुझे इन्द्रजाल की एक बात याद आयी। मैंने तड़ाक से दरवाजा बन्द कर दिया, और चट से धोती उतारकर फेंक दी। भाभी घबरायीं। मैंने कहा, "भाभी, मैं आज एक मन्त्र सिद्ध करूँगा।" भाभी हतप्रभ होकर, एकटक, मुझे देखने लगीं। बात उनकी समझ में तब आयी, जब मैंने जूता उठाया और नंगे-नंगे लगा छछूंदर के पीछे चक्कर काटने, क्योंकि उलटे जूते से मारना था। छछूंदर-सिद्धि का प्रयोग, इन्द्रजाल में, ऐसे ही लिखा था।

बड़े परिश्रम के बाद, उलटे जूते से, मैंने छछूंदर मारी और नंगे-ही-नंगे, एक हाँडी में भरकर बाहर ले जाकर एक जगह उसे गाड़ा। लौटकर धोती पहनी।

दूसरे ही दिन बात बिजली की तरह घर-घर फैली। लोगों को, खास तौर से स्त्रियों को, पक्का विश्वास हो गया कि मैं सिद्ध हूँ। भाभी अपनी सारी शक्ति खर्च करके मेरा प्रचार कर रही थीं। भाई साहब ने भी सुना, लेकिन मेरे मारन-मोहन और वशीकरण-उच्चाटन में सिद्ध होने के डर से मुझसे बोले नहीं। कुछ ही दिन के अन्दर चारों ओर से बुलावे आने लगे—तरह-तरह के रोग झाड़ देने के लिए। इन्द्रजाल में लिखे अनुसार मैं रोगी का इलाज भी करने लगा और अपनी सिद्धि में मुझे भी शंका न रही, जब मेरे इलाज से लोग अच्छे होने लगे—यहाँ तक कि बुखार भी उतर जाने लगा।

पड़ोस में एक सुकलाइन रहती थीं। सुकलाइन शब्द में जितना बुढ़ापा है, उनमें उतनी ही जवानी थी। रिश्ते से वह मेरी बहिन लगती थीं। दुस्साहिक कार्य दो-एक उन्होंने किये थे, इसलिए भय कम था। भाभी भय की मूर्ति थीं। दोनों में मेरे सिद्ध होने और न होने का तर्क छिड़ा। भाभी इस पक्ष में थीं कि मैं सिद्ध हूँ, बहिन इस पक्ष में कि सब ढोंग है।

इसी समय भाभी ने मुझे बुलाया। अपने तर्क की बात छिपाकर मुझसे कहा, "लोग कहते हैं, तुझे जन्त्र-मन्त्र कुछ नहीं आता, तू ढोंग करता है!"

मुझसे बात सही न गयी। मैंने अकड़कर कहा, "जिसको विश्वास न हो, आजमा

ले।"

भाभी ने कहा, "अच्छा, आज देखती हूँ तेरी करामात। तू जो कुछ करना चाहता हो, कर।"

मैंने कहा, "अच्छा, तो मैं वशीकरण करता हूँ।"

यह कहकर मैं बाहर निकल गया और कनेर के पेड़ से एक फूल तोड़ लाया। मुझे विश्वास था ही कि मैं सिद्ध हूँ, मेरा मन्त्र सच है। भाभी की तरफ देखकर कहा, "मैं मन्त्र पढ़कर यह फूल दूँगा। इसे लेना होगा। बस, इसके बाद मैं सिद्ध हूँ या नहीं, देख लेना।"

भाभी को विश्वास था ही। वह घबरायीं। उन्होंने कहा, "नहीं, मुझे नहीं चाहिए। यही कहती हैं कि तुझे कुछ नहीं आता। इन्हें फूल दे।"

बहिनजी भीतर से तो हिल गयीं, लेकिन फिर भी अपनी शेख़ी दिखलाते हुए मुझसे पूछा, "इस वशीकरण से क्या होगा ?"

मैंने कहा, "मन्त्र के जोर से हमेशा मेरे पीछे लगे रहना होगा। मैं जहाँ-जहाँ जाऊँगा, पीछे-पीछे जाना होगा।"

बहिनजी हार गयीं। उन्होंने भाभी से कहा, "भई, मैं बहिन हूँ, मैं कैसे फूल लूँ ! तुम भाभी हो, तुमको उतना दोष नहीं।"

भाभी ने सिर पर सवार होते हुए कहा, "तो फिर क्यों कहती थीं सिद्ध नहीं है ? मैंने अपनी आँखों देखा है।"

['चकल्लस', साप्ताहिक, लखनऊ, भाभी-अंक (1938 ई. का उत्तरार्ध)। असंकलित]

जान की !

जिस रोज मिस मेयो कालिज-स्ट्रीट, कलकत्ता की सेकेंड-हैंड किताबों की दूकानों में अनुवादित रूसी पुस्तकों की खपत देख रही थीं, उस रोज उनकी आँख पर चढ़नेवाला पहला आदमी मैं था। इतने से निश्चय बँध जायगा कि मैं इस साहित्य का प्राचीन सहोदर हूँ। जब मैंने इस जमीन पर काम शुरू किया, यहाँ अकेले बाबू सम्पूर्णानन्दजी थे, जो समझ सकते थे, पर चूँकि मेरी कृति पर साहित्य का नकाब पड़ा रहता था, इसलिए उन्होंने इसे छुआ भी नहीं। अभी उस रोज फैसला हुआ कि मैं उनका समसामयिक हूँ। इधर, नौजवानों के साथ रहने के कारण, एक कदम और आगे बढ़ गया हूँ, यानी कम्यूनिस्ट हूँ। कांग्रेस सोशलिस्ट के नाम से हमें झेंप आती है। इस बार की बैठक से हमारे वन्द का निश्चय हो गया है कि यह लड़ाई जनता की लड़ाई है और फासिज़्म के विरुद्ध विजय पाना हमारे और विश्व के

कल्याण के लिए जरूरी है। हमें हर हालत में रूस का साथ देना है। भारत सरकार हमसे सहमत है, हमारे खिलाफ जब तक हम इस उसूल पर हैं, उसकी कोई कार्रवाई न होगी। बम्बई हमारे प्रचार का प्रधान केन्द्र है। हमारे कई अखबार भी निकलने लगे हैं। हिन्दुस्तान में हमने केन्द्र बनाये हैं। हर केन्द्र में हमारा एक आदमी रहेगा और उसकी परिधि में आनेवाले नगर और गाँवों में कम्यूनिज्म के सिद्धान्तों का प्रचार करेगा। मुझे दक्षिण युक्तप्रान्त के कुछ जिले मिले हैं।

इस समय मैं कर्वी में हूँ। चित्रकूट के पास, शंकर के यहाँ। पहुँचे अभी चौबीस घण्टे नहीं हुए। गरमियों के दिन, सुबह के सात का समय। दोमंजिला मकान। मैं पच्छिमवाले बरामदे में चटाई पर बैठा हूँ। यह मकान शंकर का निजी मकान नहीं, किराये का है; वह पास की मिल में साधारण अच्छी तनख्वाह पर फिटर का काम करता है। इसी जिले का रहनेवाला है। इस समय बाहर निकला हुआ है। उसकी आठ-नौ साल की बड़ी लड़की बैठी स्नेह से उमड़ती हुई कितनी प्रासंगिक-अप्रासंगिक बातें छेड़ रही है। कुछ में उसकी माँ का इशारा जान पड़ता है। मैं दूसरी तरफ की फुलवाड़ी के रंग-बिरंगे फूल और हरियाली का फर्श देखता हुआ उत्तर दे रहा हूँ। चाय का गर्म होता पानी सनसना रहा है।

शंकर मेरा लँगोटिया यार है। एक ही जगह हम पैदा हुए, रहे। हमारी बीवियाँ शादी के बाद ससुराल के नाम से एक ही जगह आयीं और रहीं। जैसी मेरी और शंकर की दोस्ती है, मुमकिन वैसी ही इन दोनों की रही हो। अब वह परदेशवाला सहवास नहीं रहा। पर मैं और शंकर काफी मिलते-जुलते रहे। परदेश छोड़ने से पहले, तार के द्वारा मेरे साथ शंकर को भी मालूम हुआ था कि मेरी स्त्री का देहान्त हो गया है। बात यह है कि शंकर की बीवी के लिए मेरे सम्बन्ध में कुछ भी अज्ञात नहीं। मैं जहाँ तक हूँ, वह उसे और बढ़कर समझ सकती है।

शंकर चाय नहीं पीता; इसलिए उसकी बीवी को चाय बनाना नहीं आता। पिछली शाम को साबित हो चुका है। मैंने कह दिया है, पानी गर्म हो जाने पर, बटलोई, पत्ती, दूध, शक्कर मेरे सामने रख दें—पीने का गिलास भी, मैं चाय बना लूंगा।

चाय का हिन्दुस्तानी सेट मेरे सामने रख दिया गया। लड़की को पिलाने के इरादे से एक गिलास मैंने और माँगा और अपने लिए छानकर चाय डालने लगा।

इसी समय ज़ीने पर किसी के चढ़ने की आहट मिली, मन्द-मन्द पदक्षेप। क्षण-भर बाद वह मूर्ति बरामदे से होती हुई उस कमरे की ओर चली जो रसोई से लगा था। मुझे जान पड़ा, एक युग बदल गया। ऐसी शान्त दृष्टि और मन्दगति मैंने नहीं देखी, जैसे इस स्त्री की विश्व की समस्त प्रकृति पर विजय हो, जैसे यह सबकुछ जानती है और बिना कहे बहुत कुछ कह रही है, और रूप?—मेरे रोएँ खड़े हो गये, उसी वक्त मेरे मन में आया, यह मेरे मन की मूर्ति है, कभी मेरे मन से बाहर नहीं निकली! सँभलकर भी मैं न सँभल सका।

वह स्त्री शंकर की स्त्री से दो मिनट बातचीत करके उसकी लड़की की पढ़नेवाली किताब हाथ में लिये बाहर निकली और वैसी ही शान्त चितवन से देखकर कहा, "माया, चलो।"

माया उठकर चुपचाप चल दी। वह ज़ीने से उतरने को हुई। मैं उस स्त्री को देखता रहा। उसने भूलकर भी मुझे नहीं देखा फिर भी जैसे मेरा सबकुछ देख लिया हो। मुझे ऐसा जान पड़ा, जैसे मेरा कुल स्वत्व इसने खींच लिया। अब यह जवान नहीं, अधेड़ है; आधे बाल पक चुके हैं; चेहरे पर कुछ झुर्रियाँ भी पड़ रही हैं; पर कितनी दृढ़ता ? उसमें ऐसी दृढ़ता नहीं थी सिर्फ चेहरा मिलता है। बीस साल हो गये। तब इसकी मुश्किल से बीस साल की उम्र थी लेकिन, वह मर चुकी है, और यह जिन्दा है।

मुझसे रहा नहीं गया। मैंने शंकर की स्त्री को बुलाया। वह मुस्कुराती हुई सामने आकर खड़ी हो गयी। समझ गयी कि इन्हें ज़ंग लग गया।

मैंने पूछा, "तुम इसे पहचानती हो ?"

"हाँ।"

"यह कौन है ?"

"यहाँ की मिस्ट्रेस।"

"इतना तो मेरी समझ में आ गया।"

"एक महिला के सम्बन्ध में अधिक जानकारी से आपको फायदा ?"

"तुमने उसे तो देखा है ?"

"हाँ, लेकिन, वह मर चुकी है और यह जिन्दा है। क्या अब भी आप समझते हैं यह आपके किसी निजी परिचय की हो सकती है ?"

इसी समय शंकर आया। उसे देखते ही उद्वेल होकर मैंने पूछा, "क्यों भई, यह माया को जो मिस्ट्रेस पढ़ाती हैं, उन्हें जानते हो ?"

शंकर ने मुँह बिगाड़ा, "पक्की छिनाल है। कानपुर के किसी गाँव की रहनेवाली है। कहते हैं पति बदमाश था, उसे सज़ा हो गयी; यह इधर-उधर फिरने लगी। किसी तरह यहाँ आयी, पैर जम गये। जानते तो हो इन लोगों को।"

[रचनाकाल : 1941 ई. । **देवी** में संकलित]

दो दाने

तूफान और बाढ़ के दिन बीत चुके हैं। हरा-भरा बंगाल बाहर से वैसा ही है, मगर भीतर से जला हुआ। पूर्वी मोर्चे पर कड़ी चढ़ाई है। कितने ही एरोड्रोम अमरीकन वायुयानों से भर चुके हैं। पूरब की गश्त जोरों पर है। रात को ब्लैकआउट। कलकत्ते में हाथ नहीं सूझता। सनसनी का बाजार गर्म है। चावल और धान से व्यापारी मारवाड़ियों ने अपनी कोठियाँ भर ली हैं। अन्न इतना महँगा हो गया है कि मोल नहीं लिया जाता।

गाँव के बाजार-के-बाजार खाली हो गये हैं। न पैसा है, न अन्न। पहले लोग उपास करने लगे। दिन में एक वक्त, फिर दो दिन में एक वक्त, बाद में यह भी मोहाल हो गया। पेड़ों की कोपलें उबालकर खाने लगे। कुछ दिन में ही हरा-भरा बंगाल ठूंठा हो गया। आदमी और ढोरों के पेट में पेड़ों के पत्ते चले गये। भूख की ज्वाला बढ़ती गयी। देहात में भीख न मिलने की वजह से लोग शहर के रास्ते दौड़े। कोई आधी दूर चलकर मरे, कोई पहुँचकर, मगर पेट में दाना न गया। धनिक-जन हथियार-बन्द सिपाहियों से अपने गोलों की रक्षा कराने लगे।

इसी समय कमला को सूझा, अपने परिवार को लेकर कलकत्ता चली जाय। कमला साधारण गृहस्थ की विधवा है। मौरूसी खेत भी कुछ बीघे हैं और साधारण गहने भी। हाथ में कुछ ही रुपये बच रहे हैं। गाँव में चौथाई लोगों को काल के गाल चले जाते और युवकों के पैर लड़खड़ाते देखकर उसने मन-ही-मन तय किया, जिस तरह दूसरी लावारिस युवतियों ने यौवन बेचकर अपने भाइयों की परवरिश की है, वह भी करेगी; नहीं तो अन्न के अभाव से सबके साथ-साथ खुद अपने को भी काल का ग्रास होते देखेगी।

बड़ी दृढ़ता से उसने छाती औंधी। दोनों लड़कों से बड़ी, बेटी चम्पा को, जो ब्याहने लायक पन्द्रह साल की है, कलकत्ता के बाजार में बैठा लेगी। कुछ सहज-ज्ञान से और कुछ पड़ोस की युवतियों की कहानियाँ सुनकर उसने इस पथ पर पैर जमाया। चम्पा को बड़े आदर से रखने लगी। और एक अच्छे दिन कलकत्ता के लिए रवाना हो गयी।

उसको किराये की कोठरी तलाश करने में जो दिक्कतें उठानी पड़ीं, उनका हाल छोड़ देते हैं। वह एक ऐसी ही कथा है कि एक किरायेदार ने अपनी मदद का ज़रिया निकाला कि अपने दो कमरे उसके रहने के लिए छोड़ दिये, किराया बीस रुपये माहवार लेकर।

दस-बारह रोज कमला को जेवर बेचते और दलाल लगाते लग गये। दलाल लोग चम्पा को देख गये और उससे बातचीत भी कर गये। इस तरह का अनुभव चम्पा को पहले कभी न हुआ था। मारे डर के कलेजा धड़क रहा था, मगर माँ की बात का सहारा था। इस अरसे में माँ ने बड़ी तालीम दी, बड़ा ढाँढ़स बँधाया, बड़ा दिल मजबूत किया।

बिहारी एक रोज शराब की दुकान पर पहुँचकर खड़ा हो गया।

झाबरमल को बकरों की सप्लाई में कई लाख रुपयों का मुनाफा हो चुका था। उनका सम्बन्ध गवर्नमेण्ट से नहीं, कण्ट्रैक्टर से था। बकरा सप्लायर झाबरमल सुहावने समय के साथ कदम बढ़ाते हुए बोटी और शोरबे का स्वाद ले चुके थे। फलतः बोतलवासिनी से भी प्रेम था। संगत के गुण से दूसरे खरीद-फरोख्त की तरह बाजार की वेश्याएँ भी थीं। वह अनुभवी बिहारी की आँख नहीं बचा सके। उनके बोतल लेकर निकलते ही बिहारी ने उँगलियों से अमरूद दिखाया। झाबरमल ने मतलब समझकर पूछा, "कहाँ ?"

बिहारी ने जवाब दिया, "बाबू, गृहस्थ। बहुत हंगामा न चलेगा।"

झाबरमल, "खाना-पीना ?"

बिहारी, "हाँ, मगर बहुत सँभलकर। माल नया है। कलकत्ते में न मिलेगा।"

झाबरमल की दोनों आँखों से कामुकता का दरिया उमड़ चला। पूछा, "कोई दोस्त अगर साथ हो ?"

बिहारी—"बाबू, हम इतना ही कहेंगे, फ्रेश माल है, अभी देहात से आया है। कलकत्ता शहर-भर में न मिलेगा।"

झाबरमल ने जमकर पूछा, "लेकिन यह तो बताओ···"

बिहारी—"बाबू, पहले माल देख लीजिए। आँखें हिरन की, बाल घुटने तक, रंग गोरा, चौदह-पन्द्रह साल की उमर। पेट है, बाबू, पेट, नहीं तो खानदानी घर है।"

झाबरमल को जैसे एक स्वास्थ्य मिला। पूछा, "पता क्या है ?"

बिहारी ने धीरे-से अपनी छाती ठोंककर कहा, "बाबू, हमीं ले चलेंगे। खिदमत में हमीं रहेंगे। नहीं तो ऐसा माल आप-जैसे बाबुओं से छूटकर गुण्डों के हाथ लगेगा।"

तभी झाबरमल के एक मित्र ने उसको पुकारा। झाबरमल ने अपने मित्र की ओर बढ़ते हुए कहा, "कल फिर इसी समय आओ।"

वहीं एक किनारे एक तरुण, जिसने फौज में अफसर की जगह स्वीकार की थी, चुपचाप खड़ा अधकटी बातें गौर से सुन रहा था। झाबरमल के चले जाने के बाद उसने बिहारी को बुलाया और जेब से एक रुपया देकर सिगरेट-दियासलाई खरीद लाने के लिए कहा।

पास ही उसकी मोटर खड़ी थी। बिहारी के खरीद लाने पर उसने सिगरेट और दियासलाई ले ली और बाकी पैसे बिहारी को वापस कर दिये। फिर मोटर पर बैठते हुए बिहारी को भी बैठने के लिए कहा।

बिहारी भलेमानुषों की डाल का बन्दर, कभी इस डाल पर, कभी उस डाल पर। संकेत मिलते ही मोटर में एक बगल बैठ गया। बैठते ही देखा, पायदान के पास एक बोतल रखी है। अफसर की इच्छा थी कि बिहारी की कुल बातें सुने, मगर उनकी तड़क-भड़क से बिहारी घबराता था कि लगी रोटी छूट न जाय। नहीं तो अपना मतलब गाँठने का श्रीगणेश कर देता। सिर्फ हिम्मत बँधती थी, बोतल को देखकर। मन-ही-मन उसने निश्चय किया कि यह फैशनेबुल बाबू रुपये के बाजार में मारवाड़ियों की बराबरी न कर सकेंगे।

अफसर ने पूछा, "तुम उससे क्या बातचीत कर रहे थे ?"

बिहारी ने मुस्तैदी से जवाब दिया, "रोटियों का सवाल था कि कोई रोजी लगा दें।"

तरुण अफसर अपने मन का भेद देना नहीं चाहता था। बातचीत का लुब्बोलवाब वह मजे में समझ चुका था, और अपनी तीखी साहित्यिकता के कारण मदद भी करना चाहता था, मगर बिहारी की हिम्मत ढीली रही।

अब तक मोटर अफसर के कमरे के नीचे वेलस्ली रोड पर आयी। वह उतर-कर अपने कमरे चला और बिहारी को भी बुलाया। बिहारी उसके पीछे हो

लिया। दूसरी मंजिल के एक अच्छे कमरे में उसका वास था। कई और कमरे थे। ड्राइवर मोटर गराज में ले गया। बैठकर सिगरेट सुलगाते हुए मुस्कराकर तरुण ने कहा, "काम पड़े तो यहाँ आना। हमारी जगह देख चुके, अच्छा, अब जा सकते हो।"

दूसरे दिन बिहारी फिर अपने ठिकाने पर गया और झाबरमल के लिए इन्तजार करने लगा। इससे पहले वह कमला से बड़ी-बड़ी बातें हाँक चुका था। कमला दिल पर पत्थर रखकर सुन चुकी थी। चम्पा सतीत्व की बड़ी-बड़ी कहानियों और बड़े-बड़े आदर्शों पर बड़ी-बड़ी आँखें फाडकर गौर कर चुकी थी।

"शैलाधिराज तनया नमयो न तस्थौ" वाली दशा चम्पा की थी। जो कुछ भी वह कर रही थी, प्रकृति के इंगित से, जैसे उसका अपना कोई बस नहीं है। रोज सैकड़ों आदमियों के मरने और भीख माँगते फिरने की खबरें सुनती थी और कुछ देखती भी थी। परिस्थिति को दूर तक समझने की ताकत न थी, न परिस्थिति के खिलाफ कदम उठाने की हिम्मत। दबे हृदय से उभरती आशा की किरण पकड़े हुए कमला ने सम्मति दी और चम्पा ने, माँ जैसा कहेंगी, वैसा होगा, कहा।

बीस रुपये पर तय हुआ। यह सब मालूम कर बिहारी गया था।

नियत समय पर झाबरमल आये। पहले की तरह शराब की दुकान से एक अद्धा खरीदा। बिहारी को पहले ही देख लिया था कि अपनी जगह पर खड़ा दीन भाव से ताड़ रहा है। खरीदकर चलती हुई टैक्सी बुलायी और बिहारी के साथ बैठ गया। एक साथी और था जो रास्ते के निकास पर खड़ा था, उसको भी बिठा लिया।

अफसर ने अपने ड्राइवर और नौकर को पहचनवा दिया था और गाड़ी से आकर दुकान के कुछ फासले पर गाड़ी के साथ छोड़ गया था। आज्ञा दी थी कि बिहारी की आँख बचाकर गाड़ी लेकर उसका पीछा करे, अगर गली में जाये तो एक आदमी साथ हो ले, जिस मकान में जैसे जाये उसका पूरा पता जल्द दे।

झाबरमल के चलने के साथ कुछ फासले से अफसरवाली गाड़ी भी पीछे लगी। झाबरमल की गाड़ी सीधी चलती गयी और नहर के पार नारिकेल डाँगा की एक मामूली गली में घुसी। पीछेवाली मोटर भी लगी रही। टैक्सी के रुकने पर पीछेवाली मोटर कुछ पहले ही रुक गयी। रात आठ का समय। बिहारी के साथ सेठजी किराया चुकाकर एक गली के भीतर घुसे। दूसरी मोटर के एक आदमी ने पीछा किया। मकान के दरवाजे पर सेठजी को खड़ा करके बिहारी भीतर गया। कुछ देर बाद सामनेवाली कोठरी में सेठजी को ले गया और उनके मित्र के साथ बैठाया। इधर का आदमी लौटा और सीधे अफसर को चलकर खबर दी।

जिस वक्त सेठजी भीतर बैठे थे, कमरा खाली था। फिर धीमी बत्ती अपने मन से जल रही थी। कमला का हाल बयान के परे था। हृदय के टुकड़े-टुकड़े हो रहे थे। पुरानी मर्यादा का बाँध टूट रहा था। दुख के आँसू उमड़कर सारा घर डूबा

देना चाहते थे। बच्चे सहम न जायँ, चम्पा घबरा न जाय कि आता हुआ दानों तूफान और बाढ़ में जैसे उड़ जाय और बह जाय। वह पत्थर से दिल को बाँध रही थी। काँपते हाथों भी बेटी को एक साफ साड़ी पहनाकर सजाया। बाल शाम को सँवार दिये थे। कुमारी की माँग में सेंदूर न था। आँख में जो ज्वाला थी, उसको समझदार ही समझता।

बिहारी रुपये के लिए अड़ा था। कमला चम्पा को सजाकर धीरे-धीरे ले आयी। कमरे के पास आते ही बिहारी ने रोका और चम्पा की बाँह पकड़कर सेठजी के पास ले गया। धीमे प्रकाश में सेठजी ने जो सौन्दर्य देखा, उससे अनुभवी व्यवसायी की आँखों में अँधेरा नहीं छाया। उसने और अच्छी तरह देखा। चम्पा प्रथा कुछ न जानती थी। आज उसकी विवाह की जैसी पहली रात है, दो प्रिय हैं। हृदय में कम्प है, लेकिन पुलक नहीं, आत्मा में कर्तव्यनिष्ठा है, लेकिन स्त्री-भाववाला सम्प्रदान नहीं।

बिहारी ने कहा, "बाबू यही है, गृहस्थ। और तो सब कहा जा चुका है। अगर रहना चाहें तो···आपको तो मालूम है।" चम्पा को बाँह पकड़कर एक बगल बैठा दिया। वह कुमारी की तरह सिर उठाये बैठी रही।

सेठजी ने दस-दस के दो नोट निकालकर चम्पा को दिये। चम्पा ले नहीं रही थी, बिहारी के डाँटने से ले लिया। बिहारी ने हाथ फैलाकर कहा, "हमको दे दो।"

सेठजी ने बात काटकर पूछा, "तुम्हारा कितना होता है ?"

बिहारी ने दोनों हाथ की उँगलियाँ और अंगूठे उठाकर दिखाये। सेठ की धनाढ्यता के पूरे चाँद को देखकर उसकी वाणी का सागर भी बिना उमड़े नहीं रहा—मुँह से भी आवाज निकली, "दस रुपये।"

कमला से न रहा गया। मर्यादा का बाँध टूट गया, कण्ठ-प्रवाह से निकला, "झूठ !"

सेठजी ने मुस्कराकर अपनी मातृभाषा में गाली देते हुए कहा, "खब्बीस, साले ? आधे-आधे का साझा है ? हमको तो चवन्नी भी नहीं मिलती।"

बिहारी ने कहा, "इसका आधा, बाबू !"

सेठजी ने पाँच रुपये का एक नोट निकालकर अपनी तरफ से उसको दिया और पूछा, "और किसको-किसको ले आये हो ?"

खुश होकर बिहारी ने खीस निपोड़ी और सिर हिलाया। कहा, "कोई नहीं, बाबू। आप पहले आदमी हैं।"

नासमझ चम्पा कुमारी की तरह मुस्करायी।

बिहारी ने कहा, "ये रुपये अपनी माँ को दे दो।"

चम्पा उठकर चली। उसको तालीम मिल चुकी थी, वह माँ की ओर बिहारी की आज्ञा मानकर चलेगी। उसकी चाल में, सेठजी ने देखा, कोई बाजारू गति नहीं। चलकर उसने माँ को दोनों नोट दिये। लेकर माँ ने धीरे से मुँह चूम लिया और आँसू पीकर सिर हिलाते हुए ढाढ़स बँधाया, "घबराना नहीं।"

सेठजी उठकर खड़े हो गये। बिहारी से पूछा, "तुम साले, भले बदन में दाद

की तरह लगनेवाले हो, इससे कौन-सा रिश्ता रखते हो ?"

बिहारी ने कहा, "अन्नदा है हमारी !"

सेठजी ने कहा, "यह कहो कि बहन है छोटी।"

बिहारी कुछ शर्माया, कुछ कच्चा पड़ा, सिगारी प्रभाव के कारण, मगर रुपये के अदब से दबकर कहा, "हाँ, बहन है, बाबूजी।"

सेठजी ने कहा, "तो अब तुम जाओ। तुम्हारा काम हो गया।"

बिहारी ने जवाब दिया, "हम भाई भी हैं, इस घर के दरबान भी हैं, पान-सिगरेट, खाना-पीना, कुछ मँगाना चाहें इसके लिए नौकर भी हैं, आपके जाने के बाद हम जायँगे।"

"अच्छा," सेठजी ने उठते ही कहा, "हमको मिर्जापुर (कलकत्ता) में काम है। हम चलते है।" बंगला में समझाकर कहा, "हम पहले हैं तो दूसरे की आशा नहीं रखते। इतना समझने के लिए काफी है।"

रुपये देकर दरवाजे के पास चम्पा खड़ी थी। सेठजी ने पूछा, "तुम्हारा नाम क्या है ?"

चम्पा ने बंगाली मधुर स्वर से यथोच्चारण कहा, "चम्पा !"

सेठजी ने बंगला में समझाया, "हमारी जगह दूसरा नहीं ले सकता, यह आदमी नौकर रहेगा।"

कहकर आगे बढ़े।

बिहारी की समझ में नहीं आया। आगे बढ़कर पूछा, "क्या बाबू, नापसन्द है ?"

मधुर मगर तीखा एक तमाचा बिहारी के गाल पर पड़ा।

तिलमिलाकर उसने जब आँख खोली, तब खम्भे की बिजली के प्रकाश में तरुण अफसर को खड़ा देखा। पीछे से सेठजी की आवाज आयी, "अब सवेरा हो गया, सवेरा।"

साहित्यिक अफसर ने समझा, हमारी तारीफ की है।

सेठजी का मतलब था, हम रुपये दे चुके हैं, सारी रात पार हो चुकी है। कल इसका राज़ लेंगे, जब यह यहाँ आया है। सेठजी जिस अफसर को पकड़े घूमते थे, वह इस अफसर के मातहत थे, इसकी दो-एक ढीली कार्रवाइयाँ उसको दिखा चुके थे। ये छाँह को पकड़ नहीं पाये, पकड़ने के इरादे से वहाँ तक आये हैं।

···उनके भी आदमी हैं। ये राज़ रखते और लेते हैं।

बिहारी को दूसरी चकाचौंध लगी, जब परिचित बाबूजी को सामने देखा, "आप हैं ?" सम्भ्रम से कहा।

अफसर पूरे बाबू की पोशाक में थे। पूछा, "क्या हो रहा था ?"

बिहारी बात टाल गया। चले गये सेठजी की तरफ उँगली उठाकर कहा, "यह हमारा साला चला गया।"

अफसर पूरी तरह नहीं समझे। बिहारी रास्ते तक दौड़ गया, देखने के लिए कि सेठजी हैं या चले गये। सेठजी उसी तरह की तंग गली में घुसे, जिसका

बिहारी को पता न लगा।

उसको हिम्मत हुई। बाबू साहब से उसने कहा, "आइए, हम आपकी भी मेहमानदारी करें। पेट, पेट, पेट। इतना काफी है, बाबू साहब।"

चम्पा के कमरे का दिया जल रहा था। खातिरदारी का बदला चुकाने के लिए वह बाबू साहब को सेठजी की जगह ले गया, और बैठाया।

दूसरे कमरे में कमला के पास जाकर साँस से बातचीत करनी शुरू की इसलिए कि दूसरे कमरे में भनक न जाय। समझाया—"यहाँ किसी का विश्वास न करो, अपना काम देखो, एक बाबूजी आये हैं, बड़े आदमी हैं, इनसे भी रुपये मिल सकते हैं, अब दुख के दिन दूर हुए।"

सेठजी के रुपये देकर जले जाने का घर-भर पर प्रभाव था। वे ये नहीं समझे दूसरे बाबू आये हैं।

बिहारी कमला और चम्पा को लेकर फिर दरवाजे चला। दोनों ने सोचा, वही बाबू हैं।

बिहारी चम्पा को लेकर कमरे के अन्दर गया। प्रकाश में चम्पा ने दूसरी सूरत देखी तो दिल में मुस्करा पड़ी। बाबू साहब उसको अभ्यर्थना समझे और चम्पा को गणिका।

बिहारी ने चम्पा की तरफ उँगली उठाकर चले गये सेठजी की तरफ इशारा करके समझाया, उनकी हैं। फिर दो दफे दस-दस की उँगलियाँ उठायीं और चम्पा की तरफ मोड़कर हटा दीं। फिर समझाया, अभी या कुछ देर बाद वह आदमी आ सकता है। और एक उँगली उठाकर चम्पा की बाँह में गड़ा दी।

बाबूजी ने पूछा, "यह कौन आदमी है?"

बिहारी ने कबूतर उड़ाया। कहा, "बाजार है, कौन जानता है कि कौन, कौन है!" भीतर से डर रहा था कि सेठ फिर न आ जाय।

तरुण साहित्यिक की रूखी करुणा चम्पा की समझ में न आयी।

अफसर ने अंग्रेजी गले में रूखी साहित्यिकता का स्तर भरकर दबंग से कहा, "यह आदमी अन्नचोर है। दूसरे का गला नापता फिरता है, इसके साथ बंगाली गृहस्थ बहू-बेटियों का मिलना कितना भयानक है, यह समझदार ही समझते हैं। हम किसी पेशे के खिलाफ नहीं, मगर हमारा एक उद्देश्य है। अगर तुम हमारी हो आओ तो हम रास्ता निकाल सकते हैं।"

निष्काम इस साहित्यिक देश-प्रेम के अन्दर से वासना की घोर बदबू निकल रही थी। चम्पा इतना ही समझी। चम्पा की माँ मारे घबराहट के काँपने लगी। उसकी समझ में नहीं आया कि ये क्या कह रहे हैं। बिहारी ने सोचा, बाबू शराब के नशे में हैं। जोर की हँसी आयी; दौड़कर बाहर निकल गया और कमला की बाँह पकड़कर हिलाते हुए शराब चढ़ाने की मुद्रा दिखाते और समझाते हुए कहा कि बाबू मदहोश हैं।

वज्र-गम्भीर बंगला में बाबू साहब ने कहा, "यह जो आदमी आया था, यह बदमाश है। इसने सैकड़ों की रोटियाँ मारी हैं। इसके-जैसे आदमियों के कारण देश में अकाल है, इसको पकड़ना होगा, इसका नाम बताओ।"

बिहारी ने तपाक से कहा, "बाबू श्यामलाल।"

तरुण साहित्यिक अफसर आग्रह भरी दृष्टि से चम्पा को देखकर उठे। बाबू श्यामलाल मुश्किल से खत्म हुए ब्लैक-आउट को उसके जीवन में फिर न लगा दें, इस डर से उठकर चले और कहा, "हमारे आदमी हो, फिर समझोगे कि हमसे तुम्हारा उपकार है या ऐसे गर्दन-मरोड़ हत्यारे से। तुम्हारी समझ का पत्थर उलट जायेगा तब समझ में आयेगा। हम फिर तुम लोगों से समझेंगे।"

कहकर विलायती और साहित्यिक चाल से बाबूजी बाहर निकले और अपना रास्ता लिया।

चले जाने पर कुछ दूर तक बिहारी पीछे लग गया। उन्होंने बिहारी को अपने घर बुलाया।

कमला ने चम्पा को बुलाकर पूछा, "इन दोनों में कौन अच्छा है?"

चम्पा ने कहा, "पहला।"

[रचनाकाल : 1946 ई.। 'नयी कहानियाँ', मासिक, दिल्ली, दिसम्बर, 1961, में प्रकाशित। असंकलित]

विद्या

विद्यासुन्दर संस्कृत की ऊँची कोटि की रचना है। सुन्दर कवि का नाम है, विद्या एक राजा की लड़की का। बंगाल में विद्यासुन्दर की कहानी, टप्पा वगैरह बहुत मशहूर है। कहा है कि विद्यासुन्दर पर 'चौरपंचाशिका' के नाम से श्रेष्ठकवि वररुचि ने मेघदूत की तरह की रचना की है। महाकवि वररुचि की रचना कविकुल-गुरु कालिदास के मेघदूत से नीची कोटि की है, ऐसा कहते झेंप आती है।

अद्यापि तां कनकचम्पकदामगौरीम्,
फुल्लारविन्दनयनां तनु-रोम-राजिम्।
सुप्तोत्थितां मदनविह्वलितालसाङ्गीम्,
विद्यां प्रमादगलितामिव चिन्तयामि॥

[अब तक उस सोने के चम्पे के हार की तरह गोरी, खिले कमल जैसी आँखों-वाली, मुलायम रोओं से सजी, सोकर उठी हुई, मदन से विह्वलित अलस अंग-वाली, प्रमाद निचोड़ती हुई जैसी, विद्या, की याद करता हूँ।]

श्यामनाथ लताकुंज के भीतर पड़ी बेंच पर पड़ रहा था। सामने गुलाब और सीजन फ्लावर्ज के बीसियों बेड्ज थे। चारों तरफ दूब-जमे पार पर यही सुहावना दृश्य था। बीच मे प्रायः डेढ़ सौ हाथ चौड़ा और दो सौ हाथ लम्बा, पानी से लबालब भरा तालाब था। खासी अच्छी बड़ी रोहुएँ, झुण्ड-के-झुण्ड, सूर्यास्त से कुछ पहिले,

खाना खाने के बाद, विहार कर रही थीं। दो तरफ से मोटर आने-जानेवाला पक्का रास्ता था। एक तरफ निकास की ड्योढ़ी थी जहाँ सिविल सर्जन रहते थे। भारी गेट से हाथी आते-जाते थे। नारियल, आम वगैरह पक्की सड़कों के किनारे-किनारे लगे हुए थे। पक्के घाट के दोनों ओर पान्थ-निवास [पान्थ-निवास उस पेड़ को कहते हैं जो केला जैसा होता है, जिसके डण्ठल से, सांग मारने पर, गिलास, लोटा-दो लोटा शीतल जल, पीने लायक अति-सुस्वादु, निकलता है।] की झाड़ें थीं। इसी का एक गिलास पानी और दो समोसे, एक सन्देस और एक मोतीचूर लिये एक परिचारिका कुंज की दूसरी तरफ की बेंच के सामने पड़ी टेबिल के पास गयी और ट्रे रख दिया। एम. ए. अंग्रेजी साहित्य की विद्यार्थिनी विद्या मिल्टन लिये Of man's first disobedience की पूरी-पूरी हकीकत की छानबीन करती भाव में डूबी थी। जलपान आया देखकर उठकर बैठ गयी। इधर श्यामनाथ—

त्वद्वापीषु पयस्त्वदीयमुकुरे ज्योतिस्त्वदीयांगणे
व्योम्नि व्योम त्वदीयवर्त्मनि धरात्वत्तालवृन्तेऽनिल:

[तुम्हारी वापी में पय, तुम्हारे आइने में ज्योति, तुम्हारे आँगन पर के आकाश में आकाश, तुम्हारी राह पर धरा, तुम्हारे ताल के पंखे में अनिल जाय।] का पाठ कर रहा था। जब मधुर आवाज आती सुनायी दी—श्याम, कुछ जलपान कर लो। श्याम उठकर विद्या की तरफ गया। 'चौरपंचाशिका' एक हाथ में दबी हुई थी। एक समोसा उठाकर खाया, फिर गिलास भर रखा रोज उठाकर पीने लगा। विद्या ने नाश्ता करके पान्थ-निवास का पानी पिया। नाश्ता करते-करते कहा—Shyam, you did not take a little of it even? [तुमने ज़रा भी नहीं लिया?]

श्याम—किंचित्पूर्वं गृहीतं मया, विद्ये, तदेतदत्यधिकं भवति। [कुछ पहले मैं ले चुका हूँ, विद्या, यह ज्यादा होगा।]

विद्या ने कहा—I offered Sanskrit upto B A. standard, but because of love, may be other unknown reason, I pick up English for M. A. and Doctorate. Perhaps I cannot satisfy you in Sanskrit conversation if you equally do not lack English to manage. [बी. ए. तक मेरी संस्कृत ली हुई थी, परन्तु प्रेम के कारण हो या दूसरे न-जाने किसी मतलब से मैंने एम. ए. के लिए इंगलिश चुनी, और आगे डाक्टरेट तक लेने का विचार है। शायद बातचीत में संस्कृत बोलती हुई तुमको मैं खुश न कर सकूँगी अगर वैसे ही तुमको अंग्रेजी के निबाह में दिक्कत नहीं है।]

श्याम—सत्यमायात्यन्तराय:। जानाम्यहं, कथ्यते च, परन्तु स्वरैर्नोच्यते। [सच है कि रुकावट पड़ती है। जानता हूँ और कहा भी जाता है, परन्तु शब्दों से पूरा न उतारा जा सकेगा।]

विद्या—It is very sweet and full of fascinations, if you be charmed sooner or later to master the language. [यह बड़ी मधुर और खुशनुमाइयों से भरी जबान है, अगर देर-सबेर अधिकारी बनाने के लिए यह तुमको खींच न ले।]

श्याम---कालिदासादधिकोऽधिष्ठिनोऽस्ति कोऽपि न मया ज्ञातं। स्थिते सत्यस्मिन्। अधिकरिष्यति कोप्यन्यो नाहमनुभवामि। [कालिदास से बड़ा लब्धकीर्तिवाला कोई है, मुझको नहीं मालूम; ऐसे के रहते कोई दूसरा अधिकार जमा लेगा ऐसा मुझको अनुभव नहीं होता।]

But what may be the language between if I like to stay perpetually with you in matrimonial knot ? Do you admit that Tulsidas in Hindi is in the van of world-poets and his Ramcharitmanasa is the best product ? [अगर हमेशा के लिए वैवाहिक-ग्रन्थि में बँधकर तुम्हारे साथ मुझको रहना हुआ तो बातचीत की समझौतेवाली कौन-सी भाषा होगी ? क्या तुम जानते हो कि हिन्दी के तुलसीदास संसार के कवियों के अग्रगण्य हैं और उनका रामचरितमानस सर्वोत्तम कृति है ?]—विद्या ने पढ़ाई के नशे से भरी बड़ी-बड़ी आँखें श्याम की आँखों पर रखते हुए कहा।

श्याम ने कहा—संस्कृतं, विशुद्धीकृतास्ति भाषा। आंग्लभाषामपि वदन्ति वैदेशिकाः बहुभाषा-मिश्रण-संजाता भवति। वयं संस्कृतोपचारिणो हिन्दीं समभावेन वदामः ? यदि न बाधते, उच्यते तदा। [संस्कृत। यह सँवारी हुई भाषा है। आंग्ल भाषा के लिए भी विदेशियों का कहना है कि कई भाषाओं के मेल से तैयार हुई है। हम संस्कृत को काम में लानेवाले समभाव से हिन्दी बोलते हैं, अगर रुकावट न हो तो, कहो।]

विद्या ने कहा—हाँ, हम बोल सकते हैं मगर हमको विलायत जाना होगा। मामा कहती थीं, रीत-रस्म, पहिनावा-उढ़ावा तौर जुदागाना रक्खेगा तो भाषा का हाथ और कहाँ तक फैलेगा कि हम निभ जायँगे—ये पुराने पचड़े हमारे बाधक न होंगे ?

श्याम—हाँ, ऐसी ही बात समझनी चाहिए जैसे मेरा नाम है श्याम और रंग है पीला। परन्तु कहा है—श्यामा, तप्तकाञ्चन-गौरांगी; पुनः, तन्वी श्यामा शिखरिदशना···।

"बाह्योद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या" जैसे विद्या के प्रासाद-शिखर पर विशाल मूनलाइट जला दी गयी। कुंज पहले से और सुनसान हो गयी। मछलियाँ लइया वगैरह दिये खाने को खाकर पानी के अन्दर चली गयीं। कुंज के पास की सनलाइट की बत्ती, जलानेवाले ने, स्टूल रखकर, चढ़कर, जला दी। तालाब के इधर-उधर की बत्तियाँ भी रोशन कर दी गयीं। सन्ध्या के प्राक्काल का दूसरा ही समा बँध गया। परिचारिका ट्रे लेकर चली गयी। विशाल मन्दिर से आरती होने के साथ बजते घड़ी-घण्टे की आवाज आने लगी। इसके बन्द होने पर मधुर तालस्वर से शहनाई बजने लगी। विद्या ने ललित अंजलि बाँधकर अपने इष्टदेव को नमस्कार किया। श्याम ने विद्या का अनुकरण करते हुए साथी का सच्चा उद्देश्य समझाया, गोकि भीतर से श्याम ब्रह्मवादी था, कलकत्ते के ठाकुर परिवार से उसका रिश्ता पहुँचता था। बगल में बैठे हुए श्याम ने कहा—पश्य, विद्ये, यदा पार्थक्यं वर्तते, अस्माकं अनुधावनीयं भवतु न वाऽस्माकं गुरुजनैर्नानुकार्यो दृश्यते कदाचिदुद्वाहबन्धः। [देखो विद्या ! जब फर्क मौजूद है, हम दोनों के बीच वह मान्य हो या

न हो (जैसे रोमियो जूलियट में) हमारे गुरुजनों द्वारा कदाचित् ऐसा विवाहबन्ध बरता नहीं जाता।]

विद्या—You mean, this greatness in riches and order more will not side with, in, but subside because of this great valolur of match's scholarship, as the bride is layman, not leman at all. [क्या तुम्हारा मतलब है धन और मान की यह ऊँचाई ज्यादा साथ पूरा न करेगी बल्कि वर की विद्वत्ता की विशाल कृति में डूबी जायगी, जैसे दूल्हन कोई मजदूरन हो; कोई परीजाद कतई नहीं।]

'सत्यमुक्तवती' [सच कहा] श्याम ने कहा, 'कालिदासे सर्वमेव दर्शनीयम्।' [कालिदास में यह सब देखने को मिलता है।]

आकाश में तारे नजदीकवाले उगते चले आ रहे हैं। चाँद का हिसाब मूनलाइट और सनलाइट से पूरा हुआ दिखता है। जैसे मारे खुशी के बीसियों चेहरों से जमीन पर उतर आया है। हवा सबके हृदयों को हृदय से लगाती हुई संगीत की ताल पर जैसे बहती चली जाती है। सन्तरी एक ड्योढ़ी से दूसरी ड्योढ़ी के सन्तरी को आवाज से पुकारकर फर्माइश की चीज भेजने के लिए कहता है जो उस ड्योढ़ी के पास के मालखाने से उपलब्ध है। रात के भोजन-पान के काम करनेवाले नौकर पक्के घाटपर बार-बार आते-जाते हुए रौनक बढ़ा रहे हैं। एक तरफ से चित्रशाला की वीणा की आवाज गूंज जाती है। सामने दूर की गारद के बरामदे पर पाँच-सात कसरती सिपाही लँगोटे बाँधकर कसरत कर रहे हैं।

विद्या ने कहा—If not Miltonic combustion, I do not dare keep Kalidas in front of the world-poets. Sorry that you slipped from Shakespearean style of idiomatic English. [अगर मिल्टनवाली आग नहीं, मेरी हिम्मत नहीं कि कालिदास को संसारके कवियों में सिरा रक्खूं। अफसोस है कि शेक्सपियर की बामुहाविरा अंग्रेजी स्टाइल से तुम फिसल गये।]

श्याम ने कहा—नास्माकं प्रतिरोधो वर्तते परन्तु हेयास्ते जनाः, मन्ये, सौष्ठवं नानुकुर्वन्ति, तस्मादपसरन्ति च। न पाशविक विकारेऽस्मि दानवः, परन्त्वनुगमनादागच्छामि, स्वकीयः पन्था हि प्रशस्ततरः। [हमारा विरोध नहीं, परन्तु हम उनको हेय समझते हैं जो सौष्ठव का अनुकरण छोड़ देते हैं और उससे हट जाते हैं। मैं पाशविक विकार-ग्रस्त दानव नहीं परन्तु अनुगमन करता हुआ, अपना ही रास्ता अधिक चौड़ा है, यह समझा।]

I follow your stately dictation, and as you are not in dark so also if not at finger's ends Sanskrit is not Latin to me, though I determine to select either Latin or Greek after complete quest for knowledge in English : so better if equally without bathing into the Ganges of English literature you keep reverence over your betters in other sections. [तुम्हारे ऊँचे निर्देशन को मैं मानती हूँ और जैसे तुम अँधेरे में नहीं वैसे ही अगर संस्कृत मेरी उँगलियों के पोरों में नहीं गिनी, मेरे लिए विजातीय दुरूह भाषा (Latin) नहीं, जब भी मैं समझती

हूँ; अंग्रेजी के ज्ञान की तलाश पूरी करने के बाद मैं पढ़ने के लिए लेटिन या ग्रीक चुनूंगी। इसलिए भला है अगर बराबरी के समझौते के साथ अंग्रेजी की गंगा नहाये बिना तुम दूसरी शाखाओं के बड़ों पर सम्मान रक्खो।]

'नास्माकं जाड्यमत्र' [इस विषय में हमारी जड़ता नहीं] श्याम ने कहा, 'सौष्ठवात् कथितं विना नान्यद्गृह्णामि।' [जबकि 'सौष्ठव से' कह चुका हूँ, 'और कुछ ग्रहण करने को मैं तैयार नहीं।']

विद्या ने कहा—"I admit you are true to your waters." [मानती हूँ कि तुम अपने मनोभाव के सच्चे हो।] आँखें झुक गयीं।

मोटर बढ़ती हुई सड़क के पास आकर लगी जो श्याम के सबसे नजदीक थी। श्याम ने कहा—विद्ये ! गच्छामि।

विद्या उठकर खड़ी हो गयी। श्याम नमस्कार करके मोटर की तरफ बढ़ा। श्याम को लेकर मोटर धीरे-धीरे विद्या की नजर से ओझल हो गयी।

['सरस्वती', मासिक, प्रयाग, सितम्बर, 1958। असंकलित]

परिशिष्ट

1. 'लिली' का समर्पण

प्रियश्री
श्री दुलारेलालजी के
दक्षिण यशोवर्धन
साहित्य-कर को
'लिली'

—'निराला'

लखनऊ
1.9.1933

2. 'लिली' की भूमिका

भूमिका

यह कथानक-साहित्य में मेरा पहला प्रयास है। मुझसे पहलेवाले हिन्दी के सुप्रसिद्ध कहानी-लेखक इस कला को किस दूर उत्कर्ष तक पहुँचा चुके हैं, मैं पूरे मनोयोग से समझने का प्रयत्न करके भी नहीं समझ सका। समझता, तो शायद उनसे पर्याप्त शक्ति प्राप्त कर लेता, और पतन के भय से इतना न घबराता। अतः अब मेरा विश्वास केवल 'लिली' पर है, जो यथा-स्वभाव अधखिली रहकर अधिक सुगन्ध देती है।

सविनय
—'निराला'

3. 'सखी' का समर्पण

प्रिय मास्टर कन्हैयालाल
के परिणय में
चारुशीला श्रीमती प्रतिभा देवी
को
सस्नेह "सखी"

लखनऊ
9.10.35

शुभचिन्तक
—"निराला"

4. 'सखी' की भूमिका

निवेदन

'सखी' मेरी छोटी कहानियों का दूसरा संग्रह है। ग्रह-दोष से बरी कोई जीवन नहीं, यह विचार कहानियों के लिए मुझे शंकित करता है; पर जीवन का जैसा साहस भी इनमें है—मुझे विश्वास है। जिन साहित्यिकों तथा पाठकों ने प्रथम प्रयास पर मुझे प्रोत्साहित किया था, उनका मैं कृतज्ञ हूँ। जिन्हें अच्छा नहीं लगा, मैं दुखी हूँ कि उनका मनोरंजन मुझसे न हुआ;—उनसे मेरी प्रार्थना है, कुछ देर के लिए अपने श्रेष्ठत्व को भूलकर वे कहानियों से सहयोग करें—इन्हें सहृदयता देते विमुख न पायँगे। रही भाषा, भाव, कला और चित्रण की बात, इनके सम्बन्ध में विशेष लिखना व्यर्थ है, समझदार को इस पुस्तक में इशारे से ज्यादा गुंजाइश है।

कुछ कथाएँ ऐसी हैं, जो मेरे जीवन की घटनाओं में से हैं। यदि इन्हें कथा-साहित्य में स्थान देते हुए साहित्यिक अनुदार न होंगे, तो मैं यह श्रम सार्थक हुआ समझूँगा। त्रुटियों के लिए सांजलि क्षमा-प्रार्थी हूँ, जबकि बनी भी बिगड़ जाती है।

लखनऊ
विजया दशमी, 1992

—निराला

5. 'चतुरी चमार' की भूमिका

आवेदन

'चतुरी चमार' नाम का कहानी-संग्रह पाठकों के सामने है। पहली कहानी 'चतुरी चमार' की हिन्दी-साहित्य में काफी चर्चा हो चुकी है। आलोचक अनेकानेक निबन्धों में इसकी प्रशंसा कर चुके हैं। संग्रहकार अपने संग्रहों में इसको स्थान दे चुके हैं। पाठक पढ़ने पर इनके तथा अन्य कहानियों के मूल का हिसाब स्वयं लगा लेंगे। मैंने स्थायी साहित्य के सर्जन के विचार से ये कहानियाँ लिखी हैं। पढ़ने पर पाठकों का श्रम सार्थक होगा, मुझको विश्वास है। भाषा, भाव और विषय के विवेचन में कहानियों के साथ उनका मन पुष्ट होगा। कला अपने आप उनको ऊँचा उठायेगी और मनोरंजन करेगी। उनका श्रम साहित्य-ज्ञानार्जन से सार्थक होगा।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

6. 'सुकुल की बीवी' की भूमिका

निवेदन

'सुकुल की बीवी' मेरी कहानियों का तीसरा संग्रह है। इसमें तीन कहानियाँ इधर की और अन्तिम 'क्या देखा' मेरी पहली कहानी है जैसा इसकी पादटीका में सूचित है। यह अन्तिम कहानी 'मतवाला' में 1923 ई. में निकली थी। कुछ परिवर्तन मैंने कर दिया है, पर हृदय-गत भाव वही हैं। लोगों को एक निर्णय और निश्चय की सुविधा होगी। यह कहानी पहले उत्तम पुरुष से चली है बाद को तृतीय पुरुष में बदल गयी है; यह जितना दोष है, उतना ही गुण। मेरा विचार है, कहा-नियों से पाठक-पाठिकाओं का मनोरंजन होगा। कथा, साहित्य और कला की प्यास कुछ बुझेगी। इति।

लखनऊ
10.2.41

'निराला'

72795

7. 'देवी' का समर्पण

प्रियश्री महादेवी वर्मा को

8. 'देवी' की भूमिका

भूमिका

देवी संग्रह प्रस्तुत है आशा है पाठक पढ़कर प्रसन्न होंगे। हिन्दी के प्रचार और प्रसार के लिए इसकी भाषा क्या काम करती है पढ़ने पर समझ में आ जाता है। लिखते जो श्रम किया गया है उसका पारितोषिक उपेक्षित भाषा-साहित्य के लोग नहीं वितरित कर सके। अब जब देशी भाषा-साहित्य की माँग बढ़ी है, आशा है अधिकारि-वर्ग स्कूल में प्रवेश देने का प्रयत्न करेंगे।

निराला

काशी
12.8.48

72795

निराला

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

जन्म : 21 फरवरी, 1899 (स्थान : बंगाल के मेदिनीपुर जिले का महिषादल नामक देशी राज्य। मूल निवास : उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले का गढ़ाकोला नामक गाँव) मृत्यु : 15 अक्टूबर, 1961 (दारागंज, इलाहाबाद) **शिक्षा** : हाई स्कूल तक। हिन्दी, बंगला, अंग्रेजी और संस्कृत का ज्ञान स्वतन्त्र रूप से प्राप्त किया। **वृत्ति** : प्रायः 1918 ई० से लेकर 1922 ई० के मध्य तक महिषादल राज्य की सेवा में। उसके बाद से सम्पादन, स्वतन्त्र लेखन और अनुवाद-कार्य। 1922-23 ई० में 'समन्वय' (मासिक, कलकत्ता) का सम्पादन। 1923 ई० के अगस्त से 'मतवाला'-मण्डल में। 'मतवाला' से सम्बन्ध किसी न किसी रूप में 1929 ई० के मध्य तक बना रहा। इस बीच स्वतन्त्र लेखन और बाजार का काम' भी करते रहे। कलकत्ता छोड़ा तो लखनऊ आये, जहाँ गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय और वहाँ से निकलनेवाली मासिक पत्रिका 'सुधा' से 1935 ई० के मध्य तक सम्बद्ध रहे। प्रायः 1940 ई० तक लखनऊ में। तत्पश्चात् कभी इलाहाबाद और कभी उन्नाव में। 1942-43 ई० से स्थायी रूप में इलाहाबाद में रहकर स्वतन्त्र लेखन और अनुवाद-कार्य। **साहित्य** : पहली प्रकाशित कविता : 'जन्मभूमि' ('प्रभा', मासिक, कानपुर, जून, 1920)। पहला प्रकाशित निबन्ध : 'बंगभाषा का उच्चारण' ('सरस्वती', मासिक, प्रयाग, अक्तूबर, 1920)। पहली प्रकाशित पुस्तक : **अनामिका** (1923 ई०)। प्रमुख कृतियाँ : **परिमल, गीतिका, द्वितीय अनामिका, तुलसीदास, कुकुरमुत्ता, अणिमा, बेला, नये पत्ते, अर्चना, आराधना, गीत गुंज, सान्ध्य काकली** (कविता), **अप्सरा, अलका, प्रभावती, निरुपमा, कुल्ली भाट, बिल्लेसुर बकरिहा** (उपन्यास), **लिली, चतुरी चमार** (कहानी), **रवीन्द्र-कविता-कानन, प्रबन्ध-पद्म, प्रबन्ध-प्रतिमा, चाबुक, चयन, संग्रह** (निबन्ध) और **महाभारत** (पुराकथा)।

यह कवि अपराजेय निराला,
जिसको मिला गरल का प्याला;
ढहा और तन टूट चुका है,
पर जिसका माथा न झुका है;
शिथिल त्वचा, ढलढल है छाती,
लेकिन अभी सँभाले थाती,
और उठाये विजय पताका—
यह कवि है अपनी जनता का।

रामविलास शर्मा

राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड नयी दिल्ली - पटना